पुष्प नं० १७

स्वामि कुंदकुंदाचार्यदेव विरचित

अष्टपाहुड

भाषा वचनिकाकार

स्व० पं० जयचन्दजी छाबड़ा, जयपुर

प्रकाशकः—
श्री मगनमल हीरालाल दि० जैन
पारमार्थिक ट्रस्टान्तर्गत
श्री पाटनी दि० जैन ग्रंथमाला
मारोठ (राजस्थान)

प्रथमवार
१०००

मूल्य ३॥)

अक्टूबर १९५०
श्री वीर नि० संवत
२४७६

नेमीचन्द बाकलीवाल
एम० के० मिल्स प्रेस
मदनगंज-किशनगढ़ (राजस्थान)

प्रकाशकीय

इस ग्रंथमालासे १६ वें पुष्पके रूपमें भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्य देव विरचित श्री अष्टपाहुड ग्रन्थको प्रकाशन करते हुये हमें बहुत हर्ष हो रहा है।

भगवान् श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेवने अपनी हर एक कृतिमें अध्यात्म रस खूब जी खोलकर भरा है, उनकी रचनाओं में यह सबसे सरल रचना मानी जाती है। ग्रन्थराज एवं उसके कर्ताके विषयमें हमें कुछ भी नहीं लिखना है कारण श्रीयुत् स्व० पं० रामप्रसादजी शास्त्री ने अपनी भूमिकामें इस विषयपर खूब प्रकाश डाला है। इस ग्रन्थमें श्री कुन्दकुन्ददेवकृत गाथासे तथो उन पर संस्कृत श्लोक दिये गये हैं तथा उन गाथाओंकी ढूंढारी भाषामें पं० जयचन्दजी छाबड़ा द्वारा विस्तृत टीका रची गई; वह भी दी गई है। हमारे कई मित्रोंका यह सुझाव था कि इसमें जयचन्द्रजीकी टीकाके स्थान पर प्रचलित हिंदी भाषामें नवीन टीका बनवाकर लगाई जावे, लेकिन मैंने ऐसा करना उचित नहीं समझा कारण मैंने कुछ ग्रन्थोंमें इस प्रकार का प्रयास किया था लेकिन वह सफल नहीं उतरा। पं० जयचन्दजीने श्री आचार्य देवके हृदयको स्पर्श करते हुये जितनी भाव द्योतक टीका की है उसकी वर्तमानमें टीका करानेसे वह भावही नहीं आ पाते। इन्हीं सब कारणोंसे मैंने इस ग्रन्थको जयचन्दजीकी भाषामें ही ज्यों का त्यो छपाया है।

इस ग्रन्थका पूर्व प्रकाशन वीर नि० सं० २४४९ के करीबमें पूज्य श्री मुनि अनन्तकीर्ति ग्रन्थमाला द्वारा बंबई से हुआ था, लेकिन सब

प्रतियाँ पूर्ण हो जानेसे आजकल यह ग्रंथ अप्राप्य हो रहा था, अध्यात्म-रसिकोको इस ग्रन्थकी बहुत आवश्यक्ता थी अतः पूर्व प्रकाशक की अनुमति लेकर यह ग्रन्थ इस ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित किया गया है। आशा है मुमुक्षुजन पूर्ण लाभ उठावेंगे।

अंतमे मैं श्री मुनि अनन्तकीर्ति ग्रन्थमालाके मंत्री महोदयको धन्यवाद देता हूँ-जिन्होंने हमको इसके प्रकाशनके लिये अनुमति दी।

भवदीयः—
नेमीचन्द पाटनी
प्र० मंत्री
श्री मगनमल हीरालाल पाटनी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट
मारोठ, (मारवाड़ राजस्थान)
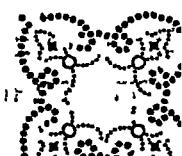
भूमिका

अनेक आनंदधाम अतिरमणीय इस पवित्र भारतीय वसुंधरामें स्वयं अहिंसात्मक तथा समभाव कर जीती है राग द्वेष परिणति जिनने ऐसे धर्मामृत पोषक अगणनीय ऋषिगणगणनीय भगवत् कुन्दकुन्दाचार्य का शासन साक्षात्तीर्थेश पूज्य श्री १००८ भगवान् वर्द्धमान जिनके समान ही आज इस कलिकाल नाम पंचम कालमें मान्यगणना रूप परिणत हो रहा है क्योंकि उनके अमूल्य स्मृतिबोधक ग्रन्थराज आज भी उनकी उस शांतिप्रभाविणी दिव्य भव्य, तथा लोकांत चिदानंद प्रापयित्री पावना मूर्तिको प्रत्यक्ष भासुरीय आभामें नयन विषय कर रहे हैं।

यद्यपि इस दिगम्बर जैन समाजमें आत्मविज्ञान कर्मविज्ञान तथा तत्साधक अनेक कारणात्मक ऐसे ग्रंथराज हैं कि जिनके अंशमात्र ज्ञानसे ही आत्मस्वरूप समझमें आ जाता है तथा आज कल धुरंधर विद्वान् श्रेणिकी गणना प्राप्त हो जाती है इसी समय यदि अगाधतामें रत्नाकर इनका प्रतिस्पर्धी हो तो विशेष अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि गुणरत्न समुद्ररत्नवत् इनमें भी भरे हैं। और वे बड़े ही प्रज्ञाशील कर्मशूरको प्राप्त हो सकते हैं। इसी कारण इनका रचयिता यदि ब्रह्मदेव सर्वज्ञके अनुरूप हो तो वह अशक्यतामें सत्य ही है क्योंकि हमारे जैसेके लिये तो यहां भी वही भाव है। अतएव इनकी आत्मा साक्षात् तीर्थेशकी वाणी और ये

साक्षात्तीर्थेशके समानही हमारे लिये हितावह हैं। इनके विषयमें तथा इनकी सर्वज्ञ परंपरागत कृतिके विषयमें यदि किसीकी आक्षेप विक्षेपता होगी वह केवल अगाधजल-आभात्मक मृगतृष्णाके समानही उसके लिये होगी। स्वामी कुन्दकुन्द सरीखे ग्रन्थकार तथा उनके ग्रंथमें कहीं भी ऐसा अंश नहीं है कि जिसमें किसीका आक्षेप विक्षेप हो क्योंकि उनकी ग्रन्थशैली आध्यात्म प्रधानतासे मार्गानुशासिनी है फिर भी यहां सर्वत्र इस प्रकारेका गुंठन है कि किसी भी प्रतिपक्षी तथा परीक्षकको आदिसे अन्ततक कहीं भी ऐसा अंश न मिलेगा कि जिसमें आक्षेप विक्षेपको जगह हो। इसोलिये इनको प्रधान तथा पूज्य प्रमाण कोटीमें भगवान महावीर तथा गौतमगणीके तुल्य माना है क्योंकि शास्त्रकी आदिमें शास्त्र वांचने वाले मंगलाचरणमें 'मंगलं भगवान् वीरो मंगलं गोतमो गणी मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो जैनधम्मोस्तु मंगलं' यह पाठ हमेशाह ही पढ़ते हैं।

इसीसे पता लगता है कि स्वामी कुन्दकुन्दाचार्यका आसन इस दिगम्बर जैन समाजमें कितना ऊँचा है ये आचार्य मूलसंघके बड़ेही प्राभाविक आचार्य माने गये हैं। अतएव हमारे प्रधानवर्ग मूलसंघके साथ कुन्दकुन्दाम्नायमें आज भी अपनेको प्रगटकर धन्य मानते हैं, वास्तवमें देखा जाय तो जो कुन्दकुन्दाम्नाय है वही मूलसंघ है फिर भी मूलसंघकी असलियत कहाँ है यह प्रगट करनेके लिये कुन्दकुन्द आम्नाय को प्रधान माना है और इसी हेतुसे मूलसंघके साथ जो कुन्दकुन्द आम्नायके लिखने बोलनेकी शैली है वह योग्य भी है क्योंकि मूलसंघता कुन्दकुन्दाम्नायमें ही प्रधानतासे मानी जाती है। और इसको प्रसिद्धि दिगम्बर प्रमुख समाजमे सर्वत्र ही है। अतः किसीके विवाद औरसंदेह को यहां जगह नहीं है।

श्रीश्रुतसागरसूरिने इनके षट्पाहुड ग्रन्थकी संस्कृत टीकाके

प्रत्येक पाहुडके अन्तमें इनके पांच[1] नाम लिखे हैं जो कि इस प्रकार हैं- श्री पद्मनंदिकुन्दकुन्दाचार्यवक्रग्रीवाचार्यैलाचार्यगृद्धपृच्छाचार्य-नामपंचकविराजितेन, इससे यह पता लगता है कि तत्वार्थ सूत्रके कर्ता श्री उमास्वामी और ये एक ही व्यक्ति हों। क्योंकि तत्वार्थ-मोक्षशास्त्र के दशाध्यायके अन्तमें भी तत्वार्थसूत्रकर्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितं। वन्दे गणीन्द्रसंज्ञातमुमास्वामिमुनीश्वरं; इस श्लोकमें भी गृद्धपिच्छ ऐसा उमास्वामीजीका विशेषण दिया है इससे तथा विदेहक्षेत्रमें भगवान श्री १००८ सीमंधरस्वामी द्वारा सबोधित होनेकी कथामें भी गृद्धपिच्छका विषय आता है तथा कुछ एक विद्वान् द्वारा उमास्वामीजीकी कथा भी वैसी ही सुनी जाती है जैसी कि गृद्धपिच्छके विषयमें कुन्दकुन्दाचार्य की है। और कुन्दकुन्दाचार्य सीमंधर स्वामीसे संबोधित हुए इस विषयमें भी श्रीश्रुतसागरसूरिने लिखा है कि—सीमंधरस्वामिज्ञानसंबोधित-भव्यजनेन, इससे हम कुछ संदिग्ध होते हैं कि शायद दोनों व्यक्ति एकही हों परन्तु जबतक कोई पुष्ट प्रमाण न मिलै तबतक हम संदिग्धा-वस्थामें रहनेके सिवाय और कर ही क्या सकते हैं। यदि कहीं कुन्दकुन्द

---

१ दिगम्बर जैन नामक पत्रके वर्ष १४ वा वीर स० २४४७ वि० सं० १९७७ सन् १९२१ ईस्वी के पं० नन्दलालजी ईडर (चावली-आगरा) द्वारा भेजे गये आचार्योंकी पट्टावली और इतिहास नामक लेखकी टिप्पणीस्थ नं० ग की ईडर भंडार वाली पट्टावली में भी कुन्द-कुन्दके पांच नामका श्लोक इस प्रकार मिलता है।

पट्टावली ग.

आचार्यकुन्दकुन्दाख्यो वक्रग्रीवो महामुनिः।
एलाचार्यो गृद्धपृच्छः पद्मनंदीति तन्नुतिः॥५॥

के नामों में उमास्वामि नामभी होता तब तो फिर सन्देहको भी स्थान न मिलता फिर भी इतना जरूर है कि इनका कोई न कोई गुरु शिष्यपने का सम्बन्ध परस्परमें अवश्य होगा।

गृद्धपृच्छ कुन्दकुन्द हों या उमास्वामि हों दोनोंका ही यशोगान इस दि० जैन समाजमें पूर्ण रीतिसे बड़ी भक्ति तथा श्रद्धासे जुदे २ नाम द्वारा गाया जाता है तथा गृद्धपृच्छ नामसे भी किसी किसी ग्रन्थकर्त्ताने अपनी आंतरिक भक्ति प्रदर्शित की है जैसे कि वादिराज सूरिने अपने पार्श्वचरित्र ग्रथमें सब आचार्योंमें प्रथम गृद्धपृच्छस्वामीका क्या ही अपूर्व शब्दोंमें गुणानुवाद पूर्वक नमस्कार किया है—

अतुच्छगुणसंपातं गृद्धपिच्छं नतोऽस्मि तं।
पक्षीकुर्वंति यं भव्या निर्वाणायोत्पतिष्णवः॥ १ ॥

जो प्रधान २ गुणोंका आश्रय दाता है तथा मोक्ष जानेके इच्छुक उड़नेवाले पक्षियोंके पाखकी तरह जिसका आश्रय लेते है उस गृद्धपृच्छ को मैं नमस्कार करता हूं।

कुन्दकुन्दके विषयमें भाषाटीकाकार पंडित जयचन्द्रजी छाबड़ा तथा पं० 'वृन्द्रावनदासजी[1] वगैर' अनेक विद्वानोंने भी बहुतसे अभ्यर्थनीय

१ जासके मुखारविन्दतें प्रकाश भासवृन्द
स्यादवादजैनवैन इंदु कुन्दकुन्दसे।
तासके अभ्यासतें विकाश भेदज्ञान होत,
मूढ़ सो लखे नहीं कुबुद्धि कुन्दकुन्दसे॥
देत हैं अशीस शीसनाय इंदु चंद जाहि,
मोह-मार-खंड मारतंड कुन्दकुन्दसे।
विशुद्धिबुद्धिवृद्धिदा प्रसिद्ध ऋद्धिसिद्धिदा
हुए न, हैं न, होंहिंगे, मुनिंद कुन्दकुन्दसे॥
—कविवर वृन्दावनदासजी

वाक्योसे स्तुतिगान किया है जो कि अद्यावधि उसी रूपमें प्रवाहित होकर चला आरहा है। वह स्वामीजीके अलौकिक पांडित्य तथा उनकी पवित्र आत्मपरिणतिका ही प्रभाव है स्वामी कुन्दकुन्दाचार्यने अवतरित होकर इस भारतभूमिको किस समय भूपित तथा पवित्रित किया इस विपयका निश्चितरूपसे अभीतक किसी विद्वान्ने निर्णय नहीं किया क्योंकि कितने ही विद्वानोने सिर्फ अदाजेसे इनको विक्रमकी पांचवी और कितनेही विद्वानोंने तीसरी शताब्दिका होना लिखा है तथा वहुतसे विद्वानोंने इनको विक्रमकी प्रथम शताब्दिमे होना निश्चित किया है और इस मत परही प्राय. प्रधान विद्वानोका झुकाव है। संभव है कि यही निश्चित रूपमे परिणत हो। परंतु मेरा दिल इनको विक्रमकी पहली शताब्दिसे भी वहुत पहलेका कवूल करता है कारण कि स्वामीजीने जितने ग्रन्थ वनाये है उन किसीमें भी द्वादशानुप्रेक्षाके अतमे नाममात्रके सिवाय अपना परिचय नहीं दिया है परन्तु बोध पाहुडके अंतमे न० ६१ की एक यह गाथा उपलब्ध है—

सद्दवियारो भूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दवाहुस्स॥

बोधपाहुड़॥ ६१॥

मुझे इस गाथाका अर्थ गाथाकी शब्द रचनासे ऐसा भी प्रतीत होता है।

जं—यत् जिणे—जिनेन, कहिय—कथितं, सो—तत्, भासासुत्तेसु—भाषासूत्रेपु (भाषारूपपरिणतद्वादशागशास्त्रेपु), सद्दवियारोभूओ—शब्दविकारो भूत' (शब्दविकाररूपपरिणतः) भद्दबाहुस्स—भद्रबाहो' सीसेणय-शिष्येनापि। तह—तथा, णायं—ज्ञातं, कहिय-कथित्तं।

जो जिनेन्द्रदेवने कहा है वही द्वादशांगमें शब्दविकारसे परिणत हुआ है और भद्रबाहुके शिष्यने उसी प्रकार जाना है तथा कहा है।

इस गाथामें जिन भद्रबाहुका कथन आया है वे भद्रबाहु कौन हैं, इसका निश्चय करनेके लिये उनके आगेकी नं० ६२ की गाथा इस प्रकार है।

बारस अंगवियाणं चउदस पुवंग विउल वित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयओ ॥
बोधपाहुड़ ॥ ६२ ॥

द्वादशांगके ज्ञाता तथा चौदह पूर्वांगका विस्तार रूपमें प्रसार करनेवाले गमकगुरू श्रुतज्ञानी भगवान भद्रबाहु जयवते रहो।

इन दोनों गाथाओंके पढ़नेसे पाठकोको अच्छी तरह विदित होगा कि ये बोध पाहुडकी गाथायें श्रुतकेवली भद्रबाहुके शिष्यकी कृति है। और ये अष्ट पाहुड ग्रथ निर्विवाद अवस्थामे कुन्दकुन्दस्वामीजीके बनाये हुए हैं इससे यह सिद्ध होता है किस्वामी कुन्दकुन्द श्रुतकेवलीभद्रबाहुके शिष्य थे ऐसी अवस्थामें कुन्दकुन्दका समय विक्रमसे बहुत बहुत पहले का पड़ता है।

परंतु इस गाथाका अर्थ मान्यवर श्री श्रुतसागर सूरिने दूसरे ही प्रकार किया है और उसीके आधार पर जयपुरनिवासी पं जयचन्द्रजी छाबड़ाने भी किया है इससे हम पूर्ण रूपमें यह निश्चय नहीं लिख सकते कि स्वामीजीका समय विक्रम शताब्दिसे पहलेका होगा क्योकि श्रुतसागर सूरिने जो अर्थ लिखा है वह किसी विशेष पट्टावली वगैर. के आधारसे लिखा होगा दूसरे वह एक प्रमाणिक तथा प्रतिभाशाली विद्वान् थे इस वजह उनके अर्थको अमान्य ठहराया जाय यह इस तुच्छ लेखककी शक्तिसे बाह्य है। फिर भी मुझे उस गाथाका जो अर्थ सूझा है वह स्पष्टतासे ऊपर लिखदिया है विद्वान् पाठक इसका समुचित विचार कर स्वामीजीके समय निर्णयकी गहरी गवेषणामें उतरकर समाजकी एक खास त्रुटिको पूरा करेंगे।

भगवत्कुन्दकुन्दस्वामीके बनाये हुये ग्रंथोमे समयसार १ प्रवचनसार, २ पंचास्तिकाय ३ नियमसार ४ रयणसार ५ अष्टपाहुड ६ द्वादशा-

नुप्रेक्षा ७ ये सात ग्रंथ देखने में आते हैं और ये सभी ग्रंथ छप भी गये हैं। अष्टपाहुडमें षट्पाहुडके ऊपर संस्कृत टीका श्री श्रुतसागरजी सूरिकी है जोकि बहुतही मनोज्ञ है और वह माणिकचन्द्र दिगम्बर जैन ग्रंथमालाके षट्प्राभृतादिसंग्रहमें प्रकाशित हो चुकी है। इस अष्टपाहुडग्रंथके ऊपर पं. जयचन्द्रजी छावड़ा जयपुर निवासीकृत दूसरी देशभाषामयवचनिका है जिसमें कि षट्पाहुड तक श्री श्रुतसागरसूरिकी टीकाका आश्रय है और दूसरे पाहुडों की उनने खुद लिखी है जिसका कि वर्णन उन्होंने खुद अपनी प्रशस्तिमें लिखा है और वह प्रशस्ति इस ग्रंथके अंतमें उनकी ज्यों की त्यों लगादी है उससे पाठक विशेषज्ञान इस विषयमें कर सकेंगे। पंडित जयचन्द्रजी छावड़ाके विषयमें हम-इस संस्थासे प्रकाशित प्रमेय रत्नमाला तथा आप्तमीमांसाकी भूमिकामें पहले लिख चुके हैं वहांसे पाठक उनके संबंधका कुछ विशेष परिचय कर सकते हैं। आप १९०० शताब्दीके एक प्रतिभाशाली विद्वान थे जिनका कि हम दिगम्बर समाजमें आज भी वैसा ही आदर होता है जैसा कि प्रसिद्ध विद्वान् टोडरमलजीका होता है। पं. टोडरमलजीने थोड़े ही समयमें प्रतिभा शालिनी अलौकिक बुद्धिसे इस दि० जैन समाजका वह कल्याण किया है कि जिसका प्रतिफल स्वरूप यशोगान यह समाज आज तक गा रहा है। उसी प्रकार टोडरमलजीके समकक्ष पंडित जयचन्द्रजीका भी समाजके ऊपर वैसा ही उपकार है इसीसे समाजकी दृष्टिमें ये भी मान्य हैं पंडित जयचन्द्रजीका पांडित्य हरएक विषयमें अपूर्व ही था यह उनकी ग्रंथरूप कृतिसे पाठकोंको स्वयमेव ही विदित हो सकता है। तथा ये निरपेक्ष परोपकाररत ऐसे विद्वान् थे कि जिनकी बराबरीका उस समय जयपुर भरमें किसी धर्मका भी वैसा कोई विद्वान् नहीं था। तथा भाषा सर्वार्थसिद्धि की प्रशस्ति पढ़नेसे मालूम होता है कि आपके पुत्र नन्दलालजी भी बड़े विद्वान् थे। उनकी प्रेरणासे तथा भव्यजनोंकी विशेष प्रेरणासे ही उन्होंने सर्वार्थसिद्धि वगैरः ग्रंथोंकी देशभाषामय वचनिका

लिखी है। आपके विषयमें वृद्ध पुरुषोंद्वारा आज तक भी एक प्रसिद्ध कहावत सुननेमें आती है कि एक समय जयपुरनगरमें शास्त्रार्थी अन्यधर्मी एक बड़ा विद्वान् जयपुरनगरके विद्वानोंको शास्त्रार्थमें जीतनेकी इच्छासे आया था उस समय उस विद्वान्से शास्त्रार्थ करनेके लिये जयपुर निवासी कोई भी विद्वान् उसके सन्मुख नहीं गया, ऐसी हालतमें नगरके विद्वानोंकी तथा नगरकी विद्वत्ताके विना अकीर्ति न हो जाय इस हेतु से तथा राज्यकी कीर्ति वाञ्छक नगरके विद्वान् पंच तथा राज्य कर्मचारी वर्गने पं० जयचन्द्रजी छावड़ासे जाकर सविनय निवेदन किया था कि इस विद्वान्को शास्त्रार्थ से आप ही जीत सकते हैं अतः इस नगर की प्रतिष्ठा आप पर ही निर्भर है इसलिये शास्त्रार्थ करनेके निमित्त आप पधारें अन्यथा नगरकी बड़ी बदनामी होगी कि बड़े बड़े पंडितोंको खानि इस विशाल नगरको एक परदेशी विद्वान् जीत गया। इस बातको सुनकर पंडित जयचन्द्रजी छावड़ाने जवाब दिया कि मैं तो जयपराजयकी अपेक्षासे शास्त्रार्थ करने किसीसे जाता नहीं फिर भी आप लोगोंका ऐसा ही आग्रह है तो मेरे इस पुत्र नंदलालको ले जाइये यह उससे शास्त्रार्थ कर सकेगा। इस पर राजी हो कर सब लोग पं० नन्दलालजीको ले गये और पं० नन्दलालजीने शास्त्रार्थ कर विदेशी विद्वान्को पराजित किया उसके प्रतिफल राज्य तथा नगरपंचकी तरफ से पं० नन्दलालजी को कुछ उपाधि मिली थी उसके विषयमें पं० जयचन्द्रजीने अवश्य कर्तव्य में उपकार मानकर उसका प्रतिफल स्वरूप लेना मानो अवश्य कर्तव्य तथा उपकारको नीचे गिराना है, इत्यादि वाक्य कह कर उस पदवीको वापिस करा दिया था।

इस कथानकसे पूरी तौर पर पता चलता है कि आप तथा आपके पुत्र कितने बड़े विद्वान् थे और आप ऐहिक आकांक्षासे कितने निरपेक्ष थे। आपके पिताका नाम मोतीरामजी था जातिके खंडेलवाल श्रावक थे तथा छाबड़ा गोत्र में आपका जन्म हुआ था आपकी जिस समय ११

वर्षकी अवस्था थी इस समय से जैन धर्मकी तरफ आपका विशेष चित्त आकर्षित हुआ। आप तेरह पंथके अनुयायी थे। तथा आप परकृत उपकारको विशेष मानते थे इसलिये आप में कृतज्ञता भी भरपूर थी क्योंकि पं० वंशीधरजी पं० टोडरमलजी पं० दौलतरामजी, त्यागी रायमल्लजी व्रती मायारामजी वगैरः की कृति तथा इनका उपकार रूप बखान आपने बड़ेही मनोज्ञ शब्दोंमें किया है। आपने गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार, समयसार, अष्टपाहुड, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, राजवार्तिक, श्लोकवार्तिक, अष्ट सहस्री, परीक्षामुख आदि प्रमुख अनेक ग्रंथों का पठन तथा मनन किया था जिसका कि सब विषय खुलासा भाषा सर्वार्थसिद्धि वगैरःकी प्रशस्ति पढ़नेसे हो जाता है।

आपने जो जो अनुवादरूप ग्रंथ कृति की है उसका खुलासा हम प्रमेय रत्नमाला की भूमिकामें कर ही चुके हैं। सर्वार्थसिद्धि वगैर के समान आपने इस अष्टपाहुडमें भी बहुत ही भव्य प्रयास किया है। आपने अति कठिन अर्थोंका भी सीधी हृदयग्राही भाषामें अनुवाद कर एक बहुत बड़ी समाजकी त्रुटिको पूरा किया है। इस कारण आपके विषय में समाजका आभारी होना योग्य ही है।

यह पाहुड ग्रंथ यथा नाम तथा विषयसे आठ अंशोंमें विभक्त है जैसे कि दर्शन पाहुडमें-दर्शन विषयक कथन, सूत्र पाहुडमें-सूत्र (शास्त्र) संबंधी कथन, इत्यादि। पंडितजीने इस ग्रंथकी टीकाकी समाप्ति विक्रम सम्वत् १८६७ भाद्रपद सुदि १३ को की है—जैसा कि आपने इस ग्रंथकी प्रशस्ति में लिखा है.—

संवत्सर दश आठ सत सतसठि विक्रमराय।
मास भाद्रपद शुक्ल तिथि तेरसि पूरन थाय॥

पण्डितजीके ग्रंथों में आदि तथा अंतके मंगलाचरणसे पता लगता है कि आप परम आस्तिक तथा देव गुरु शास्त्रमें पूर्ण भक्ति रखते थे। सत्य तो यह है कि जहां आस्तिकता तथा भक्ति है वहां सर्वकी उपकार कर्त्री बुद्धि भी है यही बात उक्त पंडितजीमें थी इसलिये उनमें भी ऐसी उपकर्त्री बुद्धि तथा अन्य मान्य गुण थे। इसीसे आप हमारे तथा सब समाजके मान्य हैं अब हम आकांक्षा करते हैं कि आप शीघ्रही अनंत तथा अक्षय सुखके अनंत काल भोगी हों। इस ग्रंथकी भूमिकाके साथ हमने पाठकोंके सुभीतेके लिये गाथा तथा विषय सूची भी लगादी है। अब हमारा अन्तिम निवेदन है कि अल्पज्ञता वश इस भूमिका तथा ग्रंथ संशोधनमें हमारी बहुतसी त्रुटि रह गई होंगी जिसका आप सुज्ञ मार्जन कर हमे क्षमा करेंगे।

मिती-मगसिर सुदि ८
सं० १९८० विक्रम
ता० १५-१२-१९२३ ईस्वी सन्

विनीत—
रामप्रसाद जैन,
बम्बई।

विषय-सूची

विषय | पत्र

दर्शनपाहुड।

विषय पृष्ठ

सूत्रपाहुड

विषय पत्र

चारित्र पाहुड

विषय	पत्र

विषय	पत्र

विषय — पत्र

विषय

विषय	पत्र

विषय पत्र

विषय | पत्र

मोक्षपाहुड

विषय	पत्र

लिंगपाहुड।

विषय

विषय	पत्र

* नमः सिद्धेभ्यः *

—:: स्वामि कुन्दकुन्दाचार्य विरचित ::—

अष्टपाहुड

दोहा

श्रीमत वीरजिनेशरवि मिथ्यातम हरतार ।
विघनहरन मंगलकरन वंदूं वृषकरतार ॥ १ ॥
बानी वंदूं हितकरी जिनमुखनभतैं गाजि ।
गणधरगणश्रुतभूझरी बूंदवर्णपद साजि ॥ २ ॥
गुरु गौतम वंदूं सुविधि संयमतपधर और ।
जिनितैं पंचमकालमैं वरत्यो जिनमत दौर ॥ ३ ॥
कुन्दकुन्दमुनिकूं नमूं कुमतध्वांतहर भान ।
पाहुड ग्रंथ रचे जिनहिं प्राकृत वचन महान ॥ ४ ॥
तिनिमैं कई प्रसिद्ध लखि करूं सुगम सुविचार ।
देशवचनिकामय लिखूं भव्यजीवहितधार ॥ ५ ॥

ऐसैं मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करि श्रीकुन्दकुन्दआचार्यकृत प्राकृतगाथा-बंध पाहुडग्रन्थ हैं तिनिमैंसूं केईकनिकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है,—

तहां प्रयोजन ऐसा है जो इस हुंडावसर्पिणी कालविषै मोक्षमार्गकूं अन्यथा प्ररूपण करनहारे अनेक मत प्रवर्त्तें हैं तहां भ. इस पंचमकालमैं केवली श्रुतकेवलीका व्युच्छेद होनेतैं जिनमतमैं भी जड़ वक्र जीवनिके निमित्तकरि परंपरामार्गकूं उल्लंघि बुद्धिकल्पित मत श्वेताम्बर आदिक भये हैं, तिनिका निराकरण करि यथार्थ स्वरूप स्थापनेके अर्थि दिगम्बर आम्नाय मूलसंघमैं आचार्य भये तिनिनै सर्वज्ञकी परंपराका अव्युच्छेद रूप प्ररूपणाके अनेक ग्रन्थ रचे हैं, तिनिमैं दिगम्बर सम्प्रदाय मूलसंघ नंदिआम्नाय सरस्वतीगच्छमैं श्रीकुन्दकुन्द मुनि भये तिनिनैं पाहुड ग्रंथ रचे तिनिकूं संस्कृतभाषामैं प्राभृतनाम कहिये, ते प्राकृत गाथाबंध हैं सो कालदोषतैं जीवनिकी बुद्धि मंद होय है सो अर्थ समझया जाता नाही, तातैं देशभाषामय वचनिका होय तौ सर्व ही वाचैं अर्थ समझैं श्रद्धान दृढ़ होय, यह प्रयोजन विचारि वचनिका लिखिये है, अन्य किछू ख्याति बडाई लाभका प्रयोजन है नाही। यातैं भव्यजीव ताकूं वांचि अर्थ समझि चित्तमैं धारण करि यथार्थमतका बाह्यलिंग तथा तत्वार्थका दृढ़ श्रद्धान करियो। यामैं किछू बुद्धिकी मंदतातैं तथा प्रमादके वशतैं अर्थ अन्यथा लिखूं तौ बड़े बुद्धिवान मूल ग्रंथ देखि शुद्धकरि वांचियो, मोकूं अल्पबुद्धि जानि क्षमा कीजियो।

अब इहां प्रथम ही दर्शनपाहुडकी वचनिका लिखिये है —

दोहा

वंदूं श्रीअरहंतकूं मन वच तन इकतान।
मिथ्याभाव निवारिकैं करैं सुदर्शन ज्ञान॥

अब ग्रंथकर्त्ता श्रीकुन्दकुन्द आचार्य ग्रंथकी आदि विषै ग्रंथकी उत्पत्ति अर ताका ज्ञानकूं कारण जो परंपरा गुरुका प्रवाह ताकूं मंगलकै अर्थि नमस्कार करै हैं.—

काऊण णमुक्कारं जिणवरवसहस्स वड्ढमाणस्स ।
दंसणमग्गं वोच्छामि जहाकम्मं समासेण ॥१

कृत्वा नमस्कारं जिनवरवृषभस्य वर्द्धमानस्य ।
दर्शनमार्गं वक्ष्यामि यथाक्रमं समासेन ॥ १ ॥

याका देशभाषामय अर्थ—आचार्य कहै हैं जो मैं जिनवर वृषभ ऐसा जो आदि तीर्थंकर श्री ऋषभदेव वहुरि वर्द्धमान नाम अंतिम तीर्थंकर ताहि नमस्कार करि अर दर्शन कहिये मत ताका मार्ग जो है ताहि यथा अनुक्रम संक्षेपकरि कहूँगा। भावार्थ—इहां जिनवर वृषभ ऐसा विशेषण है, ताका ऐसा अर्थ है जो जिन ऐसा शब्दका तौ यह अर्थ है—जो कर्म शत्रुकूं जीतै सो जिन, सो सम्यग्दृष्टी अव्रतीसूं लगाय कर्मकी गुणश्रेणीरूप निर्जरा करनेवाले सर्व ही जिन हैं, तिनमैं वर कहिये श्रेष्ठ, ऐसे जिनवर नाम गणधर आदिक मुनिनिकूं कहिये, तिनमैं वृषभ कहिये प्रधान ऐसे भगवान तीर्थंकर परमदेव हैं। तिनिमैं आदि तौ श्रीऋषभदेव भए, अर इस पंचमकालकी आदि अर चतुर्थकालके अन्तमैं अंतिम तीर्थंकर श्रीवर्द्धमानस्वामी भये तिनिका विशेषण भया। वहुरि जिनवर वृषभ ऐसे सर्वही तीर्थंकर भये, तिनिकूं नमस्कार भया, तहां वर्द्धमान ऐसा विशेषण सर्वहीका जानना, सर्व ही अन्तरंग वाह्य लक्ष्मीकरि वर्द्धमान हैं। अथवा जिनवर वृषभ शब्द करि तौ आदि तीर्थंकर श्रीऋषभदेव लेने अर वर्द्धमान शब्दकरि अन्तिम तीर्थंकर लेने, ऐसैं आदि अंत तीर्थंकरकूं नमस्कार करनेतै मध्यकेकूं नमस्कार सामर्थ्यतैं जाननां। वहुरि तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतरागकूं तौ परमगुरु कहिये,

अर इनिकी परिपाटीतैं चले आए गौतमादिक मुनि भये तिनिका नाम जिनवर वृषभ इस विशेषणमैं जनाया तिनिकूं अपरगुरु कहिये; ऐसैं परापर गुरुका प्रवाह जानना ते शास्त्रकी उत्पत्ति तथा ज्ञानकूं कारण हैं। तिनिकं ग्रंथकी आदिविषैं नमस्कार किया ॥ १ ॥

आगैं धर्मका मूल दर्शन है तातैं दर्शनतैं रहित होय ताकूं नहीं वदना, ऐसै कहैं हैं:—

दंसणमूलो धम्मो उवइट्ठो जिणवरेहिं सिस्साणं।
तं सोऊण सकण्णे दंसणहीणो ण वंदिव्वो ॥२॥

दर्शनमूलो धर्मः उपदिष्टः जिनवरैः शिष्याणाम्।
तं श्रुत्वा स्वकर्णे दर्शनहीनो न वन्दितव्यः ॥२॥

अर्थ—जिनवर जे सर्वज्ञदेव तिननैं शिष्य जे गणधर आदिक तिनिकूं धर्म उपदेश्या है सो कैसा उपदेश्या है, दर्शन है मूल जाका ऐसा धर्म उपदेश्या है। सो मूल कहा कहिए—जैसैं मन्दिरकै नींव अथवा वृक्षकै जड़ तैसैं धर्मका मूल दर्शन है। तातैं आचार्य उपदेश करैं है—जो हे सकर्णा! कहिये पंडित सतपुरुषहो! तिस सर्वज्ञके कहे दर्शन मूल रूप धर्मकूं अपने काननिविषैं सुनिकरि, अर जो दर्शनकरि रहित है सो वंदिबे योग्य नाही है दर्शनहीनकूं मति वदौ। जाकै दर्शन नांही ताकैं धर्म भी नाही, मूल बिना वृक्षकै स्कंध शाखा पुष्प फलादिक कहांतै होय, तातैं यह उपदेश है—जाकैं धर्म नाही तिसतैं धर्मकी प्राप्ति नांही, ताकूं धर्मनिमित्त काहेकू वन्दिए, ऐसा जाननां।

अब इहां धर्मका तथा दर्शनका स्वरूप जान्या चाहिये, सो स्वरूप तौ सक्षेपकरि ग्रंथकार ही आगैं कहसी तथापि किछूक अन्य ग्रथनिकै अनुसार इहा भी लिखिए है—तहां 'धर्म' ऐसा शब्दका अर्थ यह,

करिये सो भी व्यवहार है। तहां वस्तुस्वभाव कहनेमैं तो जे निर्विकार चेतनाके शुद्ध परिणामके साधकरूप मंदकषायरूप शुद्ध परिणाम हैं तथा बाह्य क्रिया हैं ते सर्वही व्यवहारधर्मकरि कहिये है। बहुरि तैसैही रत्नत्रय कहनेतैं स्वरूपके भेद दर्शन ज्ञान चारित्र तथा तिनिके कारण बाह्यक्रियादिक हैं ते सर्वही व्यवहारधर्मकरि कहिए है। तथा तैसैंही जीवनिकी दया कहनेतैं क्रोधादि कषाय मंद होनेतैं अपने वा परके मरण दुःख क्लेश आदि न करना, तिसके साधक बाह्यक्रियादिक ते सर्वही धर्मकरि कहिए हैं। ऐसैं निश्चय व्यवहार नय करि साध्या हुवा जिनमतमैं धर्म कहिए है। तहा एक स्वरूप अनेकस्वरूप कहनेतैं स्याद्वादकरि विरोध नाही आवै है, कथंचित् विवक्षातैं सर्व प्रमाणसिद्ध है। बहुरि ऐसे धर्मका मूल दर्शन कह्या सो ऐसे धर्मका श्रद्धा प्रतीति रुचि सहित आचरण करना सो ही दर्शन है, यह धर्मकी मूर्ति है, याहीकूं मत कहिए सो यह ही धर्मका मूल है। बहुरि ऐसे धर्मकी पहलै श्रद्धा प्रतीति रुचि न होय तौ धर्मका आचरण भी न होय, जैसैं वृक्षके मूल विना स्कंधादिक न होय तैसैं सो दर्शनकूं धर्मका मूल कहना युक्त है। सो ऐसे दर्शनका जैसैं सिद्धांतनिमैं वर्णन है तैसैं किछूक लिखिए है।

तहा अन्तरंग सम्यग्दर्शन है सो तौ जीवका भाव है सो निश्चयकरि उपाधितैं रहित शुद्धजीवका साक्षात् अनुभव होना ऐसा एक प्रकार है। सो ऐसा अनुभव अनादिकालतैं मिथ्यादर्शन नामा कर्मके उदयतैं अन्यथा होय रह्या है। या मिथ्यात्वकी सादि मिथ्यादृष्टीकैं तीन प्रकृति सत्तामैं होय है—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति ऐसैं। अर याकी सहकारिणी अनंतानुबंधी क्रोध मान माया लोभ भेदकरि च्यार कषाय नामा प्रकृति हैं। ऐसैं ये सात प्रकृति ही सम्यग्दर्शनके घात करनेवाली हैं; सो इनि सातनिका उपशम भये पहलें तौ इस जीवकैं उपशम सम्यक्त्व होय है। इनि प्रकृतिनिके उपशम होनेके बाह्य कारण सामान्यकरि द्रव्य क्षेत्र काल भाव हैं, तिनिमैं प्रधान द्रव्यमैं

तौ साक्षात् तीर्थंकरका देखना आदिक है, क्षेत्रमें प्रधान समवसरणादिक हैं, कालमें अर्द्ध पुद्गल परावर्त्तन संसारका भ्रमण बाकी रहै सो, भावमें अध प्रवृत्त करण आदिक हैं। बहुरि विशेषकरि अनेक हैं. तिनिमै केई-कनिकै तौ अरहतके बिंबका देखना है, अर केईकनिकैं जिनेन्द्रके कल्याण आदिकी महिमाका देखना है, केईकनिकै जातिस्मरण है, अर केईकनिकैं वेदनाका अनुभव है, अर केईकनिकै धर्मश्रवण है, अर केई-कनिकैं देवनिकी ऋद्धिका देखना है, इत्यादिक बाह्य कारणनितैं मिथ्या-त्वकर्मका उपशम भये उपशमसम्यक्त्व होय है। बहुरि इनि सात प्रकृ-तिनिमैं छहका तौ उपशम अथवा क्षय होय अर एक सम्यक्त्व प्रकृ-तिका उदय होय तब क्षयोपशम सम्यक्त्व होय है. इस प्रकृतिके उदयतैं किछू अतीचार मल लागै। बहुरि इनि सात प्रकृतिनिका सत्तामैंसूं नाश होय तब क्षायिक सम्यक्त्व होय है। सो ऐसैं उपशम आदिक भये जीवका परिणाम भेदकरि तीन प्रकार होय है, ते परिणाम होय सो अतिसूक्ष्म है केवलज्ञानगम्य हैं जातैं इनि प्रकृतिनिका द्रव्य पुद्गल पर-माणूनिके स्कंध हैं ते अतिसूक्ष्म हैं, अर तिनिमैं फल देनेकी शक्तिरूप अनुभाग है सो अतिसूक्ष्म है सो छद्मस्थके ज्ञान गम्य नाही। अर इनिका उपशमादिक होतैं जीवके परिणाम भी सम्यक्त्वरूप होय ते भी अति-सूक्ष्म हैं ते भी केवलज्ञानगम्य हैं। तथापि किछू छद्मस्थके ज्ञानमै आवने योग्य जीवका परिणाम होय हैं ते ताके जनावनेके बाह्यचिह्न हैं तिनिकी परीक्षाकरि निश्चय करनेका व्यवहार है, ऐसैं नहीं होय तौ छद्मस्थ व्यवहारी जीवकैं सम्यक्त्वका निश्चय नहीं होय तब आस्तिक्यका अभाव ठहरै, व्यवहारका लोप होय यह बडा दोष आवै। तातैं बाह्य चिह्ननिका आगम अनुमान स्वानुभवतैं परीक्षाकरि निश्चय करना।

ते चिह्न कौन, सो लिखिये है —तहां मुख्य चिह्न तौ यह है जो उपाधिरहित शुद्ध ज्ञान चेतनास्वरूप आत्माकी अनुभूति है सो यद्यपि यह अनुभूति ज्ञानका विशेष है तथापि सम्यक्त्व भये यह होय है तातैं

याकूं बाह्यचिन्ह कहिए है। ज्ञान है सो आपका आपकै स्वसंवेदनरूप है ताका रागादि विकाररहित शुद्ध ज्ञानमात्रका आपकै आस्वाद होय "जो यह शुद्धज्ञान है सो मैं हूं अर ज्ञानमैं रागादि विकार हैं ते कर्मके निमित्ततैं उपजै है ते मेरा रूप नाही हैं" ऐसैं भेदज्ञान करि ज्ञानमात्रका आस्वादकूं ज्ञानकी अनुभूति कहिये यह ही आत्मा अनुभूति है शुद्धनयका यहही विषय है। ऐसी अनुभूतितैं शुद्धनयकै द्वारैं ऐसा भी श्रद्धान होय है जो सर्व कर्मजनित रागादिक भावतैं रहित अनत चतुष्टय मेरा रूप है, अन्य भाव सर्व सयोग जनित हैं, ऐसी आत्माकी अनुभूति सो सम्यक्त्वका मुख्यचिह्न है। यह मिथ्यात्व अनतानुबंधीका अभावकरि सम्यक्त्व होय ताका चिह्न है, सो चिह्नकूं ही सम्यक्त्व कहनां यह व्यवहार है। बहुरि याकी परीक्षा सर्वज्ञके आगमकरि तथा अनुमानकरि तथा स्वानुभव प्रत्यक्षकरि इनि प्रमाणनिकरि कीजिये है। बहुरि याहीकू निश्चय तत्वार्थश्रद्धान भी कहिए है। तहा आपकै तौ आपका स्वसवेदनकूं प्रधानकरि होय है, अर परकै परकी परीक्षा परके वचन कायकी क्रियाकी परीक्षातैं अतरंगमें भयेकी परीक्षा होय है, यह व्यवहार है, परमार्थ सर्वज्ञ जानैं है। व्यवहारी जीवकै सर्वज्ञनै भी व्यवहारहीका शरणां उपदेश्या है। केई कहैं हैं—जो सम्यक्त्व तौ केवलीगम्य है यातैं आपकै सम्यक्त्व भयेका निश्चय नहीं होय तातैं आपकू सम्यग्दृष्टी नहीं माननां ? । सो ऐसैं सर्वथा एकान्त करि कहना तौ मिथ्या दृष्टि है, सर्वथा ऐसैं कहे व्यवहारका लोप होय, सर्व मुनि श्रावककी प्रवृत्ति मिथ्यात्वसहित ठहरै। तब सर्वही मिथ्यादृष्टी आपकू मानैं तब व्यवहार काहेका रह्या, तातै परीक्षा भये पीछै यह श्रद्धान नाही राखणा जो मैं मिथ्यादृष्टीहीहूँ, मिथ्यादृष्टी तौ अन्यमतीकूं कहिए है तब तिस समान आप भी ठहरै, तातैं सर्वथा एकान्त पक्ष ग्रहण नही करना। बहुरि तत्त्वार्थका श्रद्धान है सो बाह्य चिह्न है, तहा तत्त्वार्थ तौ जीव अजीव आस्रव बध संवर निर्जरा मोक्ष ऐसैं

मात हैं, वहुरि इनिमैं पुण्य पापका विशेप करिए तव नव पदार्थ होय हैं, सो इनिकी श्रद्धा कहिये इनिके सन्मुख बुद्धि अरु रुचि कहिए इनि रूप अपना भाव करना वहुरि प्रतीति कहिये जैसैं सर्वज्ञ भापे तैसैं ही हैं ऐसैं अंगीकार करना, वहुरि इनिका आचरणरूप क्रिया, ऐसैं श्रद्धानादिक होना सो सम्यक्त्वका वाह्य चिह्न है। वहुरि प्रशम संवेग अनुकंपा आस्तिक्य ये सम्यक्त्वके वाह्य चिह्न हैं। तहां अनंतानुवंधी क्रोधादिक कषायका उदयका अभाव सो प्रशम है; ताका वाह्य चिह्न ऐसा—जो सर्वथा एकान्त तत्वार्थके कहनेवाले जे अन्यमत जिनका श्रद्धान तथा वाह्यभेप ताविपैं सत्यार्थपणांका अभिमान करनां तथा पर्यायनिविपैं एकान्ततैं आत्मवुद्धिकरि अभिमान तथा प्रीति करनी ये अनंतानुवंधीका कार्य है, सो ये जाकै न होय तथा अपना काहूनैं बुरा किया ताका घात करना आदि विकारवुद्धि मिथ्यादृष्टिकी ज्यौं आपकै नहीं उपजै। अर ऐसैं विचारै जो मेरा बुरा करनेवाला मेरा परिणामकरि मैं वांध्या था जो कर्म, सो है, अन्य तौ निमित्तमात्र हैं, ऐसी बुद्धि आपकैं उपजै. ऐसैं मंदकपाय होय। अर अनंतानुवंधीविना अन्य चारित्रमोहकी प्रकृतिनिके उदयतैं आरंभादिक क्रियामैं हिंसादिक होय है तिनिकूं भी भला नहीं जानै है यातैं तिससैं प्रशमका अभाव नहीं कहिए। वहुरि धर्मविपैं अर धर्मका फलविपैं परम उत्साह होय सो संवेग है, तथा साधर्मीनितैं अनुराग तथा परमेष्ठीनिविपैं प्रीति सो भी संवेगही है। अर इस धर्मविपैं अर धर्मका फलविपैं अनुरागकूं अभिलाप न कहनां जातैं अभिलाप तौ इन्द्रियनिके विपयनिविपैं चाह होय ताकूं कहिये है, अपनां स्वरूपकी प्राप्तिविपैं अनुरागकूं अभिलाप नहीं कहिये। वहुरि इस संवेगहीमैं निर्वेद भी भया जानना जातैं अपने स्वरूपरूप धर्मकी प्राप्तिविपैं अनुराग भया तव अन्यत्र सर्वही अभिलापका त्याग भया सर्व परद्रव्यनिसूं वैराग्य भया, सो ही निर्वेद है। वहुरि सर्व प्राणीनिविपैं उपकारकी बुद्धि तथा मैत्रीभाव सो अनुकंपा है तथा माध्यस्थ्यभाव होय तातैं सम्यग्दृष्टिकै शल्य नांही है काहूसूं वैरभाव न होय है, सुख दुःख

परलोकका भय, मरणका भय, अत्ररक्षाका भय, अगुप्तिभय, वेदनाका भय, अकस्मात् भय। ऐसैं ये भय होय तब जानिये याकै मिथ्यात्वकर्मका उदय है; सम्यग्दृष्टि भये ये होय नाही। इहां प्रश्न—जो भय प्रकृतिका उदय तौ आठमा गुणस्थान ताईं है ताके निमित्ततै सम्यग्दृष्टीकैं भय होय ही है, भयका अभाव कैसैं? ताका समाधानः—जो यद्यपि सम्यग्दृष्टीकैं चारित्रमोहके भेदरूप भयप्रकृतिके उदयतैं भय होय है तथापि ताकूं निर्भय ही कहिये जातैं याकै कर्मके उदयका स्वामीपणां नांही है अर परद्रव्यतैं अपनां द्रव्यत्वभावका नाश नहीं मानैं है, पर्यायका स्वभाव विनाशीक मानैं है, तातैं भय होतैं भी निर्भय ही कहिये। भय होतैं ताका इलाज भागनां इत्यादि करै है, तहां वर्त्तमानकी पीड़ा नहीं सही जाय तातैं इलाज करै है यह निबलाईका दोष है। ऐसैं संदेह अर भयरहित सम्यग्दृष्टी होय ताकैं निःशंकित अंग होय है॥ १॥

वहुरि कांक्षा नाम भोगनिकी इच्छा अभिलाषका है। तहां पूर्वें किये भोग तिनिकी वांछा तथा तिनि भोगनिकी मुख्य क्रिया विषै वांछा तथा कर्म अर कर्मके फलविषैं वांछा तथा मिथ्यादृष्टीनिकैं भोगनिकी प्राप्ति देखि तिनिकूं अपने मनमैं भला जानना, अथवा इंद्रियनिकूं नहीं रुचै ऐसे विषयनिविषैं उद्वेग होना, ये भोगाभिलाषके चिह्न हैं। सो यह भोगाभिलाष मिथ्यात्वकर्मके उदयतैं होय है। सो यह जाकै नहीं होय सो निःकांक्षित अंगयुक्त सम्यग्दृष्टी होय है। यह सम्यग्दृष्टी यद्यपि शुभक्रिया व्रतादिक आचरण करै है ताका फल शुभकर्मबंध है ताकूं भी नाही वांछै है व्रतादिककूं स्वरूपके साधक जानि आचरै है कर्मके फलकी वांछा नाही करै है। ऐसैं निःकांक्षित अंग है॥ २॥

वहुरि आपविषैं अपने गुणकी महंतताकी बुद्धिकरि आपकूं श्रेष्ठ मानि परविषैं हीनताकी बुद्धि होय ताकूं विचिकित्सा कहिये, यह जाकै नहीं होय सो निर्विचिकित्सा अंगयुक्त सम्यग्दृष्टी होय है। याके चिह्न

ऐसैं—जो कोई पुरुष पापके उदयतैं दुःखी होय, असाताके उदयतैं ग्लानियुक्त शरीर होय ताविषैं ग्लानिबुद्धि नहीं करै। ऐसी बुद्धि नहीं करै—जो मैं सपदावान हू सुन्दरशरीरवान हूं, यह दीन रांक मेरी वराबरी नाही करि सकै। उलटा ऐसैं विचारै जो प्राणीनिकै कर्मउदयतैं विचित्र अनेक अवस्था होय है, मेरे कर्मका उदय ऐसा आवै तब मै भी ऐसा ही होजाऊ। ऐसैं विचारतैं निर्विचिकित्सा अग होय है ॥३॥

वहुरि अतत्वविषै तत्वपणांका श्रद्धान सो मूढदृष्टि है। ऐसैं मूढदृष्टि जाकै नहीं होय सो अमूढदृष्टि है। तहां मिथ्यादृष्टीनिकरि खोटे हेतु दृष्टातकरि साध्या पदार्थ है सो सम्यग्दृष्टीकूं प्रीति नाही उपजावै है। वहुरि लौकिक रूढी अनेक प्रकार है सो यह निःसार है, निःसार पुरुषनिकरि ही आचरिए है, अनिष्ट फलकी देनहारी हैं तथा निष्फल है तथा जाका खोटा फल है तथा ताका किछू हेतु नाही ताका किछू अर्थ नाही, जो किछू लोक रूढ़ि चलि पडै सो लोक आदरिले फेरि ताका त्यजनां कठिन होय जाय इत्यादि लोकरूढि हैं। वहुरि अदेवविषैं तौ देवबुद्धि, अधर्मविषैं धर्मबुद्धि, अगुरुविषै गुरुबुद्धि इत्यादि देवादिक मूढता है सो यह कल्याणकारी नांही। सदोष देवकूं देव मानना, वहुरि तिनिके निमित्त हिंसादिकरि अधर्मकूं धर्म मानना, वहुरि खोटा आचारवान शल्यवान परिग्रहवान सम्यक्त्वव्रतरहितकू गुरु मानना इत्यादि मूढ़ दृष्टिके चिह्न हैं। अब इहा देव धर्म गुरु कैसे होय तिनिका स्वरूप जान्या चाहिये, सो ही कहिये है—तहा रागादिक दोष अर ज्ञानावरणादिक कर्म सो ही आवरण, ये दोऊ जाकै नांही सो देव है, ताकै केवलज्ञान केवलदर्शन अनतसुख अनतवीर्य ये अनंतचतुष्टय होय हैं। सो सामान्यतैं तौ देव ऐसा एक है अर विशेषकरि अरहत सिद्ध ऐसैं दोय भेद हैं, वहुरि इनिके नामभेदके भेदकरि भेद करिये तब हजारां नाम हैं। वहुरि गुणभेद करिए तब अनत गुण हैं। तहा परम औदारिक देह विषैं तिष्ठ्या घातियाकर्मरहित अनतचतुष्टयसहित धर्मका

उपदेश करनहारा ऐसा तौ अरहंत देव है। बहुरि पुद्गलमयी देहसूंरहित लोकके शिखर तिष्ठ्या सम्यक्त्वादिक अष्टगुणमंडित अष्टकर्मरहित ऐसा सिद्ध देव है, इनिके अनेक नाम हैं—अरहंत, जिन, सिद्ध, परमात्मा, महादेव, शंकर, विष्णु, ब्रह्मा, हरि, बुद्ध, सर्वज्ञ, वीतराग परमात्मा इत्यादि अर्थसहित अनेक नाम हैं; ऐसा तौ देव जानना। बहुरि गुरु भी अर्थ थकी विचारिये तौ अरहंत देवही है जातैं मोक्षमार्गका उपदेश करनहारा अरहंत ही है साक्षात् मोक्षमार्ग यहही प्रवर्त्तावे है; बहुरि अरहंतकै पीछै छद्मस्थ ज्ञानके धारक तिनिहीका निर्ग्रंथ दिगंबर रूप धारनेवाले मुनि है ते गुरु हैं जातै अरहंतका एकदेशशुद्धपणां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका तिनिकैं पाइये सोही संवर निर्जरा मोक्षके कारण हैं तातैं अरहंतकी ज्यों एकदेशपणैं निर्दोप हैं ते मुनि भी गुरु हैं, मोक्षमार्गके उपदेश करनहारे हैं। बहुरि ऐसा मुनिपणां सामान्यकरि एकप्रकार है, बहुरि विशेषकरि सो ही तीन प्रकार है--आचार्य, उपाध्याय, साधु। ऐसैं यह पदवीका विशेष है, तिनिकै मुनिपणांकी क्रिया एकही है, बाह्य लिंग भी समान है, पंच महाव्रत पंच समिति तीन गुप्ति ऐसैं तेरह प्रकारका चारित्र भी समानही है, तप भी शक्तिसारू समानही है, साम्यभाव भी समान है, मूलगुण उत्तरगुण भी समान हैं, परीषह उपसर्गनिका सहना भी समान है, आहार आदिकी विधि भी समान है, चर्या स्थान आसन आदि भी समान हैं, मोक्षमार्गका साधनां सम्यक्त्व ज्ञान चारित्र भी समान हैं। ध्याता ध्यान ध्येयपणा भी समान है, ज्ञाता ज्ञान ज्ञेयपणा भी समान है, च्यार आराधनांका आराधना क्रोधादिक कषायनिका जीतनां इत्यादि मुनिनिकी प्रवृत्ति है सो सर्व समान है। इहा विशेष यहु है—जो आचार्य है सो तौ पंच आचार अन्यकू अंगीकार करावै है, बहुरि अन्यकूं दोष लागे ताका प्रायश्चित्तकी विधि बतावै है, धर्मोपदेश दीक्षा शिक्षा दे सो तौ आचार्य होय है सो ऐसा आचार्य गुरु वंदने योग्य है। बहुरि उपाध्याय है सो वादित्व वाग्मित्व कवित्व गमकत्व

ये च्यार विद्या है तिनिमैं प्रवीण होय है,इस विषैं शास्त्रका अभ्यास प्रधान कारण है आप शास्त्र पढै अन्यकूं पढावै, ऐसा उपाध्याय गुरु बंदने योग्य है, याकै अन्य मुनिव्रत मूलगुण उत्तरगुणकी क्रिया आचार्यसमान ही होय है। बहुरि साधु है सो रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्गकूं साधै सो साधु है याकैं दीक्षा शिक्षा उपदेशादिक देनेंकी प्रधानता नाही अपनें स्वरूपके साधनविषैं ही तत्पर होय है, निर्ग्रंथ दिगबर मुनिकी प्रवृत्ति जैसी जिनागममैं वर्णन करी है तैसी सर्वही होय है, ऐसा साधु वदनेयोग्य है। अन्यलिंगी भेषी व्रतादिकतैं रहित परिग्रहवान विषयनिमैं आसक्त गुरु नाम धरावै ते बंदनेयोग्य नांही हैं। इस पचमकालमैं भेषी जिनमतमैं भी भये है ते श्वेतांबर, यापनीयसंघ, गोपुच्छपिच्छसघ, नि पिच्छसघ, द्राविड़सघ आदि लेय अनेक भये हैं सो ये सर्वही वंदनेयोग्य नाही है। मूलसघ, नग्नदिगंबर, अट्ठाईस मूलगुणनिके धारक, मयूरपिच्छक कमडलु दयाका अर शौचका उपकरण धारैं यथोक्तविधि आहार करनेंवाले गुरु वदनेयोग्य हैं जातैं तीर्थंकर देव दीक्षा धारै है तब ऐसाही रूप धारै हैं अन्य भेष नांही धारैं हैं, याहीकूं जिनदर्शन कहिए है। बहुरि धर्म जाकूं कहिए जो जीवकू ससारके दु:खरूप नीचा पदतै मोक्षका सुखरूप ऊचा पदमै धारै, ऐसा धर्म मुनिश्रावकके भेदकरि दर्शन ज्ञान चारित्रात्मक एकदेश सर्वदेशरूप निश्चय व्यवहार करि दोय प्रकार कह्या है ताका मूल सम्यग्दर्शन है या विनां धर्मकी उत्पत्ति नाही है। ऐसैं देव गुरु धर्म विषैं अर लोकविषैं यथार्थ दृष्टि होय अर मूढता नहीं होय सो अमूढ दृष्टि अंग है ॥ ४ ॥

बहुरि अपने आत्माकी शक्तिका वधावना सो उपबृंहण अग है सो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका अपनां पौरुषकरि बधावना सो ही उपबृंहण है। याकूं उपगूहन भी कहिये है, तहां ऐसा अर्थ जानना जो स्वयसिद्ध जिनमार्ग है ताकै बालकके तथा असमर्थ जनके आश्रयतैं जो न्यूनता होय ताकूं अपनी बुद्धितैं गोप्यकरि दूरिही करै सो उपगूहन अंग है ॥ ५ ॥

बहुरि धर्मतैं जो च्युत होता होय ताकूं दृढ करनां सो स्थितीकरण अंग है सो जो आप कर्मके उदयके वशतैं कदाचित् श्रद्धानतै तथा क्रिया आचारतैं छूटै तौ आपकूं फेरि पौरुप करि श्रद्धानमैं दृढ करना। बहुरि तैसैं ही अन्य धर्मात्मा धर्मतैं च्युत होता होय तौ ताकूं उपदेशादिक करि धर्म विषैं स्थापनां, ऐसैं स्थितीकरण अंग होय है॥ ६॥

बहुरि अरहंत सिद्ध तथा तिनिके बिंब तथा चैत्यालय तथा चतुर्विधसंघ तथा शास्त्र इनिविषैं दासपणां होय जैसैं स्वामीका भृत्य दास होय तैसै, सो वात्सल्य अंग है। तहां धर्मके स्थानकनिकैं उपसर्गादिक आवै ताकूं अपनी शक्तिसारू मेटै अपनी शक्तिकूं छिपावै नाहीं, यह धर्मतैं अतिप्रीति होय तब होय है॥ ७॥

बहुरि धर्मका उद्योत करनां सो प्रभावना अंग है। तहां अपने आत्माका रत्नत्रयकरि उद्योत करनां अर दान तप पूजा विधानकरि तथा विद्या अतिशय चमत्कारादिककरि जिनधर्मका उद्योत करना, ऐसैं प्रभावना अंग होय है॥ ८॥

ऐसैं ये आठ अंग सम्यक्त्वके हैं जाकैं ये प्रकट होय ताकै जानिये सम्यक्त्व है। इहां प्रश्न—जो ये सम्यक्त्वके चिह्न कहे तैसैही मिथ्यादृष्टीकैं भी देखैं तब सम्यक् मिथ्याका विभाग कैसैं होय?। ताका समाधान—जो जैसैं सम्यक्त्वीके होय तैसै तौ मिथ्यात्वीकै कभी हीं नहीं होय है तौ हू अपरीक्षककू समान दीखैं तहां परीक्षा किये भेद जान्या जाय है। बहुरि परीक्षाविषै अपना स्वानुभव प्रधान है सर्वज्ञके आगममैं जैसा आत्माका अनुभव होना कह्या है तैसा आपकैं होय तब ताके होतैं अपनी वचन कायकी प्रवृत्ति भी तिस अनुसार होय है, तिस प्रवृत्तिके अनुसार अन्यकी भी वचन कायकी प्रवृत्ति पहचानिये है, ऐसैं परीक्षा किये विभाग होय है। बहुरि यह व्यवहार मार्ग है, सो व्यवहारी छद्मस्थ जीवनिकैं अपने ज्ञानकै अनुसार प्रवृत्ति है, यथार्थ सर्वज्ञदेव जानैं हैं, व्यवहारीकूं सर्वज्ञदेव व्यवहारहीका आश्रय बताया

है। यह अंतरंग सम्यक्त्वभावरूप सम्यक्त्व है सो ही सम्यग्दर्शन है, बहुरि बाह्यदर्शन व्रत समिति गुप्तिरूप चारित्र अर तपसहित अट्ठाईस मूलगुणसहित नग्न दिगंबर मुद्रा याकी मूर्ति है ताकूं जिन दर्शन कहिये। ऐसैं धर्मका मूल सम्यग्दर्शन जानि जे सम्यग्दर्शनरहित है तिनिका वंदना पूजनां निषेध्या है, सो भव्य जीवनिकूं यह उपदेश अंगीकार करने योग्य है ॥ २ ॥

आगै अंतरंग सम्यग्दर्शनविना बाह्य चारित्रतैं निर्वाण नांही है, ऐसैं कहैं हैं —

दंसणभट्टा भट्टा दंसणभट्टस्स णत्थि णिव्वाणं।
सिज्झंति चरियभट्टा दंसणभट्टा ण सिज्झंति ॥३॥

दर्शनभ्रष्टाः भ्रष्टाः दर्शनभ्रष्टस्य नास्ति निर्वाणम्।
सिध्यन्ति चारित्रभ्रष्टाः दर्शनभ्रष्टाः न सिध्यन्ति ॥३॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शनतैं भ्रष्ट है ते भ्रष्ट है जे दर्शनतैं भ्रष्ट है तिनिकैं निर्वाण नाहीं होय है जातैं यह प्रसिद्ध है जे चारित्रतैं भ्रष्ट हैं ते तौ सिद्धिकूं प्राप्त होय है अर दर्शन भ्रष्ट हैं ते सिद्धिकू प्राप्त नाही होय हैं ॥

भावार्थ—जे जिनमतकी श्रद्धातैं भ्रष्ट हैं तिनिकू भ्रष्ट कहिये अर श्रद्धातैं भ्रष्ट नांही है अर कदाचित् चारित्रभ्रष्ट कर्मके उदयतैं भये हैं तिनिकू भ्रष्ट नहीं कहिये जातैं जो दर्शनतैं भ्रष्ट है ताकै निर्वाणकी प्राप्ति नांही होय है, जे चारित्रतैं भ्रष्ट होय है अर श्रद्धानदृढ रहै है तिनिकै तौ शीघ्रही फेरि चारित्रका ग्रहण होय है मोक्ष होय है, बहुरि दर्शन श्रद्धातैं भ्रष्ट होय है तिनिकै फेरि चारित्रका ग्रहण कठिन होय है तातैं निर्वाणकी प्राप्ति दुर्लभ होय है. जैसैं वृक्षका स्कंधादिक कटि जाय अर मूल बण्या रहै तौ स्कंधादिक शीघ्रही फेरि होय फल लागै,

अर मूल उपडि जाय तब स्कंधादिक कैसैं होय; तैसे धर्मका मूल दर्शन जाननां ॥ ३ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनतैं भ्रष्ट हैं अर शास्त्रनिकूं बहौत प्रकार जानैं हैं तौ हू संसारमैं भ्रमै हैं, ऐसैं ज्ञानतैं भी दर्शनकूं अधिक कहै हैं.—

सम्मत्तरयणभट्टा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं ।
आराहणाविरहिया भमंति तत्थेव तत्थेव ॥४॥

सम्यक्त्वरत्नभ्रष्टाः जानंतो बहुविधानि शास्त्राणि ।
आराधनाविरहिताः भ्रमंति तत्रैव तत्रैव ॥४॥

अर्थ—जे पुरुष सम्यक्त्वरूप रत्नकरि भ्रष्ट हैं अर बहुत प्रकारके शास्त्रनिकूं जानैं हैं तौऊ ते आराधनाकरि रहित भये संते तिस संसार-विषैंही भ्रमैं हैं। दोय बार कहनेतें बहुत भ्रमण जनाया है ॥

भावार्थ—जे जिनमतकी श्रद्धातैं भ्रष्ट हैं अर शब्द न्याय छंद अलंकार आदि अनेक प्रकारके शास्त्रनिकूं जानैं हैं तौ हू सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तपरूप आराधनां तिनिकै नाहीं होय है यातैं कुमरणकरि चतुर्गतिरूप संसारविषैं ही भ्रमण करै हैं मोक्ष नाहीं पावै हैं जातैं सम्यक्त्व विना ज्ञानकूं आराधना नाम नहीं कहिये ॥ ४ ॥

आगैं कहैं हैं, तप हू करै अर सम्यक्त्वरहित होय तौ तिनिकैं स्व-रूपका लाभ नहीं होय;—

सम्मत्तविरहिया णं सुट्ठ वि उग्गं तवं चरंता णं ।
ण लहंति बोहिलाहं अवि वाससहस्सकोडीहिं ॥५॥

सम्यक्त्वविरहिता णं सुष्ठु अपि उग्रं तपः चरंतो णं ।
न लभन्ते बोधिलाभं अपि वर्षसहस्रकोटिभिः ॥५॥

अर्थ—जे पुरुष सम्यक्त्वकरि विरहित हैं ते सुष्ठु कहिये भलै प्रकार उग्र तपकूं आचरते हैं तौऊ ते बोधि कहिये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रमयी अपनां स्वरूप ताका लाभकूं नांही पावैं हैं, जो हजार कोडि वर्ष तांई तप करै तौऊ स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होय। इहां गाथामैं 'ण' ऐसा शब्द दोय जायगां है सो प्राकृतमै अव्यय है, याका अर्थ वाक्यका अलकार है॥

भावार्थ—सम्यक्त्व विना हजार कोडि वर्ष तप करै तौऊ मोक्षमार्गकी प्राप्ति नाही। इहा हजार कोडि कहनेतैं एतेही वर्ष नहीं जाननें, कालका बहुतपणा जणाया है। तप मनुष्यपर्यायहीमैं होय है तातैं मनुष्यकाल भी थोडा है तातैं तप कहनेतैं ये भी वर्ष बहुतही कहिये॥ ५॥

आगैं ऐसै पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्व विना चारित्र तप निष्फल कहे, अब सम्यक्त्वसहित सर्वही प्रवृत्ति सफल है ऐसैं कहैं हैं—

सम्मत्तणाणदंसणवलवीरियवड्ढमाण जे सव्वे।
कलिकलुसपावरहिया वरणाणी होंति अइरेण॥६॥

सम्यक्त्वज्ञानदर्शनवलवीर्यवर्द्धमानाः ये सर्वे।
कलिकलुषपापरहिताः वरज्ञानिनः भवंति अचिरेण॥६॥

अर्थ—जे पुरुष सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन वल वीर्य इनि करि वर्द्धमान है अर कलिकलुषपाप कहिए इस पंचमकालके मलिन पापकरि रहित हैं ते सर्व ही थोडे ही कालमैं वरज्ञानी कहिये केवल ज्ञानी होय हैं॥

भावार्थ—इस पचमकालमैं जड वक्र जीवनिके निमित्त करि यथार्थ मार्ग अपभ्रंश भया है तिसकी वासनातैं रहित भये जे जीव यथार्थ

जिनमार्गके श्रद्धानरूप सम्यक्त्वसहित ज्ञान दर्शन अपना पराक्रम बलकूं न छिपाय करि अर अपनां वीर्य जो शक्ति ताकरि वर्द्धमान भये सते प्रवर्त्तें हैं ते थोडे ही कालमैं केवलज्ञानी होय मोक्ष पावैं हैं ॥ ६ ॥

आगैं कहैं है, जो सम्यक्त्वरूप जलका प्रवाह आत्माकै कर्मरज नांही लागनें दे है.—

सम्मत्तसलिलपवहो णिच्चं हियए पवट्टए जस्स ।
कम्मं वालुयवरण बन्धुच्चिय णासए तस्स ॥७॥

सम्यक्त्वसलिलप्रवाहः नित्यं हृदये प्रवर्त्तते यस्य ।
कर्म वालुकावरणं बद्धमपि नश्यति तस्य ॥७॥

अर्थ—जा पुरुषका हृदयकै विषैं सम्यक्त्वरूप जलका प्रवाह निरन्तर प्रवर्त्तें है तापुरुषकैं कर्म सो ही भया वालूरजका आवरण सो नांही लागै है, बहुरि ताकै पूर्वैं लग्या कर्मका वंध सो भी नाशकूं प्राप्त होय है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्व सहित पुरुषकै कर्मके उदयतैं भये जे रागादिक भाव तिनिका स्वामीपणां नाही है तातैं कषायनिकी तीव्र कलुषतातैं रहित परिणाम उज्ज्वल होय हैं, ताकूं जलकी उपमा है। जैसैं जलका प्रवाह जहां निरन्तर वहै तहा वालू रेत रज लागै नाही जैसैं सम्यक्त्ववान जीव कर्म के उदयकूं भोगता भी कर्मतैं नाही लिपै है। अर वाह्य व्यवहार अपेक्षा ऐसा भी भावार्थ जाननां—जाकै निरंतर हृदयमै सम्यक्त्वरूप जलप्रवाह वहै है सो सम्यक्त्ववान पुरुष इस कलिकाल-संबंधी वासना जो कुदेव कुशास्त्र कुगुरु इनके नमस्कारादिरूप अती-चाररूप रज भी नाही लगावै है, अर ताकै मिथ्यात्वसबधी प्रकृतिनिका आगामी वंध भी नाही होय है ॥ ७ ॥

आगैं कहैं हैं, जे दर्शनभ्रष्ट हैं अर ज्ञान चारित्रतैं भी भ्रष्ट हैं ते आप तौ भ्रष्ट हैं ही परन्तु अन्यकूं भ्रष्ट करैं हैं, यह अनर्थ है,—

जे दंसणेसु भट्ठा णाणे भट्ठा चरित्तभट्ठा य।
एदे भट्ठ वि भट्ठा सेसं पि जणं विणासंति ॥ ८ ॥

ये दर्शनेषु भ्रष्टाः ज्ञाने भ्रष्टाः चारित्रभ्रष्टाः च।
एते भ्रष्टात् अपि भ्रष्टाः शेषं अपि जनं विनाशयंति ॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शनविषैं भ्रष्ट हैं बहुरि ज्ञान चारित्रतैं भी भ्रष्ट हैं ते पुरुष भ्रष्टनिविषैं भी विशेष भ्रष्ट हैं। केई तौ दर्शनसहित हैं अर ज्ञान चारित्र जिनकै नाही है, बहुरि केई अंतरंग दर्शनतैं भ्रष्ट हैं तौऊ ज्ञान चारित्र नीकैं पालै हैं, अर जे दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीननितैं भ्रष्ट है ते तौ अत्यन्त भ्रष्ट हैं, ते आपतौ भ्रष्ट हैं ही परन्तु शेष कहिये आप सिवाय अन्य जन हैं तिनिकूं भी नष्ट करै हैं।

भावार्थ—इहां सामान्य वचन है तातैं ऐसा भी आशय सूचै है जो सत्यार्थ श्रद्धान ज्ञान चारित्र तौ दूरिही रहौ जो अपने मतकी श्रद्धा ज्ञान आचरणतैं भी भ्रष्ट हैं ते तौ निरर्गल स्वेच्छाचारी हैं ते आप भ्रष्ट हैं तैसैं ही अन्य लोककूं उपदेशादिक करि भ्रष्ट करै हैं तथा तिनिकी प्रवृत्ति देखि स्वयमेव लोक भ्रष्ट होय हैं तातैं ऐसे तीव्रकषायी निषिद्ध हैं तिनिकी संगति करनां भी उचित नांहीं ॥ ८ ॥

आगैं कहै हैं, जो ऐसे भ्रष्ट पुरुष आप भ्रष्ट है ते धर्मात्मा पुरुषनिकूं दोष लगाय भ्रष्ट बतावैं हैं;—

जो कोवि धम्मसीलो संजमतवणियमजोयगुणधारी।
तस्स य दोष कहंता भग्गा भग्गत्तणं दिंति ॥ ९ ॥

य: कोऽपि धर्मशील: संयमतपोनियमयोगगुणधारी।
तस्य च दोषान् कथयंत: भग्ना भग्नत्वं ददति॥ ९॥

अर्थ—जो कोई पुरुष धर्मशील कहिये अपना स्वरूपरूप धर्म साधनेंका जाका स्वभाव है तथा सयम कहिये इन्द्रिय मनका निग्रह षट् कायके जीवनिकी रक्षा, अर तप कहिये बाह्य आभ्यतर भेदकरि बारह प्रकार तप, नियम कहिये आवश्यक आदि नित्य कर्म, योग कहिए समाधि ध्यान तथा वर्षाकाल आदि कालयोग, गुण कहिये मूल-गुण उत्तरगुण, इनिका धारनेवाला है ताके केई मततै भ्रष्ट जीव दोष-निका आरोपण करि कहैं हैं—जो ये भ्रष्ट हैं दोषनिसहित हैं ते पापात्मा जीव आप भ्रष्ट हैं तातैं अपना अभिमान पोषनेकूं अन्य धर्मात्मा पुरुष-निकूं भ्रष्टपणां दे है॥

भावार्थ—पापीनिका ऐसा ही स्वभाव होय है जो आप पापी है तैसे ही धर्मात्मामैं दोष बताय आप समान किया चाहै है, ऐसे पापी-निकी संगति नहीं करनी॥ ९॥

आगै कहैं है—जो दर्शनभ्रष्ट है सो मूलभ्रष्ट है ताके फलकी प्राप्ति नाही;—

जह मूलम्मि विणट्ठे दुमस्स परिवार णत्थि परवड्ढी।
तह जिणदंसणभट्ठा मूलविणट्ठा ण सिज्झंति॥ १०॥

यथा मूले विनष्टे द्रुमस्य परिवारस्य नास्ति परिवृद्धि:।
तथा जिनदर्शनभ्रष्टा: मूलविनष्टा: न सिद्ध्यन्ति॥ १०॥

अर्थ—जैसैं वृक्षका मूल विनष्ट होतैं संतैं ताके परिवार कहिये स्कध शाखा पत्र पुष्प फल ताकी वृद्धि नहीं होय है तैसैं जे जिनदर्शं-

नतैं भ्रष्ट हैं बाह्य तौ निर्ग्रंथ लिंग नग्न दिगम्बर यथाजातरूप मूलगुणका धारण मयूरपुच्छिकापींछी अर कमंडलु धारना यथाविधि दोष टालि शुद्ध खड़ा भोजन करनां इत्यादि बाह्य शुद्ध भेष धारना अर अंतरंग जीवादि षट् द्रव्य नव पदार्थ सप्त तत्वका यथार्थ श्रद्धान तथा भेदविज्ञानकरि आत्मस्वरूपका अनुभवन ऐसा जो दर्शन मत तातैं बाह्य हैं ते मूलविनष्ट हैं तिनिकै सिद्धि नाहीं होय है, मोक्षफलकूं नांही पावैं हैं ॥ १० ॥

आगैं कहैं हैं, जो जिनदर्शन है सो ही मूल मोक्षमार्ग है,—

जह मूलाओ खन्धो साहापरिवार बहुगुणो होइ ।
तह जिणदंसण मूलो णिद्दिट्टो मोक्खमग्गस्स ॥ ११ ॥

यथा मूलात् स्कंधः शाखापरिवारः बहुगुणः भवति
तथा जिनदर्शनं मूलं निर्दिष्टं मोक्षमार्गस्य ॥ ११ ॥

अर्थ—जैसैं वृक्षकै मूलतैं स्कंध होय है, सो कैसाक स्कंध होय है—शाखा आदि परिवार बहुत हैं गुण जाकै, इहां गुण शब्द बहुतका वाचक है तैसैं ही मोक्षमार्गका मूल जिनदर्शन गणधर देवादिकनैं कह्या है ॥

भावार्थ—इहां जिनदर्शन कहिये जो भगवान तीर्थंकरपरमदेव दर्शन ग्रहण किया सो ही उपदेश्या सो ऐसा मूलसंघ है अट्ठाईस मूलगुणसहित कह्या है। पंच महाव्रत, पंच समिति, षट् आवश्यक पांच इन्द्रियनिका वश करना, स्नान न करनां, वस्त्रादिकका त्याग, दिगम्बर मुद्रा, केशलौंच करना, एक बार भोजन करना, खड़ा भोजन करना, दंतधावन न करना ये अट्ठाईस मूलगुण हैं। बहुरि छियालीस दोष टालि आहार करना सो एषणा समितिमैं आगया। ईर्यापथ सोधि

चालना सो ईर्यासमितिमैं आय गया। अर दयाका उपकरण तौ मोर पुच्छकी पींछी अर शौचका उपकरण कमंडलुका धारण ऐसा तौ बाह्य भेष है। बहुरि अंतरंग जीवादिक षट् द्रव्य पंचास्ति काय सप्त तत्त्व नव पदार्थनिकू यथोक्त जानि श्रद्धान करना अर भेदविज्ञानकरि अपना आत्मस्वरूपका चितवन करना अनुभव करना, ऐसा दर्शन जो मत सो मूलसंघका है। ऐसा जिनदर्शन है सो मोक्षमार्गका मूल है, इस मूलतैं मोक्षमार्गकी सर्व प्रवृत्ति सफल होय है। बहुरि जे इसतैं भ्रष्ट भये हैं ते इस पंचमकालके दोषतैं जैनाभास भये हैं, ते श्वेताम्बर द्राविड यापनीय गोपुच्छपिच्छ निपिच्छ पांच संघ भये हैं तिनिनैं सूत्र सिद्धांत अपभ्रंश किये हैं बाह्य भेष पलटि विगाड्या है आचरण जिनूंनैं ते जिनमतके मूलसंघतैं भ्रष्ट हैं तिनिकैं मोक्षमार्गकी प्राप्ति नाहीं है। मोक्षमार्गकी प्राप्ति मूलसंघके श्रद्धान ज्ञान आचरणहीतैं है ऐसा नियम जानना॥ ११॥

आगै कहैं हैं जो, जे यथार्थ दर्शनतै भ्रष्ट है अर दर्शनके धारकनितैं आप विनय कराया चाहै हैं ते दुर्गति पावैं हैं;—

जे[१] दंसणेसु भट्ठा पाए पाडंति दंसणधराणं।
ते होंति लल्लमूआ बोही पुण दुल्लहा तेसिं॥ १२॥

ये दर्शनेषु भ्रष्टाः पादयोः पातयंति दर्शनधरान्।
ते भवंति लल्लमूकाः बोधिः पुनः दुर्लभा तेषाम्॥१२॥

---

१ मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें इस गाथाका पूर्वार्द्ध इसप्रकार है जिसका यह अर्थ है कि 'जो दर्शन भ्रष्ट पुरुष दर्शन धारियोंके चरणोंमें
"जे दंसणेसु भट्ठा पाए न पडंति दंसणधराणं"—
उत्तरार्द्ध समान है।

अर्थ—जे पुरुष दर्शनविषैं भ्रष्ट हैं अर अन्य जे दर्शनके धारक हैं तिनिकूं अपनें पगनि पडावैं हैं नमस्कारादि करावै हैं ते परभव विषैं लूला मूका होय है अर तिनिके बोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति सो दुर्लभ होय है॥ १२॥

भावार्थ—जे दर्शनभ्रष्ट हैं ते मिथ्यादृष्टी हैं अर दर्शनके धारक हैं ते सम्यग्दृष्टी हैं, सो मिथ्यादृष्टी होय करि सम्यग्दृष्टीनितैं नमस्कार चाहैं हैं ते तीव्र मिथ्यात्वके उदयसहित हैं ते परभवविषैं लूला मूका होय हैं, भावार्थ—एकेंद्रिय होय हैं तिनिकै पग नांही ते परमार्थतैं लूला मूका हैं ऐसैं एकेंद्रियस्थावर होय निगोदमैं वास करैं हैं तहां अनतकाल रहैं हैं, तिनिकै दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति दुर्लभ होय है, मिथ्यात्वका फल निगोदही कह्या है। इस पंचम कालमैं मिथ्या मतके आचार्य बनि लोकनितैं विनयादिक पूजा चाहैं हैं तिनिकै जानिये है कि त्रसराशिका काल पूरा हुआ अब एकेंद्रिय होय निगोदमैं वास करैंगे, ऐसैं जान्या जाय है॥ १२॥

आगै कहैं है जो जे दर्शनभ्रष्ट हैं तिनिकै लज्जादिकतैं भी पगा पडैं हैं ते भी तिनि सारिखे ही हैं—

जे वि पडंति च तेसिं जाणंता लज्जागारवभयेण।
तेसिं पि णत्थि बोही पावं अणुमोयमाणाणं॥१३॥

येऽपि पतन्ति च तेषां जानंतः लज्जागारवभयेन।
तेषामपि नास्ति बोधिः पापं अनुमन्यमानानाम्॥

अर्थ—जे पुरुष दर्शनसहित हैं ते भी दर्शनभ्रष्ट हैं तिनिकूं मिथ्यादृष्टी जानते संते भी तिनिके पगा पडैं हैं तिनिका लज्जा भयगारव करि विनयादि करैं हैं, तिनिकै भी बोधि कहिये दर्शन ज्ञान चरित्र ताकी

प्राप्ति नाही है जातैं ते भी पाप जो मिथ्यात्व ताकी अनुमोदन करते हैं, करनां करावना अनुमोदनां करना समान कह्या है। इहा लज्जा तौ ऐसैं— जो हम काहूका विनय नांहीं करैंगे तौ लोक कहैंगे ये उद्धत हैं मानी हैं तातैं हमकूं तौ सर्वका साधन करना, ऐसैं लज्जाकरि दर्शनभ्रष्टका भी विनयादिक करै। बहुरि भय ऐसैं—जो ये राज्यमान्य है तथा मंत्र विद्यादिककी सामर्थ्य युक्त है याका विनय नहीं करैंगे तौ कछू हमारे ऊपरि उपद्रव करैगा, ऐसैं भय करि विनय करै। बहुरि गारव तीन प्रकार कह्या है, रसगारव ऋद्धिगारव सातगारव। तहां रसगारव तो ऐसा जो मिष्ट इष्ट पुष्ट भोजनादि मिलिबो करै तब ताकरि प्रमादी रहै। बहुरि ऋद्धिगारव ऐसा जो कछू तपके प्रभाव आदिकरि ऋद्धिकी प्राप्ति होय ताका गौरव आय जाय, ताकरि उद्धत प्रमादी रहै। बहुरि सातगारव ऐसा जो शरीर नीरोग होय कछू क्लेशका कारण नहीं आवै तब सुखियापणा आय जाय, ताकरि मग्न रहै। इत्यादिक गारवभाव मस्ताईतैं किछू भले बुरेका विचार नहीं करै तब दर्शनभ्रष्टका भी विनय करिवा लगिजाय इत्यादि निमित्ततैं दर्शनभ्रष्टका विनय करैं तौ यामैं मिथ्यात्वकी अनुमोदना आवै ताकूं भला जानैं तब आप भी ता समान भया तब ताकै बोधि काहेकी कहिये? ऐसैं जाननां ॥ १३ ॥

दुविहं पि गंथचायं तीसु वि जोएसु संजमो ठादि।
णाणम्मि करणसुद्धे उब्भसणे दंसणं होई ॥१४॥

द्विविधः अपि ग्रंथत्यागः त्रिषु अपि योगेषु संयमः तिष्ठति।
ज्ञाने करणशुद्धे उद्भभोजने दर्शनं भवति ॥१४

अर्थ—जहां बाह्य आभ्यंतर भेदकरि दोय प्रकार परिग्रहका त्याग होय अर मन वचन काय ऐसे तीनू योगनिविषैं संयम तिष्ठै बहुरि कृत कारित अनुमोदना ऐसे तीन करण जामें शुद्ध होय ऐसा ज्ञान होय

बहुरि निर्दोष जामैं कृत कारित अनुमोदना आपका नहीं लागै ऐसा खडा पाणिपात्र आहार करैं, ऐसैं मूर्तिमंत दर्शन होय है ॥

भावार्थ—इहां दर्शन नाम मतका है तहां बाह्य भेष शुद्ध दीखै सो दर्शन सो ही ताके अंतरग भावकूं जनावै, तहां बाह्य परिग्रह तो धनधान्यादिक अर अन्तरग परिग्रह मिथ्यात्व कषायादिक सो जहां नहीं होय यथाजात दिगंबर मूर्त्ति होय, बहुरि इन्द्रिय मनका वश करना त्रस थावर जीवनिकी दया करनी ऐसा सयम मन वचन काय करि शुद्ध पालनां जहां होय, अर ज्ञान विषैं विकार करना करावनां अनुमोदना ऐसैं तीन करणनिकरि विकार नहीं होय, अर निर्दोष पाणिपात्र खडा-रहि भोजन करनां, ऐसैं दर्शनको मूर्त्ति है सो जिनदेवका मत है सो ही वदने पूजने योग्य है, अन्य पाखंड भेष वदने पूजनें योग्य नाही हैं॥ १४ ॥

आगैं कहैं हैं जो इस सम्यग्दर्शनतैं ही कल्याण अकल्याणका निश्चय होय है:—

सम्मत्तादो णाणं णाणादो सव्वभावउवलद्धी ।
उवलद्धपयत्थे पुण सेयासेयं वियाणेदि ॥१५॥

सम्यक्त्वात् ज्ञानं ज्ञानात् सर्वभावोपलब्धिः ।
उपलब्धपदार्थे पुनः श्रेयोऽश्रेयो विजानाति ॥१५॥

अर्थ—सम्यक्त्वतैं तौ ज्ञान सम्यक् होय है, बहुरि सम्यक् ज्ञानतैं सर्व पदार्थनिकी उपलब्धि कहिये प्राप्ति तथा जानना होय है, बहुरि पदार्थनिकी उपलब्धि होतैं श्रेय कहिये कल्याण अर अश्रेय कहिये अकल्याण इनि दोऊनिकूं जानिये है ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन विना ज्ञानकूं मिथ्याज्ञान कह्या है तातै सम्यग्दर्शन भये ही सम्यग्ज्ञान होय है अर सम्यग्ज्ञानतैं जीव आदि

पदार्थनिका स्वरूप यथार्थ जानिये है, बहुरि जब पदार्थनिका यथार्थ स्वरूप जानिये तब भला बुरा मार्ग जानिये है। ऐसैं मार्गके जाननेमें भी सम्यग्दर्शन ही प्रधान है ॥ १५ ॥

आगै कल्याण अकल्याणकूं जाने कहा होय है, सो कहै है,—

सेयासेयविदण्हू उद्धुददुस्सील सीलवंतो वि।
सीलफलेणब्भुदयं तत्तो पुण लहइ णिव्वाणं ॥ १६ ॥

श्रेयोऽश्रेयवेत्ता उद्धृतदुःशीलः शीलवानपि।
शीलफलेनाभ्युदयं ततः पुनः लभते निर्वाणम् ॥ १६ ॥

अर्थ—कल्याण अर अकल्याण मार्गका जाननेवाला पुरुष है सो 'उद्धुददुस्सील' कहिये उडाया है मिथ्यात्वस्वभाव जानै ऐसा होय है, बहुरि 'सीलवंतो वि' कहिये सम्यक् स्वभावयुक्त भी होय है, बहुरि तिस सम्यक् स्वभावका फलकरि अभ्युदय पावै है तीर्थंकर आदि पद पावै है, बहुरि अभ्युदय भये पीछैं निर्वाणकूं पावै है।

भावार्थ—भला बुरा मार्ग जानैं तब अनादि संसारतै लगाय मिथ्याभावरूप प्रकृति है सो पलटि सम्यक्स्वभावस्वरूप प्रकृति होय, तिस प्रकृतितैं विशिष्ट पुण्य बांधै तब अभ्युदयरूप पदवी तीर्थंकर आदिकी पाय निर्वाण पावै है ॥ १६ ॥

आगैं कहैं हैं जो ऐसा सम्यक्त्व जिनवचनतैं पाइये है तातैं ते ही सर्व दु:खके हरण हारे हैं;—

जिणवयणमोसहमिणं विसयसुहविरेयणं अमिदभूयं।
जरमरणवाहिहरणं खयकरणं सव्वदुक्खाणं ॥ १७ ॥

जिनवचनमौषधमिदं विषयसुखविरेचनममृतभूतम् ।
जरामरणव्याधिहरणं क्षयकरणं सर्वदुःखानाम् ॥ १७॥

अर्थ—यह जिनवचन है सो औषध है, सो कैसा औषध है विषय जो इन्द्रियनिके विषय तिनतैं मान्या सुख ताका विरेचन कहिये दूरि करन हारा है, बहुरि कैसा है—अमृतभूत कहिये अमृतसारिखा है याहीतैं जरा मरण रूप रोग ताका हरन हारा है, बहुरि सर्व दुःखनिका क्षय करन हारा है।

भावार्थ—या संसारविषैं प्राणी विषयसुख, सेवै है तिनतैं कर्म बंधैं हैं तिसतैं जन्म जरा मरणरूप रोगनिकरि पीडित होय है, तहां जिनवचनरूप औषध ऐसा है जो विषयसुखतैं अरुचि उपजाय तिसका, विरेचन करै है। जैसैं गरिष्ट आहारतैं मल बधै तब ज्वर आदि रोग उपजै तब ताके विरेचनकूं हरड़ै आदिक औषधि उपकारी होय तैसैं है। सो विषयनितैं वैराग्य होय तब कर्मबन्ध नहीं होय तब जन्म जरा मरण रोग नहीं होय तब संसारका दुःखका अभाव होय। ऐसैं जिनवचनकूं अमृत सारिखे जांनि अंगीकार करनें ॥ १७ ॥

आगैं जिनवचनविषैं दर्शनका लिंग जो भेष सो कै प्रकार कह्या है, सो कहै है,—

एगं जिणस्स रूवं बीयं उक्किट्ठसावयाणं तु ।
अवरट्ठियाण तइयं चउत्थ पुण लिंगदंसणं णत्थि ॥ १८॥

एकं जिनस्य रूपं द्वितीयं उत्कृष्टश्रावकाणां तु ।
अवरस्थितानां तृतीयं चतुर्थं पुनः लिंगदर्शनं नास्ति ॥

अर्थ—दर्शनविषैं एक तौ जिनका स्वरूप है सो जैसा लिंग जिनदेव धार्‍या सो लिंग है, बहुरि दूजा उत्कृष्ट श्रावकनिका लिंग है, बहुरि

तीजा 'अवरट्ठिय' कहिये जघन्य पद विषैं स्थित ऐसी आर्यिकानिका लिंग है, बहुरि चौथा लिंग दर्शन विषैं नांही है ॥

भावार्थ—जिनमत विषैं तीन ही लिंग कहिये भेष कहैं है। एक तौ यथाजातरूप जिनदेव धाऱ्या सो है, बहुरि दूजा उत्कृष्ट श्रावक ग्यारमी प्रतिमा धारकका है, बहुरि तीजा स्त्री आर्यिका होय ताका है, बहुरि चौथा अन्य प्रकारका भेष जिनमतमैं नांही है। जे मानैं हैं ते मूलसंघतै बाह्य हैं ॥ १८ ॥

आगैं कहैं हैं—ऐसा बाह्य लिंग होय ताकै अंतरंग श्रद्धान ऐसा होय है सो सम्यग्दृष्टि है;—

छह दव्व णव पयत्था पंचत्थी सत्त तच्च णिद्दिट्ठा ।
सद्दहइ ताण रूवं सो सद्दिट्ठी मुणेयव्वो ॥ १९ ॥

षट् द्रव्याणि नव पदार्थाः पंचास्तिकायाः सप्त तत्वानि निर्दिष्टानि ।
श्रद्धाति तेषां रूपं सः सद्दृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ १९ ॥

अर्थ - छह द्रव्य नव पदार्थ पांच अस्तिकाय सप्त तत्व ये जिन-वचनमैं कहे हैं तिनिका स्वरूपकू जो श्रद्धान करै सो सम्यग्दृष्टी जाननां ॥ १९ ॥

भावार्थ—जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ये तो छह द्रव्य हैं, बहुरि जीव अजीव आस्रव बन्ध संवर निर्जरा मोक्ष पुण्य पाप ये नव पदार्थ हैं, छह द्रव्य काल विना पंचास्तिकाय हैं। पुण्य पाप विना नव पदार्थ सप्त तत्व हैं। इनिका संक्षेप स्वरूप ऐसा—जो जीवन तै चेतनास्वरूप है सो चेतना दर्शनज्ञानमयी है, पुद्गल स्पर्श रस गंध वर्ण गुणमयी मूर्तीक है, याके परमाणु और स्कन्ध ऐसे दोय भेद हैं; बहुरि स्कधके भेद शब्द बन्ध सूक्ष्म स्थूल संस्थान भेद तम छाया आतप

उद्योत इत्यादि अनेक प्रकार है, धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य ये एक एक हैं अमूर्त्तीक हैं निष्क्रिय है, अर कालाणुअसख्यात द्रव्य है। काल विना पांच द्रव्यनिकै वहुप्रदेशीपणां है यातैं पांच अस्तिकाय हैं काल द्रव्य बहुप्रदेशी नाही तातैं आस्तिकाय नांहीं, इत्यादिक इनिका स्वरूप तत्त्वार्थसूत्रकी टीकातैं जानना। वहुरि एक तौ जीव पदार्थ है अर अजीव पदार्थ पांच हैं, बहुरि जीवकै कर्मबंध योग्य पुद्गल होय सो आश्रव है वहुरि कर्म बंधै सो बंध है, बहुरि आश्रव रुकै सो सवर है, कर्मबध झड़ै सो निर्जरा है संपूर्ण कर्मका नाश होय सो मोक्ष है जीवनिकूं सुखका निमित्त सो पुण्य है, बहुरि दु खका निमित्त सो पाप है, ऐसैं सप्त तत्व नव पदार्थ हैं। इनिका आगमकै अनुसार स्वरूप जानि श्रद्धान करै सो सम्यग्दृष्टी होय है॥ १९ ॥

आगैं व्यवहार निश्चय करि सम्यक्त्व दोय प्रकार करि कहैं हैं,—

जीवादी सद्दहणं सम्मत्त जिणवरेहिं पण्णत्तं ।
ववहारा णिच्छयदो अप्पाणं हवइ सम्मत्तं ॥२०॥

जीवादीनां श्रद्धानं सम्यक्त्वं जिनवरैः प्रज्ञप्तम् ।
व्यवहारात् निश्चयतः आत्मैव भवति सम्यक्त्वम् ॥

अर्थ—जीव आदि कहे जे पदार्थ तिनिका श्रद्धान सो तौ व्यवहारतैं सम्यक्त्व जिनभगवाननैं कह्या है, वहुरि निश्चयतैं अपना आत्माहीका श्रद्धान सो सम्यक्त्व है॥ २० ॥

भावार्थ—तत्वार्थका श्रद्धान सो तौ व्यवहारतैं सम्यक्त्व है, वहुरि अपना आत्मस्वरूपका अनुभव करि तिसकी श्रद्धा प्रतीति रुचि आचरण सो निश्चयतैं सम्यक्त्व है, सो यह सम्यक्त्व आत्मातैं जुदा वस्तु नांही है आत्माहीका परिणाम है सो आत्माही है। ऐसै सम्यक्त्व अर आत्मा एकही वस्तुहै यह निश्चयका आशय जाननां॥ २ ॥

आगैं कहैं हैं जो यह सम्यग्दर्शन है सो सर्व गुणनिमैं सार है ताहि धारण करो;-

एवं जिणपण्णत्तं दंसणरयणं धरेह भावेण ।
सारं गुणरयणत्तय सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥२१॥

एवं जिनप्रणीतं दर्शनरत्नं धरत भावेन ।
सारं गुणरत्नत्रये सोपानं प्रथमं मोक्षस्य ॥२१॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार जिनेश्वर देवनैं कह्या दर्शन है सो गुणनिविषैं अर दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीन रत्ननिविषैं सार है उत्तम है, बहुरि मोक्षमंदिरके चढनेकूं प्रथम पैडी है, सो आचार्य कहैं हैं—हे भव्य जीव हो ! तुम याकूं अतरंग भावकरि धारण करो, बाह्य क्रियादिक करि धारण किया तौ परमार्थ नाहीं अंतरंगकी रुचिकरि धारणा मोक्षका कारण है ॥ २१ ॥

आगैं कहैं हैं—जो श्रद्धान करै ताहीकै सम्यक्त्व होय है,—

जं सक्कइ तं कीरइ जं च ण सक्केइ तं च सद्दहणं ।
केवलिजिणेहिं भणियं सद्दहमाणस्स सम्मत्तं ॥ २२ ॥

यत् शक्नोति तत् क्रियते यत् च न शक्नुयात् तस्य च श्रद्धानम् ।
केवलिजिनैः भणितं श्रद्दधानस्य सम्यक्त्वम् ॥ २२ ॥

अर्थ—जो करनेंकूं समर्थ हूजे सो तौ कीजिये बहुरि जो करनैकूं नहीं समर्थ हूजिये सो श्रद्धिए जातैं केवली भगवाननैं श्रद्धान करनेंवालेकैं सम्यक्त्व कह्या है ॥ २२ ॥

भावार्थ—इहां आशय ऐसा है जो कोऊ कहै सम्यक्त्व भये पीछैं तौ सर्व परद्रव्य संसारकूं हेय जानियेहै सो जाकूं हेय जानैं ताकू छोड़ै मुनि होय चारित्र आचरै तब सम्यक्त्व भया जानिये. ताका समाधानरूप यह गाथा है जो सर्व परद्रव्यकूं हेय जानि निज स्वरूपकूं उपादेय जान्या श्रद्धान किया तब मिथ्याभाव तौ मिट्या परंतु चारित्रमोहकर्मको उदय प्रबल होय जेतैं चारित्र अंगीकार करनेकी सामर्थ्य नहीं होय तेतै जेती सामर्थ्य होय तेता तौ करै तिस सिवायका श्रद्धान करै, ऐसे श्रद्धान करनेवालाहीकै भगवाननै सम्यक्त्व कह्या है ॥ २२ ॥

आगैं कहैं है, जो ऐसै दर्शन ज्ञान चारित्र विषैं तिष्ठै है ते वंदिवे योग्य हैं,—

दंसणणाणचरित्ते तवविणये णिच्चकालसुपसत्था ।
एदे दु वंदणीया जे गुणवादी गुणधराणं ॥ २३ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रे तपोविनये नित्यकालसुप्रस्वस्थाः ।
एते तु वन्दनीया ये गुणवादिनः गुणधराणाम् ॥ २३ ॥

अर्थ.—दर्शन ज्ञान चारित्र तथा तप विनय इनिविषैं जे भले प्रकार तिष्ठैं हैं ते प्रशस्तहैं सराहने योग्य हैं अथवा भलै प्रकार स्वस्थ हैं लीन हैं, बहुरि गणधर आचार्य हैं तिनिके गुणानुवाद करनेवाले हैं ते वन्दने योग्य है। अन्य जे दर्शनादिकतैं भ्रष्ट हैं अर गुणवाननितैं मत्सरभाव राखि विनयरूप नहीं प्रवर्तैं हैं ते वन्दिवेयोग्य नाहीं हैं ॥२३॥

आगै कहै हैं जो यथाजात रूपकूं देखि मत्सरभाव करि वन्दना नहीं करै हैं ते मिथ्या दृष्टी ही हैं,—

सहजुप्पण्णं रूवं दट्ठुं जो मण्णए ण मच्छरिओ ।
सो संजमपडिवण्णो मिच्छाइट्ठी हवइ एसो ॥ २४ ॥

सहजोत्पन्नं रूपं दृष्ट्वा यः मन्यते न मत्सरी ।
सः संयमप्रतिपन्नः मिथ्यादृष्टिः भवति एषः ॥ २४ ॥

अर्थ—जो सहजोत्पन्न यथाजात रूपकूं देखि करि न मानै है तिसका विनय सत्कार प्रीति नाहीं करै है अर मत्सरभाव करै है सो संयमप्रतिपन्न है दीक्षा ग्रहण करी है तौऊ प्रत्यक्ष मिथ्यादृष्टी है ॥ २४ ॥

भावार्थ—जो यथाजातरूपकूं देखि मत्सरभावकरि ताका विनय नहीं करै तौ जानिये याकै इस रूपकी श्रद्धा रुचि नांहीं ऐसै श्रद्धा रुचि विना तौ मिथ्यादृष्टी ही होय । इहां आशय ऐसा जो श्वेताम्बरादिक भये ते दिगम्बररूपतैं मत्सरभाव राखै अर तिसका विनय नहीं करैं तिनिका निषेध है ॥ २४ ॥

आगैं याहीकूं दृढ़ करैं हैं,—

अमराण वंदियाणं रूवं दट्ठूण सीलसहियाणं ।
जे गारवं करंति य सम्मत्तविवज्जिया होंति ॥ २५ ॥

अमरैः वंदितानां रूपं दृष्ट्वा शीलसहितानाम् ।
ये गौरवं कुर्वन्ति च सम्यक्त्वविवर्जिताः भवंति ॥

अर्थ—शीलकरि सहित देवनिकरि वंदनेयोग्य जो जिनेश्वर देव- का यथाजात रूपकूं देखिकरि गौरव करै हैं विनयादिक नहीं करै हैं ते सम्यक्त्वकरि वर्जित है ॥

भावार्थ—जा रूपकूं अणिमादिक ऋद्धिनिके धारी देव भी पगा पड़ैं ताकूं देखि मत्सरभावकरि नहीं वंदैं हैं तिनिकै सम्यक्त्व काहेका ? ते सम्यक्त्वतैं रहितही हैं ॥ २५ ॥

आगै कहैं हैं जो असंयमी वंदवे योग्य नांही है;—

असंजदं ण वन्दे वच्छविहीणोवि तो ण वंदिज्ज।
दोण्णि वि होंति समाणा एगो वि ण संजदो होदि॥२६

असंयतं न वन्देत वस्त्रविहीनोऽपि स न वन्द्येत।
द्वौ अपि भवतः समानौ एकः अपि न संयतः भवति॥२६॥

अर्थ—असंयमीकूं नांही वंदिये वहुरि भावसंयम नहीं होय अर वाह्य वस्त्ररहित होय सो भी वंदिवे योग्य नाही जातै ये दोऊ ही संयमरहित समान हैं, इनिमैं एक भी सयमी नांही ॥

भावार्थ—जो गृहस्थ भेष धार्‍या है सो तौ असयमी है ही, वहुरि जो वाह्य नग्नरूप धारण किया अर अन्तरङ्ग भावसयम नांही है तौ वह भी असयमीही है, तातैं ये दोऊही असंयमी है, तातै दोऊ ही वदवे योग्य नाहीं। इहा आशय ऐसा है जो ऐसै मति जानियो-जो आचार्य यथाजातरूपकू दर्शन कहते आवैं हैं सो केवल नग्नरूपही यथाजातरूप होगा, जातैं आचार्य तौ वाह्य अभ्यंतर सर्व परिग्रहसू रहित होय ताकू यथाजातरूप कहे हैं। अभ्यतर भावसयम विना वाह्य नग्न भये तौ किछू सयमी होयहैं नाही ऐसैं जानना। इहा कोई पूछै—वाह्य भेष शुद्ध होय आचार निर्दोष पालताकैं अभ्यतर भावमैं कपट होय ताका निश्चय कैसैं होय, तथा सूक्ष्म भाव केवलीगम्य हैं, मिथ्यात्व होय ताका निश्चय कैसैं होय, निश्चयविना वदनेकी कहा रीति? ताका समाधान ऐसा जो कपटका जेतैं निश्चय नहीं होय तेतै आचार शुद्ध देखि वदै तामैं दोष नाही, अर कपटका कोई कारणतैं निश्चय होजाय तव नहीं वदै, वहुरि केवलीगम्य मिथ्यात्वकी व्यवहारमैं चर्चा नाही छद्मस्थके ज्ञान गम्यकी चर्चा है। जो अपने ज्ञानका विषयही नाही ताका वाध निर्वाध करनेका व्यवहार नाही सर्वज्ञ भगवानकी भी यह ही आज्ञा है, व्यवहारी जीवकूं व्यवहारका ही शरण है ॥ २६ ॥

आगै इसही अर्थकू दृढ करता सता कहैं हैं;—

णवि देहो वंदिज्जइ ण वि य कुलो ण वि य जाइसंजुत्तो।
को वंदमि गुणहीणो ण हु सवणो णेय सावओ होइ ॥२७

नापि देहो वंद्यते नापि च कुलं नापिच जातिसंयुक्तः।
कः[1] वंद्यते गुणहीनः न खलु श्रमणः नैव श्रावकः भवति ॥२७

अर्थ—देहकूं भी नाही वंदिये है वहुरि कुलकूं भी नाही वदिये है वहुरि जातियुक्तकूं भी नांही वदिये है जातैं गुणरहित होय ताकूं कौन वदे गुण विना प्रकट मुनि नहीं श्रावक भी नांही है ॥

भावार्थ—लोकमैं भी ऐसा न्याय है जो गुणहीन होय ताकू कोऊ श्रेष्ठ मानै नाही, देह रूपवान होय तौ कहा, कुल वड़ा होय तौ कहा, जाति वड़ी होय तौ कहा, जातैं मोक्षमार्गमैं तौ दर्शन ज्ञान चारित्र गुण हैं इनिविना जाति कुल रूप आदिक वदनीक नाही हैं, इनितैं मुनि-श्रावकपणा आवै नांही, मुनिश्रावकपणा तौ सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रतैं होय है, तातैं इनिके धारक हैं तेही वदिवे योग्य हैं जाति कुल आदि वंदिवे योग्य नांही हैं ॥ २७ ॥

आगै कहैं हैं जे तप आदिकरि संयुक्त हैं तिनिकू वंदूं हूँ,

वंदमि तवसावण्णा[1] सीलं च गुणं च वंभचेरं च।
सिद्धिगमणं च तेसिं सम्मत्तेण[2] सुद्धभावेण ॥ २७ ॥

---

१ 'क वन्देगुणहीन' षट्पाहुडमें ऐसी है।

१—'तवसमण्णा, छाया—(तपःसमापन्नात) 'तवसउण्णा।' 'तवसमाण' ये तीन पाठ मुद्रित षट्प्राभृतकी पुस्तक तथा उसकी टिप्पणीमें हैं। २ 'सम्म त्तेणेव' ऐसा पाठ होनेसे पादभंग नहीं होता।

वन्दे तपःश्रमणान् शीलं च गुणं च ब्रह्मचर्यं च।
सिद्धिगमनं च तेषां सम्यक्त्वेन शुद्धभावेन ॥ २७ ॥

अर्थ—आचार्य कहैं हैं जो—जे तपकरि सहित श्रमणपणा धारैं हैं तिनिकूं तथा तिनिके शीलकूं बहुरि तिनिके गुणकूं बहुरि ब्रह्मचर्यकूं मैं सम्यक्त्वसहित शुद्धभावकरि वदूं हूं जातै तिनिकै तिनि गुणनिकरि सम्यक्त्वसहित शुद्धभाव करि सिद्धि कहिये मोक्ष ता प्रति गमन होय है ॥

भावार्थ—पहलै कह्या जो-देहादिक वंदिवे योग्य नांही, गुण वंदिवे योग्य हैं। अब इहां गुणसहितकूं वदना करी है तहां जे तप धारि गृहस्थपणां छोड़ि मुनि भये हैं तिनिकू तथा तिनिके शीलगुण ब्रह्मचर्य सम्यक्त्व सहित शुद्धभावकरि संयुक्त होय तिनिकू वंदना करी है। तहा शीलशब्दकरि तौ उत्तरगुण लेना, बहुरि गुणशब्दकरि मूलगुण लेनें, बहुरि ब्रह्मचर्य शब्दकरि आत्मस्वरूपविषैं लीनपणा लेनां ॥ २८ ॥

आगैं कोई आशका करै जो संयमी वंदनें योग्य कह्या तौ समवसरणादि विभूति सहित तीर्थंकरहैं ते वदिवे योग्य हैं कि नांही ताका समाधानकूं गाथा कहैं हैं-जो तीर्थंकर परमदेव हैं ते सम्यक्त्वसहित तपके माहात्म्यकरि तीर्थंकर पदवी पावैहैं सोभी वदिवे योग्य हैं;

चउसट्ठिचमरसहिओ चउतीसहि अइसएहिं संजुत्तो।
अणवरबहुसत्तहिओ कम्मक्खयकारणणिमित्तो ॥२९॥

चतुःषष्टिचमरसहितः चतुस्त्रिंशद्भिरतिशयैः संयुक्तः।
[1]अनवरतबहुसत्त्वहितः कर्मक्षयकारणनिमित्तः[2] ॥२९॥

अर्थ—जो चौसठि चमरनिकरि सहित हैं, बहुरि चौतीस अतिशयनिकरि सहित हैं, बहुरि निरन्तर बहुत प्राणीनिका हित जाकरि

होय है, ऐसे उपदेशके दाता है बहुरि कर्मका क्षयका कारण है ऐसे तीर्थंकर परमदेव है ते वंदिवे योग्य हैं।

भावार्थ—इहां चौसठि चमर चौतीस अतिशय सहित विशेषणनिकरि तो तीर्थंकरका प्रभुत्व जनाया है, अर प्राणीनिका हित करना अर कर्मका क्षयका कारण विशेषणतें परका उपकारकरनहारापणां जनाया है, इनि दोऊही कारणनितें जगतमैं वदवे पूजवे योग्य हैं। यातैं ऐसा भ्रम नहीं करनां जो तीर्थंकर कैसैं पूज्य हैं, ये तीर्थंकर सर्वज्ञ वीतराग हैं। तिनिकै समवसरणादिक विभूति रचि इन्द्रादिक भक्तजन महिमा करैं हैं। इनिकैं कछू प्रयोजन नांही है आप दिगवरताकूं धारे अतरीख तिष्ठैं हैं, ऐसा जानना॥ २९॥

आगैं मोक्ष काहेतैं होय है सो कहैं हैं,—

णाणेण दंसणेण य तवेण चरियेण संजमगुणेण।
चउहिं पि समाजोगे मोक्खो जिणसासणे दिट्ठो॥३०॥

ज्ञानेन दर्शनेन च तपसा चारित्रेण संयमगुणेन।
चतुर्णामपि समायोगे मोक्षः जिनशासने दृष्टः॥ ३०॥

अर्थ—ज्ञान करि दर्शनकरि तपकरि अर चारित्रकरि इनि च्यारनिका समायोग होतै जो सयमगुण होय ताकरि जिनशासनविषैं मोक्ष होना कह्या है॥ ३०॥

आगैं इनि ज्ञान आदिकै उत्तरोत्तर सारपणा कहैं हैं,—

णाणं णरस्स सारो सारो वि णरस्स होइ सम्मत्तं।
सम्मत्ताओ चरणं चरणाओ होइ णिव्वाणं॥३१॥

---

१ 'अणुचरबहुसत्तहिओ' (अनुचरबहुसत्त्वहित.) मुद्रित षट्प्राभृतमें यह पाठ है। २ 'णिमित्ते' मुद्रित षट्प्राभृतमें ऐसा पाठ है।

ज्ञानं नरस्य सारः सारः अपि नरस्य भवति सम्यक्त्वम् ।
सम्यक्त्वात् चरणं चरणात् भवति निर्वाणम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—प्रथम तौ या पुरुष के ज्ञान सार है जातैं ज्ञानतैं सर्व हेय उपादेय जाने जाय हैं, बहुरि या पुरुषकैं सम्यक्त्व निश्चय करि सार है जातैं सम्यक्त्व विना ज्ञान मिथ्या नाम पावै है, सम्यक्त्वतैं चारित्र होय है जातैं सम्यक्त्व विना चारित्र भी मिथ्याही है, बहुरि चारित्र तैं निर्वाण होय है ॥

भावार्थ—चारित्र तैं निर्वाण होय है अर चारित्र ज्ञानपूर्वक सत्यार्थ होय है अर ज्ञान सम्यक्त्वपूर्वक सत्यार्थ होय है ऐसैं विचार किये सम्यक्त्व कै सारपणां आया । यातैं पहलैं तौ सम्यक्त्व सारहै पीछैं ज्ञान चारित्र सार है । पहलैं ज्ञानतैं पदार्थनिकूं जानिये हैं यातैं पहलैं ज्ञान सार है तौऊ सम्यक्त्व विना ताका भी सारपणा नाहीं, ऐसा जानना ॥३२

आगै इसही अर्थकूं दृढ़ करैं हैं—

णाणम्मि दंसणम्मि य तवेण चरिएण सम्मसहिएण ।
चोण्हं पि समाजोगे सिद्धा जीवा ण सन्देहो ॥३२॥

ज्ञाने दर्शने च तपसा चारित्रेण सम्यक्त्वसहितेन ।
चतुर्णामपि समायोगे सिद्धा जीवा न सन्देहः ॥ ३२ ॥

अर्थ—ज्ञान होतैं दर्शन होतैं सम्यक्त्वसहित तपकरि चारित्र करि इनि च्यारनिका समायोग होतैं जीव सिद्ध भये हैं, यामैं संदेह नाही है ॥

भावार्थ—पूर्वैं जे सिद्ध भये हैं ते सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यारनिके सयोगहीतैं भये हैं यह जिनवचन है, यामैं संदेह नाही ॥ ३२ ॥

आगैं कहै है जो लोक विषैं सम्यग्दर्शनरूप रत्न अमोलक है जो देव दानवनिकरि पूज्य है —

कल्लाणपरंपरया लहंति जीवा विसुद्धसम्मत्तं ।
सम्मद्दंसणरयणं अग्घेदि सुरासुरे लोए ॥ ३३ ॥

कल्याणपरंपरया लभंते जीवाः विशुद्धसम्यक्त्वम् ।
सम्यग्दर्शनरत्नं अर्घ्यते सुरासुरे लोके ॥ ३३ ॥

अर्थ—जीव है ते विशुद्ध सम्यक्त्व है ताहि कल्याणकी परंपरा सहित पावैं हैं तातैं सम्यग्दर्शन रत्न है सो इस सुर असुरनिकरि भऱ्या लोकविषैं पूज्य है ॥

भावार्थ—विशुद्ध कहिये पचीस मलदोषनिकरि रहित निरतिचार सम्यक्त्वतैं कल्याणकी परंपरा कहिये तीर्थंकर पदवी पावै है सो यातैं यह सम्यक्त्व रत्न सर्व लोक देव दानव मनुष्यनिकरि पूज्य होय है। तीर्थंकर प्रकृतिके बंधके कारण सोलह कारण भावना कही हैं तिनिमैं पहलैं दर्शनविशुद्धि है सो ही प्रधान है, ये ही विनयादिक पंदरह भावनानिका कारण है, यातैं सम्यग्दर्शनकै ही प्रधानपणा है ॥३३॥

आगैं कहै हैं जो उत्तमगोत्र सहित मनुष्यपणांकूं पाय सम्यक्त्व पाय मोक्ष पावै है यह सम्यक्त्वका माहात्म्य है —

लद्धूण[1] य मणुयत्तं सहियं तह उत्तमेण गुत्तेण ।
लद्धूण य सम्मत्तं अक्खयसुक्खं[2] च मोक्खं च ॥३४

---

१ 'दद्धूण' मुद्रित प्रतिमें ऐसा पाठ है ।

२ 'अक्खयसोक्ख लहदि मोक्ख च' मुद्रितप्रतिकी टिप्पणीमें ऐसा पाठ भी है ।

लब्ध्वा च मनुजत्वं सहितं तथा उत्तमेन गोत्रेण ।
लब्ध्वा च सम्यक्त्वं अक्षयसुखं च मोक्षं च ॥ ३४ ॥

अर्थ—उत्तमगोत्र सहित मनुष्यपणा प्रत्यक्ष पाय करि अर तहा सम्यक्त्व पाय करि अविनाशी सुखरूप केवलज्ञान पावैं हैं, बहुरि तिस सुखसहित मोक्ष पावैं हैं ॥

भावार्थ—यह सर्व सम्यक्त्वका माहात्म्य है ॥ ३४ ॥

आगैं प्रश्न उपजै हैं जो सम्यक्त्वके प्रभावतैं मोक्ष पावैं हैं सो तत्काल ही पावैं हैं कि किछू अवस्थान भी रहैं हैं ? ताके समाधानरूप गाथा कहैं हैं,—

विहरदि जाव जिणिंदो सहसट्ठसुलक्खणेहिं संजुत्तो ।
चउतीस अइसयजुदो सा पडिमा थावरा भणिया ॥३५

विहरति यावत् जिनेंद्रः सहस्राष्टलक्षणैः संयुक्तः ।
चतुस्त्रिंशदतिशययुतः सा प्रतिमा स्थावरा भणिता ॥३५॥

अर्थ—केवलज्ञान भये पीछैं जिनेन्द्र भगवान जेतैं इस लोकमैं आर्यखंडमैं विहार करैं तेतै तिनिकी सो प्रतिमा कहिये शरीर सहित प्रतिबिंब तिसकूं 'थावर प्रतिमा' ऐसा नाम कहिये । सो कैसे हैं जिनेन्द्र एकहजार आठ लक्षणनि करि सयुक्त है । तहा श्रीवृक्ष कूं आदि लेय एकसौ आठतौ लक्षण होयहैं । बहुरि तिल मुसकूं आदिलेय नवसै व्यंजन होयहैं । बहुरि चौतीस अतिशयमैं दश तौ जन्मतैं ही लिये उपजैहैं,—निस्वेदता १ निर्मलता २ श्वेतरुधिरता ३ समचतुरस्र संस्थान ४ वज्रवृषभ नाराच सहनन ५ सुरूपता ६ सुगधता ७ सुलक्षणता ८ अतुलवीर्य ९ हितमित वचन १० ऐसैं दश । बहुरि घातिया कर्म नाश भये दश होय,—शतयोजन सुभिक्षता १ आकाशगमन २ प्राणि-

यधको अभाव ३ कवलाहारको अभाव ४ उपसर्गको अभाव ५ चतुर्मुखपणों ६ सर्वविद्याप्रभुत्व ७ छायारहितत्व ८ लोचननिस्पंदनरहितत्व ९ केश नखवृद्धिरहितत्व १० ऐसैं दश। बहुरि देवनिकरि भये चौदह,—सकलार्द्धमागधी भाषा १ सर्वजीव मैत्रीभाव २ सर्वऋतुफलपुष्पप्रादुर्भाव ३ आदर्शसदृश पृथ्वी होय ४ मंद सुगंध पवन चलै ५ सर्व लोकमैं आनंद वर्तै ६ भूमिकंटकादिरहित होय ७ देव गंधोदक वृष्टि करै ८ विहार होय तब पदकमल तलैं देव सुवर्णमयी कमल रचै ९ भूमि धान्यनिष्पत्तिसहित होय १० दिशा आकाश निर्मल होय ११ देवनिका आह्वानन शब्द होय १२ धर्म चक्र आगैं चलै १३ अष्ट मंगल द्रव्य होय १४ ऐसैं चौदह। सर्व मिलि चौतीस भये। बहुरि अष्ट प्रातिहार्य होय, तिनिके नाम;—अशोकवृक्ष १ पुष्पवृष्टि २ दिव्यध्वनि ३ चामर ४ सिंहासन ५ छत्र ६ भामंडल ७ दुंदुभिवादित्र ८ ऐसैं आठ। ऐसैं अतिशयनिसहित अनंतज्ञान अनंतदर्शन अनंतसुख अनंतवीर्य सहित तीर्थंकर परमदेव जेतैं जीवनिकै संबोधन निमित्त विहार करते विराजैं तेतैं स्थावर प्रतिमा कहिये। ऐसैं स्थावर प्रतिमा कहनेतैं तीर्थंकरकै केवलज्ञान भये पीछैं अवस्थान जनाया है अर धातु पाषाणकी प्रतिमा रचि स्थापिये है सो याका व्यवहार है॥ ३५॥

आगैं कर्म नाश करि मोक्ष प्राप्त होय हैं ऐसैं कहै है,—

बारसविहतवजुत्ता कम्मं खविऊण विहिबलेण स्सं।
वोसट्टचत्तदेहा णिव्वाणमणुत्तरं पत्ता॥ ३६॥

द्वादशविधतपोयुक्ताः कर्म क्षपयित्वा विधिबलेण स्वीयम्।
व्युत्सर्गत्यक्तदेहा निर्वाणमनुत्तरं प्राप्ताः॥ ३६॥

अर्थ—जे बारह प्रकार तप करि संयुक्त भये सते विधिके बल करि अपने कर्मकूं खिपाय करि 'वोसट्टचत्तदेहा' कहिये न्यारा करि

छोड्या है देह ज्या ऐसे भये ते अनुत्तर कहिये जातैं परै अन्य अवस्था नाही ऐसी निर्वाण अवस्थाकूं प्राप्त होय हैं ।

भावार्थ—जे तपकरि केवलज्ञान उपाय जेतै विहार करैं तेतै अवस्थान रहैं पीछैं द्रव्य क्षेत्रकाल भावकी सामग्रीरूप विधिके बलकरि कर्म क्षिपाय व्युत्सर्गकरि देहकू छोड़ि निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं । इहां आशय ऐसा जो निर्वाणकूं प्राप्त होय तब लोकके शिखर जाय तिष्टै है तहां गमनविषै एक समय लागै तिस काल जगम प्रतिमा कहिये। ऐसैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकरि मोक्षकी प्राप्ति होय है तहां सम्यग्दर्शन प्रधान है । इस पाहुडमैं सम्यग्दर्शनका प्रधानपणाका व्याख्यान किया ॥ ३६ ॥

सवैया छंद ।

मोक्ष उपाय कह्यो जिनराज जु सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्रा ।
तामधि सम्यग्दर्शन मुख्य भये निज बोध फलै सुचरित्रा ॥
जे नर आगम जानि करै पहचानि यथावत मित्रा ।
घाति क्षिपाय रु केवल पाय अघाति हने लहि मोक्ष पवित्रा ॥१

दोहा

नमूं देव गुरु धर्मकूं जिन आगमकूं मानि ।
जा प्रसाद पायो अमल सम्यग्दर्शन जानि ॥ २ ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित अष्टप्राभृतमे प्रथम दर्शनप्राभृत और तिसकी जयचन्द्र छाबडा कृत देशभाषामयवचनिका

❀ समाप्त ❀

———

* श्री *

अथ [1]सूत्रपाहुड

—✿ २ ✿—

दोहा

वीर जिनेश्वरकूं नमूं गौतम गणधर लार।
काल पंचमा आदिमैं भए सूत्रकरतार ॥ १ ॥

ऐसैं मंगलकरि श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत प्राकृत गाथा बंध सूत्रपाहुड है ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिए है;—

तहां प्रथमही श्रीकुन्दकुन्द आचार्य सूत्रकी महिमागर्भित सूत्रका स्वरूप जनावै हैं:—

अरहंतभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
सुत्तत्थमग्गणत्थं सवणा साहंति परमत्थं ॥ १ ॥

अर्हद्भाषितार्थं गणधरदेवैः ग्रथितं सम्यक्।
सूत्रार्थमार्गणार्थं श्रमणाः साधयंति परमार्थम् ॥१॥

अर्थ—जो गणधर देवनिनैं सम्यक् प्रकार पूर्वापरविरोधरहित गूंथ्या रच्या जो सूत्र है, सो कैसाक है सूत्र—सूत्रका जो किछू अर्थ है ताका मार्गण कहिये हेरना जाननां सो है प्रयोजन जामैं, ऐसे सूत्र करि श्रमण कहिये मुनि हैं ते परमार्थ कहिये उत्कृष्ट अर्थ प्रयोजन जो

---

१ मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें दूसरा चारित्रपाहुड है।

अविनाशी मोक्ष ताहि साधै है। इहां गाथामै सूत्र ऐसा विशेष्य पद न कह्या तौऊ विशेषणनिकी सामर्थ्यतैं लिया है।

भावार्थ—जो अरहंत सर्वज्ञ करि भाषित है अर गणधर देवनिकरि अक्षर पद वाक्यमयी गूथ्या है अर सूत्रके अर्थका जाननेकाही है अर्थ प्रयोजन जामै ऐसा सूत्र करि मुनि परमार्थ जो मोक्ष ताहि साधै है। अन्य जे अक्षपाद जैमिनि कपिल सुगत आदि छद्मस्थनिकरि रचे कल्पित सूत्र हैं तिनिकरि परमार्थकी सिद्धि नांही है, ऐसा आशय जानना ॥ १ ॥

आगैं कहै है जो ऐसा सूत्रका अर्थ आचार्यनिकी परपरा करि वर्त्तै तिसकू जानि मोक्षमार्गकूं साधै है सो भव्य है,—

सुत्तम्मि जं सुदिट्ठं आइरियपरंपरेण मग्गेण ।
णाऊण दुविह सुत्तं वट्टइ सिवमग्ग जो भव्वो ॥ २ ॥

सूत्रे यत् सुदृष्टं आचार्यपरंपरेण मार्गेण ।
ज्ञात्वा द्विविधं सूत्रं वर्त्तते शिवमार्गे यः भव्यः ॥ २ ॥

अर्थ—जो सर्वज्ञभाषित सूत्रविषैं जो किछू भलै प्रकार कह्या है ताकूं आचार्यनिकी परंपरारूप मार्ग करि दोयप्रकार सूत्रकू शब्द थकी अर्थ थकी जानि अर मोक्षमार्गविषैं प्रवर्त्तै है सो भव्यजीव है मोक्ष पावने योग्य है।

भावार्थ—इहा कोई कहै—अरहंतका भाष्या अर गणधर देवनिका गूंथ्या सूत्र तौ द्वादशागरूप हैं ते तौ अबार कालमैं दीखे नाही तब परमार्थरूप मोक्षमार्ग कैसैं सधै, ताका समाधानकू यह गाथा है—जो अरहतभापित गणधर गूथित सूत्रमैं जो उपदेश है तिसकू आचार्यनिकी परपराकरि जानिये है, तिसकूं शब्द अर्थ करि जानि जो मोक्षमार्ग साधै है सो मोक्ष होने योग्य भव्य है। इहा फेरि कोऊ पूछै—जो

आचार्यनिकी परंपरा कहा ? तहां अन्य ग्रंथनिमें आचार्यनिकी परंपरा कही है, सो ऐसें है;--

श्रीवर्द्धमान तीर्थंकर सर्वज्ञ देव पीछें तीन तौ केवलज्ञानी भये; गौतम १ सुधर्म २ जंबू ३। वहुरि तापीछें पाच श्रुतकेवली भये तिनिकूं द्वादशांग सूत्रका ज्ञान भया.--विष्णु १ नंदिमित्र २ अपराजित ३ गोवर्द्धन ४ भद्रबाहु ५। तिनिपीछें दश पूर्वनिके पाठी ग्यारह भये; विशाख १ प्रोष्ठिल २ क्षत्रिय ३ जयसेन ४ नागसेन ५ सिद्धार्थ ६ धृतिषेण ७ विजय ८ बुद्धिल ९ गंगदेव १० धर्मसेन ११। तिनि पीछें पाच ग्यारह अंगनिके धारक भये, नक्षत्र १ जयपाल २ पाडु ३ ध्रुवसेन ४ कस ५। वहुरि तिनि पीछें एक अगके धारक च्यार भये; सुभद्र १ यशोभद्र २ भद्रबाहु ३ लोहाचार्य ४। इनि पीछें एक अंगके पूर्ण ज्ञानीकी तौ व्युच्छित्ति भई अर अगका एकदेश अर्थके ज्ञानी आचार्य भये तिनिमै केतेकनिके नाम;--अर्हद्बलि, माघनंदि, धरसेन, पुष्पदंत, भूतबलि, जिनचन्द्र, कुन्दकुन्द, उमास्वामी, समन्तभद्र, शिवकोटि, शिवायन, पूज्यपाद, वीरसेन, जिनसेन, नेमिचन्द्र इत्यादि। वहुरि तिनि पीछें तिनिकी परिपाटीमै आचार्य भये तिनितैं अर्थका व्युच्छेद नहीं भया, ऐसैं दिगंबरनिके संप्रदायमैं प्ररूपणा यथार्थ है। वहुरि अन्य श्वेताम्बरादिक वर्द्धमानस्वामीतैं परपरा मिलावै है सो कल्पित है जातै भद्रबाहु स्वामी पीछें केई मुनिकालमैं भ्रष्ट भये ते अर्द्धफालक कहाये तिनिकी संप्रदायमैं श्वेताम्बर भये, तिनिमैं देवगणनामा साधु तिनिकी सप्रदायमैं भया है तानैं सूत्र रचे हैं सो तिनिमैं शिथिलाचार पोषनेकूं कल्पित कथा तथा कल्पित आचरणकी कथनी करी है सो प्रमाणभूत नाहीं है। पचमकालमैं जैनाभासनिकै शिथिलाचारकी वहुल्यता है सो युक्त है इस कालमैं साचा मोक्षमार्गकी विरलता है तातैं शिथिलाचारीनिकै साचा मोक्षमार्ग कहातै होय ऐसा जाननां।

अब इहां कछूक द्वादशागसूत्र तथा अंगबाह्यश्रुतका वर्णन लिखिये है,--तहां तीर्थंकरके मुखतैं उपजी जो सर्व भाषामय दिव्य-

ध्वनि ताकूं सुनिकरि च्यार ज्ञान सप्तऋद्धिके धारक गणधर देवनिनै अक्षर पदमय सूत्ररचना करी। तहां सूत्र दोय प्रकार है,—एक अंग दूसरा अंगबाह्य। तिनके अपुनरुक्त अक्षरनिकी संख्या वीस अंकनि प्रमाण है ते अंक एक घाटि इकट्ठी प्रमाण हैं। ते अंक–१८४४६७४४०७३-७०९५५१६१५ एते अक्षर है। तिनिके पद करिये तब एक मध्यपदके अक्षर सौलासै चौतीस कोडि तियासी लाख सात हजार आठसै अठ्यासी कहे हैं तिनिका भाग दिये एकसौ बारह कोडि तियासीलाख अठावन हजार पांच इतनें पावैं येते पदहैं ते तौ बारह अंगरूप सूत्रके पदहैं। अर अवशेष वीस अंकनिमैं अक्षर रहे ते अंगबाह्य सूत्र कहिये, ते आठ कोडि एक लाख आठ हजार एकसौ पिचहत्तर अक्षर हैं तिनि अक्षरनिमैं चौदह प्रकीर्णकरूप सूत्ररचना है।

अब इनि द्वादशांगरूप सूत्ररचनाके नाम अर पद संख्या लिखिए है,—तहां प्रथम अंग आचारांग है तामैं मुनीश्वरनिके आचारका निरूपण है ताके पद अठारह हजार हैं। बहुरि दूसरा सूत्रकृत अंग है ताविषैं ज्ञानका विनय आदिक अथवा धर्मक्रियामैं स्वमत परमतकी क्रियाका विशेषका निरूपण है याके पद छत्तीस हजार है। बहुरि तीसरा स्थान अंग है ताविषै पदार्थनिका एक आदि स्थाननिका निरूपण है जैसैं जीव सामान्य करि एकप्रकार विशेषकरि दोय प्रकार तीन प्रकार इत्यादि ऐसै स्थान कहे हैं याके पद वियालीस हजार है। बहुरि चौथा समवाय अंग है याविषैं जीवादिक छह द्रव्यनिका द्रव्य क्षेत्र कालादि करि वर्णन है याके पद एक लाख चौसठि हजार हैं। पांचमा व्याख्याप्रज्ञप्ति अंग है याविषै जीवके अस्ति नास्ति आदिक साठि हजार प्रश्न गणधरदेव तीर्थंकरकै निकट किये तिनिका वर्णन है याके पद दोय लाख अठाईस हजार है। बहुरि छठा ज्ञातृधर्मकथा नामा अंग है यामैं तीर्थंकरनिके धर्मकी कथा जीवादिक पदार्थनिका स्वभावका वर्णन तथा गणधरके प्रश्ननिका उत्तरका वर्णन है याके पद पांच लाख छप्पन हजार हैं। बहुरि सातवा उपासकाध्ययननाम

अंग है याविषैं ग्यारह प्रतिमा आदि श्रावकका आचारका वर्णन है याके पद ग्यारह लाख सत्तर हजार है। बहुरि आठमा अंतकृतदशागनामा अंग है याविषैं एक एक तीर्थंकरकै वारैं दशदश अतकृत केवली भये तिनिका वर्णन है याके पद तेईस लाख अठाईस हजार हैं। बहुरि नवमा अनुत्तरोपपादकनामा अग है याविषैं एक एक तीर्थंकरकै वारैं दशदश महामुनि घोर उपसर्ग सहि अनुत्तर विमाननिमैं उपजे तिनिका वर्णन है याके पद बाणवै लाख चवालीस हजार है। बहुरि दशमा प्रश्न व्याकरणनाम अग है याविषै अतीत अनागत कालसंबधी शुभाशुभका प्रश्न कोई करै ताका उत्तर यथार्थ कहनेका उपायका वर्णन है तथा आक्षेपणी विक्षेपणी सवेदनी निर्वेदनी इनि च्यार कथानिका भी या अंगमै वर्णन है याके पद तिराणवैं लाख सोलह हजार हैं। बहुरि ग्यारमां विपाकसूत्र नामा अंग है याविषैं कर्मका उदयका तीव्र मंद अनुभागका द्रव्य क्षेत्र काल भावका अपेक्षा लिये वर्णन है याके पद एक कोडि चौरासी लाख हैं। ऐसैं ग्यारह अग हैं तिनिके पदनिकी सख्याका जोड़ दिये च्यार कोडि पदरह लाख दोय हजार पद होय हैं। बहुरि बारमा दृष्टिवादनामा अग है ताविषैं मिथ्यादर्शनसबंधी तीनसै तरेसठि कुवाद हैं तिनिका वर्णन है याके पद एक सौ आठ कोडि अड़सठि लाख छप्पनहजार पाच पद हैं। या बारमा अंगका पाच अधिकार हैं;—परिकर्म १ सूत्र २ प्रथमानुयोग ३ पूर्वगत ४ चूलिका ५ ऐसैं। तहां परिकर्मविषैं गणितके करण सूत्र है ताके पाच भेद हैं,—तहां चन्द्रप्रज्ञप्ति प्रथम है तामैं चन्द्रमाका गमनादिक परिवार वृद्धि हानि ग्रह आदिका वर्णन है याके पद छत्तीस लाख पांच हजार हैं। बहुरि दूजा सूर्यप्रज्ञप्ति है यामैं सूर्यकी ऋद्धि परिवार गमन आदिका वर्णन है याके पद पाच लाख तीन हजार हैं। बहुरि तीजा जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति है यामै जंबूद्वीपसबंधी मेरु गिरि क्षेत्र कुलाचल आदिका वर्णन है याकै पद तीन लाख पचीस हजार है। बहुरि चौथा द्वीपसागरप्रज्ञप्ति है यामैं द्वीपसागरका स्वरूप तथा तहां तिष्ठै

ज्योतिषी व्यंतर भवनवासी देवनिके आवास तथा तहां तिष्ठे जिन-मंदिरनिका वर्णन है याके पद बावन लाख छत्तीस हजार हैं। बहुरि पांचमा व्याख्याप्रज्ञप्ति है याविषैं जीव अजीव पदार्थनिका प्रमाणका वर्णन है याके पद चौरासी लाख छत्तीस हजार हैं। ऐसैं परिकर्मके पाच भेदनिके पद जोडे एक कोडि इक्यासी लाख पाच हजार है। बहुरि बारमां अंगका दूजा भेद सूत्र नाम है ताविषै मिथ्यादर्शनसंबधी तीनसै तरेसठि कुवाद हैं तिनिकी पूर्वपक्ष लेकरि तिनिका जीव पदार्थपरि लगावना आदि वर्णन है याके भेद अठ्यासी लाख हैं। बहुरि बारमां अंगका तीजा भेद प्रथमानुयोग है या विषैं प्रथम जीवकू उपदेशयोग्य तीर्थंकर आदि तरेसठि शलाका पुरुषनिका वर्णन है याके पद पाच हजार है। बहुरि बारमा अंगका चौथा भेद पूर्वगत है, ताके चौदह भेद हैं तहां प्रथम उत्पाद नामा है ताविषैं जीव आदि वस्तुनिकै उत्पाद व्यय ध्रौव्य आदि अनेक धर्मनिकी अपेक्षा भेद वर्णन है याके पद एक कोडि हैं। बहुरि दूजा अग्रायणीनाम पूर्व है याविषै सातसै सुनय दुर्नयका अर षट्द्रव्य सप्त तत्व नव पदार्थनिका वर्णन है याके छिनवै लाख पद हैं। बहुरि तीजा वीर्यानुवादनाम पूर्व है याविषैं षट् द्रव्यनिकी शक्तिरूप वीर्यका वर्णन है याके पद सत्तरि लाख हैं। बहुरि चौथा अस्तिनास्ति प्रवाद-नामा पूर्व है या विषैं जीवादिक वस्तुका स्वरूप द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा अस्ति पररूप द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा नास्ति आदि अनेक धर्मनिविषैं विधि निषेध करि सप्तभंगकरि कथंचित् विरोध मेटने रूप मुख्य गौण करि वर्णन है याके पद साठि लाख हैं। बहुरि ज्ञान-प्रवादनामा पांचमां पूर्व है यामैं ज्ञानके भेदनिका स्वरूप संख्या विषय फल आदिका वर्णन है याके पद एक घाटि कोडि है। बहुरि छठा सत्यप्रवादनामा पूर्व है या विषैं सत्य असत्य आदिक वचननिकी अनेक प्रकार प्रवृत्ति है ताका वर्णन है याके पद एक कोडि छह हैं। बहुरि सातमां आत्मप्रवादनामा पूर्व है याविषैं आत्मा जो जीव पदार्थ है ताका कर्त्ता भोक्ता आदि अनेक धर्मनिका निश्चय व्यवहार नय अपेक्षा वर्णन

है याके पद छब्बीस कोडि हैं। बहुरि कर्मप्रवाद नामा आठमा पूर्व है याविषैं ज्ञानावरण आदि आठ कर्मनिका बंध सत्व उदय उदीरणपणा आदिका तथा क्रियारूप कर्मनिका वर्णन है याके पद एक कोडि अस्सी लाख हैं। बहुरि प्रत्याख्याननामा नवमा पूर्व है यामैं पापके त्यागका अनेक प्रकार करि वर्णन है याके पद चौरासी लाख हैं। बहुरि दशमा विद्यानुवादनामा पूर्व है यामैं सातसै क्षुद्रविद्या अर पाचसै महाविद्या इनिका स्वरूप साधन मन्त्रादिक अर सिद्ध भये इनिका फलका वर्णन है तथा अष्टांग निमित्त ज्ञानका वर्णन है याके पद एक कोडि दश लाख है बहुरि कल्याणवादनामा ग्यारवा पूर्व है यामैं तीर्थंकर चक्रवर्ती आदिके गर्भ आदि कल्याणका उत्सव तथा तिसके कारण षोडश भावनादिके तपश्चरणादिक तथा चन्द्रमा सूर्यादिकके गमनविशेष आदिकका वर्णन है याके पद छब्बीस कोडि हैं बहुरि प्राणवादनामा बारमा पूर्व है यामैं आठ प्रकार वैद्यक तथा भूतादिक व्याधि दूरि करनेके मन्त्रादिक तथा विष दूरि करनेके उपाय तथा स्वरोदय आदिका वर्णन है याके तेरह कोडि पद हैं। बहुरि क्रियाविशालनामा तेरमा पूर्व है यामै संगीतशास्त्र छन्द अलंकारादिक तथा चौसठि कला, गर्भाधानादि चौरासी क्रिया, सम्यग्दर्शन आदि एकसौ आठ क्रिया, देववंदनादि पचीस क्रिया, नित्य नैमित्तिक क्रिया इत्यादिका वर्णन है याके पाद नव कोडि हैं। चौदहमां त्रिलोकबिंदुसार नामा पूर्व है या विषै तीन लोकका स्वरूप अर बीजगणितका स्वरूप तथा मोक्षका स्वरूप तथा मोक्षको कारणभूत क्रियाका स्वरूप इत्यादिका वर्णन है याके पाद बारह कोडि पचास लाख हैं। ऐसै चौदह पूर्व हैं, इनिके सर्व पदनिका जोड पिच्याणवै कोडि पचास लाख है। बहुरि बारमा अंगका पाचमा भेद चूलिका है ताके पाच भेद हैं तिनिके पद दोय कोडि नव लाख निवासी हजार दोयसै हैं। तहा जलगता चूलिकामैं जलका स्तंभन करना जलमैं गमन करना। अग्निगता चूलिकामैं अग्निस्तंभन करना अग्निमैं प्रवेश करनां अग्निका भक्षण करना

इत्यादिके कारणभूत मंत्र तन्त्रादिकका प्ररूपण है, याके पद दोय कोडि नवलाख निवासी हजार दोयसै हैं। एते एते ही पद अन्य च्यार चूलिकाके जानने। बहुरि दूजी स्थलगता चूलिका है याविषैं मेरुपर्वत भूमि इत्यादि विषैं प्रवेश करनां शीघ्र गमन करना इत्यादि क्रियाके कारण मंत्र तंत्र तपश्चरणादिकका प्ररूपण है। बहुरि तीजी मायागता चूलिका है तामैं मायामयी इन्द्रजाल विक्रियाके कारणभूत मन्त्र तन्त्र तपश्चरणादि-का प्ररूपण है। बहुरि चौथी रूपगता चूलिका है यामैं सिंह हाथी घोड़ा बैल हरिण इत्यादि अनेकप्रकार रूप पलटि लेना ताके कारणभूत मन्त्र तन्त्र तपश्चरण आदिका प्ररूपण है, तथा चित्राम काष्ठलेपादिकका लक्षण वर्णन है तथा धातु रसायनका निरूपण है। बहुरि पांचमीं आकाशगता चूलिका है यामैं आकाशविषै गमनादिकके कारणभूत मंत्र यंत्र तन्त्रादिकका प्ररूपण है। ऐसैं बारमा अंग है। या प्रकार तौ बारह अंग सूत्र है।

बहुरि अङ्गबाह्य श्रुतके चौदह प्रकीर्णक हैं। तिनिमैं प्रथम प्रकीर्णक सामायिक नामा है, ताविषैं नाम स्थापना द्रव्य क्षेत्र काल भाव भेद-करि छह प्रकार इत्यादिक सामायिकका विशेषकरि वर्णन है। बहुरि दूजा चतुर्विंशतिस्तव नाम प्रकीर्णक है ताविषैं चौवीस तीर्थंकरनिकी महिमाका वर्णन है। बहुरि तीजा वंदनानाम प्रकीर्णक है तामैं एक तीर्थंकरकै आश्रय वंदना स्तुतिका वर्णन है। बहुरि चौथा प्रति-क्रमणनामा प्रकीर्णक है तामैं सात प्रकारके प्रतिक्रमणका वर्णन है। बहुरि पांचमा वैनयिकनाम प्रकीर्णक है तामैं पंच प्रकारके विनयका वर्णन है। बहुरि छठा कृतिकर्मनामा प्रकीर्णक है तामैं अरहन्त आदिककी वंदनाकी क्रियाका वर्णन है। बहुरि सातमा दशवैकालिकनामा प्रकीर्णक है तिसविषै मुनिका आचार आहा-रकी शुद्धता आदिका वर्णन है। बहुरि आठमा उत्तराध्ययननामा प्रकीर्णक है ताविषै परीषह उपसर्गका सहनेका विधान वर्णन है।

बहुरि नवमा कल्पव्यवहार नामा प्रकीर्णक है तामैं मुनिके योग्य आचरण अर अयोग्य सेवनके प्रायश्चित तिनिका वर्णन है। बहुरि दशमा कल्पाकल्प नाम प्रकीर्णक है ताविषैं मुनिकूं यह योग्य है यह अयोग्य है ऐसा द्रव्य क्षेत्र काल भावकी अपेक्षा वर्णन है। बहुरि ग्यारमा महाकल्पनामा प्रकीर्णक है तामैं जिनकल्पी मुनिकै प्रतिमायोग त्रिकालयोगका प्ररूपण है तथा स्थविरकल्पी मुनिनिकी प्रवृत्तिका वर्णन है। बहुरि बारमा पुण्डरीकनाम प्रकीर्णक है ताविषैं च्यार प्रकारके देवनिविषैं उपजनेके कारणनिका वर्णन है। बहुरि तेरमा महापुण्डरीकनाम प्रकीर्णक है ताविषैं इन्द्रादिक बडी ऋद्धिके धारक देवनिके उपजनेके कारणनिका प्ररूपण है। बहुरि चौदहमा निषिद्धिकानामा प्रकीर्णक है ताविषैं अनेकप्रकार दोपकी शुद्धतानिमित्त प्रायश्चित्तनिका प्ररूपण है, यह प्रायश्चित्त शास्त्र है, याका निसितिका ऐसा भी नाम है। ऐसैं अङ्गबाह्य श्रुत चौदह प्रकार है।

बहुरि पूर्वनिकी उत्पत्ति पर्यायसमास ज्ञानतैं लगाय पूर्वज्ञानपर्यंत बीस भेद हैं तिनिका विशेष वर्णन है सो श्रुतज्ञानका वर्णन गोमट्टसार नाम ग्रन्थमैं विस्तार करि है तहांतैं जाननां ॥ २ ॥

आगैं कहैं है जो सूत्रविषैं प्रवीण है सो संसारका नाश करै है,—

सुत्तम्मि[1] जाणमाणो भवस्स भवणासणं च सो कुणदि।
सूई जहा ससुत्ता णासदि सुत्ते[2] सहा णो वि ॥ ३ ॥

सूत्रे ज्ञायमानः भवस्य भवनाशनं च सः करोति।
सूची यथा असूत्रा नश्यति सूत्रेण सह नापि ॥ ३ ॥

---

१ 'सुत्तहि'। २ 'सुत्तहि' षट्पाहुडमें ऐसा पाठ है।

अर्थ—जो पुरुष सूत्रविषैं जाणमान है प्रवीण है सो संसारके उपजनेंका नाश करै है वहुरि जैसैं लोहकी सूई है सो सूत्र कहिये डोरा तिस विना होय तौ नष्ट होजाय अर डोरासहित होय तौ नष्ट नहीं होय यह दृष्टांत है ॥

भावार्थ—सूत्रका ज्ञाता होय सो संसारका नाश करै है वहुरि ऐसैं है—जो सूई डोरासहित होय तौ दृष्टिगोचर होय पावै कदाचित् ही नष्ट नहीं होय अर डोरा विना होय तौ दीखै नाही नष्ट होय जाय तैसैं जाननां ॥ ३ ॥

आगैं सूईके दृष्टांतका दार्ष्टांत कहैं है;—

पुरिसो वि जो ससुत्तो ण विणासइ सो गओ वि संसारे।
सच्चेयणपच्चक्खं णासदि तं सो अदिस्समाणो वि ॥४॥

पुरुषोऽपि यः ससूत्रः न विनश्यति स गतोऽपि संसारे।
सच्चेतनप्रत्यक्षेण नाशयति तं सः अदृश्यमानोऽपि ॥४॥

अर्थ—जैसैं सूत्रसहित सूई नष्ट नहीं होय तैसैं सो पुरुष भी संसारमैं गत होय रह्या है अपना रूप आपकै दृष्टिगोचर नांही है तौऊ सूत्रसहित होय सूत्रका ज्ञाता होय तौ ताकै आत्मा सत्तारूप चैतन्य चमत्कारमयी स्वसंवेदनकरि प्रत्यक्ष अनुभवमैं आवै है यातैं गत नाही है नष्ट नहीं भया है, सो जिस संसारमैं गत है तिस संसारका नाश करै है।

भावार्थ—यद्यपि आत्मा इन्द्रियगोचर नांही है तौऊ सूत्रके ज्ञाताकै स्वसंवेदन प्रत्यक्ष करि अनुभव गोचर है सो सूत्रका ज्ञाता संसार का नाश करै है आप प्रकट होय है यातैं सूईका दृष्टांत युक्त है ॥ ४ ॥

आगैं सूत्रमैं अर्थ कह्या है सो कहै हैं;—

सुत्तत्थं जिणभणियं जीवाजीवादिबहुविहं अत्थं ।
हेयाहेयं च तहा जो जाणइ सो हु सद्दिट्ठी ॥ ५ ॥

सूत्रार्थं जिनभणितं जीवाजीवादिबहुविधमर्थम् ।
हेयाहेयं च तथा यो जानति स हि सद्दृष्टिः ॥५॥

अर्थ—सूत्रका अर्थ है सो जिन सर्वज्ञ देव करि कह्या है बहुरि सूत्रविषैं अर्थ है सो जीव अजीव आदि बहुत प्रकार है तथा हेय कहिये त्यागने योग्य पुद्गलादिक अर अहेय कहिये त्यागने योग्य नांही ऐसा आत्मा सो याकूं जानैं सो प्रगट सम्यग्दृष्टी है।

भावार्थ—सर्वज्ञके भाषे सूत्र विषैं जीवादिक नव पदार्थ अर इनिमै हेय उपादेय ऐसैं बहुत प्रकार करि व्याख्यान है ताकूं जानै सो श्रद्धानवान सम्यग्दृष्टी होय है ॥ ५ ॥

आगैं कहै हैं जो जिनभाषित सूत्र है सो व्यवहार परमार्थरूप दोय प्रकार है ताकूं जानि योगीश्वर शुद्ध भाव करि सुखकूं पावैं हैं;—

जं सुत्तं जिणउत्तं ववहारो तह य जाण परमत्थो ।
तं जाणिऊण जोई लहइ सुहं खवइ मलपुंजं ॥ ६ ॥

यत्सूत्रं जिनोक्तं व्यवहारं तथा च ज्ञानीहि परमार्थम् ।
तत् ज्ञात्वा योगी लभते सुखं क्षिपते मलपुंजं ॥ ६ ॥

अर्थ—जो जिनभाषित सूत्र है सो व्यवहार रूप है तथा परमार्थ रूप है ताकू योगीश्वर जानि सुख पावै है बहुरि मलपुंज कहिये द्रव्य कर्म भाव कर्म नोकर्म ताहि क्षेपै है।

भावार्थ—जिन सूत्रकूं व्यवहार परमार्थरूप यथार्थ जानि योगीश्वर मुनि है सो कर्मका नाश करि अविनाशी सुखरूप मोक्षकूं पावै है। तहां परमार्थ कहिए निश्चय अर व्यवहार इनिका सक्षेप स्वरूप ऐसा जो-जिन आगमकी व्याख्या च्यार अनुयोगरूप शास्त्रनिमैं दोय प्रकार सिद्ध है एक आगमरूप, दूजी अध्यात्मरूप। तहां सामान्य विशेष करि सर्व पदार्थनिका प्ररूपण करिये है सो तौ आगमरूप है। बहुरि जहां एक आत्माहीकै आश्रय निरूपण करिये सो अध्यात्म है। तथा अहेतुमत् अर हेतुमत् ऐसैं भी दोय प्रकार है; तहां जो सर्वज्ञकी आज्ञाही करि केवल प्रमाणता मानिये सो तो अहेतुमत् है। अर जहां प्रमाण नयनि करि वस्तुकी निर्बाध सिद्धि जामैं करि मानिये सो हेतुमत् है। ऐसैं दोय प्रकार आगममैं निश्चय व्यवहार करि व्याख्यान ऐसैं है, सो किछू लिखिए हैं;—तहां जब आगमरूप सर्व पदार्थनिका व्याख्यानपरि लगाइये तब तौ वस्तुका स्वरूप सामान्य विशेषरूप अनंतधर्मस्वरूप है सो-ज्ञानगम्य है, तिनिमैं सामान्यरूप तौ निश्चयनयका विषय है, अर विशेष रूप जे ते हैं तिनिकूं भेदरूपकरि न्यारे न्यारे कहै सो व्यवहार नयका विषय है ताकूं द्रव्यपर्याय स्वरूप भी कहिये। तहां जिस वस्तुकूं विवक्षित करि साधिये ताके द्रव्य क्षेत्र काल भावकरि जो किछू सामान्य विशेषरूप वस्तुका सर्वस्व होय सो तौ निश्चय व्यवहार करि कह्या है तैसैं सधै है, बहुरि तिस वस्तुकै किछू अन्य वस्तुके सयोगरूप अवस्था होय तिसकूं तिस वस्तुरूप कहनां सो भी व्यवहार है ताकूं उपचार ऐसा भी नाम कहिये। याका उदाहरण ऐसा—जैसैं एक विवक्षित घटनामा वस्तु परि लगाइये तब जिस घटका द्रव्य क्षेत्र-काल भावरूप सामान्यविशेपरूप जेता सर्वस्व है ते ता कह्या तैसैं निश्चय व्यवहार करि कहना सो तौ निश्चय व्यवहार है; अर घटकै किछू अन्य वस्तुका लेप करि तिस घटकूं तिस नाम करि कहना तथा अन्य पटादिविपै घटका आरोपण करि घट कहना सो भी व्यवहार है। तहां व्यवहारका दोय आश्रय है; एक

प्रयोजन, दूजा निमित्त। तहा प्रयोजन साधनेकू काहू वस्तुकूं घट कहनां सो तो प्रयोजनाश्रित है वहुरि काहू अन्य वस्तुके निमित्ततैं घटमैं अवस्था भई ताकूं घटरूप कहना सो निमित्ताश्रित है। ऐसैं विवक्षित सर्व जीव अजीव वस्तुनिपरि लगावनां। वहुरि जब एक आत्माहीकूं प्रधान करि लगावना सो अध्यात्म है। तहा जीव सामान्यकू भी आत्मा कहिये है। अर जो जीव अपनां सर्व जीवनितैं भिन्न अनुभव करै ताकूं भी आतमा कहिये है, तहां जब आपकूं सर्वतैं न्यारा अनुभव करि, आपापरि निश्चय लगाइये तब ऐसै जो आप अनादि अनत अविनाशी सर्व अन्य द्रव्यनितैं भिन्न एक सामान्य विशेपरूप अनतधर्मा द्रव्य पर्यायात्मक जीवनामा शुद्ध वस्तु है, सो कैसाक है—शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतनास्वरूप असाधारण धर्मकू लिये अनत शक्तिका धारक है तामैं सामान्य भेद चेतना अनत शक्तिका समूह सो द्रव्य है। वहुरि अनत ज्ञान दर्शन सुख वीर्य ये तौ चेतनाके विशेप हैं ते तौ गुण हैं अर अगुरुलघु गुणकै द्वारै षट्स्थान पतित हानि वृद्धिरूप परिणमता जीवकै त्रिकालात्मक अनत पर्याय हैं। ऐसा शुद्ध जीव नामा वस्तु सर्वज्ञ देख्या जैसा आगममैं प्रसिद्ध है सो तो एक अभेद रूप शुद्ध निश्चय नयका विषय भूत जीवै है इस दृष्टि करि अनुभव कीजे जब तौ ऐसा है। अर अनत धर्मनिमैं भेदरूप कोई एक धर्मकूं लेकरि कहना सो व्यवहार है वहुरि आत्म वस्तुकै अनादिहीतै पुद्गल कर्मका सयोग है ताकै निमित्ततैं विकार भावकी उत्पत्ति है ताके निमित्ततै रागद्वेष रूप विकार होय हैं ताकूं विभाव परिणति कहिये है, तिस करि फेरि आगामी कर्मका- वध होय है। ऐसैं अनादि निमित्त नैमित्तिक भाव करि चतुर्गति रूप ससारका भ्रमणरूप प्रवृत्ति होय है तहा जिस गतिकू प्राप्त होय तैसाही जीव नाम कहावै है तथा जैसा रागादिक भाव होय तैसा नाम कहावै वहुरि जब द्रव्यक्षेत्र काल भावकी वाह्य अतरग सामग्रीका निमित्त करि अपना शुद्धस्वरूप शुद्धनिश्चयनयका विपय स्वरूप आपकूं

जानि श्रद्धान करै, अर कर्म संयोगकूं अर तिसके निमित्ततैं अपने भाव होय हैं तिनिका यथार्थ स्वरूप जानैं तब भेदज्ञान होय तब परभावनितैं विरक्त होय तब तिनिका मेटनेका उपाय सर्वज्ञके आगमतैं यथार्थ समझि ताकूं अंगीकार करै तब अपनें स्वभावमैं स्थिर होय अनंत चतुष्टय प्रगट होय सर्व कर्मका क्षय करि लोकके शिखर विराजे तब मुक्त भया कहावै ताकूं सिद्ध भी कहिये। ऐसैं जेती संसारकी अवस्था अर यह मुक्त अवस्था ऐसैं भेदरूप आत्माकूं निरूपे है सो भी व्यवहारनयका विषय है, याकूं अध्यात्म शास्त्रमैं अभूतार्थ असत्यार्थ नाम कहि करि वर्णन किया है जातैं शुद्ध आत्मामैं संयोगजनित अवस्था होय सो तौ असत्यार्थही है, किछू शुद्ध वस्तुका तौ यह स्वभाव नाहीं तातैं असत्यही है। बहुरि जो निमित्ततैं अवस्था भई सो भी आत्माहीका परिणाम है सो जो आत्माका परिणाम है सो आत्माहीमैं है तातैं कथंचित् याकूं सत्य भी कहिये परन्तु जेतैं भेदज्ञान नहीं होय तेतैंही यह दृष्टि है, भेदज्ञान भये जैसैं है तैसैं जानै है। बहुरि जे द्रव्यरूप पुद्गलकर्म हैं ते आत्मातैं न्यारे हैं ही तिनितैं शरीरादिका संयोग है सो आत्मातैं प्रगट ही भिन्न हैं, तिनिकूं आत्माके कहिये हैं सो यह व्यवहार प्रसिद्ध है ही, याकूं असत्यार्थ कहिये उपचार कहिये। इहां कर्मके संयोगजनित भाव हैं ते सर्व निमित्ताश्रित व्यवहारका विषय है अर उपदेश अपेक्षा याकूं प्रयोजनाश्रित भी कहिये ऐसैं निश्चय व्यवहारका संक्षेप है। तहां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकूं मोक्षमार्ग कह्या तहां ऐसैं समझना जो ये तीनूं एक आत्माहीके भाव हैं, ऐसैं तिनिका स्वरूप आत्माहीका अनुभव होय सो तौ निश्चय मोक्षमार्ग है तामैं भी जेतैं अनुभवकी साक्षात् पूर्णता नाहीं होय तेतैं एकदेशरूप होय ताकूं कथंचित् सर्वदेशरूप कहिकरि कहना सो तौ व्यवहार है अर एक देश नामकरि कहना सो निश्चय है। बहुरि दर्शन ज्ञान चारित्रकूं भेदरूप कहि मोक्षमार्ग कहिये तथा इनिके बाह्य परद्रव्य स्वरूप द्रव्य क्षेत्र काल भाव निमित्त हैं तिनिकूं दर्शन

ज्ञान चारित्र नाम करि कहिये सो व्यवहार है। देव गुरुशास्त्रकी श्रद्धाकूं सम्यग्दर्शन कहिये जीवादिक तत्वनिकी श्रद्धाकूं सम्यग्दर्शन कहिये। शास्त्रके ज्ञान कहिये जीवादिक पदार्थनिके ज्ञानकूं ज्ञान कहिये इत्यादि। तथा पन्च महाव्रत पन्च समिति तीन गुप्तिरूप प्रवृत्तिकूं चारित्र कहिये। तथा बारह प्रकार तपकूं तप कहिये। ऐसैं भेदरूप तथा परद्रव्यके आलंबनरूप प्रवृत्ति हैं ते सर्व अध्यात्मशास्त्र अपेक्षा व्यवहार नामकरि कहिये हैं जातै वस्तुका एकदेशकूं वस्तु कहनां सो भी व्यवहार है, अर परद्रव्यका आलंबनरूप प्रवृत्तिकू तिस वस्तुके नामकरि कहनां सो भी व्यवहार है। बहुरि अध्यात्मशास्त्रमैं ऐसै भी वर्णन है जो वस्तु अनंतधर्मरूप है सो सामान्य विशेषकरि तथा द्रव्यपर्यायकरि वर्णन कीजिये है तहां द्रव्यमात्र कहना तथा पर्यायमात्र कहनां सो व्यवहारका विषय है। बहुरि द्रव्यका भी तथा पर्यायका भी निषेध करि वचन अगोचर कहनां सो निश्चयनयका विषय है। बहुरि द्रव्यरूप है सो ही पर्याय रूप है ऐसै दोऊहीकूं प्रधान करि कहना सो प्रमाणका विषय है, याका उदाहरण ऐसा जैसैं जीवकू चैतन्य रूप नित्य एक अस्तिरूप इत्यादि अभेदमात्र कहना सो तौ द्रव्यार्थिकनयका विषय है, अर ज्ञानदर्शनरूप अनित्य अनेक नास्तित्वरूप इत्यादि भेदरूप कहनां सो पर्यायार्थिक नयका विषय है। अर दोऊ ही प्रकारकै प्रधानताका निषेधमात्र वचन अगोचर कहना सो निश्चयनयका विषय है। अर दोऊ ही प्रकारकूं प्रधान करि कहना प्रमाणका विषय है इत्यादि। ऐसैं निश्चय व्यवहारका सामान्य संक्षेप स्वरूप है ताकूं जानि जैसैं आगम अध्यात्म शास्त्रनिमैं विशेष करि वर्णन होय ताकूं सूक्ष्मदृष्टिकरि जानना जिनमत अनेकान्तस्वरूप स्याद्वाद है, अर नयनिकै आश्रय कथनी है तहां नयनिकै परस्पर विरोध है ताकू स्याद्वाद मेंटै है, ताका विरोधका तथा अविरोधका स्वरूप नीकै जाननां, सो यथार्थ तौ गुरु आम्नायहीतैं होय परन्तु गुरुका निमित्त इस कालमैं विरला होय गया तातैं अपना ज्ञानका बल चालैं जेतै विशेष समझिवो ही करनां किछु ज्ञानका लेश पाय उद्धत नही होना, अबार

इस कालमैं अल्पज्ञानी वहुत हैं यातै तिनितैं किछू अधिक अभ्यास करि तिनिमैं महन्त वणि उद्धत भये मद आवै तव ज्ञान थकित होय जाय अर विशेष समझनेकी अभिलाप नहीं रहै तब विपर्यय होय यद्वा तद्वा कहै तव अन्य जीवनिकै विपर्यय श्रद्धान होय तव आपके अपराधका प्रसग आवै; तातै शास्त्रकू समुद्र जानि अल्पज्ञरूप ही अपना भाव राखनां तातै विशेष समझनेंकी अभिलापा वनी रहै तातैं ज्ञानकी वृद्धि होय है, अर अल्पज्ञानीनिमैं वैठि महन्त वुद्धि राखै तव अपना पाया ज्ञान भी नष्ट होय है, ऐसैं जाननां; अर निश्चयव्यवहाररूप आगमकी कथनी समझि करि ताका श्रद्धान करि यथाशक्ति आचरण करनां इस कालमैं गुरुसप्रदायविनां महन्त नहीं वणनौ जिन आज्ञा नहीं लोपणीं। कई कहैं हैं—हम तौ परीक्षा करि जिनमतकूं मानैंगे ते वृथा वकैं हैं—स्वल्पवुद्धीका ज्ञान परीक्षा करने लायक नाहीं आज्ञाकू प्रधान राखि वणैं जेती परीक्षा करनेंमैं दोप नांही, केवल परीक्षाहीकू प्रधान राखनेंमैं जिनमततैं च्युत होय जाय तौ वड़ा दोष आवै तातैं जिनिकै अपने हित अहित पर दृष्टि है ते तौ ऐसैं जानौं। अर जिनिकूं अल्पज्ञानीनिमैं महंत वणि अपने मान लोभ वड़ाई विषय कपाय पोपनें होय तिनिकी कथा नाहीं, ते तौ जैसै अपने विपय कषाय पोपैंगे तैसें करैंगे तिनिकूं मोक्षमार्गका उपदेश लागै नांही, विपर्यस्तकूं काहेका उपदेश? ऐसैं जानना ॥ ६ ॥

आगैं कहै हैं जो सूत्रके अर्थ पदतै भ्रष्ट है ताकूं मिथ्यादृष्टि जाननां;—

सूत्तत्थपयविणट्ठो मिच्छादिट्ठी हु सो मुणेयव्वो ।
खेडे वि ण कायव्वं पाणिप्पत्तं सचेलस्स ॥ ७ ॥

सूत्रार्थपदविनष्टः मिथ्यादृष्टिः हि सः ज्ञातव्यः ।
खेलेऽपि न कर्त्तव्यं पाणिपात्रं सचेलस्य ॥ ७ ॥

अर्थ—जो सूत्रका अर्थ अर पद है विनष्ट जाकै ऐसा है सो प्रगट मिथ्यादृष्टी है याहीतैं जो सचेल है वस्त्रसहित है ताकूं 'खेडे वि' कहिये हास्य कुतूहलविषै भी पाणिपात्र कहिये हस्तरूपपात्रकरि आहारदान है सो नहीं करना।

भावार्थ—सूत्रविषैं मुनिका रूप नग्न दिगंबर कह्या है अर जो ऐसे सूत्रके अर्थ करि तथा अक्षररूप पद जाकै विनष्ट हैं तथा आप वस्त्र धारि मुनि कहावै है सो जिन आज्ञातैं भ्रष्ट भया प्रगट मिथ्यादृष्टी है यातैं वस्त्रसहितकूं हास्य कुतूहलकरि भी पाणिमात्र कहिये आहारदान नहीं करना। तथा ऐसा भी अर्थ होय है जो ऐसे मिथ्यादृष्टीकूं पाणि-पात्र आहार लेनां योग्य नाही ऐसा भेष हास्य कुतूहलकरि भी धारणां योग्य नांही, जो वस्त्रसहित रहना अर पाणिपात्र भोजन करनां ऐसैं तौ क्रीडामात्र भी नहीं करनां॥ ७॥

आगैं कहै है जो जिनसूत्रतैं भ्रष्ट है सो हरि हरादिकतुल्य है तौऊ मोक्ष नहीं पावै है;—

हरिहरतुल्लो वि णरो सग्गं गच्छेइ एइ भवकोडी।
तह वि ण पावइ सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो॥८॥

हरिहरतुल्योऽपि नरः स्वर्गं गच्छति एति भवकोटिः।
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः॥ ८॥

अर्थ—जे नर सूत्रका अर्थ पदतैं भ्रष्ट हैं सो हरि कहिये नारायण हर कहिये रुद्र इनि तुल्य भी होय अनेक ऋद्धिकरि युक्त होय तौहू सिद्धि कहिये मोक्ष ताकूं प्राप्त नहीं होय। जो कदाचित् दानपूजादिक करि पुण्य उपजाय स्वर्ग जाय तौहू तहांतैं चय करि कोट्यां भव लेय ससारहीमैं रहै है, ऐसैं जिनागममैं कह्या है।

---

१ पाणिपात्रे, ऐसा भी पाठ है।

भावार्थ—श्वेतांबरादिक ऐसैं कहैं हैं—जो गृहस्थ आदिक वस्त्रसहित हैं तिनिकै भी मोक्ष होय है ऐसैं सूत्रमैं कह्या है ताका इस गाथामैं निषेधका आशय है—जो हरिहरादिक बडी सामर्थ्यके धारक भी हैं तौऊ वस्त्रसहित तौ मोक्ष नाहीं पावैं हैं। श्वेतांवरा सूत्र कल्पित वनाये हैं तिनिमैं यह लिखी है सो प्रमाणभूत नांही है, ते श्वेतांबर जिन-सूत्रके अर्थ पदतैं च्युत भये हैं ऐसैं जानना ॥ ८ ॥

आगैं कहैं है—जो जिनसूत्र च्युत भये हैं ते स्वच्छंद भये प्रवर्त्तैं हैं ते मिथ्यादृष्टी हैं,—

उक्किट्ठसीहचरियं बहुपरियम्मो य गरुय भारो य।
जो विहरइ सच्छंदं पावं गच्छंदि होदि मिच्छत्त ॥९॥

उत्कृष्टसिंहचरितः बहुपरिकर्मा च गुरुभारश्च।
यः विहरति स्वच्छंदं पापं गच्छति भवति मिथ्यात्वम् ॥९॥

अर्थ—जो मुनि होय करि उत्कृष्ट सिंहवत् निर्भय भया आचरण करै बहुरि बहुत परिकर्म कहिये तपश्चरणादिक्रियाविशेषनिकरि युक्त है बहुरि गुरुके भार कहिये बड़ा पदस्थरूप है संघ नायक कहावै है अर जिनसूत्रतैं च्युत भया स्वच्छंद प्रवर्तै है तौ वह पापहीकूं प्राप्त होय है बहुरि मिथ्यात्वकूं प्राप्त होय है।

भावार्थ—जो धर्मकी नायकी लेकरि निर्भय होय तपश्चरणादिक करि बडा कहाय अपनां संप्रदाय चलावै है जिनसूत्रतैं च्युत होय स्वे-च्छाचारी प्रवर्त्तै है तौ सो पापी मिथ्यादृष्टी ही है ताका प्रसग भी श्रेष्ठ नांही ॥ ९ ॥

आगैं कहै है जो जिनसूत्रमैं ऐसा मोक्षमार्ग कह्या है,

णिच्चेलपाणिपत्तं उवइट्ठं परमजिणवरिंदेहिं।
एक्को वि मोक्खमग्गो सेसा य अमग्गया सव्वे ॥१०॥

निश्चेलपाणिपात्रं उपदिष्टं परमजिनवरेन्द्रैः ।
एकोऽपि मोक्षमार्गः शेषाश्च अमार्गाः सर्वे ॥ १० ॥

अर्थ—जो निश्चल कहिये वस्त्ररहित दिगम्बर मुद्रास्वरूप अर पाणिपात्र कहिये हाथ जाके पात्र ऐसा खड़ा रहि आहार करनां ऐसा एक अद्वितीय मोक्षमार्ग तीर्थंकर परमदेव जिनेन्द्रनैं उपदेश्या है, इस शिवाय अन्यरीति हैं ते सर्व अमार्ग हैं ।

भावार्थ—जे मृगचर्म वृक्षके वक्कल कपास पट्ट दुकूल रोमवस्त्र टाटके तृणके वस्त्र इत्यादिक राखि आपकूं मोक्षमार्गी मानैं हैं तथा इस कालमैं जिनसूत्रतैं च्युत भये हैं तिननैं अपनी इच्छातैं अनेक भेष चलाये हैं केई श्वेत वस्त्र राखैं हैं केई रक्तवस्त्र केई पीलेवस्त्र केई टाटके वस्त्र केई घासके वस्त्र केई रोमके वस्त्र इत्यादिक राखै हैं तिनिकै मोक्षमार्ग नांही जातैं जिनसूत्रमैं तौ एक नग्न दिगम्बर स्वरूप पाणिपात्र भोजन करनां ऐसा मोक्ष मार्ग कह्या है, अन्य सर्व भेष मोक्षमार्ग नहीं अर जे मानैं हैं ते मिथ्यादृष्टी है ॥ १० ॥

आगैं दिगम्बर मोक्षमार्गकी प्रवृत्ति कहै हैं;

जो संजमेसु सहिओ आरंभपरिग्गहेसु विरओ वि ।
सो होइ वंदणीओ ससुरासुरमाणुसे लोए ॥ ११ ॥

यः संयमेषु सहितः आरंभपरिग्रहेषु विरतः अपि ।
सः भवति वंदनीयः ससुरासुरमानुषे लोके ॥११॥

अर्थ—जो दिगम्बर मुद्राका धारक मुनि इन्द्रिय मनका वश करनां छह कायके जीवनिकी दया करनां ऐसैं संयम करि तौ सहित होय बहुरि आरम्भ कहिये गृहस्थके जेते आरंभ हैं तिनतैं अर बाह्य अभ्यन्तर परि-

ग्रहतैं विरक्त होय तिनिमैं नही प्रवर्तें तथा आदि शब्द करि ब्रह्मचर्य आदि करि युक्त होय सो देव दानव करि सहित मनुष्यलोक विषैं वंदने योग्य है अन्य भेषी परिग्रह आरंभादि करि युक्त पाखडी वंदिवे योग्य नांही है ॥ ११ ॥

आगैं फेरि तिनिकी प्रवृत्तिका विशेष कहै है;—

जे बावीसपरीसह सहंति सत्तीसएहिं संजुत्ता।
ते होंदि[1] वंदणीया कम्मक्खयणिज्जरासाहू ॥१२॥

ये द्वाविंशतिपरीषहान् सहंते शक्तिशतैः संयुक्ताः।
ते भवंति वंदनीयाः कर्मक्षयनिर्जरासाधवः ॥१२॥

अर्थ—जे साधु मुनि अपनी शक्तिके सैंकडानिकरि युक्त भये संते क्षुधा तृषादिक बाईस परीषहनिकूं सहैं हैं ते साधु वंदनेयोग्य हैं, कैसे हैं ते—कर्मनिका क्षयरूप तिनिकी निर्जरा ताविषैं प्रवीण हैं ॥

भावार्थ—जे बड़ी शक्तिके धारक साधु हैं ते परीषहनिकूं सहैं हैं परीषह आये अपने पदतैं च्युत नांही होय हैं तिनिकैं कर्मनिकी निर्जरा होय है ते वदने योग्य हैं ॥ १२ ॥

आगै कहै है जो दिगम्बरमुद्रा सिवाय कोई वस्त्र धारे सम्यग्दर्शन ज्ञानकरि युक्त होय ते इच्छाकार करनें योग्य हैं,—

अवसेसा जे लिंगी दंसणणाणेणसम्म संजुत्ता।
चेलेण य परिगहिया ते भणिया इच्छणिज्जाय ॥

---

१ 'होंति' षट्पाहुडमें ऐसा है।

अवशेषा ये लिंगिनः दर्शनज्ञानेन सम्यक् संयुक्ता।
चेलेन च परिगृहीताः ते भणिता इच्छाकारयोग्याः ॥१३॥

अर्थ—दिगंबर मुद्रासिवाय अवशेष जे लिंगी हैं भेषकरि सयुक्त अर सम्यक्त्वसहित दर्शन ज्ञान करि संयुक्त हैं अर वस्त्र करि परिगृहीत हैं वस्त्र धारैं है ते इच्छाकार करने योग्य हैं॥

भावार्थ—जे सम्यग्दर्शन ज्ञान करि संयुक्त है अर उत्कृष्ट श्रावकका भेष धारैं है एक वस्त्रमात्र परिग्रह राखैं हैं सो इच्छाकार करने योग्य हैं तातैं "इच्छामि" ऐसा कहिये है। ताका अर्थ—जो मैं तुमकूं इच्छूं हू चाहूहूं ऐसा 'इच्छामि' शब्दका अर्थ है। ऐसैं इच्छाकार करना जिनसूत्रमैं कह्या है॥ १३॥

आगैं इच्छाकार योग्य श्रावकका स्वरूप कहैं हैं;—

इच्छायारमहत्थं सुत्तठिणो जो हु छंडए कम्मं।
ठाणे ट्ठियसम्मत्तं परलोयसुहंकरो होइ ॥ १४॥

इच्छाकारमहार्थं सूत्रस्थितः यः स्फुटं त्यजति कर्म।
स्थाने स्थितसम्यक्त्वः परलोकसुखंकरः भवति ॥१४॥

अर्थ—जो पुरुष जिनसूत्रविषैं तिष्ठता संता इच्छाकार शब्दका महान प्रधान अर्थ है ताहि जानै है बहुरि स्थान जो श्रावकके भेदरूप प्रतिमा तिनिमैं तिष्ठथा सम्यक्त्वसहित वर्त्तता आरंभ आदि कर्मनिकूं छोड़ै है सो परलोकविषैं सुख करनेवाला होय है॥

भावार्थ—उत्कृष्ट श्रावककू इच्छाकार करिये है सो इच्छाकारका जो प्रधान अर्थ है ताकूं जानै है अर सूत्र अनुसार सम्यक्त्वसहित

आरंभादिक छोडि उत्कृष्ट श्रावक होय सो परलोकविषै स्वर्गका सुख पावै है ॥ १४ ॥

आगैं कहैं हैं जो इच्छाकारका प्रधान अर्थकूं नाहीं जानै है अर अन्यधर्मका आचरण करै है सो सिद्धिकूं नाहीं पावै है,—

अह पुण अप्पा णिच्छदि धम्माइं करेइ णिरवसेसाइं।
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो।१५।

अथ पुनः आत्मानं नेच्छति धर्मान् करोति निरवशेषान् ।
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः ॥१५॥

अर्थ—'अथ पुन' शब्दका ऐसा अर्थ जो—पहली गाथामैं कह्या था जो इच्छाकारका प्रधान अर्थ जानै सो आचरण करि स्वर्गसुख पावै, सो अब फेरि कहै है जो—इच्छाकारका प्रधान अर्थ आत्माका चाहनां है अपने स्वरूपविषैं रुचि करना है सो याकूं जो नाही इष्ट करै है अर अन्य धमके समस्त आचरण करै है तौऊ सिद्धि कहिये मोक्षकूं नही पावै है बहुरि ताकूं संसारविषैं ही तिष्ठनेवाला कह्या है ॥

भावार्थ—इच्छाकारका प्रधान अर्थ आपका चाहना है सो जाकै अपने स्वरूपकी रुचिरूप सम्यक्त्व नांही ताकै सर्व मुनि श्रावकके—आचरणरूप प्रवृत्ति मोक्षका कारण नाही ॥ १५ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ़करि उपदेश करै है—

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण ।
जेण य लहेइ मोक्खं तं जाणिज्जइ पयत्तेण ॥ १६ ॥

एतेन कारणेन च तं आत्मानं श्रद्धत्त त्रिविधेन ।
येन च लभध्वं मोक्षं तं जानीत प्रयत्नेन ॥ १६ ॥

आगैं कहै है अल्पपरिग्रह ग्रहण करै तामैं दोष कहा ? ताकूं दोष दिखावै है.—

जहजायरूवसरिसो तिलतुसमित्तं ण गिहदि हत्तेसु ।
जइ लेइ अप्पबहुय तत्तो पुण जाइ णिग्गोदम् ॥१८॥

यथाजातरूपसदृशः तिलतुषमात्रं न गृह्णाति हस्तयोः ।
यदि लाति अल्पबहुकं ततः पुनः याति निगोदम् ॥१८॥

अर्थ—मुनि है सो यथाजातरूप है जैसैं जन्मता बालक नग्नरूप होय है तैसा नग्नरूप दिगंबर मुद्राका धारक है सो अपने हाथविषैं तिलके तुषमात्र भी किछू ग्रहण नहीं करै है, बहुरि जो किछू अल्प बहुत लेवै ग्रहण करै तौ वो मुनि ग्रहण करनेंतैं निगोदमैं जाय है ।

भावार्थ—मुनि यथाजातरूप दिगंबर निर्ग्रंथकूं कहैं है सो ऐसा होय करि भी किछू परिग्रह राखै तौ जानिये इनिकै जिनसूत्रकी श्रद्धा नाहीं मिथ्यादृष्टी है यातैं मिथ्यात्वका फल निगोदही है, कदाचित् किछू तपश्च-रणादिक करै तौ ताकरि शुभकर्म बांधि स्वर्गादिक पावै तौ भी फेरि एकेंद्रिय होय संसार ही मैं भ्रमण करै है ।

इहां प्रश्न—जो, मुनिकै शरीर है आहार करै है कमंडलु पीछी पुस्तक राखै है, इहां तिल तुषमात्र भी राखनां न कह्या, सो कैसैं ?

ताका समाधान–जो, मिथ्यात्वसहित रागभावसूं अपणाय अपना विषय कषाय पोषनेकूं राखै ताकूं परिग्रह कहिये है तिस निमित्त किछू अल्प बहुत राखना निषेध्या है अर केवल संयमके निमित्तका तौ सर्वथा निषेध नाहीं । शरीर है सो तौ आयुपर्यन्त छोड्या छूटै नांही याका तौ ममत्वही छूटै सो निषेध्या ही है । बहुरि जेतैं शरीर है तेतैं आहार नहीं करै तौ सामर्थ्यही नहीं होय तब संयम नहीं सधै तातैं किछू योग्य

आहार विधिपूर्वक शरीरसू रागरहित भये संते लेकरि शरीरकूं खड़ा राखि सयम साधै है। बहुरि कमंडलु वाह्य शौचका उपकरण है जो नहीं राखै तौ मलसूत्रकी अशुचिताकरि पंच परमेष्ठीकी भक्ति वंदना कैसैं करै अर लोकनिंद्य होय। बहुरि पीछी दयाका उपकरण है जो नहीं राखै तौ जीवनिसहित भूमि आदिकी प्रति लेखना काहेतैं करै। बहुरि पुस्तक है सो ज्ञानका उपकरण है जो नहीं राखै तो पठन पाठन कैसे होय। बहुरि इनि उपकरणनिका राखनां भी ममत्वपूर्वक नांही है तिनितैं रागभाव नाहीं है। बहुरि आहार विहार पठन पाठनकी क्रिया-युक्त जेतैं रहै तेतैं केवलज्ञान भी नांही उपजै है तिनि सर्व क्रियानिकूं छोड़ि शरीर का भी सर्वथा ममत्व छोडि ध्यान अवस्था लेकरि तिष्ठै अपनां स्वरूपमैं लीन होय तब परम निर्ग्रंथ अवस्था होय है तब श्रेणीकूं प्राप्त भये मुनिराजकैं केवलज्ञान उपजै है अन्य क्रियासहित होय तेतैं केवलज्ञान नाही उपजै है ऐसा निर्ग्रंथपणां मोक्षमार्ग जिन-सूत्रमैं कह्या है।

श्वेतांबर कहै है जो भवथिति पूरी भये सर्व अवस्थामैं केवल-ज्ञान उपजै है सो यह कहना मिथ्या है, जिनसूत्रका यह वचन नांही तिनि श्वेतांबरनिनैं कल्पित सूत्र बनाये हैं तिनिमैं लिखी होगी। बहुरि इहां श्वेतांबर कहै जो तुमनै कह्या सो तौ उत्सर्गमार्ग है, बहुरि अप-वादमार्गमैं वस्त्रादिक उपकरण राखनां कह्या है जैसैं तुम धर्मोपकरण कहे तैसैंही वस्त्रादिक भी धर्मोपकरण हैं जैसैं क्षुधाकी बाधा आहारतै मेटि संयम साधिये है तैसैं ही शीत आदिकी बाधा वस्त्र आदितै मेटि सयम साधिये यामैं विशेष कहा? ताकूं कहिये जो यामैं तौ बडे दोष आवै हैं, तथा कोई कहै कामविकार उपजै तब स्त्रीसेवन करै तौ यामैं कहा विशेष? सो ऐसैं कहनां युक्त नाही। क्षुधाकी बाधा तौ आहारतैं मेटनां युक्त है आहारविना देह अशक्त होय है तथा छूटि जाय तौ अपघातका दोष आवै, अर शीत आदिकी बाधा तौ अल्प है सो यह

तौ ज्ञानाभ्यास आदिके साधनेतैं ही मिटि जाय है। अपवादमार्ग कह्या सो जामैं मुनिपद रहै ऐसी क्रिया करना तो अपवादमार्ग है अर जिस परिग्रहतैं तथा जिस क्रियातैं मुनिपद भ्रष्ट होय गृहस्थवत हो जाय सो तौ अपवादमार्ग है नाही। दिगंबर मुद्रा धारि कमंडलु पीछी सहित आहार विहार उपदेशादिकमैं प्रवर्त्तै सो अपवादमार्ग है अर सर्व प्रवृत्तिकूं छोडि ध्यानस्थ होय शुद्धोपयोगमैं लीन होय सो उत्सर्गमार्ग कह्या है। ऐसा मुनिपद आपतैं सधता न जानि काहेकूं शिथिलाचार पोषणा, मुनिपदकी सामर्थ्य न होय-तौ श्रावकधर्म ही पालनो परंपराकरि याहीतैं सिद्धि होयगी। जिनसूत्रकी यथार्थ श्रद्धा राखे सिद्धि है या विना अन्य क्रिया सर्व ही ससारमार्ग है मोक्षमार्ग नाही, ऐसैं जाननां ॥ १८ ॥

आगैं इस ही का समर्थन करै हैं,—

जस्स परिग्गहगहणं अप्पं बहुयं च हवइ लिंगस्स।
सो गरहिउ जिणवयणे परिगहरहिओ निरायारो ॥१९॥

यस्य परिग्रहग्रहणं अल्पं बहुकं च भवति लिंगस्य।
सः गर्ह्यः जिनवचने परिग्रहरहितः निरागारः ॥ १९ ॥

अर्थ—जाके मतमैं लिंग जो भेष ताके परिग्रहका अल्प तथा बहुत ग्रहणपणा कह्या है सो मत तथा तिसका श्रद्धावान पुरुष गर्हित है निंदायोग्य है जातैं जिनवचनविषैं परिग्रह रहित है सो निरागार है निर्दोप मुनि है, ऐसैं कह्या है॥

भावार्थ—श्वेतांबरादिकके कल्पित सूत्रनिमैं भेषमैं अल्प बहुत परिग्रहका ग्रहण कह्या है सो सिद्धान्त तथा ताके श्रद्धानी निंद्य हैं। जिनवचनविषै परिग्रह रहितकू ही निर्दोप मुनि कह्या है ॥ १९ ॥

आगै कहै हैं जिनवचनविषैं ऐसा मुनि वंदने योग्य कह्या है;—

पंचमहव्वयजुत्तो तिहि गुत्तिहि जो स संजदो होइ।
णिग्गंथमोक्खमग्गो सो होदि हु वंदणिज्जो य ॥२०॥

पंचमहाव्रतयुक्तःतिसृभिः गुप्तिभिः यः स संयतो भवति।
निर्ग्रंथमोक्षमार्गः स भवति हि वन्दनीयः च ॥२०॥

अर्थ—जो मुनि पंच महाव्रतकरि युक्त होय अर तीन गुप्तिकरि संयुक्त होय सो संयत है संयमवान है बहुरि निर्ग्रंथ मोक्षमार्ग है बहुरि सो ही प्रगटपणें निश्चयकरि वदने योग्य है ॥

भावार्थ—अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य अर अपरिग्रह इनि पांच महाव्रतनि करि सहित होय बहुरि मन वचन कायरूप तीन गुप्तिनि करि सहित होय सो संयमी है सो निर्ग्रंथ स्वरूप है सो ही वदने योग्य है। जो कछू अल्प बहुत परिग्रह राखै सो महाव्रती संयमी नाही यह मोक्षमार्ग नाही अर गृहस्थवत भी नांही है ॥ २० ॥

आगैं कहै है जो पूर्वोक्त तो एक भेष मुनिका कह्या, अब दूसरा भेद उत्कृष्ट श्रावकका ऐसा कह्या है:—

दुइयं च उत्त लिंगं उक्किट्ठं अवरसावयाणं च।
भिक्खं भमेइ पत्ते समिदीभासेण मोणेण ॥ २१ ॥

द्वितीयं चोक्तं लिंगं उत्कृष्टं अवरश्रावकाणां च।
भिक्षां भ्रमति पात्रे समितिभाषया मौनेन ॥ २१ ॥

अर्थ—द्वितीय कहिये दूसरा लिंग कहिये भेष उत्कृष्ट श्रावक कहिये जो गृहस्थ नांही ऐसा उत्कृष्ट श्रावक ताका कह्या है सो उत्कृष्ट श्रावक ग्यारमीं प्रतिमाका धारक है सो भ्रमकरि भिक्षा करि भोजन करै,बहुरि पत्ते कहिये

पात्रमैं भोजन करै तथा हाथमैं करै बहुरि समितिरूप प्रवर्त्तता भाषा-समितिरूप बोलै अथवा मौनकरि प्रवर्त्तै ॥

भावार्थ—एक तौ मुनिका यथाजातरूप कह्या बहुरि दूसरा यह उत्कृष्ट श्रावकका कह्या सो ग्यारमीं प्रतिमाका धारक उत्कृष्ट श्रावक है सो एक वस्त्र तथा कोपीन मात्र धारे है बहुरि भिक्षा भोजन करै है बहुरि पात्रमैं भी भोजन करै करपात्रमैं भी करै बहुरि समितिरूप वचन भी कहै अथवा मौन भी राखै ऐसा दूसरा भेष है ॥ २१ ॥

आगैं तीसरा लिंग स्त्रीका कहै है,-

लिंगं इत्थीण हवदि भुंजइ पिंडं सुएयकालम्मि ।
अज्जिय वि एकवत्था वत्थावरणेण भुंजेइ ॥ २२ ॥

लिंगं स्त्रीणां भवति भुंक्ते पिंडं स्वेककाले ।
आर्या अपि एकवस्त्रा वस्त्रावरणेन भुंक्ते ॥ २३ ॥

अर्थ—लिंग है सो स्त्रीनिका ऐसा है-एक कालविषैं तौ भोजन करै वारवार भोजन नहीं करै बहुरि आर्यिका भी होय तौ एकवस्त्र धारै बहुरि भोजन करतैं भी वस्त्रके आवरणसहित करै नग्न नहीं होय।

भावार्थ—स्त्री आर्यिका भी होय अर क्षुल्लका भी होय सो दोऊ ही भोजनतौ दिनमैं एकवारही करै आर्यिका होय सो एक वस्त्र धारैंही भोजन करै नग्न नहीं होय। ऐसा तीसरा स्त्रीका लिंग है ॥ २२ ॥

आगैं कहैहै-वस्त्रधारकके मोक्ष नांही; मोक्षमार्ग नग्नपणाही है,-

णवि सिज्झइ वत्थधरो जिणसासण जइ वि होइ तित्थयरो।
णग्गो विमोक्खमग्गो सेसा उम्मग्गया सव्वे ॥२३॥

नापि सिध्यति वस्त्रधरः जिनशासने यद्यपि भवति तीर्थङ्करः।
नग्नः विमोक्षमार्गः शेषा उन्मार्गकाः सर्वे ॥ २३ ॥

अर्थ—जिनशासनविषैं ऐसा कहा है जो वस्त्रका धरनेवाला सीझै नांही मोक्ष नाही पावै है जो तीर्थंकरभी होय तो जेतैं गृहस्थ रहै तेतैं मोक्ष न पावै, दीक्षा लेय दिगंबर रूप धारै तब मोक्ष पावै जातैं नग्नपणा है सो ही मोक्षमार्ग है अन्य शेष कहिये बाकी सर्व लिंग उन्मार्ग हैं ॥२३॥

भावार्थ—श्वेतांबर आदि वस्त्रधारीकैंभी मोक्ष होना कहै हैं सो मिथ्या है यह जिनमत नाही ॥ २३ ॥

आगैं स्त्रीनिकूं दीक्षा नाही ताका कारण कहै हैं;—

लिंगम्मि य इत्थीणं थणंतरे णाहिकक्खदेसेसु।
भणिओ सुहमो काओ तासिं कह होइ पव्वज्जा ॥

लिंगे च स्त्रीणां स्तनांतरे नाभिकक्षदेशेषु।
भणितः सूक्ष्मः कायः तासां कथं भवति प्रव्रज्या ॥२४॥

अर्थ—स्त्रीनिके लिंग कहिये योनि ता विषैं स्तनांतर कहिये दोऊ कुचनिके मध्यप्रदेशविषैं तथा कक्ष कहिये दोऊ कांखनिविषैं नाभि-विषैं सूक्ष्मकाय कहिये दृष्टिके अगोचर जीव कहे हैं सो ऐसी स्त्रीनिकै प्रव्रज्या कहिये दीक्षा कैसे होय ॥

भावार्थ—स्त्रीनिकै योनि स्तन कांख नाभि[1] विषैं पचेंद्रियजीवनिकी उत्पत्ति निरंतर कही है तिनिकै महाव्रतरूप दीक्षा कैसैं होय। बहुरि महाव्रत कहे हैं सो उपचार करि कहे हैं परमार्थ नाही, स्त्री आपना साम-

(१) लिखित वचनिका प्रतियोंमें अर्थ और भावार्थ दोनोंही स्थानोंमें 'नाभि' का जिक्र नहीं किया है सो गाथाके अनुसार होना युक्त समझ लिखा है।

र्थकी हदकूं पहुंचि व्रत धरै है तिस अपेक्षा उपचारतैं महाव्रत कहे है ॥ २४ ॥

आगै कहे है जो स्त्री भी दर्शनकरि शुद्ध होय तौ पापरहित है भली है।

जइ दंसणेण सुद्धा उत्ता मग्गेण सावि संजुत्ता।
घोरं चरिय चरित्तं इत्थीसु ण पावया भणिया ॥२५॥

यदि दर्शनेन शुद्धा उक्ता मार्गेण सापि संयुक्ता।
घोरं चरित्वा चरित्रं स्त्रीषु न पापका भणिता ॥ २५ ॥

अर्थ—स्त्रीनि विषैं जो स्त्री, दर्शन कहिये यथार्थ जिनमतकी श्रद्धा करि शुद्ध है सो भी मार्गकरि संयुक्त कही है जो घोर चारित्र तीव्र तपश्चरणादिक आचरणकरि पापतैं रहित होय हैं तातैं पापयुक्त न कहिये ॥

भावार्थ—स्त्रीनि विषैं जो स्त्री सम्यक्त्वकरि सहित होय अर तपश्चरण करै तौ पापरहित होय स्वर्गकूं प्राप्त होय है तातै प्रशंसायोग्य है अर स्त्रीपर्यायतैं मोक्ष नाहीं ॥ २५ ॥

आगैं कहै है जो स्त्रीनिकै ध्यानकी सिद्धि भी नांही है—

चित्तासोहि ण तेसिं ढिल्लं भावं तहा सहावेण।
विज्जदि मासा तेसिं इत्थीसु ण संकया झाणा ॥२६॥

चित्ताशोधि न तेषां शिथिलः भावः तथा स्वभावेन।
विद्यते मासा तेषां स्त्रीषु न शंकया ध्यानम् ॥ २६ ॥

---

(१) मुद्रित संस्कृत सटीक प्रतिमें इस पदकी संस्कृत 'प्रव्रज्या' की है। श्रीयुत सागर सूरिने भी 'प्रव्रज्या' ही लिखी है।

अर्थ—तिनि स्त्रीनिकै चित्तकी शुद्धिता नाही है तैसै ही स्वभावही करि तिनि के ढीला भाव है शिथिल परिणाम है बहुरि, तिनि के मासा कहिये मासमासमैं रुधिरका स्राव विद्यमान है ताकी शंका रहै है ताकरि स्त्रीनिविषैं ध्यान नांही है॥

भावार्थ—ध्यान होय है सो चित्त शुद्ध होय दृढ परिणाम होय काहू तरहकी शंका न होय तब होय है सो स्त्रीनिकै तीनूंही कारण नाहीं तब ध्यान कैसैं होय अर ध्यान विना केवलज्ञान कैसैं उपजै अर केवलज्ञान विना मोक्ष नाही, श्वेताम्बरादिक मोक्ष कहैं हैं सो मिथ्या है॥ २६॥

आगैं सूत्रपाहुडकूं समाप्त करै है सो सामान्यकरि सुखका कारण कहै है;—

गाहेण अप्पगाहा समुद्दसलिले सचेलअत्थेण।
इच्छा जाहु णियत्ता ताह णियत्ताइं सव्वदुक्खाइं॥२७॥
ग्राह्येण अल्पग्राह्याः समुद्रसलिले स्वचेलार्थेन।
इच्छा येभ्यः निवृत्ताः तेषां निवृत्तानि सर्वदुःखानि।

अर्थ—जो मुनि ग्राह्य कहिये ग्रहण करनेयोग्य वस्तु आहार आदिक तिनिकरि तौ अल्पग्राह्य हैं थोरा ग्रहण करैं है जैसैं कोऊ पुरुष बहुत जलतैं भर्या जो समुद्र ता विषै अपने वस्त्रके प्रक्षालनेकूं वस्त्रके धोवने मात्र जल ग्रहण करै तैसै बहुरि जिनि मुनिनिकै इच्छा निवृत्त भई तिनि कै सर्व दुःख निवृत्त भये॥

भावार्थ—जगतमैं यह प्रसिद्ध है जो जिनकैं संतोष है ते सुखी हैं इस न्यायकरि यह सिद्ध भया जो मुनिनिकै इच्छाकी निवृत्ति भई है तिनिकै संसारके विषयसंबंधी इच्छा किंचित्मात्र भी नांही है देहतैं भी विरक्त हैं तातैं परम संतोषी हैं, अर आहारादि किछूं ग्रहण योग्य है तिनिमैं भी अल्पकूं ग्रहण करै है तातैं ते परमसंतोषी हैं ते परम सुखी

हैं, यह जिनसूत्रके श्रद्धानका फल है अन्यसूत्रमैं यथार्थ निवृत्तिका प्ररूपण नांही तातैं कल्याणके सुखके अर्थनिकूं जिनसूत्रका सेवन निरतर करनां योग्य है ॥ २७ ॥

ऐसैं सूत्रपाहुड़कूं पूर्ण किया ।

❀ छप्पय ❀

जिनवर की ध्वनि मेघध्वानसम मुखतै गरजै
गणधरके श्रुति भूमि वरपि अक्षर पद सरजै ।
सकल तत्व परकास करै जगताप निवारै
हेय अहेय विधान लोक नीकै मन धारै ॥
विधि पुण्यपाप अरु लोककी मुनि श्रावक आचरन फुनि ।
करि स्वपर भेद निर्णय सकल कर्म नाशि शिव लहत मुनि ॥१॥

❀ दोहा ❀

वर्द्धमान जिनके वचन वरतैं पंचमकाल ।
भव्य पाय शिवमग लहै नमूं तास गुणमाल ॥२॥

इति पं० जयचन्द्रछाबड़ाकृत देशभाषावचनिका सहित श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित सूत्रपाहुड समाप्त ॥ २ ॥

॥ श्री ॥

अथ चारित्रपाहुड

दोहा।

वीतराग सर्वज्ञ जिन वंदूं मन वच काय।
चारित धर्म बखानियो सांचो मोक्षउपाय ॥ १ ॥
कुन्दकुन्दमुनिराजकृत चारितपाहुड ग्रंथ।
प्राकृत गाथाबंधकी करूं वचनिका पंथ ॥ २ ॥

ऐसें मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करि अब अथ चारित्रपाहुड प्राकृत गाथाबंधकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है;—तहां श्री कुन्दकुन्द आचार्य प्रथम ही मंगलकै अर्थि इष्टदेवकूं नमस्कार करि चारित्रपाहुडकी कहनेकी प्रतिज्ञा करैं हैं;—

सव्वण्हु सव्वदंसी णिम्मोहा वीयराय परमेट्ठी।
वंदित्तु तिजगवंदा अरहंता भव्वजीवेहिं ॥ १ ॥
णाणं दंसण सम्मं चारित्तं सोहिकारणं तेसिं
मुक्खाराहणहेउं चारित्तं पाहुडं वोच्छे ॥२॥ युग्मम्।

सर्वज्ञान् सर्वदर्शिनः निर्मोहान् वीतरागान् परमेष्ठिनः ।
वंदित्वा त्रिजगद्वंदितान् अर्हतः भव्यजीवैः ॥ १ ॥
ज्ञानं दर्शनं सम्यक् चारित्रं शुद्धिकारणं तेषाम् ।
मोक्षाराधनहेतुं चारित्रं प्राभृतं वक्ष्ये ॥ २ ॥ युग्मम् ॥

अर्थ–आचार्य कहैहै जो मैं अरहंत परमेष्ठीकूं वंदिकरि चारित्रपाहुड है ताहि कहूंगा, कैसे हैं अरहंत परमेष्ठी–अरहंत ऐसा प्राकृत अक्षर अपेक्षा तौ ऐसा अर्थ–अकार आदि अक्षर करि तौ अरि ऐसा तौ मोहकर्म, बहुरि रकार आदि अक्षर अपेक्षा रज ऐसा ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्म बहुरि तिसही रकारकरि रहस्य ऐसा अंतराय कर्म ऐसे च्यार घातिकर्म तिनिकूं हत कहिए हनना घातना जाकै भया ऐसा अरहत है। बहुरि सस्कृत अपेक्षा 'अर्ह' ऐसा पूजा अर्थ विषैं धातु है त का 'अर्हत्' ऐसा निपजै तब पूजायोग्य होय ताकू अर्हत् कहिये सो भव्यजीवनिकरि पूज्य है। बहुरि परमेष्ठी कहनेतै परम कहिये उत्कृष्ट इष्ट- कहिये पूज्य होय सो परमेष्ठी कहिये, अथवा परम जो उत्कृष्ट पद ताविषैं तिष्ठै ऐसा होय सो परमेष्ठी। ऐसा इन्द्रादिकरि पूज्य अरहत परमेष्ठी है। बहुरि कैसे हैं सर्वज्ञ हैं सर्वलोकालोकस्वरूप चराचर पदार्थनिकू प्रत्यक्ष जानैं सो सर्वज्ञ है। बहुरि कैसे हैं–सर्वदर्शी कहिये सर्व पदार्थनिके देखनेवाले हैं। बहुरि कैसे हैं निर्मोह हैं मोहनीयनामा कर्मकी प्रधान प्रकृति मिथ्यात्व है ताकरि रहित हैं। बहुरि कैसे हैं–वीतराग हैं विशेषकरि जाकै राग दूरभया होय सो वीतराग, सो जिनकै चारित्र मोहकर्मका उदयतैं होय ऐसा रागद्वेषभी नांही है। बहुरि कैसे हैं–त्रिजगद्वंद्य हैं तीन जगतके प्राणी तथा तिनिके स्वामी इन्द्र धरणेन्द्र चक्रवर्ती तिनिकरि वंदिवे योग्य हैं। ऐसै अरहत पदकूं विशेष्यकरि अन्य पद विशेपण करि अर्थ किया है। बहुरि सर्वज्ञ पदकूं विशेष्यकरि अन्यपद विशेषण करिये ऐसै भी अर्थ होय है तहा अरहंत भव्यजीवनिकरि पूज्य हैं ऐसा विशेषण होय है। बहुरि चारित्र

अर्थ--ये ज्ञान आदिक तीन भाव कहे ते अक्षय अर अनन्त जीवके भाव हैं, इनिके सोधनेंके अर्थि जिनदेव दोय प्रकार चारित्र कह्या है ॥

भावार्थ--जाननां देखनां आचरण करनां ये तीन भाव जीवके अक्षयानंत हैं, अक्षय कहिये जाका नाश नहीं, अमेय कहिये अनंत जाका पार नांही, सर्व लोकालोककूं जाननेंवाला ज्ञान है ऐसाही दर्शन है ऐसाही चरित्र है तथापि घातिकर्मके निमित्ततैं अशुद्ध हैं ज्ञान दर्शन चारित्ररूप हैं तातैं श्री जिनदेव तिनिके शुद्ध करनेंकूं इनिका चारित्र आचरण करना दोय प्रकार कह्या है ॥ ४ ॥

आगैं दोय प्रकार कह्या सो कहैं हैं:—

जिणणाणदिट्ठिसुद्धं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं ।
बिदियं संजमचरणं जिणणाणसदेसियं तं पि ॥ ५ ॥

जिनज्ञानदृष्टिशुद्धं प्रथमं सम्यक्त्वचरणचारित्रम् ।
द्वितीयं संयमचरणं जिनज्ञानसंदेशितं तदपि ॥ ५ ॥

अर्थ--प्रथम तौ सम्यक्त्वका आचरणस्वरूप चारित्र है सो कैसा है--जिनदेवका ज्ञान दर्शन श्रद्धान ताकरि किया हुवा शुद्ध है, बहुरि दूसरा संयमका आचरणस्वरूप चारित्र है सो भी जिनदेवका ज्ञान करि दिखाया हुवा शुद्ध है ॥

भावार्थ:-चारित्र दोय प्रकार कह्या तहां प्रथम तौ सम्यक्त्वका आचरण कह्या सो जो सर्वज्ञका आगममैं तत्वार्थका स्वरूप कह्या ताकूं यथार्थ जानि श्रद्धान करनां अर ताके शकादि अतीचार मल दोष कहे तिनिका परिहार करि शुद्ध करनां अर ताके निःशंकितादि गुणनिका प्रगट होना सो सम्यक्त्वचरणचारित्र है, बहुरि जो महाव्रत आदि अंगीकार करि सर्वज्ञके आगममैं कह्या तैसा संयमका आचरण करना अर ताके अतीचार

आदि दोषनिका दूरि करना सो सम्यक्त्वाचरण चारित्र है, ऐसें संक्षेपकरि स्वरूप कह्या ॥ ५ ॥

आगैं सम्यक्त्वाचरण चारित्रके मल दोषनिका परिहार करि आचरण करना ऐसैं कहै है —

एवं चिय णाऊण य सव्वे मिच्छत्तदोस संकाइ ।
परिहरि सम्मत्तमला जिणभणिया तिविहजोएण ॥ ६ ॥

एवं चैव ज्ञात्वा च सर्वान् मिथ्यात्वदोषान् शंकादीन् ।
परिहर सम्यक्त्वमलान् जिनभणितान् त्रिविधयोगेन ॥ ६ ॥

अर्थ—ऐसें पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वाचरण चारित्रकूं जानि अर मिथ्यात्व कर्मके उदयतैं भये जे शंकादिक दोष ते सम्यक्त्वकूं अशुद्ध करनेवाले मल हैं ते जिनदेवनैं कहे हैं तिनिकूं मन वचन कायकरि भये जे तीन प्रकार योग तिनिकरि छोडनैं ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वका चरण चरित्र शंकादिदोष सम्यक्त्वके मल हैं तिनिकूं त्यागै शुद्ध होय है यातैं तिनिका त्याग करनेका उपदेश जिनदेवनैं किया है। ते दोष कहा? सो कहिये हैः—जो जिनवचन विषै वस्तुका स्वरूप कह्या ताविषैं संशय करना सो तौ शंका है, याके होतैं सप्तभयके निमित्ततैं स्वरूपतैं चिगि जाय सो भी शंका है। बहुरि भोगनिका अभिलाष सो कांक्षा है याके होतैं भोगनिकै अर्थि स्वरूपतैं भ्रष्ट होय है। बहुरि वस्तुका स्वरूप कहिये धर्मविषैं ग्लानि करना जुगुप्सा है याके होतैं धर्मात्मा पुरुषनिकै पूर्व कर्मके उदयतैं बाह्य मलिनता देखि मततैं चिगि जाना होय है। बहुरि देव गुरु धर्म तथा लौकिक कार्यनिविषैं मूढता कहिये यथार्थ स्वरूप न जानना सो मूढ दृष्टि है याके होतैं अन्य लौकिक मानैं जो सरागीदेव हिंसाधर्म सग्रन्थगुरु तथा लोकनिनैं बिना विचारे मानें जे अनेक

क्रियाविशेष तिनितै विभवादिककी प्राप्तिके अर्थि प्रवृत्ति करनेतै यथार्थ मततै भ्रष्ट होय है बहुरि धर्मात्मा पुरुषनिविषैं कर्मके उदयतैं किछु दोप उपज्या देखि तिनिकी अवज्ञा करनीं सो अनुपगूहन है, याके होतैं धर्मतै छूटि जाना होय है बहुरि धर्मात्मा पुरुषनिकूं कर्मके उदयके वशतैं धर्मतै चिगते देखि तिनिकी थिरता न करनीं सो अस्थितीकरण है याके होतैं जानिये याकै धर्मतैं अनुराग नाहीं अर अनुराग न होनां सो सम्यक्त्वमै दोप है। बहुरि धर्मात्मा पुरुषनितैं विशेष प्रीति न करना सो अवात्सल्य है याके होतैं सम्यक्त्वका अभाव प्रगट सूचै है। बहुरि धर्मका माहात्म्य शक्तिसारूं प्रगट न करना सो अप्रभावना है याकै होतैं जानिये याके धर्मका महात्म्यकी श्रद्धा प्रगट न भई। ऐसैं ये आठ दोप सम्यक्त्वके मिथ्यात्वके उदयतैं होय है, जहा ये तीव्र होय तहा तौ मिथ्यात्व प्रकृतिका उदय जनावै है सम्यक्त्वका अभाव जनावै है, अर जहा किछु मद अतीचार रूप होय तौ सम्यक्त्व प्रकृति नामा मिथ्यात्वकी प्रकृतिके उदयतैं होय ते अतीचार कहिये तहा क्षायोपशमिक सम्यक्त्वका सद्भाव होय है, परमार्थ विचारिये तब अतीचार त्यागनैंही योग्य है। बहुरि इनिके होतै अन्य भी मल प्रगट होय हैं तहा तीन तौ मूढता, देवमूढता पाखडमूढता, लोकमूढता। तहा देवमूढता तौ ऐसैं जहां किछु वरकी वांछाकरि सरागीदेवनिकी उपासना करना तिनिकी पाषाणादिविषै स्थापनाकरि पूजनां। बहुरि पाखडमूढता ऐसैं—जहा ग्रंथ आरभ हिंसादिक सहित पाखंडीभेषी तिनिका सत्कार पुरस्कारादिक करना। बहुरि लोकमूढता ऐसैं जहां अन्यमतीनिके उपदेशतैं तथा स्वयमेव विना विचारे किछु प्रवृत्ति करने लगि जाय जैसै सूर्यकूं अर्घ देना, ग्रहणविषैं स्नान करना, संक्रांतिविषैं दान करनां, अग्निका सत्कार करनां, देहली घर कूवा पूजना, गऊके पूछकू नमस्कार करनां, गऊका मूत्रकूं पीवनां रत्न घोड़ा आदि वाहन पृथ्वी वृक्ष शस्त्र पर्वत आदिकका सेवन पूजन करनां, नदी समुद्र आदिकूं तीर्थ मानि तिनिमैं स्नान करनां, पर्वततैं पडनां अग्निमै प्रवेश करनां इत्यादि जाननां। बहुरि छह अनायतन है—कुदेव, कुगुरु, कुशास्त्र

अर इनके भक्त ऐसें छह,, इनिकूं धर्मके ठिकानें जानि इनिकी मन करि प्रशंसा करनां वचनकरि सराहना करना काय करि वंदना करनां, ये धर्मके ठिकाने नाही तातैं इनिकूं अनायतन कहे। बहुरि जाति लाभ कुल रूप तप वल विद्या ऐश्वर्य इनिका गर्व करना ऐसैं आठ मद हैं, तहां जाति तौ मातापक्ष है, अर लाभ धनादिक कर्मके उदयके आश्रय हैं, कुल पितापक्ष है, रूप कर्मउदयाश्रित है, तप अपना स्वरूप साधनेकूं है वल कर्म उदयाश्रित है, विद्याकर्मके क्षयोपशमाश्रित है ऐश्वर्य कर्मोदयाश्रित है, इनिका गर्व कहा। परद्रव्यके निमित्ततैं होय ताका गर्व करना सो सम्यक्त्वका अभाव जनावै है अथवा मलिनता करै है। ऐसैं ये पच्चीस सम्यक्त्वके मल दोष हैं तिनिकूं त्यागे सम्यक्त्व शुद्ध होय है, सो ही सम्यक्त्वाचरणचारित्रका अंग है ॥ ६ ॥

आगै शंकादि दोष दूरि भये आठ अंग सम्यक्त्वके प्रगट होय है तिनिकूं कहै है,—

णिस्संकिय णिक्कंखिय णिव्विदिगिंछा अमूढदिट्ठी य।
उवगूहण ठिदिकरणं वच्छल्ल पहावणा य ते अट्ठ ॥७॥

निःशंकितं निःकांक्षितं निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टी च।
उपगूहनं स्थितीकरणं वात्सल्यं प्रभावना च ते अष्टौ ॥ ७ ॥

अर्थ—निःशंकित निःकांक्षित निर्विचिकित्सा अमूढदृष्टी उपगूहन स्थितीकरण वात्सल्य प्रभावना ऐसैं आठ अंग हैं ॥

भावार्थ—ये आठ अंग पहिलै कहे जे शंकादि दोष तिनिके अभावतैं प्रगट होय हैं, तिनिके उदाहरण पुराणनिमैं हैं तिनिकी कथातैं जानने। निःशंकितका तौ अंजन चोरका उदाहरण है जानै जिनवचनविषै शंका

न करी निर्भय होय छींकेकी लड काटि मंत्र सिद्ध किया। बहुरि निःकांक्षितका सीता अनंतमती सुतारा आदिका उदाहरण है जिनिनैं भोगनिकै अर्थि धर्म न छोड्या। बहुरि निर्विचिकित्साका उद्दायनराजाका उदाहरण है जानैं मुनिका शरीर अपवित्र देखि ग्लानि न करी। बहुरि अमूढदृष्टीका रेवतीराणीका उदाहरण है जानैं विद्याधर अनेक महिमा दिखाई तौऊ श्रद्धानतैं शिथिल न भई। बहुरि उपगूहनका जिनेंद्रभक्तसेठका उदाहरण है जानैं चोर ब्रह्मचर्यभेषकरि छत्र चोर्‌या ताकूं ब्रह्मचर्यपदकी निंदा होती जानि ताका दोष छिपाया। बहुरि स्थितीकरणका वारिपेणका उदाहरण है जानैं पुष्पदंत ब्राह्मणकूं मुनिपदतैं शिथिल भया जानि दृढ किया। बहुरि वात्सल्यका विष्णुकुमारका उदाहरण है जानैं अकंपन आदि मुनिनिका उपसर्ग निवारण किया। बहुरि प्रभावना विषैं वज्रकुमार मुनिका उदाहरण है जानैं विद्याधरका सहाय पाय धर्म की प्रभावना करी ऐसैं आठ अंग प्रगट भये सम्यक्त्वचरण चारित्र संभवै है जैसैं शरीरमैं हाथ पग होय तैसैं सम्यक्त्वके अंग है, ये न होय तौ विकलांग होय ॥ ७ ॥

आगैं कहै है जो ऐसैं पहला सम्यक्त्वाचरण चारित्र होय है;—

तं चेव गुणविसुद्धं जिणसम्मत्तं सुमुक्खठाणाय।
जं चरइ णाणजुत्तं पढमं सम्मत्तचरणचारित्तं ॥ ८ ॥

तच्चैव गुणविशुद्धं जिनसम्यक्त्वं सुमोक्षस्थानाय।
तत् चरति ज्ञानयुक्तं प्रथमं सम्यक्त्वचरणचारित्रम् ॥८॥

अर्थ—तत् कहिये सो जिनसम्यक्त्व कहिये अरहन्त जिनदेवकी श्रद्धा निःशंकित आदि गुणनिकरि विशुद्ध होय ताहि यथार्थज्ञान करि सहित आचरण करै सो प्रथम सम्यक्त्वचरणचारित्र है सो मोक्षस्थानकै अर्थि होय है ॥

भावार्थ—सर्वज्ञके भाषे तत्वार्थकी श्रद्धा निःशंकित गुणनिकरि सहित पचीस मल दोषनिकरि रहित ज्ञानवान आचरण करै ताकूं सम्य-

क्त्वचरण चारित्र कहिये सो यह मोक्षकी प्राप्तिके अर्थि होय है जातैं मोक्ष-मार्गमैं पहलैं सम्यग्दर्शन कह्या है तातैं मोक्षमार्गमैं प्रधान यह ही है ॥८॥

आगैं कहै है जो ऐसा सम्यक्त्वचरणचारित्रकूं अंगीकार करि जो संयमचरण चारित्रकू अंगीकार करै तौ शीघ्रही निर्वाणकू पावै;—

सम्मत्तचरणसुद्धा संजमचरणस्स जइ व सुपसिद्धा ।
णाणी अमूढदिट्टी अचिरे पावंति णिव्वाणं ॥ ९ ॥

सम्यक्त्वचरणशुद्धाः संयमचरणस्य यदि वा सुप्रसिद्धाः ।
ज्ञानिनः अमूढदृष्टयः अचिरं प्राप्नुवंति निर्वाणम् ॥९॥

अर्थ—जे ज्ञानी भये सते अमूढदृष्टी होय करि अर सम्यक्त्व-चरण चारित्रकरि शुद्ध होय हैं अर जो संयमचरण चारित्रकरि सम्यक् प्रकार शुद्ध होय तौ शीघ्रही निर्वाणकू प्राप्त होय हैं ॥

भावार्थ—जो पदार्थनिका यथार्थज्ञानकरि मूढदृष्टिरहित विशुद्ध सम्यग्दृष्टी होयकरि सम्यक्चारित्रस्वरूप संयम आचरै तौ शीघ्रही मोक्षकू पावै संयम अंगीकार भये स्वरूपका साधनरूप एकाग्र धर्मध्यानके बलतैं सातिशय अप्रमत्त गुणस्थानरूप होय श्रेणी चढि अंतर्मुहूर्त्तमैं केवलज्ञान उपजाय अघातिकर्मका नाशकरि मोक्ष पावै है, सो यह सम्यक्त्वचरणचारित्रकाही माहात्म्य है ॥ ९ ॥

आगैं कहै है—जो, सम्यक्त्वके आचरणकरि भ्रष्टहैं ते संयमका आचरण करैं हैं तोऊ मोक्ष नांहीं पावैं हैं,—

सम्मत्तचरणभट्टा[1] संजमचरणं चरंति जे वि णरा ।
अण्णाणणाणमूढा तह वि ण पावंति णिव्वाणं ॥ १० ॥

१—मुद्रित संस्कृत सटीक प्रति में यह गाथा ही नहीं है, वचनिकाकी तीनो प्रतियोमें है ।

सम्यक्त्वचरणभ्रष्टाः संयमचरणं चरन्ति येऽपि नराः ।
अज्ञानज्ञानमूढाः तथाऽपि न प्राप्नुवंति निर्वाणम् ॥१०॥

अर्थ—जे पुरुष सम्यक्त्वचरण चारित्रकरि भ्रष्ट हैं अर संयम आचरण करैं हैं तौऊ ते अज्ञानकरि मूढदृष्टी भये सते निर्वाणकूं नांहीं पावैं हैं॥

भावार्थ—सम्यक्त्वचरणचारित्रविना संयमचरणचारित्र निर्वाणका कारण नांही है जातैं सम्यग्ज्ञान विना तौ ज्ञान मिथ्या कहावै है सो ऐसैं सम्यक्त्वविना चारित्रकै मिथ्यापणां आवै है ॥ १० ॥

आगैं प्रश्न उपजैहै जो ऐसा सम्यक्त्वचरणचारित्रके चिह्न कहा है तिनिकरि तिसकूं जानिये ताका उत्तररूप गाथामैं सम्यक्त्वके चिह्न कहैं हैं;—

वच्छल्लं विणएण य अणुकंपाए सुदाणदच्छाए ।
मग्गगुणसंसणाए अवगूहणरक्खणाए य ॥ ११ ॥
एएहिं लक्खणेहिं य लक्खिज्जइ अज्जवेहिं भावेहिं ।
जीवो आराहंतो जिणसम्मत्त अमोहेण ॥ १२ ॥

वात्सल्यं विनयेन च अनुकंपया सुदानदक्षया ।
मार्गगुणशंसनया उपगूहनं रक्षणेन च ॥ ११ ॥
एतैः लक्षणैः च लक्ष्यते आर्जवैः भावैः ।
जीवः आराधयन् जिनसम्यक्त्वं अमोहेन ॥ १२ ॥

अर्थ-जिनदेवकी श्रद्धा सम्यक्त्व ताकूं मोह कहिये मिथ्यात्व ताकरि रहित आराधता जीव है सो एते लक्षण कहिये चिह्न तिनिकरि लखिये है जानिये है—प्रथम तौ धर्मात्मा पुरुषनिकै जाकै वात्सल्यभाव होय

जैसैं तत्कालकी प्रसूतिवान गऊके वच्छासूं प्रीति होय तैसी धर्मात्मासूं प्रीति होय, एक तौ ये चिह्न है। बहुरि सम्यक्त्वादि गुणनिकरि अधिक होय ताका विनय सत्कारादिक जाकै अधिक होय, ऐसा विनय एक ये चिह्न है। बहुरि दुखी प्राणी देखि करुणा भावस्वरूप अनुकंपा जाकै होय, एक ये चिह्न है, बहुरि अनुकपा कैसी होय भलै प्रकार दानकरि योग्य होय। बहुरि निर्ग्रंथस्वरूप मोक्षमार्गकी प्रशंसाकरि सहित होय, एक ये चिह्न है, जो मार्गकी प्रशंसा न करता होय तौ जानिये याकै मार्गकी दृढ श्रद्धा नाहीं। बहुरि धर्मात्मा पुरुषनिकै कर्मके उदय तैं दोष उपजै ताकूं विख्यात न करै ऐसा उपगूहन भाव होय, एक ये चिह्न है। बहुरि धर्मात्माकू मार्गतैं चिगता जानि तिसकी थिरता करै ऐसा रक्षण नाम चिह्न है याकूं स्थितीकरण भी कहिये। बहुरि इनि सर्व चिह्ननिका, सत्यार्थ करनेवाला एक आर्जवभाव है जातैं निष्कपट परिणामतैं ये सर्व चिह्न प्रगट होय हैं सत्यार्थ होय है, एते लक्षणनिकरि सम्यग्दृष्टीकूं जानिये है॥

भावार्थ–सम्यक्त्वभाव मिथ्यात्वकर्मके अभावतैं जीवनिका निजभाव प्रगट होय है सो वह भाव तौ सूक्ष्म है छद्मस्थज्ञान गोचर नाहीं, अर ताके बाह्य चिह्न सम्यग्दृष्टी कै प्रगट होय है तिनिकरि सम्यक्त्व भया जानिये है। ते वासल्य आदि भाव कहे ते आपकै तो आपके अनुभव गोचर होय है अर अन्यके ताकी वचन कायकी क्रिया तैं जानिये हैं, तिनिकी परीक्षा जैसैं आपके क्रियाविशेष तैं होय है तैसैं अन्यकीभी क्रियाविशेष तै परीक्षा होय है, ऐसा व्यवहार है, जो ऐसा न होय तौ सम्यक्त्व व्यवहार मार्गका लोप होय तातैं व्यवहारी प्राणीकू व्यवहारहीका आश्रय कह्या है परमार्थ सर्वज्ञ जानै है॥ ११—१२॥

आगैं कहै है जो ऐसे कारणनिकरि सहित होय तौ सम्यक्त्व छोडै है,

उच्छाहभावणासं पसंससेवा कुदंसणे सद्धा।
अण्णाणमोहमग्गे कुव्वंतो जहदि जिणसम्मं॥१३॥

उत्साहभावनाशं प्रशंसासेवा कुदर्शने श्रद्धा ।
अज्ञानमोहमार्गे कुर्वन् जहाति जिनसम्यक्त्वम् ॥ १३ ॥

अर्थ—कुदर्शन कहिये नैयायिक वैशेपिक सांख्यमत मीमांसकमत वेदान्तमत बौद्धमत चार्वाकमत शून्यवादके मत इनिके भेप तथा तिनिके भापे पदार्थ वहुरि श्वेताबरादिक जैनाभास इनिकै विषै श्रद्धा तथा उत्साह-भावना तथा प्रशंसा तथा इनिकी उपासना सेवा करता पुरुष है सो जिनमतकी श्रद्धारूप सम्यक्त्वकूं छोडै है. कैसा है कुदर्शन अज्ञान अर मिथ्यात्वका मार्ग है ॥

भावार्थ-अनादिकालतैं मिथ्यात्वकर्मके उदयतैं यह जीव ससारमैं भ्रमै है सो कोई भाग्यके उदयतै जिनमार्गकी श्रद्धा भई होय अर मिथ्या मतके प्रसगकरि मिथ्यामतकै विषैं किछु कारणतैं उत्साह भावना प्रशंसा सेवा श्रद्धा उपजै तो सम्यक्त्वका अभाव होय जाय जातैं जिनमत सिवाय अन्यमत है तिनिमैं छद्मस्थ अज्ञानीनि करि प्ररूप्या मिथ्या पदार्थ तथा मिथ्याप्रवृत्तिरूप मार्ग है ताकी श्रद्धा आवै तब जिनमतकी श्रद्धा जाती रहै तातैं मिथ्यादृष्टीनिका ससर्गही न करना, ऐसा भावार्थ जानना ॥ १३ ॥

आगैं कहै है जो ये ही उत्साह भावनादिक कहे ते सुदर्शन विषैं होय तो जिनमतकी श्रद्धारूप सम्यक्त्वकू न छोडै है;—

उच्छाहभावणासं पसंससेवा सुदंसणे सद्धा ।
ण जहदि जिणसम्मत्तं कुव्वंतो णाणमग्गेण ॥ १४ ॥

उत्साहभावनाशं प्रशंसासेवाः सुदर्शने श्रद्धा ।
न जहाति जिनसम्यक्त्वं कुर्वन् ज्ञानमार्गेण ॥ १४ ॥

अर्थ—सुदर्शन कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप सम्यक् मार्ग ताविषैं उत्साहभावना कहिये ग्रहण करनेका उत्साह कर वारवार चिंतवनरूप भाव बहुरि प्रशंसा कहिये मन वचन कायकरि भला जानि स्तुति करना सेवा कहिये उपासना पूजनादिक करना बहुरि श्रद्धा करनी ऐसैं ज्ञानमार्गकरि यथार्थ जानि करता पुरुष है सो जिनमतकी श्रद्धारूप सम्यक्त्व है ताहि न छोडै है ॥

भावार्थ—जिनमतविषै उत्साह भावना प्रशंसा सेवा श्रद्धा जाकै होय सो सम्यक्त्वतैं च्युत न होय है ॥ १४ ॥

आगैं अज्ञान मिथ्यात्व कुचारित्र त्यागका उपदेश करै है;—

अण्णाणं मिच्छत्तं वज्जहि णाणे विसुद्धसम्मत्ते ।
अह मोहं सारंभ परिहर धम्मे अहिंसाए ॥ १५ ॥

अज्ञानं मिथ्यात्वं वर्ज्जय ज्ञाने विशुद्धसम्यक्त्वे ।
अथ मोहं सारम्भं परिहर धर्म्में अहिंसायाम् ॥ १५ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो भव्य ! तू ज्ञानके होतैं तौ अज्ञानकूं वर्जि त्यागकरि, बहुरि विशुद्ध सम्यक्त्वके होतैं मिथ्यात्वकू त्यागकरि, बहुरि अहिंसालक्षण धर्मके होतैं आरंभसहित मोहकू परिहरि ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी प्राप्ति भये फेरि मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्रविषैं मति प्रवर्त्तौ, ऐसा उपदेश है ॥ १५ ॥

आगैं फेरि उपदेश करैं हैं;—

पव्वज्ज संगचाए पयट्ट सुतवे सुसंजमे भावे ।
होइ सुविसुद्धझाणं णिम्मोहे वीयरायत्ते ॥ १६ ॥

प्रव्रज्यायां संगत्यागे प्रवर्त्तस्व सुतपसि सुसंयमेभावे ।
भवति सुविशुद्धध्यानं निर्मोहे वीतरागत्वे ॥ १६ ॥

अर्थ—हे भव्य ! तू संग कहिये परिग्रहका त्याग जामैं होय ऐसी दीक्षा ग्रहण करि बहुरि भलै प्रकार संयमस्वरूपभाव होतैं सम्यक् प्रकार तप विषैं प्रवर्त्तन करि जातै तेरै मोहरहित वीतरागपणा होतैं निर्मल धर्म शुक्ल ध्यान होय ॥

भावार्थ—निर्ग्रंथ होय दीक्षा ले संयमभावकरि भले प्रकार तपविषैं प्रवर्तै तब संसारका मोह दूरि होय वीतरागपणा होय तब निर्मल धर्मध्यान शुक्लध्यान होय है ऐसैं ध्यानतै केवलज्ञान उपजाय मोक्ष प्राप्त होय है तातैं ऐसा उपदेश है ॥ १६ ॥

आगै कहै है जो ये जीव अज्ञान अर मिथ्यात्वके दोष करि मिथ्यामार्गविषै प्रवर्तै है,—

मिच्छादंसणमग्गे मलिणे अण्णाणमोहदोसेहिं ।
वज्झंति मूढजीवा मिच्छत्ताबुद्धिउदएण ॥ १७ ॥

मिथ्यादर्शनमार्गे मलिने अज्ञानमोहदोषैः ।
बध्यन्ते मूढजीवाः मिथ्यात्वा बुद्ध्युदयेन ॥ १७ ॥

अर्थ—मूढ जीव हैं ते अज्ञान अर मोह कहिये मिथ्यात्व इनिके दोषनिकरि मलिन जो मिथ्यादर्शन कहिये कुमतका मार्ग ताविषैं मिथ्यात्व अर अबुद्धि कहिये अज्ञान तिनिके उदयकरि प्रवर्तै है ॥

भावार्थ-ये मूढजीव मिथ्यात्व अर अज्ञानके उदयकरि मिथ्यामार्गविषैं प्रवर्तै है तातैं मिथ्यात्व अज्ञानका नाश करना यह उपदेश है॥१७॥

आगैं कहै है जो सम्यग्दर्शन ज्ञान श्रद्धानकरि चारित्रके दोष दूरि होयहैं;—

सम्मद्दंसण पस्सदि जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया ।
सम्मेण य सद्दहदि परिहरदि चरित्तजे दोसे ॥१८॥

सम्यग्दर्शनेन पश्यति जानति ज्ञानेन द्रव्यपर्यायान् ।
सम्यक्त्वेन च श्रद्धाति च परिहरति चारित्रजान् दोषान् ॥१८॥

अर्थ—यह आत्मा सम्यग्दर्शन करि तो सत्तामात्र वस्तुकूं देखै है बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि द्रव्य अर पर्यायनिकूं जानैं है बहुरि सम्यक्त्वकरि द्रव्य पर्याय स्वरूप सत्तामयी वस्तुका श्रद्धान करै है, बहुरि ऐसैं देखनां जाननां श्रद्धान होय तब चारित्र कहिये आचरण ताविषै उपजे जे दोष तिनिकूं छोडै है ॥

भावार्थ—वस्तुका स्वरूप द्रव्य पर्यायात्मक सत्ता स्वरूप है सो जैसा है तैसा देखै जानैं श्रद्धान करै तब आचरण शुद्ध करै सो सर्वज्ञके आगमतैं वस्तुका निश्चयकरि आचरण करनां । तहां वस्तु है सो द्रव्य पर्याय स्वरूप है । तहां द्रव्यका सत्तालक्षण है तथा गुणपर्यायवानकूं द्रव्य कहिये । बहुरि पर्याय है सो दोय प्रकार है; सहवर्त्ती, अर क्रमवर्ती । तहां सहवर्तीकूं गुण कहिये है, क्रमवर्तीकूं पर्याय कहिये है । तहां द्रव्य सामान्यकरि एक है तौऊ विशेषकरि छह हैं, जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, काल ऐसैं । तहां जीवकै दर्शनमयी चेतना तो गुण है अर मति आदिक ज्ञान अर क्रोध मान माया लोभ आदि तथा नर नारक आदि विभाव पर्याय हैं,स्वभावपर्याय अगुरुलघु गुणके द्वारै हानि वृद्धिका परिणमन है । बहुरि पुद्गल द्रव्यकै स्पर्श रस गंध वर्णरूप मूर्त्तीकपणां तौ गुण है स्पर्श रस गंध वर्णका भेदरूप परिणमन तथा अणुतैं स्कंधरूप होना तथा शब्दबंध आदिरूप होना इत्यादि पर्याय हैं । बहुरि धर्म अधर्म द्रव्यकै गतिहेतुत्व स्थितिहेतुत्वपणा तौ गुण है अर इस गुणके जीव पुद्गलके गति स्थिति के भेदनितैं भेद होय ते पर्याय हैं, तथा अगुरुलघु

गुणकै द्वारै हानि वृद्धिका परिणमन होय सो स्वभाव पर्याय है। बहुरि आकाशकै अवगाहना गुण है अर जीव पुद्गल आदिके निमित्ततैं प्रदेश भेद कल्पिये ते पर्याय हैं, तथा हानिवृद्धिका परिणमन सो स्वभाव पर्याय है। बहुरि काल द्रव्यकै वर्त्तना तौ गुण है अर जीव पुद्गलके निमित्ततै समय आदिकल्पना है सो पर्याय है याकूं व्यवहार कालभी कहिये है, बहुरि हानि वृद्धिका परिणमन सो स्वभाव पर्याय है। इत्यादि इनिका स्वरूप जिन आगमतैं जानि देखनां जाननां श्रद्धान करना, यातैं चारित्र शुद्ध होय है। विना ज्ञान श्रद्धान आचरण शुद्ध नाहीं होय है, ऐसैं जानना ॥ १८ ॥

आगैं कहै है जो ये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीन भाव हैं ते मोह-रहित जीवकै होय हैं इनिकूं आचरता शीघ्र मोक्ष पावै है,—

एए तिण्णि वि भावा हवंति जीवस्स मोहरहियस्स।
नियगुणमाराहंतो अचिरेण वि कम्म परिहरइ ॥ १९ ॥

एते त्रयो पि भावाः भवंति जीवस्स मोहरहितस्य।
निजगुणमाराधयन् अचिरेण अपि कर्म परिहरति॥१९॥

अर्थ—ये पूर्वोक्त सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तीन भाव हैं ते निश्चय करि मोह कहिये मिथ्यात्व ताकरि रहित होय तिस जीवकै होय हैं तब यह जीव अपना निजगुण जो शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतना ताकूं आराधता संता थोरेही कालमैं कर्मका नाश करै है ॥

भावार्थ—निजगुणका ध्यानतैं शीघ्रही केवलज्ञान उपजाय मोक्ष पावै हैं ॥ १९ ॥

आगैं इस सम्यक्त्वचरणचारित्रके कथनकूं संकोचै है;—

संखिज्जमसंखिज्जगुणं च संसारिमेरुमत्ता णं।
सम्मत्तमणुचरंता करंति दुक्खक्खयं धीरा॥ २०॥

संख्येयामसंख्येयगुणां संसारिमेरुमात्रां णं।
सम्यक्त्वमनुचरंतः कुर्वन्ति दुःखक्षयं धीराः॥ २०॥

अर्थ—सम्यक्त्वकूं आचरण करते धीर पुरुष हैं ते सख्यातगुणी तथा असख्यातगुणी कर्मनिकी निर्जरा करैं हैं, बहुरि कर्मनिके उदयतैं भया संसारका दु.ख ताका नाश करै हैं, कैसे हैं कर्म; ससारी जीवनिका मेरु कहिये मर्यादा मात्र है, सिद्ध भये पीछै कर्म नाही है॥

भावार्थ—इस सम्यक्त्वके आचरण भए प्रथमकालमैं तौ गुणश्रेणी निर्जरा होय है सो तौ असख्यातके गुणकाररूप है बहुरि पीछै जेतैं संयमका आचरण न होय तेतैं गुणश्रेणी निर्जरा न होय-तहा सख्यातका गुणकाररूप होय है तातैं सख्यात गुण अर असंख्यातगुण ऐसैं दोऊ वचन कहे, बहुरि कर्म तौ ससार अवस्था है जेतैं है तिनिमैं दुःखका कारण मोह कर्म है तिसमैं मिथ्यात्व कर्म प्रधान है सो सम्यक्त्व भये मिथ्यात्वका तौ अभावही भया अर चारित्रमोह दुःखका कारण है सो येहू जेतै है तेतैं ताकी निर्जरा करै है ऐसैं अनुक्रमतैं दु.ख क्षय होय है। संयमाचरण भये सर्व दुःखका क्षय होय ही गा, इहां सम्यक्त्वका माहात्म्य ऐसा है सो सम्यक्त्वाचरण भये संयमाचरण भी शीघ्रही होय है, यातैं सम्यक्त्वकूं मोक्षमार्गमैं प्रधान जानि याहीका वर्णन पहलैं किया है॥२०॥

आगैं सयमाचरण चारित्रकूं कहै है,—

(१) मुद्रित सटीकसस्कृत प्रतिमें 'संसारिमेरुमता' इसके स्थानमें 'सा- सारि मेरुमित्ता ऐसा पाठ है जिसकी सस्कृत 'सर्षपमेरुमात्रां इसप्रकार है।

दुविहं संजमचरणं सायारं तह हवे णिरायारं ।
सायारं सग्गंथे परिग्गहा रहिय खलु णिरायारं ॥२१॥

द्विविधं संयमचरणं सागारं तथा भवेत् निरागारं ।
सागारं सग्रन्थे परिग्रहाद्रहिते खलु निरागारम् ॥२१॥

अर्थ—संयमचरण चारित्र है सो दोय प्रकार है सागार तथा निरागार ऐसैं, तहा सागारतौ परिग्रहसहित श्रावककैं होय है बहुरि निरागार परिग्रहतैं रहित मुनिकैं होय है यह निश्चय है ॥ २१ ॥

आगैं सागार संयमाचरणकू कहै है,—

दंसण वय सामाइय पोसह सचित्त रायभत्ते य ।
बंभारंभपरिग्गह अणुमण उद्दिट्ठ देसविरदो य ॥२२॥

दर्शनं व्रतं सामायिकं प्रोषधं सचित्तं रात्रिभुक्तिश्च ।
ब्रह्म आरंभः परिग्रहः अनुमतिः उद्दिष्ट देशविरतश्च ॥

अर्थ—दर्शन, व्रत, सामायिक, अर प्रोषध आदिका नामका एक देश है अर नाम ऐसैं कहना प्रोषधउपवास सचित्तत्याग, रात्रिभुक्तित्याग ब्रह्मचर्य, आरंभत्याग, परिग्रहत्याग, अनुमतित्याग उद्दिष्टत्याग, ऐसैं ग्यारा प्रकार देशविरत है ॥

भावार्थ—ये सागार संयमाचरणके ग्यारह स्थान हैं इनिकूं प्रतिमा भी कहिये ॥ २२ ॥

आगैं इनि स्थाननिविषैं सयमका आचरण कौन प्रकार है सो कहै है ।

पंचेव णुव्वयाइं गुणव्वयाइं हवंति तह तिण्णि ।
सिक्खावय चत्तारि य संजमचरणं च सायारं ॥ २३ ॥

पंचैव अणुव्रतानि गुणव्रतानि भवंति तथा त्रीणि ।
शिक्षाव्रतानि चत्वारि संयमचरणं च सागारम् ॥ २३ ॥

अर्थ—अणुव्रत पांच गुणव्रत तीन शिक्षाव्रत च्यार ऐसै बारह प्रकार करि संयमचरण चारित्र है सो सागार है, ग्रंथसहित श्रावककै होय है तातैं सागार कह्या है।

इहां प्रश्न-जो यह बारह प्रकार तो व्रतके कहे अर पहलैं गाथामैं ग्यारह नाम कहे तिनिमैं प्रथम दर्शन नाम कह्या तामैं ये व्रत कैसैं होय है। ताका समाधान ऐसा जो अणुव्रत ऐसा नाम किंचित् व्रतका है सो पंच अणुव्रतमैं किंचित् इहाभी होय है तातैं दर्शन प्रतिमाका धारकभी अणुव्रती ही है, याका नाम दर्शन ही कह्या तहां ऐसा नाम जानना जो याकै केवल सम्यक्त्वही होय है अर अवृती है अणुवृत नाहीं याकै अणुवृत अतीचारसहित होय है तातैं वृतीनाम न कह्या दूजी प्रतिमामैं अणुवृत अतीचाररहित पालै तातैं वृतनाम कह्या है, इहां सम्यक्त्वकै अतीचार टालै है सम्यक्त्वही प्रधान है तातैं दर्शनप्रतिमा नाम है। अन्य ग्रंथनिमैं याका स्वरूप ऐसैं कह्या है जो आठ मूलगुण पालै सात व्यसन त्यागै सम्यक्त्व अतीचाररहित शुद्ध जाकै होय सो दर्शन प्रतिमा धारक है तहां पाच उदुम्बरफल अर मद्य मांस सहत इनि आठनिका त्याग करै सो आठ मूलगुण हैं। अथवा कोई ग्रन्थमैं ऐसैं कह्या है जो पाच अणुवृत पालै अर मद्य मांस मधु इनिका त्याग करै ऐसैं आठ मूलगुण है सो यामैं विरोध नांही है विवक्षाका भेद है। पाच उदंबरफल अर तीन मकारका त्याग कहनेतैं जिनि वस्तुनिमैं साक्षात् त्रस दीखैं ते सर्वही वस्तु भक्षण नहीं करै। देवादिक निमित्त तथा औषधादिकनिमित्त इत्यादि कारणनितैं दीखता त्रस जीवनिका घात न करै, ऐसा आशय है, सो यामै तौ अहिंसा अणुवृत आया। अर सात व्यसनके त्यागमैं झूंठका अर चोरीका अर परस्त्रीका त्याग आया अर व्यसनहीके त्यागमैं अन्याय परधन परस्त्रीका ग्रहण नाहीं, यामैं अतिलोभका त्यागतैं परिग्रहका घटावना आया, ऐसैं

पांच अणुव्रत आवैं हैं। इनिके अतीचार टलै नाही तातैं अणुव्रती नाम न पावै। ऐसै दर्शन प्रतिमाका धारकभी अणुव्रती है तातैं देशविरत सागारसंयमचरण चारित्रमैं याकूं भी गिण्या है ॥ २३ ॥

आगै पाच अणुव्रतका स्वरूप कहै हैं;—

थूले तसकायवहे थूले मोषे अदत्तथूले य।
परिहारो परमहिला परग्गहारंभ परिमाणं ॥ २४॥

स्थूले त्रसकायवधे स्थूलायां मृषायां अदत्तस्थूले च।
परिहारः परमहिलायां परिग्रहारंभपरिमाणम् ॥ २४ ॥

अर्थ—थूल जो त्रसकायका घात, थूलमृशा कहिये असत्य, थूल अदत्ता कहिये परका न दिया धन, परमहिला कहिये परकी स्त्री इनिका तौ परिहार कहिये त्याग, बहुरि परिग्रह अर आरंभ का परिमाण ऐसैं पाच अणुव्रत हैं।

भावार्थ—इहां थूल कहनेमैं ऐसा अर्थ जानना–जामैं अपना मरण होय परका मरण होय अपना घर बिगडै परका घर बिगडै राजका दड-योग्य होय पंचनिकै दंडयोग्य होय ऐसैं मोटे अन्यायरूप पापकार्य जाननैं, ऐसे स्थूल पाप राजादिकके भयतैं न करै सो व्रत नाहीं इनिकू तीव्रकषायके निमित्ततैं तीव्रकर्मबंधके निमित्त जानि स्वयमेव न करनेंके भावरूप त्याग होय सो व्रत है। तथा याके ग्यारह स्थानक कहे तिनिमैं ऊपरि ऊपरि त्याग बधता जाय है सो याकी उत्कृष्टता तांई ऐसा है जो जिनि कार्यनिमैं त्रस जीवनिकूं बाधा होय ऐसे सर्वही कार्य छूटि जाय हैं तातैं सामान्य ऐसा नाम कह्या है जो त्रसहिंसाका त्यागी देशव्रती होय है। याका विशेष कथन अन्य ग्रंथनितैं जानना ॥ २४ ॥

---

(१) मुद्रित सटीकसस्कृतप्रतिमें 'अदत्तथूले' के स्थानमें 'तितिक्खथूले' ऐसा पाठ है तथा 'परमहिला' इसके स्थानमें 'परमपिम्मे' ऐसा पाठ है।

आगैं तीन गुणव्रतनिकूं कहै है;—

दिसिविदिसिमाण पढमं अणत्थदंडस्स वज्जणं बिदियं।
भोगोपभोगपरिमा इयमेव गुणव्वया तिण्णि ॥२५॥

दिग्विदिग्मानं प्रथमं अनर्थदंडस्य वर्जनं द्वितीयम् ।
भोगोपभोगपरिमाणं इमान्येव गुणव्रतानि त्रीणि ॥२५॥

अर्थ—दिशा विदिशाविषै गमनका परिमाण सो प्रथम गुणव्रत है बहुरि अनर्थदंडका वर्जना सो द्वितीय गुणव्रत है बहुरि भोग उपभोगका परिमाण सो तीसरा गुणव्रत है ऐसैं ये तीन गुणव्रत हैं ॥

भावार्थ—इहां गुण शब्द तौ उपकारका वाचक है ये अणुव्रतनिकूं उपकार करैं हैं। बहुरि दिशा विदिशा कहिये पूर्वदिशा आदिकहैं तिनि-विषैं गमन करनेकी मर्याद करै। बहुरि अनर्थदंड कहिये जिनि कार्यनिमैं अपना प्रयोजन न सधै ऐसै जे पापकार्य तिनिकूं न करै। इहा कोई पूछै—प्रयोजन विना तौ कोईभी जीव कार्य न करै है सो किछू प्रयोजन विचार ही करै है अनर्थदंड कहा ?। ताका समाधान—सम्यग्दृष्टी श्रावक होय सो प्रयोजन अपने पद योग्य विचारै है, पद सिवाय सो अनर्थ, और पापी पुरुषनिकै तौ सर्व ही पाप प्रयोजन हैं तिनिकी कहा कथा। बहुरि भोग कहनेमैं भोजनादिक उपभोग कहनेमैं स्त्री वस्त्र आभूषण वाहनादिकनिका परिमाण करै। ऐसैं जाननां॥ २५ ॥

आगैं च्यार शिक्षाव्रतनिकूं कहै है; —

सामाइयं च पढमं बिदियं च तहेव पोसहं भणियं।
तइयं च अतिहिपुज्जं चउत्थ सल्लेहणा अंते ॥ २६ ॥

सामाइकं च प्रथमं द्वितीयं च तथैव प्रोषधः भणितः।
तृतीयं च अतिथिपूजा चतुर्थं सल्लेखना अन्ते ॥२६॥

अर्थ—सामायिक तौ पहला शिक्षाव्रत है तैसैं ही दूजा प्रोषध व्रत है तीजा अतिथिका पूजन है चौथा अन्तसमय सल्लेखना व्रत है ॥

भावार्थ—इहां शिक्षा शब्दकरि तौ ऐसा अर्थ सूचै है जो आगामी मुनिव्रत है ताकी शिक्षा इनिमैं है जो मुनि होगा तब ऐसै रहना होगा। तहां सामायिक कहनेतैं तौ राग द्वेपका त्यागकरि सर्व गृहारंभसंबंधी क्रियातैं निवृत्ति करि एकान्त स्थानक बैठि प्रभात मध्याह्न अपराह्न किछू कालकी मर्यादकरि अपना स्वरूपका चितवन तथा पंचपरमेष्ठीकी भक्तिका पाठ पढ़ना तिनिकी वदना करनीं इत्यादि विधान करना सामायिक जानना। बहुरि तैसैंही प्रोपध कहिये आठैं चौदसि पर्वनिविषैं प्रतिज्ञा लेकरि धर्मकार्यनिमैं प्रवर्तना सो प्रोपध है। बहुरि अतिथि कहिये मुनि तिनिका पूजन करना आहारदान करना सो अतिथिपूजन है। बहुरि अंतसमयविषैं कायका अर कषायका कृश करना समाधिमरण करनां सो अंतसल्लेखना है, ऐसैं च्यार शिक्षाव्रत हैं ॥

इहां प्रश्न—जो तत्त्वार्थसूत्रमैं तौ तीन गुणव्रतमैं देशव्रत कह्या अर भोगोपभोग परिमाण शिक्षाव्रतमैं कह्या अर सल्लेखना न्यारा कह्या सो कैसैं?

ताका समाधान—जो यह विवक्षाका भेद है इहां देशव्रत दिग्व्रतमैं गर्भित है अर सल्लेखना शिक्षाव्रतमैं कह्या है, किछू विरोध है नाहीं ॥२६॥

आगैं कहै है संयमचरण चारित्रविषै ऐसैं तौ श्रावक धर्म कह्या अब यतिधर्मकूं कहै है—

एवं सावयधम्मं संजमचरणं उदेसियं सयलं।
सुद्धं संजमचरणं जइधम्मं णिक्कलं वोच्छे॥ २७॥

एवं श्रावकधर्मं संयमचरणं उपदेशितं सकलम्।
शुद्धं संयमचरणं यतिधर्मं निष्कलं वक्ष्ये॥ २७॥

अर्थ—एवं कहिये या प्रकार श्रावक धर्म स्वरूप संयमचरण तौ कह्या, कैसा है यह—सकल कहिये कलासहित है, एक देशकूं कला

कहिये, अब यतिधर्मका धर्मस्वरूप संयमचरण है ताहि कहूंगा ऐसैं आचार्यनै प्रतिज्ञा करी है, कैसा है यतिधर्म-शुद्ध है निर्दोष है जामैं पापाचरणका लेश नांही है, बहुरि कैसा है, निकल कहिये कलातै निःक्रांत है संपूर्ण है श्रावक धर्मकी ज्यों एकदेश नाही है ॥ २७ ॥

आगैं यति धर्मकी सामग्री कहै हैं,—

पंचेंदियसंवरणं पंच वया पंचविंसकिरियासु ।
पंच समिदि तय गुत्ती संयमचरणं णिरायारं ॥ २८ ॥

पंचेंद्रियसंवरणं पंच व्रताः पंचविंशतिक्रियासु ।
पंच समितयः तिस्रः गुप्तयः संयमचरणं निरागारम् ॥ २८ ॥

अर्थ—पंच इंद्रियनिका संवर, पांच व्रत ते पचीस क्रिया के सद्भाव होतैं होय, बहुरि पांच समिति, तीन गुप्ति ऐसैं निरागार संयमचरण चारित्र होय है ॥ २८ ॥

आगैं पांच इंद्रियके संवरणका स्वरूप कहै हैं,—

अमणुण्णे य मणुण्णे सजीवदव्वे अजीवदव्वे य ।
ण करेइ रायदोसे पंचेंदियसंवरो भणिओ ॥ २९ ॥

अमनोज्ञे च मनोज्ञे सजीवद्रव्ये अजीवद्रव्ये च ।
न करोति रागद्वेषौ पंचेंद्रियसंवरः भणितः ॥ २९ ॥

अर्थ—अमनोज्ञ तथा मनोज्ञ ऐसे जे पदार्थ जिनिकूं लोक अपने मानैं ऐसे सजीवद्रव्य स्त्रीपुत्र आदिक, अर अजीवद्रव्य धन धान्य आदि सर्व पुद्गलद्रव्य आदि, तिनिविषैं राग द्वेष न करै सो पांच इन्द्रियनिका संवर कह्या है ॥

भावार्थ—इन्द्रियगोचर जे जीवअजीवद्रव्य हैं ते इंद्रियनिके ग्रहणमें आवै है तिनिमैं यह प्राणी काहूकूं इष्ट मानि राग करै है काहूकूं अनिष्ट

मानि द्वेष करै है ऐसैं राग द्वेष मुनि नाहीं करै है ताकै संयमचरण चारित्र होय है ॥ २९ ॥

आगैं पांच व्रतनिका स्वरूप कहै हैं—

हिंसाविरइ अहिंसा असच्चविरई अदत्तविरई य ।
तुरियं अवंभविरई पंचम संगम्मि विरई य ॥ ३० ॥

हिंसाविरतिरहिंसा असत्यविरतिः अदत्तविरतिश्च ।
तुर्यं अब्रह्मविरतिः पंचमं संगे विरतिः च ॥ ३० ॥

अर्थ—प्रथम तौ हिंसातैं विरति सो अहिंसा है, बहुरि दूजा असत्य विरति है, बहुरि तीजा अदत्तविरति है, बहुरि चौथा अब्रह्मविरति है पाचमां परिग्रहविरति है ॥

भावार्थ—इनि पांच पापनिका सर्वथा त्याग जिनमैं होय ते पाच महाव्रत हैं ॥ ३० ॥

आगैं इनिकूं महाव्रत ऐसा नाम काहेतैं है सो कहै हैं;—

साहंति जं महल्ला आयरियं जं महल्लपुव्वेहिं ।
जं च महल्लाणि तदो महव्वया इत्तहे याइं ॥ ३१ ॥

साधयंति यन्महांतः आचरितं यत् महत्पूर्वैः ।
यच्च महन्ति ततः महाव्रतानि एतस्माद्धेतोः तानि ॥ ३१ ॥

अर्थ—महल्ला कहिये महत पुरुष जिनिकूं साधैं आचरैं बहुरि पहलैं भी जिनिकूं महंत पुरुषनि आचरे बहुरि ये व्रत आपही महान हैं जातैं जिनिमैं पापका लेश नाहीं ऐसैं ये पांच महाव्रत हैं ॥

भावार्थ—जिनिकूं बड़े पुरुष आचरण करैं अर आप निर्दोष होय ते ही बड़े कहावैं, ऐसैं इनि पाच व्रतनिकूं महाव्रत संज्ञा है ॥ ३१ ॥

आगै इनि पांच व्रतनिकी पचीस भावना है तिनिकूं कहै हैं तिनिमैं प्रथम ही अहिंसाव्रतकी पाच भावना कहिये है —

वयगुत्ती मणगुत्ती इरियासमिदी सुदाणणिक्खेवो।
अवलोयभोयणाए अहिंसए भावणा होंति ॥ ३२ ॥

वचोगुप्तिः मनोगुप्तिः ईर्यासमितिः सुदाननिक्षेपः ।
अवलोक्य भोजनेन अहिंसाया भावना भवंति ॥३२॥

अर्थ—वचनगुप्ति अर मनोगुप्ति ऐसै दोय तौ गुप्ति अर ईर्यासमिति बहुरि भलै प्रकार कमंडलु आदिका ग्रहण निक्षेप यह आदाननिक्षेपणा समिति बहुरि नीकैं देखि विधिपूर्वक शुद्ध भोजन करनां यह एषणा समिति ऐसैं ये पाच अहिंसा महाव्रतकी भावना हैं ॥

भावार्थ—भावना नाम वार वार तिसहीका अभ्यास करना ताका है सो इहा प्रवृत्ति निवृत्तिमैं हिंसा लागैं ताका निरतर यत्न राखै तब अहिंसाव्रत पलै यातै इहा योगनिकी निवृत्ति करनी तौ भलैप्रकार गुप्तिरूप करनी अर प्रवृत्ति करनी तौ समितिरूप करनी ऐसै निरतर अभ्याससतैं अहिंसा महाव्रत दृढ रहै है, ऐसा आशयतैं इनिकूं भावना कही है ॥ ३२ ॥

आगै सत्यमहाव्रतकी भावना कहै हैं —

कोहभयहासलोहामोहाविपरीयभावणा चेव ।
विदियस्स भावणाए ए पंचेव य तहा होंति ॥ ३३ ॥

क्रोधभयहास्यलोभमोहविपरीतभावनाः च एव ।
द्वितीयस्य भावना इमा पंचैव च तथा भवंति ॥ ३३ ॥

अर्थ—क्रोध भय हास्य लोभ मोह इनितैं विपरीत कहिये उलटा इनिका अभाव ये द्वितीय व्रत जो सत्यमहाव्रत ताकी भावना हैं ॥

भावार्थ—असत्यवचनकी प्रवृत्ति होय है सो क्रोधतैं तथा भयतैं तथा हास्यतै तथा लोभतैं तथा परद्रव्यतैं मोहरूप मिथ्यात्वतैं होय है इनिका त्याग भये सत्य महाव्रत दृढ़ रहै है।

बहुरि तत्त्वार्थसूत्रमैं पांचवीं भावना अनुवीचीभाषण कही है सो याका अर्थ यहु जो-जिनसूत्रकै अनुसार वचन बोलै अर इहां मोहका अभाव कह्या सो मिथ्यात्वके निमित्ततैं सूत्रविरुद्ध कहै मिथ्यात्वका अभाव भये सूत्रविरुद्ध न कहै सो ही अनुवीची भाषणका भी यह ही अर्थ भया, यामैं अर्थ भेद नांही है॥ ३३॥

आगैं अचौर्य महाव्रतकी भावनाकूं कहै हैं;—

सुण्णायारणिवासो विमोचितावास जं परोधं च।
एसणसुद्धिसउत्तं साहम्मीसंविसंवादो ॥ ३४॥

शून्यागारनिवासः विमोचितावासः यत् परोधं च।
एषणाशुद्धिसहितं साधर्मिसमविसंवादः ॥ ३४॥

अर्थ—शून्यागार कहिये गिरि गुफा तरुकोटरादिविषै निवास करनां बहुरि विमोचितावास कहिये जो लोग काहू कारणतैं छोडि दिया ऐसा गृह ग्रामादिक तामैं निवास करना, बहुरि परोपरोध कहिये परका जहां उपरोध न करिये वस्तिकादिककूं अपनाय परकूं वर्जना ऐसैं न करना, बहुरि एषणाशुद्धि कहिये आहार शुद्ध लेना, बहुरि साधर्मीनितै विसंवाद न करना। ये पांच भावना तृतीय महाव्रतकी हैं॥

भावार्थ—मुनिनिकै वस्तिकामैं वसना अर आहार लेनां ये दोय प्रवृत्ति अवश्य होय तहां लोकमैं इनिहीके निमित्त अदत्तका आदान होय है, मुनि वसै सो ऐसी जायगा वसै जहां अदत्तका दोष न लागै, बहुरि आहार ऐसा ले जामैं अदत्तका दोष न लागै, तथा दोऊकी प्रवृत्तिमैं साधर्मी आदिकतैं विसवाद न उपजै। ऐसैं ये पाच भावना कही हैं, इनिवे होतै अचौर्यमहाव्रत दृढ रहै है॥ ३४॥

आगै ब्रह्मचर्यमहाव्रतकी भावना कहै हैं,—

महिलालोयणपुव्वरइसरणसंसत्तवसहिविकहाहिं ।
पुट्ठियरसेहिं विरओ भावण पंचावि तुरियम्मि ॥ ३५ ॥

महिलालोकनपूर्वरतिस्मरणसंसक्तवसतिविकथाभिः ।
पौष्टिकरसैः विरतः भावनाः पंचापि तुर्ये ॥ ३५ ॥

अर्थ—स्त्रीनिका आलोकन कहिये रागभावसहित देखना पूर्वे किये भोगका स्मरण करना, स्त्रीनिकरि ससक्त वस्तिकामै वसना स्त्रीनिकी कथा करना, पुष्टकारी रसका सेवन करना, इनि पाचनितै विकार उपजै तातै इनितै विरक्त रहना, ये पाच ब्रह्मचर्यमहाव्रतकी भावना हैं ॥

भावार्थ—कामविकारके निमित्तनितैं ब्रह्मचर्यव्रत भग होय है सो स्त्रीनिका रागभावतैं देखना इत्यादिक निमित्त कहे तिनिमैं विरक्त रहना प्रसग न करना यातैं ब्रह्मचर्यमहाव्रत दृढ रहै है ॥ ३५ ॥

आगै पाच अपरिग्रहमहाव्रतकी भावना कहै हैं,—

अपरिग्गह समणुण्णेसु सद्दपरिसरसरूवगंधेसु ।
रायद्दोसाईणं परिहारो भावणा होंति ॥ ३६ ॥

अपरिग्रहे समनोज्ञेषु शब्दस्पर्शरसरूपगंधेषु ।
रागद्वेषादीनां परिहारो भावनाः भवन्ति । ३६ ॥

अर्थ—शब्द स्पर्श रस रूप गध ये पाच इन्द्रियनिके विषय, ते कैसे समनोज्ञ कहिये मनोज्ञकरि सहित अर असमनोज्ञ कहिये मनोज्ञकरि रहित, ऐसे दोऊनिविषैं रागद्वेष आदिका न करना ते परिग्रहत्यागव्रतकी ये पांच भावना है ॥ ३६ ॥

भावार्थ—पाच इंद्रियनिके विषय स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द ये है

तिनिविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धिरूप राग द्वेष न करै तब अपरिग्रहव्रत दृढ़ रहै जातैं ये पाच भावना अपरिग्रहमहाव्रतकी कही हैं।

आगैं पाच समितिकूं कहे हैं;—

इरिया भासा एसण जा सा आदाण चेव णिक्खेवो।
संजमसोहिणिमित्ते खंति जिणा पंच समिदीओ ॥ ३७॥

इर्या भाषा एषणा या सा आदानं चैव निक्षेपः।
संयमशोधिनिमित्तं ख्यान्ति जिनाः पंच समितीः॥ ३७॥

अर्थ—ईर्या भाषा एषणा बहुरि आदाननिक्षेपण प्रतिष्ठापना ऐसैं ये पांच समिति सयमकी शुद्धिताकै अर्थि कारण हैं ते जिनदेवनैं कहे हैं।

भावार्थ—मुनि पंचमहाव्रतरूप संयमका साधन करै है तिस सयमकी शुद्धिताकें अर्थि पाच समितिरूप प्रवर्तै है याहीतैं याका नाम सार्थक है—" 'सं' कहिये सम्यक् प्रकार 'इति' कहिये प्रवृत्ति जामैं होय सो समिति है "। गमन करै तब जूडा प्रमाण धरती देखता चालै है, बोलै तब हितमितरूप वचन बोलै है, आहार ले सो छियालीस दोप बत्तीस अंतराय टालि चौदा मल दोप रहित शुद्ध आहार ले हैं, धर्मोपकरणनिकूं उठाय ग्रहण करै सो यत्नपूर्वक ले हैं, तैसैं ही किछू क्षेपै तब यत्नपूर्वक क्षेपै है, ऐसैं निष्प्रमाद वर्त्तै तब संयम शुद्ध पलै है तातैं पचसमितिरूप प्रवृत्ति कही है। ऐसैं संयमचरण चारित्रकी प्रवृत्ति कही ॥ ३७॥

अब आचार्य निश्चय चारित्रकूं मनमैं धारि ज्ञानका स्वरूप कहै हैं;—

भव्वजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहि जह भणियं।
णाणं णाणसरूवं अप्पाणं तं वियाणेहि ॥ ३८॥

भव्यजनबोधनार्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितं।
ज्ञानं ज्ञानस्वरूपं आत्मानं तं विजानीहि ॥ ३८॥

अर्थ—जिनमार्ग विषैं जिनेश्वर देवनैं भव्यजीवनिके संबोधनके अर्थि जैसा ज्ञान अर ज्ञानका स्वरूप कह्या है तिस ज्ञान स्वरूप आत्मा है ताहि हे भव्यजीव ! तू जानि ॥ ३८ ॥

भावार्थ—ज्ञानकूं ज्ञानका स्वरूपकूं अन्यमती अनेक प्रकार कहै हैं तैसा ज्ञान अर ऐसा स्वरूप ज्ञानका नाही है, जो सर्वज्ञ वीतराग देव भाषित ज्ञान अर ज्ञानका स्वरूप है सो निर्बाध सत्यार्थ है अर ज्ञान है सो ही आत्मा है तथा आत्माका स्वरूप है तिसकूं जानि अर तिसमैं थिरता भाव करै परद्रव्यनितैं राग द्वेष न करै सो ही निश्चय चारित्र है, सो पूर्वोक्त महाव्रतादिकी प्रवृत्तिकरि इस ज्ञान स्वरूप आत्मा विषैं लीन होना ऐसा उपदेश है ॥ ३८ ॥

आगैं कहै है जो ऐसा ज्ञानकरि ऐसैं जानैं सो सम्यग्ज्ञानी है;—

जीवाजीवविभत्ती जो जाणइ सो हवेइ सण्णाणी ।
रायादिदोसरहिओ जिणसासण मोक्खमग्गुत्ति ॥३९॥

जीवाजीवविभक्ति यः जानाति स भवेत् सज्ज्ञानः ।
रागादिदोषरहितः जिनशासने मोक्षमार्ग इति ॥ ३९ ॥

अर्थ—जो पुरुष जीव अर अजीव इनिका भेद जानैं सो सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि रागादि दोषनिकरि रहित होय ऐसा जिनशासन विषैं मोक्ष मार्ग है ॥

भावार्थ—जो जीव अजीव पदार्थका स्वरूप भेदरूप जानि आप परका भेद जानैं सो सम्यग्ज्ञानी होय अर परद्रव्यनितैं रागद्वेष छोडनेंतैं ज्ञानमें थिरता भये निश्चय सम्यक्चारित्र होय सो ही जिनमतमैं मोक्षमार्गका स्वरूप कह्या है, अन्यमतीनिनैं अनेक प्रकार कल्पना करि कह्या है सो मोक्षमार्ग नाही है ॥

आगैं ऐसा मोक्षमार्गकूं जानि श्रद्धासहित यामैं प्रवर्त्तै है सो शीघ्र ही मोक्ष पावै है ऐसैं कहै हैं,—

दंसणणाणचरित्तं तिण्णि वि जाणेह परमसद्धाए।
जं जाणिऊण जोई अइरेण लहंति णिव्वाणं ॥४०॥

दर्शनज्ञानचरित्रं त्रीण्यपि जानीहि परमश्रद्धया।
यत् ज्ञात्वा योगिनः अचिरेण लभंते निर्वाणम् ॥ ४० ॥

अर्थ-हे भव्य ! तू दर्शन ज्ञान चारित्र इनि तीननिकूं परमश्रद्धा-करि जानि जिसकूं जानिकरि जोगी मुनि हैं सो थोरे ही कालमै निर्वाणकूं पावैं हैं।

भावार्थ—सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रयात्मक मोक्षमार्ग है ताके श्रद्धापूर्वक जाननेंका उपदेश है जातैं याकूं जाने मुनिनिकै मोक्षकी प्राप्ति होय है ॥ ४० ॥

आगैं कहै है जो ऐसें निश्चयचारित्ररूप ज्ञानका स्वरूप कह्या इसकू जो पावै है सो शिवरूप मंदिरके वसनेवाले होय हैं;—

पाऊण णाणसलिलं णिम्मलसुविसुद्धभाणसंजुत्ता।
हुंति सिवालयवासी तिहुवणचूड़ामणी सिद्धा ॥ ४१ ॥

प्राप्य ज्ञानसलिलं निर्मलसुविशुद्धभावसंयुक्ताः।
भवंति शिवालयवासिनः त्रिभुवनचूडामणयः सिद्धाः ॥

अर्थ—जे पुरुष इस जिनभाषित ज्ञानरूप जलकू पाय करि अपनां निर्मल भलै प्रकार विशुद्धभावकरि संयुक्त होय है ये पुरुष तीन भुवनके चूडामणि अर शिव कहिये मुक्ति सोही भया आलय कहिये मंदिर तामैं वसनेवाले ऐसे सिद्ध परमेष्ठी होय हैं ॥

भावार्थ—जैसे जलतैं स्नानकरि शुद्ध होय उत्तम पुरुष महलमैं निवास करैं हैं तैसैं यह ज्ञान है सो जलवत् है अर आत्माकै रागादिक मैल लगनेंतैं मलिनता होय है सो इस ज्ञानरूप जलतैं रागादिक मल

धोय जे अपने आत्माकूं शुद्ध करैं हैं ते मुक्तिरूप महलमैं वसि आनंद भोगवै हैं, तिनिकूं तीन भुवनके शिरोमणि सिद्ध कहिये हैं ॥ ४१ ॥

आगैं कहै हैं जे ज्ञानगुणकरि रहित हैं ते इष्ट वस्तु न पावैं तातैं गुण दोषके जाननेंकूं ज्ञानकूं भलेप्रकार जाननां—

णाणगुणेहिं विहीणा ण लहंते ते सुइच्छियं लाहं ।
इय णाऊ गुणदोसं तं सण्णाणं वियाणेहि ॥ ४२ ॥

ज्ञानगुणैः विहीना न लभंते ते स्विष्टं लाभं ।
इति ज्ञात्वा गुणदोषौ तत् सद्ज्ञानं विजानीहि ॥ ४२ ॥

अर्थ—ज्ञानगुणकरि हीन जे पुरुष है ते अपना इच्छित वस्तुका लाभकूं नांही पावैं हैं ऐसा जानिकरि हे भव्य ! तू पूर्वोक्त सम्यग्ज्ञान है ताहि गुण दोषके जाननेकूं जानि ॥

भावार्थ—ज्ञान विना गुण दोषका ज्ञान नांही होय तब अपनें इष्ट वस्तु तथा अनिष्टकूं नाही जानें तब इष्ट वस्तुका लाभ न होय तातैं सम्यग्ज्ञानही करि गुण दोष जाण्या जाय हैं यातैं गुण दोष जाननेंकूं सम्यग्ज्ञान विना हेय उपादेय वस्तुनिका जाननां न होय अर हेय उपादेय जानें विना सम्यक्चारित्र नांही होय है तातैं ज्ञानहीकूं चारित्रतैं प्रधानकरि कह्या है ॥ ४२ ॥

आगैं कहैं हैं जो सम्यग्ज्ञान सहित चारित्र धारै है सो थोरेही कालमैं अनुपम सुखकूं पावै है:—

चारित्तसमारूढो अप्पासु परं ण ईहए णाणी ।
पावइ अइरेण सुहं अणोवमं जाण णिच्छयदो ॥४३॥

चारित्रसमारूढ आत्मनि[1] परं न ईहते ज्ञानी ।

१—मुद्रित सटीक संस्कृत प्रतिमें 'आत्मनि' इसके स्थानमें आत्मनः ऐसा पाठ है टीकामें अर्थ भी आत्मनः का ही किया है । देखो, पृष्ठ ५४ ।

प्राप्नोति अचिरेण सुखं अनुपमं जानीहि निश्चयतः ॥४३॥

अर्थ--जो पुरुष ज्ञानी है अर चारित्रकरि सहित है सो अपने आत्मा विषैं परद्रव्यकूं नाही इच्छै है परद्रव्यविषैं राग द्वेष मोह नाही करै है सो ज्ञानी जाकी उपमा नांही ऐसा अविनाशी मुक्तिका सुख पावै है ऐसै हे भव्य ? तू निश्चयतैं जानि। इहां ज्ञानी होय हेय उपादेयकूं जानि सयमी होय परद्रव्यकूं आपमैं न मिलावै सो परम सुख पावै ऐसा जनाया है ॥ ४३ ॥

आगैं इष्ट चारित्रके कथनकू सकोचैं हैं

एवं संखेवेण य भणियं णाणेण वीयराएण ।
सम्मत्तसंजमासयदुण्हं पि उदेसियं चरणं ॥ ४४ ॥

एवं संक्षेपेण च भणितं ज्ञानेन वीतरागेण ।
सम्यक्त्वसंयमाश्रयद्वयोरपि उद्देशितं चरणम् ॥४४॥

अर्थ—एव कहिये ऐसै पूर्वोक्त प्रकार संक्षेप करि श्रीवीतराग देवनैं ज्ञानकरि कह्या ऐसा सम्यक्त्व अर संयम इनि दोऊनिकै आश्रय चारित्र सम्यक्त्वचरणस्वरूप अर संयमचरणस्वरूप दोय प्रकार करि उपदेश-रूप किया है, आचार्य चारित्र का कथन संक्षेपरूप कहि सकोच्या है ॥ ४४ ॥

आगैं इस चारित्रपाहुडकू भावनेका उपदेश अर याका फल कहै हैं;—

भावेह भावसुद्धं फुडु रइयं चरणपाहुडं चेव ।
लहु चउगइ चइऊणं अइरेणऽपुणब्भवा होइ ॥ ४५ ॥

भावयत भावशुद्धं स्फुटं रचितं चरणप्राभृतं चैव ।
लघु चतुर्गतीः त्यक्त्वा अचिरेण अपुनर्भवाः भवत ॥ ४५ ॥

अर्थ—इहा आचार्य कहै हैं जो हे भव्य जीव हो ! यह चरण कहिये चारित्रका पाहुड हमनैं स्फुट प्रगटकरि रच्या है ताकूं तुम अपना शुद्ध भावकरि भावो अपने भावनिमैं वारवार अभ्यास करो यातैं शीघ्रही च्यार गतिनिकूं छोडि करि वहुरि अपुनर्भव जो मोक्ष सो तुम्हारै होयगा फेरि संसारमैं जन्म न पावोगे ॥

भावार्थ—इस चारित्रपाहुडका वाचना पढना धारना वारंवार भावना अभ्यास करना यह उपदेश है यातैं चारित्रका स्वरूप जानि धारनेकी रुचि होय अंगीकार करै तब च्यार गतिरूप संसारके दुःखतैं रहित होय निर्वाणकूं प्राप्त होय फेरि संसारमैं जन्म न धारै जातैं जे कल्याणके अर्थी हैं ते ऐसैं करौ ॥

छप्पय ।

चारित दोय प्रकार देव जिनवरनैं भाख्या ।
समकित संयम चरण ज्ञानपूरव तिस राख्या ॥
जे नर सरधावान याहि धारैं विधिसेती ।
निश्चय अर व्यवहार रीति आगममैं जेती ॥
जब जगधंधा सब मेटिकैं निजस्वरूपमैं थिर रहै ।
तब अष्टकर्मकूं नाशिकै अविनाशी शिवकूं लहै ॥ १ ॥

ऐसैं सम्यक्त्वचरणचारित्र अर संयमचरण-
चारित्र ऐसैं दोय प्रकार चारित्रका
स्वरूप इस प्राभृतविषैं कह्या ।

दोहा।

जिनभाषित चारित्रकूं जे पालैं मुनिराय।
तिनिके चरण नमूं सदा पाऊं तिनि गुणभाव॥ २॥

इति श्रीकुन्दकुन्दाचार्यस्वामि विरचित
चारित्रप्राभृतकी—
पं० जयचन्द्रछावड़ाकृत देशभाषामय-
वचनिका समाप्त॥ ३॥

❀ श्री ❀

अथ बोधपाहुड

—(:-:) ४ (:-:)—

❀ दोहा ❀

देव जिनेश्वर सर्वगुरु वंदूं मनवच काय।
जा प्रसाद भवि बोध ले पालैं जीवनिकाय॥ १॥

ऐसैं मंगलाचरण करि श्री कुन्दकुन्द आचार्यकृत गाथाबंध बोधपाहुडकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है, तहां प्रथमही आचार्य ग्रंथ करनेंकी मंगलपूर्वक प्रतिज्ञा करै हैं;—

बहुसत्थअत्थजाणे संजमसम्मत्तसुद्धतवयरणे।
वंदित्ता आयरिए कसायमलवज्जिदे सुद्धे॥ १॥
सयलजणबोहणत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं।
वुच्छामि समासेण छक्कायसुहंकरं[1] सुणह॥ २॥

बहुशास्त्रार्थज्ञापकान् संयमसम्यक्त्वशुद्धतपश्चरणान्।
वन्दित्वा आचार्यान् कषायमलवर्जितान् शुद्धान्॥१॥
सकलजनबोधनार्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितम्।
वक्ष्यामि समासेन षट्कायसुखंकरं शृणु॥ २॥ युग्मम्।

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो मैं आचार्यनिकूं वंदिकरि अर छह कायके जीवनिकूं सुखका करनेवाला जिनमार्गविषैं जिनदेवनैं जैसैं कह्या तैसैं

१—मुद्रित सटीक संस्कृत प्रतिमें 'छक्कायहियंकर' ऐसा पाठ है।

समस्त लोकनिका हितका है प्रयोजन जामैं ऐसा ग्रंथ संक्षेपकरि कहूगा ताकूं हे भव्यजीव ! तुम सुनो, जिन आचार्यनिकूं वंदे ते आचार्य कैसे हैं—बहुत शास्त्रनिका अर्थके जाननेवाले हैं बहुरि कैसे हैं—संयम अर सम्यक्त्व इनि करि शुद्ध है तपश्चरण जिनिकै बहुरि कैसे हैं—कषायरूप मलकरि वर्जित हैं याहीतैं शुद्ध हैं ॥

भावार्थ—इहां आचार्यनिकूं वंदना करी तिनिके विशेषणनितैं जानिये है कि गणधरादिकतैं लगाय अपनें गुरुपर्यंत तिनिकी वंदना है, बहुरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करी ताके विशेषणनितैं जानिये है जो बोधपाहुड ग्रंथ करियेगा सो लोकनिकूं धर्ममार्गविषै सावधानकरि कुमार्ग छुडाय अहिंसाधर्मका उपदेश करियेगा ॥ ३ ॥

आगैं इस बोधपाहुडमैं ग्यारह स्थल बांधेहै तिनिके नाम कहै हैं,

आयदणं चेदिहरं जिणपडिमा दंसणं च जिणविंबं ।
भणियं सुवीयरायं जिणमुद्दा णाणमादत्थं ॥ ३ ॥
अरहंतेण सुदिट्ठं जं देव तित्थमिह य अरहंतं ।
पावज्ज गुणविसुद्धा इय णायव्वा जहाकमसो ॥ ४ ॥

आयतनं चैत्यगृहं जिनप्रतिमा दर्शनं च जिनबिंबम् ।
भणितं सुवीतरागं जिनमुद्रा ज्ञानमात्मार्थम्[1] ॥ ३ ॥
अर्हता सुदृष्टं यः देवः तीर्थमिह च अर्हन् ।
प्रव्रज्या गुणविशुद्धा इति ज्ञातव्याः यथाक्रमशः ॥ ४ ॥

अर्थ—आयतन, चैत्यगृह, जिनप्रतिमा, दर्शन, जिनबिंब कैसा है जिनबिंब भलेप्रकार वीतराग है रागसहित नाहीं जिनमुद्रा, ज्ञान सो कैसा आत्माही है अर्थ कहिये प्रयोजन जामैं, ऐसै सात, तौ ये निश्चय, वीत-

१—संस्कृत सटीक प्रतिमें 'आत्मस्थ' ऐसा पाठ है ।

राग देवनै कहे तैसैं यथा अनुक्रमतैं जाननें, बहुरि देव तीर्थंकर, अरहंत अर गुणकरि विशुद्ध प्रव्रज्या ये ग्यार जो अरहंत भगवान कहे तेमैं इस ग्रंथविषैं जानना, ऐसैं ये ग्यारह स्थल भये ॥ ३—४ ॥

भावार्थ—इहां ऐसा आशय जानना जो धर्म मार्गमैं कालदोपतैं अनेक मत भये हैं तथा जैनमतमैं भी भेद भये हैं तिनिमैं आयतन आदिविषैं विपर्यय भया है तिनिका परमार्थ भूत साचा स्वरूप तौ लोक जानै नाहीं अर धर्मके लोभी भये जैसी बाह्य प्रवृत्ति देखैं तिसहीमैं प्रवर्त्तने लगिजांय, तिनिकूं संबोधनेंके अर्थि यहु बोधपाहुड रच्या है तामैं आयतन आदि ग्यारह स्थानकनिका परमार्थभूत साचा स्वरूप जैसा सर्वज्ञ देवनैं कह्या है तैसा कहियेगा, अनुक्रमतैं जैसें नाम कहे तैसेंही अनुक्रमकरि इनिका व्याख्यान करियेगा सो जानने योग्य है ॥ ३-४ ॥

आगैं प्रथमही आयतन कह्या ताका निरूपण करै हैं;—

मणवयणकायदव्वा आयत्ता[1] जस्स इंदिया विसया ।
आयदणं जिणमग्गे णिद्दिट्ठं संजयं रूवं ॥ ५ ॥

मनोवचनकायद्रव्याणि आयत्ताः यस्य ऐंद्रियाः विषयाः ।
आयतनं जिनमार्गे निर्दिष्टं संयतं रूपम् ॥ ५ ॥

अर्थ—जिनमार्ग विषैं संयमसहित मुनिरूप है सो आयतन कह्या है। कैसा है मुनिरूप—जाकै मन वचन काय द्रव्यरूप हैं ते तथा पाच इन्द्रियनिके स्पर्श रस गंध वर्ण शब्द ये विषय हैं ते 'आयत्ता' कहिये आधीन हैं वशीभूत हैं, इनिकै संयमी मुनि आधीन नाहीं है ते मुनिकै वशीभूत हैं, ऐसा संयमी है सो आयतन है ॥ ५ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

मय राय दोस मोहो कोहो लोहो य जस्स आयत्ता ।
पंचमहव्वयधारा आयदणं महरिसी भणियं ॥ ६ ॥

1—संस्कृत सटीक प्रतिमें 'आसत्ता' ऐसा पाठ है जिस की संस्कृत 'आसक्ता' है

मदः रागः द्वेषः मोहः क्रोधः लोभः च यस्य आयत्ताः ।
पंचमहाव्रतधराः आयतनं महर्षयो भणिताः ॥ ६ ॥

अर्थ—जा मुनिकै मद राग द्वेष मोह क्रोध अर चकारतैं माया आदिक ये सर्व 'आयत्ता' कहिये निग्रहकूं प्राप्त भये बहुरि पांच महाव्रत जे अहिंसा सत्य अचौर्य ब्रह्मचर्य अर परिग्रहका त्याग इनिका धारी होय ऐसा महामुनि ऋषीश्वर आयतन कह्या है ॥

भावार्थ—पहली गाथामैं तौ बाह्यका स्वरूप कह्या था इहां बाह्य आभ्यंतर दोऊ प्रकार सयमी होय सो आयतन है ऐसा जानना ॥ ६ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

सिद्धं जस्स सदत्थं विसुद्धझाणस्स णाणजुत्तस्स ।
सिद्धायदणं सिद्धं मुणिवरवसहस्स मुणिदत्थं ॥ ७ ॥

सिद्धं यस्य सदर्थं विशुद्धध्यानस्य ज्ञानयुक्तस्य ।
सिद्धायतनं सिद्धं मुनिवरवृषभस्य मुनितार्थम् ॥ ७ ॥

अर्थ—जा मुनिकै सदर्थ कहिये समीचीन अर्थ जो शुद्ध आत्मा सो सिद्ध भया होय सिद्धायतन है, कैसा है मुनि–विशुद्ध है ध्यान जाकै धर्मध्यानकूं साधि शुक्लध्यानकूं प्राप्त भया है, बहुरि कैसा है-ज्ञानकरि सहित है केवलज्ञानकूं प्राप्त भया है, बहुरि कैसा है–घातिकर्मरूप मलतैं रहित है याहीतैं मुनिनिमैं वृषभ कहिये प्रधान है, बहुरि कैसा है–जानें है समस्त पर्याय जानैं ऐसे मुनिप्रधानकूं सिद्धायतन कहिये ॥

भावार्थ—ऐसैं तीन गाथामै आयतनका स्वरूप कह्या, तहां पहली-गाथामैं तौ संयमी सामान्यका बाह्यरूप प्रधानकरि कह्या, दूजीमै अतरग बाह्य दोऊकी शुद्धतारूप ऋद्धिधारी मुनि ऋषीश्वर कह्या, बहुरि इस तीसरी गाथामै केवलज्ञानी है सो मुनिनिमैं प्रधान है ताकूं सिद्धायतन कह्या है । इहां ऐसा जानना जो आयतन नाम जामैं वसिये निवास

करिये ताका है सो धर्मपद्धतिमैं जो धर्मात्मा पुरुपके आश्रय करनेयोग्य होय सो धर्मायतन है सो ऐसे मुनिही धर्मके आयतन हैं, अन्य केई भेपधारी पाखंडी विपय कपायनिमैं आसक्त परिग्रहधारी धर्मके आयतन नाही हैं तथा जैनमतमै भी जे सूत्रविरुद्ध प्रवर्त्तें हैं ते भी आयतन नांही हैं, ते सर्व अनायतन हैं, तथा बौद्धमतमै पाच इन्द्रिय, पाच तिनिके विपय, एक मन, एक धर्मायतन शरीर, ऐसैं बारह आयतन कहे हैं ते भी कल्पित हैं. यातैं जैसा आयतन कह्या तैसा ही जानना, धर्मात्माकूं तिसहीका आश्रय करना अन्यकी स्तुति प्रशंसा विनयादिक न करना, यह बोधपाहुड ग्रंथ करनेका आशय है। बहुरि जामैं ऐसे मुनि वसैं ऐसा क्षेत्रकूं भी आयतन कहिये है सो यह व्यवहार है ॥ ७ ॥

आगैं चैत्यगृहका निरूपण करैं हैं --

बुद्धं जं बोहंतो अप्पाणं चेदयाइं अण्णं च ।
पंचमहव्वयसुद्धं णाणमयं जाण चेदिहरं ॥ ८ ॥

बुद्धं यत् बोधयन् आत्मानं चैत्यानि अन्यत् च ।
पंचमहाव्रतशुद्धं ज्ञानमयं जानीहि चैत्यगृहम् ॥ ८ ॥

अर्थ—जो मुनि बुद्ध कहिये ज्ञानमयी ऐसा आत्मा ताहि जानता होय बहुरि अन्य जीवनकूं चैत्य कहिये चेतना स्वरूप जानता होय बहुरि आप ज्ञानमयी होय बहुरि पांच महाव्रतनिकरि शुद्ध होय निर्मल होय ता मुनिकू हे भव्य ! तू चैत्यगृह जानि ॥

भावार्थ--जामैं आपा परका जाननेवाला ज्ञानी निःपाप निर्मल ऐसा चैत्य कहिये चेतनास्वरूप आत्मा वसै सो चैत्यगृह है सो ऐसा चैत्यगृह सयमी मुनि है, अन्य पापाण आदिका मंदिरकूं चैत्यगृह कहनां व्यवहार है ॥ ८ ॥

आगैं फेरि कहै हैं:—

चेइय बंधं मोक्खं दुक्खं सुक्खं च अप्पयं तस्स ।
चेइहरं जिणमग्गे छक्कायहियंकरं भणियं ॥ ९ ॥

चैत्यं बंधं मोक्षं दुःखं सुखं च आत्मकं तस्य ।
चैत्यगृहं जिनमार्गे षट्कायहितंकरं भणितम् ॥ ९ ॥

अर्थ—जाकै बंध अर मोक्ष बहुरि सुख अर दुःख ये आत्माके होंय जाकै स्वरूपमैं होंय सो चैत्य कहिये जातैं चेतना स्वरूप होय ताहीकै बंध मोक्ष सुख दुःख सभवै ऐसा जो चैत्यका गृह होय सो चैत्यगृह है सो जिनमार्गविषैं ऐसा चैत्यगृह छह कायका हित करनेवाला होय सो ऐसा मुनि है सो पाच थावर अर त्रसमैं विकलत्रय अर असैनी पंचेंद्रियतांई केवल रक्षाही करने योग्य है तातैं तिनिकी रक्षा करनेका उपदेश करै है, तथा आप तिनिका घात न करै है तिनिका यही हित है, बहुरि सैनी पंचेंद्रिय जीव हैं तिनिकी रक्षा भी करै है रक्षाका उपदेश भी करै है तथा तिनिकूं संसारतैं निवृत्तिरूप मोक्ष होनेंका उपदेश करै है ऐसे मुनिराजकूं चैत्यगृह कहिये ॥

भावार्थ—लौकिक जन चैत्यगृहका स्वरूप अन्यथा अनेक प्रकार मानैं हैं तिनिकूं सावधान किये हैं-जो जिनसूत्रमैं छह कायका हित करनेंवाला ज्ञानमयी संयमी मुनि है सो चैत्यगृह है, अन्यकूं चैत्यगृह कहना मानना व्यवहार है। ऐसैं चैत्यगृहका स्वरूप कह्या ॥ ९ ॥

आगैं जिनप्रतिमाका निरूपण करै हैं,—

सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाण ।
णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा ॥ १० ॥

स्वपरा जंगमदेहा दर्शनज्ञानेन शुद्धचरणानाम् ।
निर्ग्रन्थवीतरागा जिनमार्गे ईदृशी प्रतिमा ॥१०॥

अर्थ—दर्शन ज्ञान करि शुद्ध निर्मल है चारित्र जिनकै तिनिकी स्वपरा कहिये अपनी अर परकी चालती देह है सो जिनमार्ग विषैं जगम प्रतिमा है, अथवा स्वपरा कहिये आत्मातैं पर कहिये भिन्न है ऐसी देह है, सो कैसी है-निग्रंथ स्वरूप है जाकै किछू परिग्रहका लेश नाहीं ऐसी दिगंबरमुद्रा, बहुरि कैसी है-वीतराग स्वरूप है जाकै काहू वस्तुसौं राग द्वेष मोह नाहीं, जिनमार्ग विषैं ऐसी प्रतिमा कही है। दर्शन ज्ञान करि निर्मल चारित्र जिनकै पाइये ऐसे मुनिनिकी गुरु शिष्य अपेक्षा अपनी तथा परकी चालती देह निर्ग्रन्थ वीतरागमुद्रा स्वरूप है सो जिनमार्गविषैं प्रतिमा है अन्य कल्पित है अर धातु पाषाण आदिकरि दिगंबरमुद्रा स्वरूप प्रतिमा कहिये सो व्यवहार है सो भी बाह्य प्रकृति ऐसी ही होय सो व्यवहारमैं मान्य है ॥ १० ॥

आगैं फेरि कहै है,—

जं चरदि सुद्धचरणं जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं ।
सा होई वंदणीया णिग्गंथा संजदा पडिमा ॥ ११ ॥

यः चरति शुद्धचरणं जानाति पश्यति शुद्धसम्यक्त्वम् ।
सा भवति वंदनीया निर्ग्रन्था सांयता प्रतिमा ॥ ११ ॥

अर्थ—जो शुद्ध आचरणकूं आचरै बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि यथार्थ वस्तुकूं जानै है बहुरि सम्यग्दर्शनकरि अपनें स्वरूपकूं देखै है ऐसें शुद्ध सम्यक् जाकै पाइये है ऐसी निग्रंथ सयम स्वरूप प्रतिमा है सो वदिवे योग्य है ॥

भावार्थ- जाननेवाला देखनेवाला शुद्ध सम्यक्त्व शुद्ध चारित्र स्वरूप निग्रंथ सयमसहित ऐसा मुनिका स्वरूप है सो ही प्रतिमा है सो ही वदिवेयोग्य अन्य कल्पित वंदिवेयोग्य नाही है बहुरि तैसेही रूपसदृश धातुपाषाणकी प्रतिमा होय सो व्यवहारकरि वंदिवेयोग्य है ॥ ११ ॥

आगे फेरि कहै हैं,—

दंसण अणंत णाणं अणंतवीरिय अणंतसुक्खा य।
सासयसुक्ख अदेहा मुक्का कम्मट्ठबंधेहिं ॥ १२ ॥
निरुवममचलमखोहा णिम्मिविया जंगमेण रूवेण।
सिद्धट्ठाणम्मि ठिया वोसरपडिमा धुवा सिद्धा ॥१३॥

दर्शनं अनंतं ज्ञानं अनन्तवीर्याः अनंतसुखाः च।
शाश्वतसुखा अदेहा मुक्ताः कर्माष्टकबंधैः ॥ १२ ॥
निरुपमा अचला अक्षोभाः निर्मापिता जंगमेन रूपेण।
सिद्धस्थाने स्थिताः व्युत्सर्गप्रतिमा ध्रुवाः सिद्धाः ॥१३॥

अर्थ—जो अनतदर्शन अनतज्ञान अनतवीर्य अनंतसुख इनिकरि सहित है, बहुरि शाश्वता अविनाशीसुखस्वरूप है, बहुरि अदेह है कर्म नोकर्मरूप पुद्गलमयी देह जिनिकै नाही है, बहुरि अष्टकर्मके बंधनकरि रहित है, बहुरि उपमाकरि रहित है जाकी उपमा दीजिये ऐसा लोकमैं वस्तु नाही है बहुरि अचल है प्रदेशनिका चलना जिनकै नाही है बहुरि अक्षोभ है जिनिकै उपयोगमैं किछू क्षोभ नाही है निश्चल है, बहुरि जंगमरूप करि निर्मित है कर्मतैं निर्मुक्त हुये पीछैं एक समय मात्र गमन रूप होय हैं, तातैं जंगमरूपकरि निर्मापित है, बहुरि सिद्ध-स्थान जो लोकका अग्रभाग ता विषैं स्थित है याहीतैं व्युत्सर्ग कहिये कायरहित है जैसा पूर्वं देहमैं आकार था तैसाही प्रदेशनिका आकार किछू घाटि ध्रुव है, संसारतैं मुक्त होय एक समय गमनकरि लोककै अग्रभाग विषैं जाय तिष्ठैं पीछै चलाचल नाही है ऐसी प्रतिमा सिद्ध है ॥

भावार्थ—पहलै दोय गाथामैं तौ जंगम प्रतिमा संयमी मुनिनिकी देहसहित कही, बहुरि इनि दोय गाथानिमैं थिर प्रतिमा सिद्धनिकी कही

१—संस्कृत सटीक प्रतिमें 'निर्मापिता अजगमेन रूपेण' ऐसी छाया है।

ऐसैं जंगम थावर प्रतिमाका स्वरूप कह्या अन्य केई अन्यथा बहुत प्रकार कल्पै हैं सो प्रतिमा वंदिवे योग्य नाही है ॥

इहां प्रश्न—जो यह तौ परमार्थ स्वरूप कह्या अर बाह्य व्यवहारमैं प्रतिमा पाषाणादिककी वंदिये है सो कैसैं ? ताका समाधान—जो बाह्य व्यवहारमैं मतांतरके भेदतैं अनेक रीति प्रतिमाकी प्रवृत्ति है सो इहां परमार्थकूं प्रधानकरि कह्या है, बहुरि व्यवहार है सो जैसा प्रतिमाका परमार्थरूप होय ताहीकूं सूचता होय सो निर्वाध होय है जैसा परमार्थरूप आकार कह्या तैसाही आकाररूप व्यहार होय सो व्यवहार भी प्रशस्त है, व्यवहारी जीवनिकै ये भी वंदिवेयोग्य है। स्याद्वाद न्यायकरि साधे परमार्थ व्यवहारमैं विरोध नाही है ॥ १२-१३ ॥

ऐसैं जिनप्रतिमाका स्वरूप कह्या।

आगै दर्शनका स्वरूप कहैं हैं,—

दंसेइ मोक्खमग्गं सम्मत्तं संयमं सुधम्मं च ।
णिग्गंथं णाणमय जिणमग्गे दंसणं भणियं ॥ १४ ॥

दर्शयति मोक्षमार्गं सम्यक्त्वं संयमं सुधर्मं च ।
निर्ग्रंथं ज्ञानमयं जिनमार्गे दर्शनं भणितम् ॥ १४ ॥

अर्थ—जो मोक्षमार्गकूं दिखावै सो दर्शन है, कैसा है मोक्षमार्ग—सम्यक्त्व कहिये तत्वार्थश्रद्धान लक्षण सम्यक्त्वस्वरूप है, बहुरि कैसा है—संयम कहिये चारित्र पंच महाव्रत पंचसमिति तीन गुप्ति ऐसैं तेरह प्रकार चारित्ररूप है, बहुरि कैसा है—सुधर्म कहिये उत्तमक्षमादिक दशलक्षण धर्मरूप है, बहुरि कैसा है—निर्ग्रंथरूप है बाह्य अभ्यंतर परिग्रह रहित है, बहुरि कैसा है—ज्ञानमयी है जीव अजीवादि पदार्थनिकूं जाननेवाला है, इहां निर्ग्रंथ अर ज्ञानमयी ये दोय विशेषण दर्शनके भी

होय हैं जातैं दर्शन है सो बाह्य तौ याकी मूर्ति निर्ग्रंथ है बहुरि अंतरंग ज्ञानमयी है। ऐसा मुनिके रूपकौं जिनमार्गमैं दर्शन कह्या है तथा ऐसे रूपका श्रद्धानरूप सम्यक्त्वस्वरूपकूं दर्शन कहिये है।

भावार्थ—परमार्थरूप अंतरंग दर्शन तौ सम्यक्त्व है अर बाह्य याकी मूर्त्ति ज्ञानसहित ग्रहण किया निर्ग्रंथरूप ऐसा मुनिका रूप है सो दर्शन है जातैं मतकी मूर्त्तिकूं दर्शन कहना लोकमैं प्रसिद्ध है ॥ १४ ॥

आगैं फेरि कहैं हैं,—

जह फुल्लं गंधमयं भवदि हु खीरं स घियमयं चावि।
तह दंसणं हि सम्मं णाणमयं होइ रूवत्थं ॥ १५ ॥

यथा पुष्पं गंधमयं भवति स्फुटं क्षीरं तत् घृतमयं चापि।
तथा दर्शनं हि सम्यग्ज्ञानमयं भवति रूपस्थम् ॥ १५ ॥

अर्थ—जैसैं फूल है सो गंधमयी है बहुरि दूध है सो घृतमयी है तैसैं दर्शन कहिये मत विषैं सम्यक्त्व है कैसा है दर्शन अंतरंग तौ ज्ञानमयी है बहुरि बाह्य रूपस्थ है मुनिका रूप है तथा उत्कृष्ट श्रावक अर्जिकाका रूप है ॥

भावार्थ—दर्शन नाम मतका प्रसिद्ध है सो इहां जिनदर्शनविषैं मुनि-श्रावक आर्यिकाका जैसा बाह्य भेष कह्या सो दर्शन जानना अर याकी श्रद्धा सो अन्तरङ्ग दर्शन जानना सो ये दोऊही ज्ञानमयी हैं यथार्थ तत्वार्थका जाननेंरूप सम्यक्त्व जामैं पाइये है याहीतैं फूलमैं गंधका अर दूधमें घृतका दृष्टांत युक्त है ऐसैं दर्शनका रूप कह्या। अन्यमतमैं तथा कालदोषकरि जिनमतमैं जैनाभास भेषी अनेक प्रकार अन्यथा कहै हैं सो कल्याणरूप नाहीं संसारका कारण है ॥ १५ ॥

आगैं जिनबिंबका निरूपण करै हैं;—

जिणबिंबं णाणमयं संजमसुद्धं सुवीयरायं च।
जं देइ दिक्खसिक्खा कम्मक्खयकारणे सुद्धा ॥१६॥

जिनबिंबं ज्ञानमयं संयमशुद्धं सुवीतरागं च।
यत् ददाति दीक्षाशिक्षे कर्मक्षयकारणे शुद्धे ॥ १६ ॥

अर्थ—जिनबिंब कैसा है—ज्ञानमयी है अर संयमकरि शुद्ध है बहुरि अतिशयकरि वीतराग है बहुरि जो कर्मका क्षयका कारण अर शुद्ध है ऐसी दीक्षा अर शिक्षा दे है।

भावार्थ—जो जिन कहिये अरहन्त सर्वज्ञका प्रतिबिंब कहिये ताकी जायगा तिसकी ज्यौं माननें योग्य होय, ऐसे आचार्य हैं सो दीक्षा कहिये व्रतका ग्रहण अर शिक्षा कहिये व्रतका विधान बतावना ये दोऊ कार्य भव्यजीवनिकूं दे है, यातैं प्रथम तौ सो आचार्य ज्ञानमयी होय जिनसूत्रका जिनकूं ज्ञान होय ज्ञान विना यथार्थ दीक्षा शिक्षा कैसे होय अर आप संयमकरि शुद्ध होय ऐसा न होय तौ अन्यकूं भी संयम शुद्ध न करावै बहुरि अतिशयकरि वीतराग न होय तौ कषायसहित होय तब दीक्षा शिक्षा यथार्थ न दे, यातैं ऐसे आचार्यकूं जिनके प्रतिबिंब जाननें ॥ १६ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

तस्स य करह पणामं सव्वं पुज्जं च विणय वच्छल्लं।
जस्स य दंसण णाणं अत्थि धुवं चेयणाभावो ॥ १७ ॥
तस्य च कुरुत प्रणामं सर्वां पूजां च विनयं वात्सल्यम्।
यस्य च दर्शनं ज्ञानं अस्ति ध्रुवं चेतनाभावः ॥ १७ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त जिनबिंबकूं प्रणाम करो बहुरि सर्व प्रकार पूजा करो विनय करो वात्सल्य करो, काहेतैं—जाकै ध्रुव कहिये निश्चयतैं दर्शन ज्ञान पाइये है बहुरि चेतनाभाव है ॥

भावार्थ—दर्शन ज्ञानमयी चेतनाभावसहित जिनबिंब आचार्य है तिनिकूं प्रणामादिक करना। इहां परमार्थ प्रधान कह्या है तहां जड़ प्रतिबिंबकी गौणता है ॥ १७ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

तववयगुणेहिं सुद्धो जाणदि पिच्छेहि सुद्धसम्मत्तं।
अरहंतमुद्द एसा दायारी दिक्खसिक्खा य॥१८॥
तपोव्रतगुणैः शुद्धः जानाति पश्यति शुद्धसम्यक्त्वम्।
अर्हन्मुद्रा एषा दात्री दीक्षाशिक्षाणां च॥१८॥

अर्थ—जो तप अर व्रत अर गुण कहिये उत्तरगुण तिनिकरि शुद्ध होय बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि पदार्थनिकू यथार्थ जानै बहुरि सम्यग्दर्शनकरि पदार्थनिकू देखै याहीतैं शुद्ध सम्यक्त्व जाकै ऐसा जिनबिंब आचार्य है सो येही दीक्षा शिक्षाकी देनेवाली अरहत की मुद्रा है॥

भावार्थ—ऐसा जिनबिंब है सो जिनमुद्राही है ऐसैं जिनबिंबका स्वरूप कह्या है॥१८॥

आगैं जिनमुद्राका स्वरूप कहैं हैं;—

दढसंजममुद्दाए इंदियमुद्दा कसायदढमुद्दा।
मुद्दा इह णाणाए जिणमुद्दा एरिसा भणिया॥१९॥
दृढसंयममुद्रया इन्द्रियमुद्रा कषायदृढमुद्रा।
मुद्रा इह ज्ञानेन जिनमुद्रा ईदृशी भणिता॥१९॥

अर्थ—दृढ कहिये वज्रवत् चलाया न चलै ऐसा संयम—इन्द्रिय मनका वश करना, षट्जीवनिकायकी रक्षा करना, ऐसे संयमरूप मुद्राकरि तौ पांच इन्द्रियनिकूं विषयनिमैं न प्रवर्त्तावना तिनिका संकोच करना यह तौ इंद्रियमुद्रा है, बहुरि ऐसा संयम करिही कषायनिकी प्रवृत्ति जामैं नहीं ऐसी कषायदृढमुद्रा है, बहुरि ज्ञानका स्वरूपविषैं लगावनां ऐसे ज्ञानकरि सर्व बाह्य मुद्रा शुद्ध होय है, ऐसैं जिनशासनविषैं ऐसी जिनमुद्रा होय है॥

भावार्थ—संयमसहित होय इन्द्रिय जाकै वशीभूत होय अर कषायनिकी प्रवृत्ति नाही होती होय अर ज्ञानस्वरूपमैं लगावता होय ऐसा मुनि होय सो ही जिनमुद्रा है॥१९॥

भावार्थ—धनुषधारी धनुषका अभ्यास रहित अर वेधक जो बाण ताकरि रहित होय तौ निशानाकूं न पावै तैसैं ज्ञानकरि रहित अज्ञानी मोक्षमार्गका निशाना परमात्मा स्वरूप है ताकूं न पहचानैं तब मोक्षमार्गकी सिद्धि न होय तातैं ज्ञानकूं जानना, परमात्मारूप निमाना ज्ञानरूप बाणकरि वेधना योग्य है ॥ २१ ॥

आगैं कहै है ऐसा ज्ञान विनय सयुक्त पुरुष होय सो मोक्ष पावै है,-

णाणं पुरिसस्स हवदि लहदि सुपुरिसो वि विणयसंजुत्तो।
णाणेण लहदि लक्खं लक्खंतो मोक्खमग्गस्स ॥ २२ ॥

ज्ञानं पुरुषस्य भवति लभते सुपुरुषोऽपि विनयसंयुक्तः ।
ज्ञानेन लभते लक्ष्यं लक्षयन् मोक्षमार्गस्य ॥ २२ ॥

अर्थ—ज्ञान होय है सो पुरुषकै होय है बहुरि पुरुषही विनय संयुक्त होय सो ज्ञानकूं पावै है, बहुरि ज्ञान पावै तब तिस ज्ञानहीकरि मोक्षमार्गका लक्ष्य जो परमात्माका स्वरूप ताकूं लक्षता ध्यावता सता तिस लक्षकू पावै है ॥

भावार्थ—ज्ञान पुरुषकै होय है बहुरि पुरुषही विनयवान होय सो ज्ञानकूं पावै है तिस ज्ञानहीकरि शुद्धआत्माका स्वरूप जानिये है यातैं विशेष ज्ञानीनिका विनयकरि ज्ञानकी प्राप्ति करनीं जातैं निज शुद्ध स्वरूपकूं जानि मोक्ष पाइये है, इहा जे विनयकरि रहित होय यथार्थ सूत्र पदतैं चिगे होय भ्रष्ट भये होय तिनिका निषेध जानना ॥ २२ ॥

आगैं याहीकूं दृढ करै हैं;—

मइधणुहं जस्स थिरं सुदगुण बाणा सुअत्थि रयणत्तं ।
परमत्थबद्धलक्खो ण वि चुक्कदि मोक्खमग्गस्स ॥२३॥

मतिधनुर्यस्य स्थिरं श्रुतं गुणः बाणाः सुसंति रत्नत्रयं ।
परमार्थबद्धलक्ष्यः नापि स्खलति मोक्षमार्गस्य ॥२३॥

अर्थ—जो मुनिकै मतिज्ञानरूप धनुष थिर होय, बहुरि श्रुतज्ञानरूप जाकै गुण कहिये प्रत्यंचा होय, बहुरि रत्नत्रय रूप जाकै भला बाण होय, बहुरि परमार्थ स्वरूप निज शुद्धात्मस्वरूपका संबंधरूप किया है लक्ष्य जानैं ऐसा मुनि है सो मोक्षमार्गकूं नांहीं चूकै है ॥

भावार्थ—धनुषकी सर्व सामग्री यथावत मिलै तब निसानां नाहीं चूकै है तैसैं मुनिके मोक्षमार्गकी यथावत सामग्री मिलै तब मोक्षमार्गतैं भ्रष्ट नाही होय है ताका साधनकरि मोक्ष पावै है यह ज्ञानका माहात्म्य है तातैं जिनागम अनुसार सत्यार्थ ज्ञानीनिका विनयकरि ज्ञानका साधन करना ॥ २३ ॥

ऐसैं ज्ञानका निरूपण किया।

आगैं देवका स्वरूप कहै हैं,—

सो देवो जो अत्थं धम्मं कामं सुदेइ णाणं च ।
सो देइ जस्स अत्थि हु अत्थो धम्मो य पव्वज्जा ॥२४॥

सः देवः यः अर्थं धर्मं कामं सुददाति ज्ञानं च ।
सः ददाति यस्य अस्तु तु अर्थः कर्म च प्रव्रज्या ॥२४॥

अर्थ—देव जाकूं कहिये जो अर्थ कहिये धन अर धर्म अर काम कहिये इच्छाका विषय ऐसा भोग बहुरि मोक्षका कारण ज्ञान इनि च्यारिनिकूं देवै। तहा यह न्याय है जो वाकै वस्तु होय सो देवै अर जाकै जो वस्तु न होय सो कैसैं दे, इस न्यायकरि अर्थ धर्म स्वर्गादिके भोग अर मोक्षका सुखका कारण जो प्रव्रज्या कहिये दीक्षा जाकै होय सो देव जानना ॥ २४ ॥

आगै धर्मादिका स्वरूप कहै हैं जिनिके जानैं देवादिका स्वरूप जान्या जाय;—

धम्मो दयाविसुद्धो पव्वज्जा सव्वसंगपरिचत्ता ।
देवो ववगयमोहो उदययरो भव्वजीवाणं ॥ २५ ॥

धर्मः दयाविशुद्धः प्रव्रज्या सर्वसंगपरित्यक्ता ।
देवः व्यपगतमोहः उदयकरः भव्यजीवानाम् ॥ २५ ॥

अर्थ---धर्म है सो तौ दयाकरि विशुद्ध है, बहुरि प्रव्रज्या है सो सर्व परिग्रहतै रहित है, बहुरि देव है सो नष्ट भया है मोह जाका ऐसा है सो भव्य जीवनिकै उदयका करनेवाला है ॥

भावार्थ—लोकमैं यह प्रसिद्ध है जो धर्म अर्थ काम मोक्ष ये च्यार पुरुषके प्रयोजन हैं इनिकै अर्थि पुरुष काहू वदै पूजै है, बहुरि यह न्याय है जो जाकै जो वस्तु होय सो अन्यकूं दे अणछती कहांतैं ल्यावै तातैं ये च्यार पुरुषार्थ जिनदेवकै पाइये है, धर्म तौ जिनकै दयारूप पाइये है ताकूं साधि तीर्थंकर भये तब धनकी अर ससारके भोगकी प्राप्ति भई लोक पूज्य भए, बहुरि तीर्थंकर परम पदवीमैं दीक्षा ले सर्व मोहतैं रहित होय परमार्थस्वरूप आत्मीक धर्मकू साधि मोक्षसुखकूं पाया सो ऐसैं तीर्थंकर जिन हैं, सोही देव है लोक अज्ञानी जिनिकू देव मानैं हैं तिनिकै धर्म अर्थ काम मोक्ष नांही जातैं केई हिंसक हैं केई विषय सक्त है मोही हैं तिनिकै धर्म काहेका ? बहुरि अर्थ कामकी जिनकै वाछा पाइये तिनिकै अर्थ काम काहेका ? बहुरि जन्म मरणतैं सहित हैं तिनिकै मोक्ष कैसैं ? ऐसैं देव साचा जिनदेवही है येही भव्य जीवनिकै मनोरथ पूर्ण करै हैं, अन्य सर्व कल्पित देवहैं ॥ २५ ॥

ऐसैं देवका स्वरूप कह्या ।

आगैं तीर्थका स्वरूप कहै हैं,—

वयसम्मत्तविसुद्धे पंचेंदियसंजदे णिरावेक्खे ।
ण्हाएउ मुणी तित्थे दिक्खासिक्खासुण्हाणेण ॥ २६ ॥

व्रतसम्यक्त्वविशुद्धे पंचेंद्रियसंयते निरपेक्षे ।
स्नातु मुनिः तीर्थे दीक्षाशिक्षासुस्नानेन ॥ २६ ॥

अर्थ—व्रत सम्यक्त्वकरि विशुद्ध अर पाच इंद्रियनिकरि सयत कहिये संवरसहित बहुरि निरपेक्ष कहिये ख्याति लाभ पूजादिक इस लोकका फलकी तथा परलोकविषैं स्वर्गादिकनिके भोगनिकी अपेक्षातैं रहित ऐसा आत्म स्वरूप तीर्थ विषै दीक्षा शिक्षारूप स्नानकरि पवित्र होहू ॥

भावार्थ—तत्वार्थश्रद्धानलक्षण सहित पंच महाव्रतकरि शुद्ध अर पंच इंद्रियनिके विषयनितैं विरक्त इस लोक परलोक विषैं विषय भोग-निकी वाछातैं रहित ऐसैं निर्मल आत्माका स्वभावरूप तीर्थविषैं स्नान किये पवित्र होय हैं ऐसी प्रेरणा करै है ॥ २६ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

ज णिम्मलं सुधम्मं सम्मत्त संजमं तवं णाणं।
तं तित्थं जिणमग्गे हवेइ जदि संतिभावेण ॥२७॥

यत् निर्मलं सुधर्मं सम्यक्त्वं संयमं तपः ज्ञानम् ।
तत् तीर्थं जिनमार्गे भवति यदि शान्तभावेन ॥ २७ ॥

अर्थ-जिनमार्गविषैं सो तीर्थ है जो निर्मल उत्तमक्षमादिक धर्म तथा तत्त्वार्थश्रद्धानलक्षण शंकादिमलरहित सम्यक्त्व तथा निर्मल इन्द्रिय मन-का वशकरनां षट्कायके जीवनिकी रक्षा करना ऐसा निर्मल सयम तथा अनशन अवमौदर्य व्रतपरिसंख्यान रसपरित्याग विविक्तशय्यासन काय-क्लेश ऐसा बाह्य तौ छह प्रकार बहुरि प्रायश्चित्त विनय वैयावृत्त्य स्वाध्याय व्युत्सर्ग ध्यान ऐसैं छह प्रकार अंतरग ऐसै बारह प्रकार निर्मल तप, बहुरि जीव अजीव आदिक पदार्थनिका यथार्थ ज्ञान ये तीर्थ हैं ये भी जो शांतभावसहित होय कषायभाव न होय तब निर्मल तीर्थ हैं जातैं ये क्रोधादिभावसहित होय तौ मलिनता होय निर्मलता न रहै ॥

भावार्थ—जिनमार्गविषैं ऐसा तीर्थ कह्या है लोक सागर नदीनिकूं तीर्थ मानि स्नान करि पवित्र भया चाहै हैं सो शरीरका बाह्यमल इनितैं

किंचित् उतरै है अर शरीरमैं धातु उपधातुरूप अन्तर्मल इनितैं उतरै नांही अर ज्ञानावरण आदि कर्मरूप मल अर अज्ञान राग द्वेष मोह आदि भावकर्मरूप मल आत्माके अन्तर्मल हैं सो तौ इनितैं किंचित्मात्र भी उतरै नांही उलटा हिंसादिकतैं पापकर्मरूप मल लागै है यातैं सागर नदी आदिकूं तीर्थ मानना भ्रम है। जाकरि तिरिये सो तीर्थ है ऐसा जिनमार्गमैं कह्या है सो ही संसारसमुद्रतैं तारनेवाला जानना ॥ २७ ॥

ऐसैं तीर्थका स्वरूप कह्या।

आगैं अरहंतका स्वरूप कहै हैं;—

णामे ठवणे हि य संदव्वे भावे हि सगुणपज्जाया।
चउणागदि संपदिमे[1] भावा भावंति अरहंतं॥ २८ ॥

नाम्नि संस्थापनायां हि च संद्रव्ये भावे च सगुणपर्यायाः[2]।
च्यवनमागतिः संपत् इमे भावा भावयंति अर्हन्तम् ॥ २८ ॥

अर्थ.—नाम स्थापना द्रव्य भाव ये चार भाव कहिये पदार्थ हैं ते अरहंतकूं जनावैं हैं बहुरि सगुणपर्याया. कहिये अरहतके गुण पर्यायनिसहित बहुरि चउणा कहिये च्यवन अर आगति बहुरि संपदा ऐसे ये भाव अरहंतकूं जनावै है॥

भावार्थ—अरहंत शब्दकरि यद्यपि सामान्य अपेक्षा केवलज्ञानी होय ते सर्वही अरहंत हैं तथापि इहां तीर्थंकरपदकूं प्रधानकरि कथन करिये है तातैं नामादिककरि जनावना कह्या है। तहां लोकव्यवहारमैं नाम आदिकी प्रवृत्ति ऐसैं है जो जा वस्तुका नाम होय तैसा गुण न होय ताकूं नामनिक्षेप कहिये। बहुरि जिस वस्तुका जैसा आकार होय

१—संस्कृत सटीक प्रति में 'सपदिमं' ऐसा पाठ है।

२—'सगुणपज्जाया' इस पद की 'स्वगुणपर्याया.' ऐसी संस्कृत मुद्रित संस्कृत प्रतिमें है।

तिस आकार ताकी काष्ठ पाषाणादिककी मूर्त्ति बनाय ताका संकल्प करिये ताकूं स्थापना कहिये। बहुरि जिस वस्तुकी पहली अवस्था होय तिसहीकूं आगली अवस्था प्रधान करि कहै ताकूं द्रव्य कहिये। बहुरि वर्त्तमानमैं जो अवस्था होय ताकूं भाव कहिये। ऐसैं च्यार निक्षेपकी प्रवृत्ति है ताका कथन शास्त्रमैं भी लोककूं समझावनेकूं कियाहै, जो निक्षेपविधान करि नाम स्थापना द्रव्यकू भाव न समझनां, नामकूं नाम समझना, स्थापनाकूं स्थापना समझनी, द्रव्यकूं द्रव्य समझनां, भावकूं भाव समझनो, अन्यकू अन्य समझै व्यभिचारनामा दोष आवे है ताके मेटनेंकूं लोककूं यथार्थ समझानेकूं शास्त्रविषैं कथन है सो इहा तैसा निक्षेपका कथन न समझना, इहा तौ निश्चयनयकूं प्रधानकरि कथन है सो जैसा अरहंतका नाम है तैसाही गुणसहित नाम जानना, बहुरि स्थापना जैसी जाकी देह सहित मूर्त्ति है सो ही स्थापना जाननीं, बहुरि जैसा जाका द्रव्य है तैसा द्रव्य जाननां, बहुरि जैसा जाका भाव है तैसाही जाननां ॥ २८ ॥

ऐसैंही कथन आगैं करिये है तहां प्रथमही नामकूं प्रधान करि कहै हैं;—

दंसण अणंत णाणं मोक्खो णट्ठट्ठकम्मबंधेण।
णिरुवम गुणमारूढो अरहंतो एरिसो होई ॥२९॥

दर्शनं[1] अनंतं ज्ञानं मोक्षः नष्टाष्टकर्मबंधेन।
निरुपमगुणमारूढः अर्हन् ईदृशो भवति ॥२९॥

अर्थ—जाकै दर्शन अर ज्ञान ये तौ अनंत हैं घातिकर्मके नाशतैं सर्व ज्ञेय पदार्थनिकूं देखना जाननां जाकै है, बहुरि नष्ट भया जो अष्ट कर्मनिका बंध ताकरि जाकै मोक्ष है, इहा सत्त्वकी अर उदयकी विवक्षा लेनीं,केवलीकै आठौंही कर्मका बंध नाही यद्यपि साता वेदनीयका बंध

१—सटीक संस्कृत प्रतिमें 'दर्शने अनंत ज्ञाने' ऐसा असम्मत पाठ है।

सिद्धांतमैं कह्या है तथापि स्थिति अनुभागरूप नाही तातैं अबंधतुल्यही है ऐसा आठूंही कर्म बंधके अभावकी अपेक्षा भावमोक्ष कहिये, बहुरि उपमारहित गुणनिकरि आरूढ है सहित है ऐसे गुण छद्मस्थमैं कहूंही नांही तातैं उपमारहित गुण जामैं है ऐसा अरहंत होय ॥

भावार्थ—केवल नाममात्रही अरहंत होय ताकूं अरहंत न कहिए ऐसे गुणनिकरि सहित होय ताकूं नाम अरहंत कहिये ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

जरवाहिजम्ममरणं चउगइगमणं च पुण्य पावं च ।
हंतूण दोसकम्मे हुउ णाणमयं च अरहंतो ॥३०॥

जराव्याधिजन्ममरणं चतुर्गतिगमनं पुण्यं पापं च ।
हत्वा दोषकर्माणि भूतः ज्ञानमयश्चार्हन् ॥३०॥

अर्थ—जरा कहिये बुढापा अर व्याधि कहिये रोग अर जन्म मरण च्यार गतिनिविषैं गमन पुण्य बहुरि पाप बहुरि दोषनिका उपजावनेंवाला कर्म तिनिका नाशकरि अर केवल ज्ञानमयी अरहंत हूवा होय सो अरहंत है ॥

भावार्थ—पहली गाथामैं तौ गुणनिका सद्भावकरि अरहंत नाम कह्या बहुरि इस गाथामैं दोषनिका अभावकरि अरहंत नाम कह्या । तहां राग द्वेष मद मोह अरति चिंता भय निद्रा विषाद खेद विस्मय ये ग्यारह दोष तौ घातिकर्मके उदयतैं होय हैं, बहुरि क्षुधा तृषा जन्म जरा मरण रोग खेद ये अघातिकर्मके उदयतैं होय है; तहां इस गाथामैं जरा रोग जन्म मरण च्यार गतिनिमैं गमनका अभाव कहनेंतैं तौ अघातिकर्मतैं भये दोषनिका अभाव जाननां जातैं अघातिकर्ममैं इनि दोषनिकी उपजावन-हारी पापप्रकृतिनिका उदयका अरहंतकै अभाव है, बहुरि रागद्वेषादिक दोषनिका घातिकर्मके अभावतैं अभाव है। इहां कोई पूछै—मरणका अर पुण्यका अभाव कह्या सो मोक्षगमन होना यह मरण अरहंतकै है

अर पुण्यप्रकृतिनिका उदय पाइये है, तिनिका अभाव कैसैं? ताका समाधान—इहा मरण होय करि फेरि संसारमैं जन्म होय ऐसा मरणकी अपेक्षा है ऐसा मरण अरहंतकै नाही तैसैंही जो पुण्यप्रकृतिका उदय पापप्रकृति सापेक्ष करै ऐसे पुण्यके उदयका अभाव जानना अथवा बंध अपेक्षा पुण्यकाभी बध नाही है सातावेदनीय बंधै सो स्थिति अनुभाग-विना अवधतुल्यही है। बहुरि कोई पूछै—केवलीकै असाता वेदनीयका उदयभी सिद्धांतमैं कह्या है ताकी प्रवृत्ति कैसै है? ताका समाधान—ऐसा जो असाताका निपट मंद अनुभाग उदय है अर साताका अति-तीव्र अनुभाग उदय है ताके वशतैं असाता कछू बाह्य कार्य करनें समर्थ नाही सूक्ष्म उदय देय खिरि जाय है तथा संक्रमणरूप होय सातारूप होय जाय है ऐसैं जानना। ऐसैं अनंत चतुष्टयकरि सहित सर्व दोषरहित सर्वज्ञ वीतराग होय सो नामकरि अरहंत कहिये ॥ ३० ॥

आगैं स्थापनाकरि अरहंतका वर्णन करैं हैं,—

गुणठाणमग्गणेहिं य पज्जत्तीपाणजीवठाणेहिं।
ठावण पंचविहेहिं पणयव्वा अरहपुरिसस्स ॥३१॥

गुणस्थानमार्गणाभिः च पर्याप्तिप्राणजीवस्थानैः।
स्थापना पंचविधैः प्रणेतव्या अर्हत्पुरुषस्य ॥ ३१ ॥

अर्थ-गुणस्थान मार्गणास्थान पर्याप्ति प्राण बहुरि जीवस्थान इनि पाच प्रकार करि अरहंत पुरुषकी स्थापना प्राप्त करनी अथवा ताकूं प्रणाम करना ॥

भावार्थ—स्थापनानिक्षेपमैं काष्ठपाषाणादिकमैं संकल्प करना कह्या है सो इहा प्रधान नाही इहां निश्चय प्रधान करि कथन है तहा गुण-स्थानादिककरि अरहंतका स्थापन कह्या है ॥ ३१ ॥

आगैं विशेष कहै हैं;—

तेरहमे गुणठाणे सजोइकेवलिय होइ अरहंतो।
चउतीस अइसयगुणा होंति हु तस्सट्ठ पडिहारा ॥३२॥

त्रयोदशे गुणस्थाने सयोगकेवलिकः भवति अर्हन्।
चतुस्त्रिंशत् अतिशयगुणा भवंति स्फुटं तस्याष्ट प्रातिहार्या ॥३२॥

अर्थ—गुणस्थान चौदह कहे हैं तिनिमैं सयोगकेवली नाम तेरहमा गुणस्थान है तिसविषै योगनिकी प्रवृत्तिसहित केवलज्ञानकरि सहित सयोगकेवली अरहत होय है, बहुरि चौतीस अतिशय ते हैं गुण जाकैं बहुरि ताकैं आठ प्रातिहार्य होय हैं ऐसा तौ गुणस्थानकरि स्थापना अरहंत कहिये॥

भावार्थ—इहा चौतीस अतिशय अर आठ प्रातिहार्य कहनें तैं तौ समवसरणमैं विराजमान तथा विहार करता अरहत है, बहुरि सयोग कहनेतैं विहारकी प्रवृत्ति अर वचनकी प्रवृत्ति सिद्ध होय है बहुरि केवली कहनेतै केवलज्ञानकरि सर्व तत्त्वका जानना सिद्ध होय है। तहा चौतीस अतिशय तौ ऐसैं-जन्मतै प्रगट होंय दश-मलमूत्रका अभाव १ पसेवका अभाव २ धवल रुधिर होय ३ समचतुरस्रसंस्थान ४ वज्रवृषभनाराच संहनन ५ सुंदररूप ६ सुगधशरीर ७ भले लक्षण होय ८ अनंतबल ९ मधुरवचन १० ऐसैं दश। बहुरि केवलज्ञान उपजे दश होय—उपसर्गका अभाव। १ अदयाका अभाव २ शरीरकी छाया पड़ै नहीं ३ चतुर्मुख दीखै ४ सर्व विद्याका स्वामीपणा ५ नेत्र टिमकारै नहीं ६ शतयोजनसुभिक्षता ७ आकाशगमन ८ कवलाहार नाही ९ नख केश वढै नाही १० ऐसैं दश। बहुरि चौदह देवकृत—सकलार्द्धमागधी भाषा १ सकलजीवनिमैं मैत्रीभाव २ सर्व ऋतुके फल फूल फलैं ३ दर्पणसमान भूमि ४ कटकरहित भूमि ५ मन्द सुगधपवन ६ सर्वकै आनद ७ गधोदकवृष्टि ८ पाद तलै कमलरचैं ९ सर्वधान्यनिष्पत्ति १० दशो दिशा निर्मल ११ देवनिको आह्वानन शब्द १२ धर्मचक्र आगै चलै १३ अष्ट

नांही है अर समुद्घात करै तो अनाहारक भी है ऐसैं दोऊ है। ऐसैं मार्गणा अपेक्षा अरहंतका स्थापन जाननां ॥ ३३ ॥

आगै पर्याप्तिकरि कहै हैं;—

आहारो य सरीरो इंदियमणआणपाणभासा य।
पज्जत्तिगुणसमिद्धो उत्तमदेवो हवइ अरहो ॥ ३४ ॥

आहारः च शरीरं इन्द्रियमनआनप्राणभाषाः च।
पर्याप्तिगुणसमृद्धः उत्तमदेवः भवति अर्हन् ॥ ३४ ॥

अर्थ—आहार बहुरि शरीर इंद्रिय मन आनप्राण कहिये श्वासोच्छ्वास भाषा ऐसैं छह पर्याप्ति हैं, इस पर्याप्तिगुण करि समृद्ध कहिये युक्त उत्तमदेव अरहंत हैं॥

भावार्थ—पर्याप्तिका स्वरूप ऐसा जो अन्य पर्यायतैं च्यवनकरि अन्य पर्यायमैं प्राप्त होय तब तीन समय उत्कृष अंतरालमैं रहै पीछै सैनी पंचेंद्रिय उपजै सो जहां तीन जातिकी वर्गणाका ग्रहण करै, आहारवर्गणा भाषावर्गणा मनोवर्गणा, ऐसैं ग्रहण करि आहारजातिकी वर्गणातैं तौ आहार शरीर इन्द्रिय श्वासोच्छ्वास ऐसैं च्यार पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त्त कालमैं पूरण करै पीछै भाषाजाति मनोजातिकी वर्गणातैं अन्तर्मुहूर्त्तहीमैं भाषा मन पर्याप्ति पूर्ण करै ऐसैं छहू पर्याप्ति अन्तर्मुहूर्त्तमैं पूर्ण करै है पीछै आयुपर्यन्त पर्याप्त ही कहावै अर नोकर्मवर्गणाका ग्रहण करवोही करै, इहां आहार नाम कवलाहारका न जाननां। ऐसैं तेरहैं गुणस्थान भी अरहंतकै पर्याप्ति पूर्णही है ऐसैं पर्याप्तिकरि अरहंतका स्थापना है ॥ ३४ ॥

आगैं प्राणकरि कहै हैं;—

पंच वि इंदियपाणा मणवयकाएण तिण्णि बलपाणा।
आणप्पाणप्पाणा आउगपाणेण होंति दह पाणा ॥३५॥

पंचापि इंद्रियप्राणाः मनोवचनकायैः त्रयो बलप्राणाः।
आनप्राणप्राणाः आयुष्कप्राणेन भवंति दशप्राणाः ॥३५॥

अर्थ–पाच तौ इद्रिय प्राण बहुरि मन वचन कायकरि तीन बल-प्राण एक श्वासोच्छ्वास प्राण एक आयुप्राणकरि सहित दश प्राण हैं ॥

भावार्थ– ऐसैं दश प्राण कहे तिनिमैं तेरहैं गुणस्थान भावइद्रिय अर भावमनका क्षयोपशमभावरूप प्रवृत्ति नाहीं तिस अपेक्षा तौ कायबल वचनबल श्वासोच्छ्वास आयु ये च्यार प्राण कहिये अर द्रव्य अपेक्षा दशौंही कहिये, ऐसैं प्राणकरि अरहतका स्थापन है ॥ ३५ ॥

आगैं जीवस्थानकरि कहै हैं;—

मणुयभवे पंचिंदिय जीवट्ठाणेसु होइ चउदसमे।
एदे गुणगणजुत्तो गुणमारूढो हवइ अरहो ॥ ३६ ॥
मनुजभवे पंचेंद्रियः जीवस्थानेषु भवति चतुर्दशे।
एतद्गुणगण युक्तः गुणमारूढो भवति अर्हन् ॥ ३६ ॥

अर्थ–मनुष्यभवविषै पंचेद्रिय नामा चौदमां जीवस्थान कहिये जीव-समास ताविषैं इतने गुणनिके समूहकरि युक्त तेरमैं गुणस्थानकूं प्राप्त अरहत होय है ॥

भावार्थ–जीवसमास चौदह कहे हैं एकेंद्रिय सूक्ष्मबादर २ बेइद्रिय तेइद्रिय चौइद्रिय ऐसैं विकलत्रय ३ पचेद्रिय असैनी सैनी २ ऐसै सात भये ते पर्याप्त अपर्याप्त करि चौदह भये तिनिमैं चौदहमा सैनी पंचेंद्रिय जीवस्थान अरहतकैहैं। गाथामैं सैनीका नाम न लिया अर मनुष्यभवका नाम लिया सो मनुष्य सैनीही होयहै असैनी न होय तातैं मनुष्य कहनेतै सैनीही जानना ॥ ३६ ॥

ऐसैं गुणनिकरि सहित स्थापना अरहतका वर्णन किया।

आगैं द्रव्यकू प्रधानकरि अरहंतका निरूपण करै है,—

जरवाहिदुक्खरहियं आहारणिहारवज्जियं विमलं ।
सिंहाण खेल सेओ णत्थि दुगुछा य दोसो य ॥ ३७ ॥
दस पाणा पज्जती अट्ठसहस्सा य लक्खणा भणिया ।
गोखीरसंखधवलं मसं रुहिरं च सव्वंगे ॥ ३८ ॥
एरिसगुणेहिं सव्वं अइसयवंत सुपरिमलामोयं ।
ओरालियं च कायं णायव्वं अरहपुरिसस्स ॥ ३९ ॥

जराव्याधिदुःखरहितः आहारनीहारवर्जितः विमलः ।
सिंहाणः खेलः स्वेदः नास्ति दुर्गन्धः च दोषः च ॥३७॥
दश प्राणाः पर्याप्तयः अष्टसहस्राणि च लक्षणानि भणितानि ।
गोक्षीरशंखधवलं मांसं रुधिरं च सर्वाङ्गे ॥ ३८ ॥
ईदृशगुणैः सर्वः अतिशयवान् सुपरिमलामोदः ।
औदारिकश्च कायः अर्हत्पुरुषस्य ज्ञातव्यः ॥ ३९ ॥

अर्थ—अरहंत पुरुषकै औदारिक काय ऐसा जानना—जरा बहुरि व्याधि रोग इनिसंबधी दु ख जामैं नाहीं है बहुरि आहारनीहारकरि वर्जित है बहुरि विमल कहिये मलमूत्रकरि रहित है बहुरि सिंहाण श्लेष्म खेल कहिये थूक पसेव बहुरि दुर्गंधी कहिये जुगुप्सा ग्लानिता दुर्गंधादि दोष जामैं नाहीं है ॥ ३७ ॥

दश तौ जामैं प्राण हैं ते द्रव्य प्राण जाननां बहुरि पूर्ण पर्याप्ति है बहुरि एक हजार आठ लक्षण जाकै कहै हैं बहुरि गोक्षीर कहिये कपूर अथवा चंदन तथा शख सारिखा जामैं सर्वांग धवल रुधिर मांस है ॥ ३८ ॥

ऐसे गुणनिकरि संयुक्त सर्वही देह अतिशयनिकरि सहित निर्मल है आमोद कहिये सुगंध जामैं ऐसा औदारिक देह अरहंत पुरुषका जानना ॥ ३९ ॥

भावार्थ—इहा द्रव्य निक्षेप नांही समझनां आत्मातैं जुदा ही देहकूं प्रधान करि द्रव्य अरहंतका वर्णन है ॥ ३७-३८-३९ ॥

ऐसैं द्रव्य अरहंतका वर्णन किया।

आगैं भावकूं प्रधानकरि वर्णन करै है;—

मयरायदोसरहिओ कसायमलवज्जिओ य सुविसुद्धो।
चित्तपरिणामरहिदो केवलभावे मुणेयव्वो ॥ ४० ॥

मदरागदोषरहितः कपायमलवर्जितः च सुविशुद्धः।
चित्तपरिणामरहितः केवलभावे ज्ञातव्यः ॥ ४० ॥

अर्थ—केवलभाव कहिये केवलज्ञानरूपही एक भाव होतें संतें अरहंत ऐसा जानना—मद कहिये मान कषायतैं भया गर्व बहुरि राग द्वेष कहिये कषायनिके तीव्र उदयतैं होय ऐसी प्रीति अर अप्रीतिरूप परिणाम इनितैं रहित है, बहुरि पच्चीस कषायरूप मल ताका द्रव्य कर्म तथा तिनिके उदयतैं भया भावमल ताकरि वर्जित है याहीतैं अतिशयकरि विशुद्ध है निर्मल है, बहुरि चित्तपरिणाम कहिये मनका परिणमनरूप विकल्प ताकरि रहित है ज्ञानावरण कर्मके क्षयोपशमरूप मनका विकल्प नाहीं है, ऐसा केवल एक ज्ञानरूप वीतरागस्वरूप भाव अरहंत जानना ॥ ४० ॥

आगैं भावहीका विशेष कहै है;—

सम्मद्दंसणि पस्सइ जाणदि णाणेण दव्वपज्जाया।
सम्मत्तगुणविसुद्धो भावो अरहस्स णायव्वो ॥४१॥

सम्यग्दर्शनेन पश्यति जानाति ज्ञानेन द्रव्यपर्यायान्।
सम्यक्त्वगुणविशुद्धः भावः अर्हतः ज्ञातव्यः ॥ ४१ ॥

अर्थ—भावअरहंत—सम्यग्दर्शनकरि तौ आपकूं तथा सर्वकूं सत्तामात्रकरि देखै है ऐसा केवल दर्शन जाकै है वहुरि ज्ञानकरि सर्व द्रव्य पर्यायनिकूं जानै है ऐसा जाके केवल ज्ञान है वहुरि सम्यक्त्व गुणकरि विशुद्ध है क्षायिक सम्यक्त्व जाकै पाइये है ऐसा अरहंतका भाव जानना।।

भावार्थ—अरहंत होय है सो घातियाकर्मके नाशतैं होय है सो यह मोहकर्मके नाशतैं तौ मिथ्यात्व कषायके अभावतैं परमवीतरागपणा सर्वप्रकार निर्मलता होय है, बहुरि ज्ञानावरण दर्शनावरण कर्मके नाशतैं अनंतदर्शन अनंतज्ञान प्रगट होय है तिनकरि सर्व द्रव्य पर्यायनिकूं एकै काल प्रत्यक्ष देखैं जानैं है। तहां द्रव्य छह हैं–तिनिमें जीवद्रव्य तौ संख्याकरि अनंतानंत है, वहुरि पुद्गल द्रव्य तिनितैं अनंतानंत गुणे हैं, वहुरि आकाश द्रव्य एक है सो अनंतानंत प्रदेशी है ताकै मध्य सर्व जीव पुद्गल असंख्यात प्रदेशमें तिष्ठें हैं, वहुरि एक धर्मद्रव्य एक अधर्म द्रव्य ये दोऊ असंख्यात प्रदेशी हैं इनितैं आकाशके लोक अलोकका विभाग है तिस लोकहीमैं कालद्रव्यके असंख्यात कालाणु तिष्ठै हैं। इनि सर्व द्रव्यके परिणामरूप पर्याय हैं ते एक एक द्रव्यकै अनंतानंत हैं तिनिकूं कालद्रव्यका परिणाम निमित्त है ताके निमित्ततैं क्रमरूप होता समयादिक व्यवहारकाल कहावै है तिसकी गणनातैं अतीत अनागत वर्त्तमान द्रव्यनिके पर्याय अनंतानंत हैं तिनि सर्व द्रव्य पर्यायनिकूं अरहंतका दर्शन ज्ञान एकैं काल देखै जानैं है याही तैं अरहंतकूं सर्वदर्शी सर्वज्ञ कहिये है ।।

भावार्थ—ऐसैं अरहंतका निरूपण चौदह गाथानिमै किया तहां प्रथम गाथामैं नाम स्थापना द्रव्य भाव गुण पर्याय सहित च्यवन आगति संपत्ति ये भाव अरहंतकूं जनावैं हैं ताका व्याख्यान नामादि कथनमैं सर्वही आयगया ताका संक्षेप भावार्थ लिखिये है—तहां प्रथम तौ गर्भकल्याणक होय है सो गर्भमैं आवतैं छह महीने पहली इन्द्रका प्रेर्‍या धनद जिस राजाकी राणीके गर्भमैं आवसी

शोभा सहित मणिसुवर्णमयी कोट खाई वेदी च्यारू दिशा च्यार दरवाजा मानस्तंभ नाट्यशाला वन आदि अनेक रचना करै, ताके मध्य सभामंडपमैं बारह सभा, तिनिमैं मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका देव देवी तिर्यंच तिष्ठैं, प्रभुके अनेक अतिशय प्रगट होय, सभा मंडपके वीचि तीन पीठ परि गंधकुटीकै वीचि सिंहासनपरि व कमलासन अंतरीक्ष प्रभु विराजै अर अष्ट प्रातिहार्ययुक्त होय वाणी खिरै ताकूं सुनि गणधर द्वादशाग शास्त्र रचैं ऐसें केवलकल्याणकका उत्सव इन्द्र करै है पीछैं प्रभु विहार करै ताका बडा उत्सव देव करैं, पाछै केतेक कालपीछैं आयुके दिन थोरे रहैं तब योगनिरोध करि अघातिकर्मका नाशकरि मुक्ति पधारैं, तब पीछै शरीरका संस्कार इन्द्र उत्सवसहित निर्वाण कल्याण करै। ऐसें तीर्थंकर पच कल्याणककी पूजा पाय अरहत कहाय निर्वाण प्राप्त होय है ऐसें जाननां ॥

आगै प्रव्रज्याका निरूपण करै है ताकूं दीक्षा कहिये ताकूं प्रथमही दीक्षाके योग्य स्थानकविशेषकूं तथा दीक्षासहित मुनि जहा तिष्ठै ताका स्वरूप कहै है,—

सुण्णहरे तरुहिट्ठे उज्जाणे तह मसाणवासे वा।
गिरिगुह गिरिसिहरे वा भीमवणे अहव वसिते वा॥४२॥
सवसासत्तं[1] तित्थं वचचइदालत्तयं[2] च वुत्तेहिं।
जिणभवणं अह वेज्झं जिणमग्गे जिणवरा विंति॥ ४३ ॥
पंचमहव्वयजुत्ता पंचिंदियसंजया णिरावेक्खा।
सज्झायझाणजुत्ता मुणिवर वसहा णिइच्छन्ति॥ ४४ ॥

१—संस्कृत प्रतिमें 'सवसा' 'सत' ऐसे दो पद किये हैं जिनकी संस्कृत स्ववशा 'सत्त्वं' इस प्रकार लिखी हैं।

२—वचचइदालत्तय इसके भी दो ही पद किये हैं 'वच.' 'चैत्यालय' इस प्रकार।

शून्यगृहे तरुमूले उद्याने तथा श्मशानवासे वा।
गिरिगुहायां गिरिशिखरे वा भीमवने अथवा वसतौ वा ॥
स्ववशासक्तं तीर्थं वचश्चैत्यालयत्रिकं च उक्तैः।
जिनभवनं अथ वेध्यं जिनमार्गे जिनवरा विदन्ति ॥ ४३ ॥
पंचमहाव्रतयुक्ताः पंचेन्द्रियसंयताः निरपेक्षाः।
स्वाध्यायध्यानयुक्ताः मुनिवरवृषभाः नीच्छन्ति ॥ ४४ ॥

अर्थ—सूना घर वृक्षका मूल कोटर, उद्यान वन, मसाण भूमि, गिरिकी गुफा, गिरिका शिखर, भयानकवन, अथवा वसिका, इनविर्षे दीक्षासहित मुनि तिष्टै ये दीक्षायोग्य स्थान हैं ॥

बहुरि स्ववशासक्त कहिये स्वाधीन मुनिनिकरि आसक्त जे क्षेत्र तिनिमैं मुनिवसैं, बहुरि जहातैं मुक्ति पधारे ऐसे तो तीर्थस्थान बहुरि वच चैत्य आलय ऐसा त्रिक जे, पूर्व उक्त कहिये आयतन आदिक परमार्थरूप, संयमी मुनि अरहंत सिद्ध स्वरूप तिनिका नामके अक्षररूप मंत्र तथा तिनिकी आज्ञारूपवाणी सो तो वच, अर तिनिकै आकार धातु पाषाणकी प्रतिमा स्थापन सो चैत्य, अर सो प्रतिमा तथा अक्षर मंत्र वाणी जामैं स्थापिये ऐसा आलय मंदिर यंत्र पुस्तक ऐसा वच चैत्य आलयकात्रिक, बहुरि अथवा जिनभवन कहिये अकृत्रिम चैत्यालय मंदिर ऐसा आयतनादिक तिनिकै समानही तिनिका व्यवहार, ताहि जिनमार्गविर्षे जिनवर देव वेध्य कहिये दीक्षासहित मुनिनिकै ध्यावनेंयोग्य चिंतवन करनेयोग्य कहै है ॥

बहुरि जे मुनिवृषभ कहिये मुनिनिमैं प्रधान हैं ते कहे ते शून्यगृहादिक तथा तीर्थ, नाम मंत्र, स्थापनरूप मूर्ति, अर तिनिका आलय मंदिर, पुस्तक, अर अकृत्रिम जिनमंदिर, तिनिकूं णिइच्छंति कहिये निश्चयकरि इष्ट करैं हैं तिनिमैं सूना घर आदिकमैं वसैं है अर तीर्थ आदिका ध्यान चिंतवन करैं हैं अर अन्यकूं तहां दीक्षा दे हैं। इहां 'णिइच्छंति' का

पाठांतर 'णइच्छंति' ऐसा भी है ताका काकोक्ति करि तौ ऐसा अर्थ होय है "जो कहा न इष्ट करै है करैही है।" अर एक टिप्पणीमैं ऐसा अर्थ किया है जो ऐसे शून्यगृहादिक तथा तीर्थादिक तिनकूं स्ववशासक्त कहिये स्वेच्छाचारी भ्रष्ट आचारी तिनिकरि आसक्त होय युक्त होय तौ ते मुनिप्रधान इष्ट न करै तहां न वसैं। कैसे हैं ते मुनिप्रधान—पांच महाव्रतनिकरि सयुक्त हैं, बहुरि कैसे हैं—पाच इन्द्रियनिका है भलै प्रकार जीतनां जिनिकैं, बहुरि कैसे हैं—निरपेक्ष हैं काहू प्रकारकी वांछाकरि मुनिन भये है, बहुरि कैसे हैं—स्वाध्याय अर ध्यानकरि युक्त हैं कई तौ शास्त्र पढै पढावैं हैं कई धर्म शुक्लध्यान करैं है।

भावार्थ—इहां दीक्षायोग्य स्थानक तथा दीक्षासहित दीक्षा देनेवाला मुनिका तथा तिनिके चिंतवन योग्य व्यवहारका स्वरूप कह्या है॥ ४२-४३-४४॥

आगैं प्रव्रज्याका स्वरूप कहै हैं,—

गिहगंथमोहमुक्का वावीसपरीषहा जियकषाया।
पावारंभविमुक्का पव्वज्जा एरिसा भणिया॥ ४५॥

गृहग्रंथमोहमुक्ता द्वाविंशतिपरीषहा जितकषाया।
पापारंभविमुक्ता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता॥ ४५॥

अर्थ—गृह कहिये घर अर ग्रंथ कहिये परिग्रह इनि दोऊनितैं तथा तिनिका मोह ममत्व इष्ट अनिष्टबुद्धि तातैं रहित हैं, बहुरि बावीस परीषहनिका सहना जामैं होय है, बहुरि जीते है कषाय जामैं, बहुरि पापरूप जो आरभ ताकरि रहित है, ऐसी प्रव्रज्या जिनेश्वर देव कही है॥

भावार्थ—जैन दीक्षामैं कछुभी परिग्रह नाहीं, सर्व संसारका मोह नांही, बाईस परिषहनिका जामैं सहनां, कषायनिका जीतना पापारंभका जामैं अभाव। ऐसी दीक्षा अन्य मतमैं नांही॥ ४५॥

आगैं फेरि कहै हैं—

धणधण्णवत्थदाणं हिरण्णसयणासणाइ छत्ताइं ।
कुदाणविरहरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४६॥

धनधान्यवस्त्रदानं हिरण्यशयनासनादि छत्रादि ।
कुदानविरहरहिता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ४६ ॥

अर्थ—धन धान्य वस्त्र इनिका दान बहुरि हिरण्य कहिये रूपा सोना आदिक बहुरि शय्या आसन आदि शब्दतैं छत्र चामरादिक बहुरि क्षेत्र आदिक ये कुदान ताका देना ताकरि रहित ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—अन्यमती केई ऐसी प्रव्रज्या कहैं हैं—जो गऊ धन धान्य वस्त्र सोना रूपा शयन आसन छत्र चामर भूमि आदिका दान करना सो प्रव्रज्या है ताका या गाथामैं निषेध किया है—जो प्रव्रज्या तौ निर्ग्रंथस्वरूप है जो धन धान्य आदि राखि दान करै ताकै काहे की प्रव्रज्या? ये तौ गृहस्थका कर्म है. बहुरि गृहस्थकै भी इनि वस्तुनिके दानतैं विशेष पुण्यतौ नाही उपजै है जातै पाप बहुत है सो पुण्य अल्प है सो बहुत पाप कार्य तौ गृहस्थकूं करनेंमैं लाभ नाही जामैं बहुत लाभ होय सो ही करनां योग्य है, दीक्षा तौ इनि वस्तुनिकरि रहित ही जाननां॥४६

आगैं फेरि कहै हैं,—

सत्तूमित्ते य समा पसंसणिंदाअलद्धिलद्धिसमा ।
तणकणए समभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४७॥

शत्रौ मित्रे च समा प्रशंसानिन्दाऽलब्धिलब्धिसमा ।
तृणे कनके समभावा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ४७ ॥

अर्थ—बहुरि जामैं शत्रु मित्रविषै समभाव है, बहुरि प्रशंसा निंदा विषैं लाभ अलाभविषैं समभाव है बहुरि तृणकंचन विषैं समभाव है ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—जैनदीक्षाविषैं रागद्वेषका अभाव है जातैं वैरी मित्र निंदा प्रशंसा लाभ अलाभ तृण कंचनविषै तुल्य भाव है जैनके मुनिनिकैं ऐसी दीक्षा है ॥ ४७ ॥

आगैं फेरि कहैं हैं,—

उत्तममज्झिमगेहे दारिद्दे ईसरे णिरावेक्खा ।
सव्वत्थ गिहिदपिंडा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४८॥

उत्तममध्यमगेहे दरिद्रे ईश्वरे निरपेक्षा ।
सर्वत्र गृहीतपिडा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ४८ ॥

अर्थ—उत्तम गेह कहिये शोभासहित ऐसा राजमदिरादिक अर मध्यम गेह कहिये शोभारहित सामान्य जनका घर इनि विषैं तथा दरिद्री, धनवान इनिविषैं निरपेक्ष कहिये जामै अपेक्षा नाहीं ऐसी सर्व जायगां ग्रह्या है पिंड कहिये आहार जानैं ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—मुनि दीक्षासहित होय है अर आहार लेनेकूं जाय तब ऐसी न विचारै जो बडे घर जानां अथवा छोटे घर जाना तथा दरिद्रीके जाना धनवानकै जाना ऐसी वांछा रहित निर्दोष आहारकी योग्यता होय तहां सर्वत्र ही जायगां योग्य आहार ले, ऐसी दीक्षा है ॥ ४८ ॥

आगै फेरि कहै हैं;—

णिग्गंथा णिस्संगा णिम्माणासा अराय णिद्दोसा ।
णिम्मम णिरहंकारा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥४९॥

निर्ग्रंथा निःसंगा निर्मानाशा अरागा निर्द्वेषा ।
निर्ममा निरहंकारा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ४९ ॥

अर्थ—बहुरि कैसी है प्रव्रज्या-निर्ग्रंथस्वरूप है परिग्रहतैं रहित है, बहुरि कैसी है–निःसंग कहिये स्त्री आदि परद्रव्यका संग मिलाप जामैं नाहीं है, बहुरि निर्माना कहिये मान कषाय जामै नांहीं है मदरहित है

बहुरि कैसी है निराशा है जामें आशा नांहीं है संसारभोगकी आशारहित है, बहुरि कैसी है—अराग कहिये रागका जामैंअभाव है संसार देह भोगसूं जामें प्रीति नांही है. बहुरि कैसी है निर्दोष कहिये काहूसूं द्वेष जामें नांहीं है, बहुरि कैसी है निर्ममा कहिये जामें काहूसूं ममत्व भाव नांही है. बहुरि कैसी है निरहंकारा कहिये अहंकाररहित है जो कछू कर्मका उदय है सो होय है ऐसें जानने तैं परद्रव्यमें कर्त्तापणांका अहंकार नाहीं है अपना स्वरूपका ही जामें साधन है ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—अन्यमती भेष पहरि तिसमात्र दीक्षा मानैं हैं सो दीक्षा नाहीं है, जैनदीक्षा ऐसी कही है ॥ ४९ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

णिण्णेहा णिल्लोहा णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा ।
णिब्भय णिरासभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥५०॥

निःस्नेहा निर्लोभा निर्मोहा निर्विकारा निष्कलुषा ।
निर्भया निराशभावा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥५०॥

अर्थ—बहुरि प्रव्रज्या ऐसी कही है—निःस्नेही कहिये जामें काहूसूं स्नेह नाहीं परद्रव्यसूं रागादिरूप सचिक्कणभाव जामैं नाही है बहुरि कैसी है निर्लोभा कहिये जामें कछु परद्रव्यके लेनेकी वाछा नाहीं है, बहुरि कैसी है निर्मोहा कहिये जामें काहू परद्रव्यसूं मोह नाही है भूलिकरि भी परद्रव्यमें आत्मबुद्धि नाही उपजै है, बहुरि कैसी है निर्विकार है बाह्य अभ्यंतर विकारसूं रहित है बाह्य शरीरकी चेष्टा तथा वस्त्रभूषणादिकका तथा अंग उपागका विकार जामें नाहीं है, अतरंग काम क्रोधादिकका विकार जामें नांही है, बहुरि कैसी है निःकलुषा कहिये मलिनभावरहित है आत्माकू कषाय मलिन करै है सो कषाय जामैं नाहीं है बहुरि कैसी है निर्भया कहिये काहू प्रकारका भय जामे नाही है,

आपका स्वरूपकू अविनाशी जानै ताके काहेका भय होय, वहुरि कैसी है निराशभाव कहिये जामैं काहू प्रकार परद्रव्यकी आशाका भाव नाहीं है आशा तौ किछू वस्तुकी प्राप्ति न होय ताकी लगी रहै है अर जहां पर-द्रव्यकूं अपनां जान्यां नांही अर अपने स्वरूपकी प्राप्ति भई तब किछू पावना न रह्या तब काहेकी आशा होय । प्रव्रज्या ऐसी कही है ॥

भावार्थ—जैनदीक्षा ऐसी है, अन्यमतमैं स्वरूप द्रव्यका भेदज्ञान नांही है तिनिकै ऐसी दीक्षा काहेतैं होय ॥ ५० ॥

आगैं दीक्षाका बाह्य स्वरूप कहै हैं;—

जहजायरूवसरिसा अवलंबियभुय णिराउहा संता ।
परकियणिलयणिवासा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥५१॥

यथाजातरूपसदृशी अवलंबितभुजा निरायुधा शांता ।
परकृतनिलयनिवासा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ५१ ॥

अर्थ—कैसी है प्रव्रज्या—यथाजातरूपसदृशी कहिये जैसा जन्म्या बालकका नग्न रूप होय तैसा नग्न रूप जामैं है, वहुरि कैसी है अव-लंवितभुजा कहिये लंबायमान किये हैं भुजा जामै बाहुल्य अपेक्षा कायो-त्सर्ग खड़ा रहना जामैं होय है, बहुरि कैसी है निरायुधा कहिये आयुध-निकरि रहित है, वहुरि शाता कहिये अंग उपांगके विकार रहित शांत मुद्रा जामैं होय है, वहुरि कैसी है परकृतनिलयनिवासा कहिये परका किया निलय जो वस्तिका आदिक तामैं है निवास जामैं आपकूं कृत कारित अनुमोदना मन वचन काय करि जामै दोष न लाग्या होय ऐसी परका करी वस्तिका आदिकमै वसना होय है ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—अन्यमती केई बाह्य वस्त्रादिक राखैं हैं केई आयुध राखै हैं कई सुखनिमित्त आसन चलाचल राखैं हैं केई उपाश्रय आदि वसनेंका निवास बनाय तामैं वसैं हैं अर आपकूं दीक्षा सहित मानैं हैं तिनिकै भेषमात्र है, जैनदीक्षातौ जैसी कही तैसीही है ॥ ५१ ॥

आगे फेरि कहै हैं—

उवसमखमदमजुत्ता सरीरसंक्कारवज्जिया रुक्खा ।
मयरायदोसरहिया पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥५२॥

उपशमक्षमदमयुक्ता शरीरसंस्कारवर्जिता रूक्षा ।
मदरागदोषरहिता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥५२॥

अर्थ—बहुरि कैसी है प्रव्रज्या उपशमक्षमादमयुक्ता कहिये उपशमतो मोहकर्मका उदयका अभाव रूप शातपरिणाम अर क्षमा क्रोधका अभाव रूप उत्तमक्षमा अर दम कहिये इंद्रियनिकूं विषयनिमैं न प्रवर्त्तावना इनि भावनिकरि युक्त है बहुरि कैसी है शरीरसंस्कारवर्जिता कहिये स्नानादिक करि शरीरका सवारना ताकरि रहित है, बहुरि रूक्ष कहिये तैलादिकका मर्दन शरीरकै जामैं नाही है, बहुरि कैसी है मद राग द्वेष इनिकरि रहित है, ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥

भावार्थ—अन्यमतके भेषी क्रोधादिकरूप परिणमै है शरीरकूं सवारि सुन्दर राखैं हैं इन्द्रियनिके विषय सेवैं है अर आपकूं दीक्षासहित मानै हैं सो वै तो गृहस्थतुल्य है अतीत कहाय उलटा मिथ्यात्व दृढ करैं है, जैनदीक्षा ऐसी है सो सत्यार्थ है याकूं अगीकार करैं ते साचे अतीत हैं ॥ ५२ ॥

आगैं फेरि कहै हैं,—

विवरीयमूढभावा पणट्ठकम्मट्ठ णट्ठमिच्छत्ता ।
सम्मत्तगुणविसुद्धा पव्वज्जा एरिमा भणिया ॥ ५३ ॥

विपरीतमूढभावा प्रणष्टकर्माष्टा नष्टमिथ्यात्वा ।
सम्यक्त्वगुणविशुद्धा प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ५३ ॥

अर्थ—बहुरि कैसी है प्रव्रज्या-विपरीत भया है दूरि भया है मूढ-भाव कहिये अज्ञानभाव जाकै, अन्यमती आत्माका स्वरूप सर्वथा एका-

तर्करि अनेक प्रकार न्यारे न्यारे कहि वाद करें हैं तिनिकै आत्माका स्वरूपविषैं मूढभाव है जैनी मुनिनिकै अनेकांततैं साध्या हुवा यथार्थ-ज्ञान है तातैं मूढभाव नाहीं है, बहुरि कैसी है, प्रणष्ट भया है मिथ्यात्व-जामैं जैनदीक्षामैं अतत्त्वार्थश्रद्धानरूप मिथ्यात्वका अभाव है याहीतैं सम्यक्त्वनामा गुणकरि विशुद्ध है निर्मल है सम्यक्त्वसहित दीक्षामैं दोष नाही रहै है; ऐसी प्रव्रज्या कही है ॥ ५३ ॥

आगैं फेरि कहै है,—

जिणमग्गे पव्वज्जा छहसंहणणेसु भणिय णिग्गंथा ।
भावंति भव्वपुरिसा कम्मक्खयकारणे भणिया ॥५४॥

जिनमार्गे प्रव्रज्या षट्संहननेषु भणिता निर्ग्रंथा ।
भावयंति भव्यपुरुषाः कर्मक्षयकारणे भणिता ॥५४॥

अर्थ—प्रव्रज्या है सो जिनमार्गविषैं छह संहननवाले जीवकै होनी कह्या है निर्ग्रंथस्वरूप है सर्वपरिग्रहतैं रहित यथाजातस्वरूप है याकूं भव्यपुरुष हैं ते भावैं हैं ऐसी प्रव्रज्या कर्मका क्षयका कारण कही है ॥

भावार्थ—वज्र ऋषभनाराच आदि छह शरीरके संहनन कहे हैं तिनिमैं सर्वहीमैं दीक्षा होना कह्या है सो जे भव्यपुरुष हैं ते कर्मक्षयका कारण जानि याकूं अंगीकार करौ। ऐसा नाही है—जो दृढ संहनन वज्रऋषभ आदिक हैं तिनिहीमैं होय अर स्फाटिक संहननमैं न होय है, ऐसी निर्ग्रंथरूप दीक्षा स्फाटिक संहननविषैं भी होय है ॥ ५४ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

तिलतुसमत्तणिमित्तसम बाहिरगंथसंगहो णत्थि ।
पव्वज्ज हवइ एसा जह भणिया सव्वदरसीहिं ॥५५॥

तिलतुषमात्रनिमित्तसमः बाह्यग्रंथसंग्रहः नास्ति ।
प्रव्रज्या भवति एषा यथा भणिता सर्वदर्शिभिः ॥५५॥

अर्थ— जिस प्रव्रज्याविषैं तिलके तुषमात्रका संग्रहका कारण ऐसा भावरूप इच्छानामा अंतरंग परिग्रह बहुरि तिस तिलके तुस मात्र बाह्य परिग्रहका संग्रह नाहीं ऐसी प्रव्रज्या जैसैं सर्वज्ञदेव कही है सो ही है, अन्य प्रकार प्रव्रज्या नाहीं है ऐसा नियम जाननां । श्वेतांवर आदि कहैं हैं जो अपवादमार्गमैं वस्त्रादिकका संग्रह साधुकै कह्या है सो सर्वज्ञके सूत्रमैं तौ कह्या है नांही तिननैं कल्पित सूत्र बनाये है तिनिमैं कह्या है सो कालदोष है ॥

आगैं फेरि कहे हैं;—

उवसग्गपरिसहसहा णिज्जणदेसेहि णिच्च अत्थेइ ।
सिल कट्ठे भूमितले सव्वे आरुहइ सव्वत्थ ॥ ५६ ॥

उपसर्गपरीषहसहा निर्जनदेशे हि नित्यं तिष्ठति ।
शिलायां काष्ठे भूमितले सर्वाणि आरोहति सर्वत्र ॥५६॥

अर्थ—कैसी है प्रव्रज्या—उपसर्ग कहिये देव मनुष्य तिर्यंच अचेतनकृत उपद्रव अर परीषह कहिये दैवकर्मयोगतैं आये जे बाईस परीषह तिनिकूं समभावनितैं सहना जामैं ऐसी प्रव्रज्यासहित मुनि हैं ते जहां अन्य जन नाहीं ऐसा निर्जन वनादिक प्रदेश तहां सदा तिष्ठैं हैं, तहां भी शिलातल काष्ठ भूमितलविषैं तिष्ठैं इनि सर्वही प्रदेशनिकूं आरोहणकरि बैठें सोवैं, सर्वत्र कहनेतैं वनमैं रहैं अर किंचित्काल नगरमैं रहैं तौ ऐसेही ठिकानैं रहैं ॥

भावार्थ—जैनदीक्षावाले मुनि उपसर्गपरीषहमैं समभाव रहैं अर जहां सोवैं बैठैं तहां निर्जन प्रदेशमैं शिला काष्ठ भूमि ही विषैं बैठैं सोवैं, ऐसा नाहीं जो अन्यमतके भेषीकी ज्यों स्वच्छन्द प्रमादी रहैं, ऐसैं जानना ॥ ५६ ॥

आगैं अन्य विशेष कहे हैं;—

पसुमहिलसंढसंगं कुसीलसंगं ण कुणइ विकहाओ।
सज्झायझाणजुत्ता पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ५७ ॥

पशुमहिलापंढसंगं कुशीलसंगं न करोति विकथाः।
स्वाध्यायध्यानयुक्ता प्रव्रज्या ईदृशी भणिता ॥ ५७ ॥

अर्थ—जिस प्रव्रज्याविषै पशु तिर्यंच महिला (स्त्री) पंढ (नपुंसक) इनिका संग तथा कुशील (व्यभिचारी) पुरुषका संग न करै है बहुरि स्त्री राजा भोजन चोर इत्यादिककी कथा ते विकथा तिनिकूं न करै, तौ कहा करै ? स्वाध्याय कहिये शास्त्र जिनवचननिका पठन पाठन अर ध्यान कहिये धर्म शुक्ल ध्यान इनिकरि युक्त रहै, प्रव्रज्या ऐसी जिनदेव कही है ॥

भावार्थ—जैनदीक्षा लेकरि कुसंगति करै विकथादिक करै प्रमादी रहै तौ दीक्षाका अभाव होजाय यातैं कुसंगति निषिद्ध है अन्य भेषकी ज्यों यह भेष नाहीं है ये मोक्षमार्ग है अन्य संसारमार्ग हैं ॥ ५७ ॥

आगैं फेरि विशेष कहै हैं,—

तववयगुणेहिं सुद्धा संजमसम्मत्तगुणविसुद्धा य।
सुद्धा गुणेहिं सुद्धा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ५८ ॥

तपोव्रतगुणैः शुद्धा संयमसम्यक्त्वगुणविशुद्धा च।
शुद्धा गुणैः शुद्धा प्रव्रज्या ईदृशी भणिताः ॥ ५८ ॥

अर्थ—प्रव्रज्या जिनदेव ऐसी कही है—कैसी है-तप कहिये बाह्य अभ्यंतर बारह प्रकार अर व्रत कहिये पांच महाव्रत अर गुण कहिये इनिके भेदरूप उत्तरगुण तिनिकरि शुद्ध है, बहुरि कैसी है-संयम कहिये इन्द्रिय मनका निरोध षट्कायका जीवनिकी रक्षा सम्यक्त्व कहिये तत्वार्थ श्रद्धान लक्षण निश्चय व्यवहाररूप सम्यग्दर्शन बहुरि इनिका

गुण कहिये मूलगुण तिनिकरि शुद्ध अतीचार रहित निर्मल है, बहुरि जे प्रव्रज्याके गुण कहे तिनि करि शुद्ध है, भेषमात्र ही नाही; ऐसी शुद्ध प्रव्रज्या कही है इनि गुणनि विना प्रव्रज्या शुद्ध नांही है ॥

भावार्थ—तप व्रत सम्यक्त्व इनकरि सहित अर इनिके मूलगुण अर अतीचारनिका सोधना जामैं होय ऐसी दीक्षा शुद्ध है, अन्य वादी तथा श्वेतांबरादि जैसैं तैसैं कहैं हैं सो दीक्षा शुद्ध नाही ॥ ५८ ॥

आगैं प्रव्रज्याका कथनकूं संकोचै है,—

एवं आयत्तणगुणपज्जत्ता वहुविसुद्धसम्मत्ते ।
णिग्गंथे जिणमग्गे संखेवेणं जहाखादं ॥ ५९ ॥

एवं [1]आयतनगुणपर्याप्ता वहुविशुद्धसम्यक्त्वे ।
निर्ग्रंथे जिनमार्गे संक्षेपेण यथाख्यातम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार आयतन जो दीक्षाका ठिकानां निर्ग्रंथ मुनि ताके गुण जे ते हैं तिनकरि पज्जत्ता कहिये परिपूर्ण, बहुरि अन्य भी जे बहुत दीक्षामैं चाहिये ते गुण जामैं होय ऐसी प्रव्रज्या जिनमार्गमैं जैसैं ख्यात कहिये प्रसिद्ध है तैसैं संक्षेपकरि कही कैसा है जिनमार्ग-विशुद्ध है सम्यक्त्व जामैं अतीचार रहित सम्यक्त्व जामैं पाइये है बहुरि कैसा है जिनमार्ग—निर्ग्रंथरूप है जामैं बाह्य अंतर परिग्रह नाहीं है ॥

भावार्थ—ऐसी पूर्वोक्त प्रव्रज्या निर्मल सम्यक्त्वसहित निर्ग्रंथरूप जिनमार्गविषै कही है, अन्य नैयायिक वैशेषिक सांख्य वेदान्त मीमांसक पातंजलि बौद्ध आदिक मतमैं नाही है, बहुरि कालदोषतैं जैनमततैं च्युत भये अर जैनी कहावैं ऐसे श्वेतांबर आदिक तिनिमैं भी नाही है ॥ ५९॥

ऐसैं प्रव्रज्याका स्वरूपका वर्णन किया ।

आगैं बोधपाहुडकूं संकोचता संता आचार्य कहै है;—

---

(१) संस्कृत सटीक प्रतिमें 'आयतन' इसकी संस्कृत 'आत्मत्व' इस प्रकार है ।

रूवत्थं सुद्धत्थं जिणमग्गे जिणवरेहिं जह भणियं ।
भव्वजणबोहणत्थं छक्कायहियंकरं उत्तं ॥ ६० ॥

रूपस्थं शुद्ध्यर्थं जिनमार्गे जिनवरैः यथा भणितम् ।
भव्यजनबोधनार्थं षट्कायहितंकरं उक्तम् ॥ ६० ॥

अर्थ—शुद्ध है अतरंग भावरूप अर्थ जामैं ऐसा रूपस्थ कहिये बाह्यस्वरूप मोक्षमार्ग जैसा जिनमार्गविषैं जिनदेव कह्या है तैसा छह कायके जीवनिका हित करनेंवाला मार्ग भव्यजीवनिके सबोधनकै अर्थि कह्या है ऐसा आचार्यनैं अपना अभिप्राय प्रकट किया है ॥

भावार्थ—इस बोधपाहुडविषैं आयतन आदि प्रव्रज्यापर्यन्त ग्यारह स्थल कहे तिनिका बाह्य अतरंग स्वरूप जैसैं जिनदेवनै जिनमार्गमैं [कह्य]ा तैसैं कह्या है। कैसा है यह रूप—छह कायके जीवनिका हित [कर]नेंवाला है एकेंद्रिय आदि असैंनी पर्यन्त जीवनकी रक्षाका जामैं अधिकार है बहुरि सैंनी पंचेंद्रिय जीवनकी रक्षाभी करावै है अर मोक्षमार्गका उपदेश करि ससारका दुःख मेटि मोक्षकूं प्राप्त करै है ऐसा मार्ग भव्यजीवनिके संबोधनेंके अर्थि कह्या है, जगतके प्राणी आनादितैं लगाय मिथ्यामार्गमैं प्रवर्त्ति ससारमैं भ्रमैं हैं सो दुःख मेटनेकूं आयतन आदि ग्यारह स्थानक धर्मके ठिकानेंका आश्रय लेहैं ते ठिकाने अन्यथा स्वरूप स्थापि तिनितैं सुख लिया चाहैं है सो यथार्थविना सुख कहा तातैं आचार्य दयालु होय जैसैं सर्वज्ञ भाषे तैसैं आयतन आदिकका स्वरूप सक्षेप करि यथार्थ कह्या है ताकूं वाचो पढ़ो धारण करो याकी श्रद्धा करो इनि स्वरूप प्रवर्त्तौ यातैं वर्तमानमैं सुखी रहो अर आगामी संसार दुःखतैं छूटि परमानन्दस्वरूप मोक्षकूं प्राप्त होहू ऐसा आचार्यका कहनेका अभिप्राय है।

इहां कोई पूछै जो—इस बोधपाहुडमैं धर्मव्यवहारकी प्रवृत्तिके ग्यारह स्थानक कहे तिनिका विशेषण किया जो छह कायके जीवनिके हितकैं

करनेवाले ये हैं सो अन्यमती इनिकूं अन्यथा स्थापि प्रवृत्ति करैं हैं ते हिंसारूप हैं अर जीवनिके हित करनेंवाले नाही तहा ये ग्यारह ही स्थानक संयमी मुनि अर अरहंत सिद्धहीकूं कहे तहा ये तौ छह कायके जीवनिके हित करनेवाले ही हैं तातैं पूज्य हैं यह तौ सत्य है, अर जहा वसैं ऐसै आकाशके प्रदेशरूप क्षेत्र तथा पर्वतकी गुफा वनादिक तथा अकृत्रिम चैत्यालय ये स्वयमेव वणि रहे है तिनिकू भी प्रयोजन अर निमित्त विचार उपचारमात्र करि छह कायके जीवनिके हित करनेवाले कहिये तौ विरोध नाही जातै ये प्रदेश जड है ते बुद्धिपूर्वक काहू का बुरा भला करैं नाही तथा जडकू सुख दुख आदि फलका अनुभव नाही तातैं ये भी व्यवहार करि पूज्य है जातैं अरहंतादिक जहा तिष्ठैं वै क्षेत्र निवास आदिक प्रशस्त है तातै तिनि अरहंतादिकै आश्रयतैं ये क्षेत्रादिकभी पूज्य हैं बहुरि गृहस्थ जिनमंदिर बनावै वस्तिका प्रतिमा बनावै प्रतिष्ठा पूजा करै तामैं तो छह कायके जीवनिकी विराधना होय है सो ये उपदेश अर प्रवृत्तिकी बाहुल्यता कैसैं हैं।

ताका समाधान ऐसा जो—गृहस्थ अरहंत सिद्ध मुनिनिका उपासक है सो ये जहा साक्षात् होय तहा तौ तिनिकी वंदना पूजना करैंही है, अर ये साक्षात् नाहीं तहा परोक्ष संकल्पमैं लेय वंदना पूजना करै तथा तिनिका वसनेका क्षेत्र तथा ये मुक्तिप्राप्त भये तिस क्षेत्रमैं तथा अकृत्रिम चैत्यालयमै तिनिका संकल्प करि वंदै पूजै यामै अनुराग विशेष सूचै है, बहुरि तिनिकी मुद्रा प्रतिमा तदाकार बनावै अर तिसकू मंदिर बनाय प्रतिष्ठा करि स्थापैं तथा नित्य पूजन करै यामैं अत्यंत अनुराग सूचै है तिस अनुरागतैं विशिष्ट पुण्यबंध होय है अर तिस मंदिरमैं छह कायके जीवनिका हितकी रक्षाका उपदेश होय है तथा निरंतर सुननेंवाला धारनेंवालाकै अहिंसा धर्मकी श्रद्धा दृढ होय है तथा तिनिकी तदाकार प्रतिमा देखनेवालाकै शांत भाव होय है ध्यानकी मुद्राका स्वरूप जान्या जाय है वीतराग धर्मतै अनुराग विशेष होनें तै पुण्यबंध होय है तातैं इनिकूं भी छह कायके जीवनिके हितके करनेवाले उपचार करि कहिये,

अर जिनमंदिर वस्तिका प्रतिमा बनावै तामैं तथा पूजा प्रतिष्ठा करनेमें आरंभ होय है तामैं किछू हिंसा भी होय है सो ऐसा आरंभ तो गृहस्थका कार्य है यामैं गृहस्थकू अल्प पाप कह्या है पुण्य बहुत कह्या है जातैं गृहस्थकी पदवीमैं न्यायकार्य करि न्यायपूर्वक धन उपार्जन करना रहनेकूं जायगा बनावना विवाहादिक करना यत्नपूर्वक आरंभ करि आहारादिक आप करि अर खाना इत्यादिक कार्यनिमैं यद्यपि हिंसा होयहै तौऊ गृहस्थकू इनिका महापाप न कहिये, गृहस्थकै तो महापाप मिथ्यात्वका सेवना अन्याय चोरी आदिकरि धन उपार्जना त्रस जीवनिकूं मारि मांस आदि अभक्ष्य खाना परस्त्री सेवा करना ये महापाप है, अर गृहस्थाचार छोड़ि मुनि होय तब गृहस्थ के न्यायकार्य भी अन्याय ही हैं, अर मुनिकै भी आहार आदिकी प्रवृत्तिमैं किछू हिंसा होय है ताकरि मुनिकूं हिंसक न कहियें तैसैं ही गृहस्थकै न्यायपूर्वक पदवीयोग्य आरंभके कार्यनिमैं अल्प पापही कहिये, तातैं जिनमंदिर वस्तिका पूजा प्रतिष्ठाके कार्यनिमैं आरंभका अल्प पापहै, अर मोक्षमार्गमैं प्रवर्तनेंवालेनितैं अति अनुराग होयहै अर तिनिकी प्रभावना करैहै तिनिकू आहारदानादिक दे हैं तिनिका वैयावृत्त्यादि करे है सो ये सम्यक्त्वका अंग हैं अर महान पुण्यका कारण है तातैं गृहस्थकू सदा करना उचित है, अर गृहस्थ होय ये कार्य न करै तौ जानिये याकै धर्मानुराग विशेष नाहीं।

इहां फेरि कोई कहै जो गृहस्थकूं सरै नांही ते तौ करैही करै अर धर्मपद्धतिमैं आरंभका कार्यकरि पाप क्यौं मिलावै सामायिक प्रतिक्रमण प्रोपध आदिकरि पुण्य उपजावै। ताकूं कहिये—जो तुम ऐसैं कहो जहां तुम्हारे परिणामकी तौ ऐसी जाति नाही, केवल बाह्य क्रिया मात्रमैं ही पुण्य समझौ हौ बाह्य बहु आरंभी परिग्रहीका मन सामायिक प्रतिक्रमण आदि निरारंभ कार्यनिमैं विशेष लागै नाही है यह अनुभव गोचर है, सो तेरै अपने भावनिका अनुभव नाही केवल बाह्य सामायिकादि निरारंभ कार्यका भेपधारि बैठैतौ किछू विशिष्ट पुण्य है नाही शरीरादिक बाह्य वस्तु तौ जड हैं केवल जडकी क्रिया फल तौ आत्माकूं लागै

नाही अर अपनें भाव जेता असा बाह्य क्रियामैं लागै तेता अंसा शुभाशुभ फल आपकूं लागै है, ऐसै विशिष्ट पुण्य तौ भावनिकै अनुसार है, बहुरि आरंभी परिग्रहीका भाव तौ पूजाप्रतिष्ठादिक बड़े आरभमैं ही विशेष अनुराग सहित लागै है, अर जो गृहस्थाचारके बड़े आरभतैं विरक्त होगा सो त्याग करि अपनी पदवी बधावैगा तब गृहस्थाचारके बड़े आरंभ छोडैगा तब ताही रीति बडे आरंभ धर्म प्रवृत्तिकेभी पदवीकी रीति घटावैगा मुनि होगा तब सर्वही आरंभ काहेकूं करैगा, तातैं मिथ्यादृष्टि बाह्य बुद्धि जे बाह्य कार्यमात्रही पुण्य पाप मोक्षमार्ग समझै है तिनिका उपदेश सुनि आपकू अज्ञानी न होना, पुण्य पापका बंधमैं शुभाशुभ भावही प्रधान हैं अर पुण्य पाप रहित मोक्षमार्ग है तामैं सम्यग्दर्शनादिकरूप आत्म परिणाम प्रधान हैं अर धर्मानुराग है सो मोक्षमार्गका सहकारी है अर धर्मानुरागके तीव्र मंदके भेद बहुत हैं तातैं अपनें भावनिकूं यथार्थ पहिचानि अपनी पदवी सामर्थ्य पहचानि समझिकरि श्रद्धानज्ञान प्रवृत्ति करनी अपना भला बुरा अपने भावनिकै आधीन है बाह्य परद्रव्य तौ निमित्त मात्र है, उपादान कारण होय तौ निमित्तभी सहकारी होय अर उपादान न होय तौ निमित्त कछूभी न करै है, ऐसैं इस बोधपाहुडका आशय जाननां। याकू नीकैं समझि आयतनादिक जैसैं कहे तैसैं अर इनिका व्यवहारभी बाह्य तैसाही अर चैत्यगृह प्रतिमा जिनबिंब जिनमुद्रा आदि धातु पाषाणादिककाभी व्यवहार तैसाही जानि श्रद्धान करना अर प्रवृत्ति करनीं। अन्यमती अनेक प्रकार स्वरूप बिगाडि प्रवृत्ति करैं हैं तिनिकूं बुद्धिकल्पित जानि उपासना न करनीं। इस द्रव्य व्यवहारका प्ररूपण प्रव्रज्याके स्थलमें आदितैं दूसरी गाथामैं बिंब[1]चैत्यालयत्रिक अर जिनभवन ये भी मुनिनिके ध्यावनें योग्य हैं ऐसै कह्या है सो जे गृहस्थ इनिकी प्रवृत्ति करै हैं तब ते मुनिनिकै ध्यावनें योग्य होय हैं तातैं जिनमन्दिर प्रतिमा पूजा प्रतिष्ठा आदिकके सर्वथा निषेध करनेवाले सर्वथा एकान्तीकी ज्यौं मिथ्यादृष्टि हैं, तिनिकी संगति न करनीं॥

१ गाथामें त्रिबकी जगह 'वच' ऐसा पाठ है॥

आगैं आचार्य इस बोधपाहुडका कहना अपनी बुद्धिकल्पित नाहीं है पूर्वाचार्यनिके अनुसार कह्या है ऐसैं कहै हैं।

सद्दवियारो हूओ भासासुत्तेसु जं जिणे कहियं।
सो तह कहियं णायं सीसेण य भद्दबाहुस्स ॥६१॥

शब्दविकारो भूतः भाषासूत्रेषु यज्जिनेन कथितम्।
तत् तथा कथितं ज्ञातं शिष्येण च भद्रबाहोः ॥६१॥

अर्थ—शब्दका विकारतैं उपज्या ऐसा अक्षररूप परिणया भाषासूत्रनिविषै जिनदेवनैं कह्या सोही श्रवणमैं अक्षररूप आया बहुरि जैसा जिनदेव कह्या तैसा परंपराकरि भद्रबाहुनाम पंचम श्रुतकेवलीनैं जान्या अपने शिष्य विशाखाचार्य आदिकूं कह्या सो तिनिनैं जान्या सोही अर्थरूप विशाखाचार्यकी परंपरायतैं चल्या आया सोही अर्थ आचार्य कहै हैं हमनैं कह्या है सो हमारी बुद्धिकरि कल्पित न कह्या है, ऐसा अभिप्राय है ॥ ६१ ॥

आगैं भद्रबाहु स्वामीकी स्तुतिरूप वचन कहै हैं—

बारस अंगवियाणं चउदसपुव्वंगविउलवित्थरणं।
सुयणाणि भद्दबाहू गमयगुरू भयवओ जयओ ॥६२॥

द्वादशांगविज्ञानः चतुर्दशपूर्वांगविपुलविस्तरणः।
श्रुतज्ञानिभद्रबाहुः गमकगुरुः भगवान् जयतु ॥६२॥

अर्थ—भद्रबाहु नाम आचार्य है सो जयवंत होहु कैसे है बारह अंगनिका है विज्ञान जिनिकूं, बहुरि कैसे है चौदह पूर्वनिका है विपुल विस्तार जिनिकै याहीतैं कैसे है श्रुतज्ञानी है पूर्ण भावज्ञानसहित अक्षरात्मक श्रुतज्ञान जिनिकै पाइये है, बहुरि कैसे है 'गमक गुरु' हैं जे सूत्रके अर्थकूं पाय जैसाका तैसा वाक्यार्थ करैं तिनिकूं गमक कहिये तिनिके गुरु हैं तिनिमैं प्रधान हैं; बहुरि कैसे हैं भगवान हैं सुरासुरनिकरि पूज्य

है, ऐसे हैं सो जयवंत होऊ। ऐसैं कहनेमैं स्तुतिरूप तिनिकूं नमस्कार सूचै है 'जयति' धातु सर्वोत्कृष्ट अर्थमैं है सो सर्वोत्कृष्ट कहनेतैं नमस्कारही आवै ॥

भावार्थ— भद्रबाहुस्वामी पांचवा श्रुतकेवली भये तिनिकी परंपरायतैं शास्त्रका अर्थ जांनि यह बोधपाहुड ग्रथ रच्या है तातैं तिनिकूं अंतमगल अर्थि आचार्य स्तुतिरूप नमस्कार किया है। ऐसैं बोधपाहुड समाप्त किया है ॥ ६२ ॥

छप्पय।

प्रथम आयतन दुतिय चैत्यगृह तीजी प्रतिमा।
दर्शन अर जिनबिंब छठो जिनमुद्रा यतिमा ॥
ज्ञान सातमूं देव आठमूं नवमूं तीरथ।
दसमूं है अरहंत ग्यारमूं दीक्षा श्रीपथ ॥
इम परमारथ मुनिरूप सति अन्यभेप सब निंद्य हैं।
व्यवहार धातुपाषाणमय आकृति इनिकी वंद्य है ॥१॥

दोहा।

भयो वीर जिनबोध यहु, गौतमगणधर धारि।
बरतायो पंचमगुरू, नमूं तिनहिं मद छारि ॥ २ ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित बोधपाहुडकी
जयपुरनिवासि पं० जयचन्द्रछाबड़ा कृत
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥४॥

❀ श्री ❀

अथ भावपाहुड

—(:-:) ५ (:-:)—

आगै भावपाहुडकी वचनिका लिखिये है,—

❀ दोहा ❀

परमातमकूं वंदिकरि शुद्धभावकरतार ।
करूं भावपाहुडतणीं देशवचनिका सार ॥ १ ॥

ऐसैं मंगलपूर्वक प्रतिज्ञाकरि श्रीकुन्दकुन्दआचार्यकृतभावपाहुड गाथाबंध ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है। तहां प्रथम आचार्य इष्टके नमस्काररूप मंगलकरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञाका सूत्र कहै है,—

णमिऊण जिणवरिंदे णरसुरभवणिंदवंदिए सिद्धे।
वोच्छामि भावपाहुडमवसेसे संजदे सिरसा ॥ १ ॥

नमस्कृत्य जिनवरेन्द्रान् नरसुरभवनेन्द्रवंदितान् सिद्धान्।
वक्ष्यामि भावप्राभृतमवशेषान् संयतान् शिरसा ॥१॥

अर्थ—आचार्य कहै है जो मैं भावपाहुड नाम ग्रथ है ताहि कहूंगा पूर्वैं कहाकरि—जिनवरेन्द्र कहिये तीर्थंकर परमदेव वहुरि सिद्ध कहिये अष्टकर्मका नाशकरि सिद्धपदकूं प्राप्त भये वहुरि अवशेष सयत कहिये आचार्य उपाध्याय सर्वसाधु ऐसैं पच परमेष्ठी तिनहिं मस्तककरि वदना करिके कहूंगा, कैसें हैं पंच परमेष्ठी—नर कहिये मनुष्य सुर कहिये स्वर्गवासी देव भवन कहिये पातालवासी देव इनिके इन्द्र तिनिकरि वंदने योग्य हैं ॥

भावार्थ-आचार्य भावपाहुड ग्रंथ रचैं हैं सो भाव प्रधान पंचपरमेष्ठी हैं तिनिकूं आदिमैं नमस्कार युक्त है जातैं जिनवरेंद्र तौ ऐसैं हैं—जिन कहिये गुणश्रेणी निर्जराकरि युक्त ऐसे अविरतसम्यग्दृष्टी आदिक तिनिमैं वर कहिये श्रेष्ठ गणधरादिक तिनिमैं इन्द्र तीर्थंकर परमदेव है सो गुणश्रेणी निर्जरा शुद्धभावहीतैं होय है सो तीर्थंकरभावके फलकूं पहुंचे.घातिकर्मका नाशकरि केवलज्ञान पाया, बहुरि तैसैंही सर्वकर्मका नाशकरि परम शुद्ध भावकूं पाय सिद्ध भये, बहुरि आचार्य उपाध्याय शुद्ध भावके एकदेशकूं पाय पूर्णताकूं आप साधैं हैं अन्यकूं शुद्ध भावकी दीक्षा शिक्षा दे हैं, बहुरि साधु हैं ते भी तैसैंही शुद्ध भावकूं आप साधैं हैं बहुरि शुद्ध भावहीके माहात्म्यकरि तीनलोकके प्राणीनिकरि पूजनेयोग्य वंदने योग्य कहे हैं, तातैं भावप्राभृतकी आदिविषैं इनिकूं नमस्कार युक्त है बहुरि मस्तककरि नमस्कार करनेमैं सर्व अंग आय गये जातैं मस्तक अगनिमैं उत्तम है, बहुरि आप नमस्कार किया तब अपना भावपूर्वक भयाही तब 'मन वचन काय' तीनूंही आय गये ऐसैं जाननां ॥१॥

आगैं कहै है जो लिंग द्रव्यभाव करि दोय प्रकार है तिनिमैं भावलिंग परमार्थ है,—

भावो हि पढमलिंगं ण दव्वलिंगं च जाण परमत्थं।
भावो कारणभूदो गुणदोसाणं जिणा विन्ति ॥२॥

भावः हि प्रथमलिंगं न द्रव्यलिंगं च जानीहि परमार्थम्।
भावो कारणभूतः गुणदोषाणां जिना विदन्ति ॥ २ ॥

अर्थ—भाव है सो प्रथमलिंग है याहीतैं हे भव्य ! तू द्रव्यलिंग है ताहि परमार्थरूप मति जाणैं जातैं गुण अर दोष इनिका कारणभूत भावही है ऐसैं जिन भगवान कहैं हैं ॥

भावार्थ-जातैं गुण जे स्वर्गमोक्षका होनां अर दोष जे नरकादिक संसारका होना इनिका कारण भगवान भावहीकूं कह्या है यातैं कारण

होय सो कार्यकै पहलैं प्रवर्त्तैं सो इहां मुनि श्रावकके द्रव्य लिंगकै पहलैं भावलिंग होय तौ सांचा मुनि श्रावक होय है तातैं भावलिंगही प्रधान है प्रधान होय सोही परमार्थ है, तातैं द्रव्यलिंगकूं परमार्थ न जाननां ऐसैं उपदेश किया है।

इहाँ कोई पूछै-भावस्वरूप कहा है? ताका समाधान-जो भावका स्वरूप तौ आचार्य आगैं कहसी तथापि इहाभी किछू कहिये है—या लोकमैं षट् द्रव्य हैं तिनिमैं जीव पुद्गलका वर्त्तन प्रकट देखनेंमैं आवै है—तहां जीव तौ चेतनास्वरूप है अर पुद्गल स्पर्श रस गध वर्ण स्वरूप जड है इनिकी अवस्थातैं अवस्थारतरूप होना ऐसा परिणामकूं भाव कहिये है तहां जीवका स्वभाव परिणामरूप भाव तौ दर्शन ज्ञान है अर पुद्गल कर्मके निमित्ततैं ज्ञानमैं मोह राग द्वेष होनां सो विभाव भाव है बहुरि पुद्गलके स्पर्शतैं स्पर्शान्तर रसतैं रसान्तर इत्यादि गुणतैं गुणान्तर होना सो तौ स्वभावभाव है अर परमाणुतैं स्कध होना तथा स्कधतै अन्यस्कंध होना तथा जीवके भावके निमित्ततैं कर्मरूप हो[illegible] ये विभाव भाव है, ऐसैं इनिकै परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव प्रवर्तें हैं। तहां पुद्गल तौ जड है ताके नैमित्तिकभावतैं किछू सुख दुख आदि नांही अर जीव चेतन है याके निमित्ततैं भाव होय तिनितैं सुख दुख आदि प्रवर्त्तैं है तातैं जीवकूं स्वभाव भावरूप रहनेंका अर नैमित्तिक-भावरूप न प्रवर्त्तनेका उपदेश है। अर जीवकै पुद्गल कर्मके संयोगतैं देहादिक द्रव्यका संवध है सो इस बाह्यरूपकूं द्रव्य कहिये सो भावतैं द्रव्यकी प्रवृत्ति होय हैं ऐसैं द्रव्यकी प्रवृत्ति होय है। ऐसैं द्रव्य भावका स्वरूप जाणि स्वभावमैं प्रवर्त्तैं विभावमै न प्रवर्त्तैं ताकै परमानद सुख होय है, विभाव रागद्वेष मोहरूप प्रवर्त्तैं ताकै संसारसंवधी दु.ख होय हैं, अर द्रव्यरूप है सो पुद्गलका विभाव है या सवधी जीवकै दुःख सुख होय है तातैं भावही प्रधान है, ऐसैं न होतैं केवली भगवानकै भी सांसारिक सुख दुःखकी प्राप्ति आवै, सो है नाहीं। ऐसैं जीवके ज्ञानदर्शन अर रागद्वेष मोह ये तौ स्वभाव विभाव हैं अर पुद्गलके स्पर्शादिक अर

स्कंधादिक स्वभाव विभाव हैं तिनिमैं जीवको हित अहित भाव प्रधान है पुद्गलद्रव्यसंबंधी प्रधान नाहीं, बाह्य द्रव्य निमित्तमात्र है, उपादान विना निमित्त किछू करै नाहीं। ये तौ सामान्यपणैं स्वभावका स्वरूप है बहुरि याहीका विशेष सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तौ जीवका स्वभाव भाव हैं तिनिमैं सम्यग्दर्शन भाव प्रधान है याविना सर्व बाह्य क्रिया मिथ्या दर्शन ज्ञान चारित्र हैं सो विभाव हैं सो संसारका कारण है, ऐसैं जानना ॥ २ ॥

आगैं कहै है जो बाह्य द्रव्य निमित्त मात्र है सो याका अभाव जीव के भावकी विशुद्धताका निमित्त जाणि बाह्यद्रव्यका त्याग कीजिये है;—

भावविसुद्धिणिमित्तं बाहिरगंथस्स कीरए चाओ।
बाहिरचाओ विहलो अब्भंतरगंथजुत्तस्स ॥ ३ ॥

भावविशुद्धिनिमित्तं बाह्यग्रंथस्य क्रियते त्यागः।
बाह्यत्यागः विफलः अभ्यन्तरग्रंथयुक्तस्य ॥ ३ ॥

अर्थ—बाह्य परिग्रहका त्याग कीजिये है सो भावकी विशुद्धि ताकै अर्थि कीजिए है बहुरि अभ्यंतर परिग्रह जो रागादिक तिनिकरि युक्त है ताकै बाह्य परिग्रहका त्याग निष्फल है॥

भावार्थ—अंतरंगभावविना बाह्य त्यागादिककी प्रवृत्ति निष्फल है यह प्रसिद्ध है ॥ ३ ॥

आगैं कहै हैं—जो कोट्या भव विषैं तप करै तौऊ भाव विना सिद्धि नांही;—

भावरहिओ ण सिज्झइ जइ वि तवं चरइ कोडिकोडीओ।
जम्मंतराइ बहुसो लंबियहत्थो गलियवत्थो ॥ ४ ॥

भावरहितः न सिद्ध्यति यद्यपि तपश्चरति कोटिकोटी।
जन्मान्तराणि बहुशः लंबितहस्तः गलितवस्त्रः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो बहुत जन्मांतरतांई कोडाकोडि संख्या काल तांई हस्त लवायमानकरि वस्त्रादिक त्यागकरि तपश्चरण करै तौऊ भावरहितकै सिद्धि नांही होय है ॥

भावार्थ—भावमैं मिथ्यादर्शन मिथ्याज्ञान मिथ्याचारित्ररूप विभाव रहित सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र स्वरूप स्वभावके विषैं प्रवृत्ति न होय तौ कोडा कोडि भव तांई कायोत्सर्गकरि नग्न मुद्रा धारि तपश्चरण करै तौऊ मुक्तिकी प्राप्ति न होय, ऐसैं भावमैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र रूप भाव प्रधान है तिनिमैंभी सम्यग्दर्शन प्रधान है जातैं या विना ज्ञान चारित्र मिथ्या कहे हैं, ऐसैं जानना ॥ ४ ॥

आगै इसही अर्थकूं दृढ करै हैं.—

परिणामम्मि असुद्धे गंथे मुञ्चेइ बाहरे य जई।
बाहिरगंथच्चाओ भावविहूणस्स किं कुणइ ॥ ५ ॥

परिणामे अशुद्धे गंथान् मुंचति बाह्यान् च यदि।
बाह्यग्रंथत्यागः भावविहीनस्य किं करोति ॥ ५ ॥

अर्थ—जो मुनि होय परिणाम अशुद्ध होतैं बाह्य ग्रंथकूं छोडै तौ बाह्य परिग्रहका त्याग है सो भावरहित मुनिकै कहा करै? कछू भी न करै ॥

भावार्थ—जो बाह्य परिग्रहकूं छोडि मुनि होय अर परिग्रहपरिणामरूप अशुद्ध होय अभ्यंतर परिग्रह न छोडै तौ बाह्य त्याग किछू कल्याणरूप फल न करिसकै है, सम्यग्दर्शनादिभाव विना कर्मनिर्जरारूप कार्य न होय है ॥ ५ ॥

पहली गाथातैं यामैं यह विशेष है जो मुनिपदभी ले अर परिणाम उज्ज्वल न रहै आत्मज्ञानकी भावना न रहै तौ कर्म कटै नाही ॥

आगैं उपदेश करै है जो भावकूं परमार्थ जाणि याहीकूं अंगीकार करौ—

जाणहि भावं पढमं किं ते लिंगेण भावरहिएण ।
पंथिय ! सिवपुरिपंथं जिणउवइट्ठं पयत्तेण ॥ ६ ॥

जानीहि भावं प्रथमं किं ते लिंगेन भावरहितेन ।
पथिक शिवपुरीपंथाः जिनोपदिष्टः प्रयत्नेन ॥ ६ ॥

अर्थ—हे मुने ! मोक्षपुरीका मार्ग जिनदेव प्रयत्नकरि उपदेश्या भावही है तातैं हे शिवपुरीका पथिक ! कहिये मार्ग चलनेवाला तू भावहीकूं प्रथम जाणि परमार्थभूत जाणि, भावरहित द्रव्यमात्र लिंगकरि तेरै कहा साध्य है किछू भी नाही ॥

भावार्थ—मोक्षमार्ग जिनेश्वरदेव सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र आत्मभाव-स्वरूप परमार्थकरि कह्या है तातैं याहीकूं परमार्थ जानि अंगीकार करना केवल द्रव्यमात्र लिंगकरि कहा साध्य है ऐसैं उपदेश है ।

आगैं कहै हैं जो द्रव्यलिंग आदि तैं बहुत धारे तिनितैं किछू सिद्धि न भई;—

भावरहिएण सपुरिस अणाइकालं अणंतसंसारे ।
गहिउज्झियाइं बहुसो बाहिरणिग्गंथरूवाइं ॥ ७ ॥

भावरहितेन सत्पुरुष ! अनादिकालं अनंतसंसारे ।
गृहीतोज्झितानि बहुशः बाह्यनिर्ग्रंथरूपाणि ॥ ७ ॥

अर्थ—हे सत्पुरुष ! अनादिकालतैं लगाय इस अनंत संसारविषै तैं भावरहित निर्ग्रंथरूप बहुत बार ग्रहण किया अर छोड्या ॥

भावार्थ—भाव जो निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तिस विना बाह्य निर्ग्रंथरूप द्रव्यलिंग संसारविषै अनंतकालतैं लगाय बहुतवार धारे अर छोड़े तथापि किछू सिद्धि न भई चतुर्गतिविषैं भ्रमता ही रह्या ॥ ७ ॥

सो ही कहै हैं;—

भीसणणरयगईए तिरियगईए कुदेवमणुगइए।
पत्तोसि तिव्वदुक्खं भावहि जिणभावणा जीव! ॥

भीषणनरकगतौ तिर्यग्गतौ कुदेवमनुष्यगत्योः।
प्राप्तोऽसि तीव्रदुःखं भावय जिनभावनां जीव! ॥८॥

अर्थ-हे जीव! तैं भीषण भयकारी नरकगति तथा तिर्यंचगति बहुरि कुदेव कुमनुष्यगतिविषैं तीव्र दुःख पाये तातैं अब तू जिनभावना कहिये शुद्ध आत्मतत्त्वकी भावना भाय यातै तेरैं संसारका भ्रमण मिटै॥

भावार्थ—आत्माकी भावना विना च्यार गतिके दुःख अनादि कालतैं संसारविषैं पाये यातैं अब हे जीव! तू जिनेश्वरदेवका शरण ले अर शुद्धस्वरूपका बारबार भावनारूप अभ्यास करि यातैं ससारका भ्रमणतैं रहित मोक्षकूं प्राप्त होय, यह उपदेश है॥ ८॥

आगैं च्यारि गतिके दुःखनिकूं विशेषकरि कहै है, तहां प्रथम ही नरकगतिके दुःखनिकूं कहै हैं;—

सत्तसुणरयावासे दारुणभीसाइं असहणीयाइं।
भुत्ताइं सुइरकालं दुःक्खाइं णिरंतरं सहिय॥ ९॥

सप्तसु[1] नरकावासेषु दारुणभीषणानि असहनीयानि।
भुक्तानि सुचिरकालं दुःखानि निरंतरं सोढानि[2] ॥९॥

अर्थ—हे जीव! तैं सात नरकभूमिनिविषै नरक आवास जे बिले तिनिविषैं दारुण कहिये तीव्र अर भयानक अर असहनीय कहिये स न जाय ऐसे घणे कालपर्यन्त दुःखनिकूं निरंतर ही भोग्या अर सह्या॥

भावार्थ—नरककी पृथ्वी सात हैं तिनिमैं बिल बहुत हैं तिनिविषै

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमैं 'सप्तसु नरकावासे' ऐसा पाठ।

२—मुद्रित संस्कृत प्रतिमैं 'स्वहित' ऐसा पाठ है, 'सहिय' इसकी छायामैं।

एक सागरतैं लगाय तेतीस सागरपर्यन्त तहां आयु है जहा आयुपर्यन्त अतितीव्र दु ख यह जीव अनतकालतैं सहता आया है ॥ ९ ॥

आगैं तिर्यंचगतिके दु खनिकूं कहै है;—

खणणुत्तावणवालणवेयणविच्छेयणाणिरोहं च ।
पत्तोसि भावरहिओ तिरियगईए चिरं कालं ॥१०॥
खननोत्तापनज्वालनवेदनविच्छेदनानिरोधं च ।
प्राप्तोऽसि भावरहितः तिर्यग्गतौ चिरं कालं ॥ १० ॥

अर्थ—हे जीव ! तैं तिर्यंचगतिविषैं खनन उत्तापन ज्वलन वेदन व्युच्छेदन निरोधन इत्यादि दु ख बहुतकालपर्यंत पाये, कैसा भया संता—भावरहितकरि सम्यग्दर्शन आदि भावरहित भया सता ॥

भावार्थ–या जीवनैं सम्यग्दर्शनादि भाव विना तिर्यंचगतिविषैं चिरकाल दु.ख पाये–पृथ्वीकायमैं तौ कुदाल आदि खोदनेकरि दु ख पाये, अपकायविषै अग्नितै तपना ढोलना इत्यादिकरि दु ख पाये, तेजकायविषैं ज्वालना बुझावनां आदिकरि दु ख पाये, पवनकायविषैं भारेतैं हलका चलना फटना आदिकरि दु ख पाये, वनस्पतिकायविषैं फाडना छेदनां रांधना आदिकरि दु.ख पाये, विकलत्रयविषैं अन्यतै रुकना अल्प आयुतैं मरनां इत्यादिकरि दु ख पाये, पंचेंद्रिय पशु पक्षी जलचर आदिविषैं परस्पर घात तथा मनुष्यादिककरि वेदना भूख तृषा रोकना बधन देना इत्यादिकरि दुःख पाये, ऐसैं तिर्यंचगतिविषैं असंख्यात अनंतकालपर्यन्त दु ख पाये ॥ १० ॥

आगैं मनुष्यगतिके दु खनिकूं कहै हैं;—

आगंतुक माणसियं सहजं सारीरियं च चत्तारि ।
दुक्खाइं मणुयम्मे पत्तोसि अणंतयं कालं ॥ ११ ॥

---

१ मुद्रित सस्कृत प्रतिमें 'वेयण' इसकी सस्कृत 'व्यजन, इस प्रकार है ।

आगंतुकं मानसिकं सहजं शारीरिकं च चत्वारि ।
दुःखानि मनुजजन्मनि प्राप्तोऽसि अनंतकं कालं ॥११॥

अर्थ—हे जीव ! तैं मनुष्यगतिविषै अनंतकालपर्यन्त आगंतुक कहिये अकस्मात् वज्रपातादिक आया रहै ऐसा बहुरि मानसिक कहिये मनही विषैं भया ऐसा विषयनिकी वांछा होय अर मिलै नाही ऐसा बहुरि सहज कहियें माता पितादिककरि सहजही उपज्या तथा राग द्वेपादिकतै वस्तुकूं इष्ट अनिष्ट दुःख होना बहुरि शारीरिक कहिये व्याधि रोगादिक तथा परकृत छेदना भेदन आदिकतैं भये दुःख ये च्यार प्रकार अर चकारतैं इनिकूं आदि लें अनेक प्रकार दुःख पाये ॥११॥

आगैं देवगतिविषैं दुःखनिकूं कहै हैं;—

सुरणिलयेसु सुरच्छरविओयकाले य माणसं तिव्वं ।
संपत्तोसि महाजस दुःखं सुहभावणारहिओ ॥ १२ ॥

सुरनिलयेषु सुराप्सरावियोगकाले च मानसं तीव्रम् ।
संप्राप्तोऽसि महायशः ! दुःखं शुभभावनारहितः ॥१२॥

अर्थ—हे महाजस ! तैं सुरनिलयेषु कहिये देवलोकविषैं सुराप्सरा कहिये प्यारा देव तथा प्यारी अप्सराका वियोग कालविषै तिसके वियोग संबधी दुःख तथा इंद्रादिक बडे ऋद्धिधारीनिकूं देखि आपकूं हीन मानना ऐसा मानसिक दुःख ऐसे तीव्र दुःख शुभ भावनाकरि रहित भये संते पाया ॥

भावार्थ—इहां महाजस ऐसा संबोधन किया ताका आशय यह है जो मुनि निर्ग्रंथ लिंग धारै अर द्रव्यलिंग मुनिकी समस्त क्रिया करै परन्तु आत्माका स्वरूप शुद्धोपयोगकै सन्मुख न होय ताकूं प्रधानपणें उपदेश है--जो मुनि भया सो तौ बडा कार्य किया तेरा जस लोकमैं प्रसिद्ध भया परन्तु भलीभावना जो शुद्धात्मतत्त्वका अभ्यास ताविना

तपश्चरणादिककरि स्वर्गविषै देवभी भया तो वहां भी विषयनिका लोभी भया संता मानसिक दुःखहीतैं तप्तायमान भया ॥ १२ ॥

आगैं शुभभावनातैं रहित अशुभ भावना का निरूपण करै हैं,–

कंदप्पमाइयाओ पंच वि असुहादिभावणाई य ।
भाऊण दव्वलिंगी पहीणदेवो दिवे जाओ ॥ १३ ॥

कांदर्पीत्यादीः पंचापि अशुभादिभावनाः च ।
भावयित्वा द्रव्यलिंगी प्रहीणदेवः दिवि जातः ॥१३॥

अर्थ–हे जीव ! तू द्रव्यलिंगी मुनि होय करि कान्दर्पीकूं आदि लेकरि पांच अशुभ शब्द हैं आदि जिनके ऐसी अशुभ भावना भायकरि प्रहिणदेव कहिये नीचदेव स्वर्गविषैं उपज्या ॥

भावार्थ–कान्दर्पी, किल्विषिकी, संमोही, दानवी, आभियोगिकी, ये पांच अशुभ भावना है तहां निर्ग्रंथ मुनि होय करि सम्यक्त्व भावना विना इनि अशुभ भावनांकूं भावै तब किल्विष आदि नीच देव होय मानसिक दुःखकूं प्राप्त होय है ॥ १३ ॥

आगैं द्रव्यलिंगी पार्श्वस्थ आदि होय है तिनिकूं कहै हैं;—

पासत्थभावणाओ अणइकालं अणेयवाराओ ।
भाऊण दुहं पत्तो कुभावणा भावबीएहिं ॥ १४ ॥

पार्श्वस्थभावनाः अनादिकालं अनेकवारान् ।
भावयित्वा दुःखं प्राप्तः कुभावनाभावबीजैः ॥ १४ ॥

अर्थ—हे जीव ! तू पार्श्वस्थ भावनातैं अनादिकालतैं लेकरि अनंतवार भाय करि दुःखकूं प्राप्त भया, काहे करि दुःख पाया—कुभावना कहिये खोटी भावना ताका भाव ते ही भये दुःखके बीज तिनिकरि दुःख पाया ॥

भावार्थ—जो मुनि कहावै अर वस्तिका बांधि आजीविका करैं सो पार्श्वस्थ भेषधारी कहिये, बहुरि जो कषायी होय व्रतादिकतैं भ्रष्ट रहै संघका अविनय करै ऐसा भेषधारीकूं कुशील कहिये, बहुरि जो वैद्यक ज्योतिष विद्यामंत्रकी आजीविका करैं राजादिकका सेवक होय ऐसा भेषधारीकूं संसक्त कहिये, बहुरि जो जिनसूत्रतैं प्रतिकूल चारित्रतैं भ्रष्ट आलसी ऐसा भेषधारीकूं अवसन्न कहिये, बहुरि गुरुका आश्रय छोड़ि एकाकी स्वच्छन्द प्रवर्तै जिन आज्ञा लोपै ऐसा भेषधारीकूं मृगचारी कहिये, इनिकी भावना भावै सो दुःखहीकूं प्राप्त होय है ॥ १४ ॥

ऐसैं देव होय करि मानसिक दुःख पाये ऐसैं कहै हैं;—

देवाण गुण विहूई इड्ढी माहप्प बहुविहं दट्ठुं ।
होऊण हीणदेवो पत्तो बहुमाणसं दुक्खं ॥ १५ ॥

देवानां गुणान् विभूतीः ऋद्धीः माहात्म्यं बहुविधं दृष्ट्वा ।
भूत्वा हीनदेवः प्राप्तः बहु मानसं दुःखम् ॥ १५ ॥

अर्थ—हे जीव ! तू हीनदेव होयकरि अन्य महर्द्धिक देवनिकी गुण विभूति ऋद्धिका माहात्म्य बहुत प्रकार देखिकरि बहुत मानसिक दुःखकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ—स्वर्गमैं हीन देव होय करि बडे ऋद्धिधारी देवकै अणिमादि गुणकी विभूति देखैं तथा देवांगना आदिका बहुत परिवार देखैं तथा आज्ञा ऐश्वर्य आदिका माहात्म्य देखैं तब मनमैं ऐसैं विचारी जो मैं पुण्यरहित हूं ये बडे पुण्यवान है जिनिकै ऐसी विभूति माहात्म्य ऋद्धि है ऐसे विचार तैं मानसिक दुःख होय है ॥ १५ ॥

आगैं कहै हैं जो अशुभ भावनातैं नीच देव होय ऐसे दुःख पावै हैं ऐसे कहि इस कथनकूं संकोचै हैं;—

चउविहविकहासत्तो मयमत्तो असुहभावपयडत्थो ।
होऊण कुदेवत्तं पत्तोसि अणेयवाराओ ॥ १६ ॥

चतुर्विधविकथासक्तः मदमत्तः अशुभभावप्रकटार्थः ।
भूत्वा कुदेवत्वं प्राप्तः असि अनेकवारान् ॥ १६ ॥

अर्थ--हे जीव ! तू च्यार प्रकारकी विकथाविषै आसक्त भया संता मदकरि माता अशुभ भावनांहीका है प्रकट प्रयोजन जाकै ऐसा होय करि अनेकवार कुदेव पणाकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ--स्त्रीकथा भोजनकथा देशकथा राजकथा ऐसी च्यार विकथा तिनिविषै परिणाम आसक्त होय लगाया तथा जाति आदि अष्ट मदनिकरि उन्मत्त भया ऐसैं अशुभ भावनाहीका प्रयोजन धारि अर अनेकवार नीचदेवपणाकूं प्राप्त भया तहां मानसिक दुःख पाया। इहां यह विशेष जानना जो विकथादिक करि तौ नीच देवभी न होय परन्तु इहां मुनिकूं उपदेश है सो मुनिपद धारि कछु तपश्चरणादिक भी करै अर भेषमैं विकथादिकमैं रक्त होय नीच देव होय है, ऐसैं जानना ॥ १६ ॥

आगे कहै हैं जो ऐसैं कुदेवयोनि पाय तहातैं चय जो मनुष्य तिर्यंच होय तहां गर्भमैं आवै ताकी ऐसी व्यवस्था है ।

असुईबीहत्थेहि य कलिमलबहुलाहि गब्भवसहीहि ।
वसिओसि चिरं कालं अणेयजणणीण मुणिपवर ॥१७॥

अशुचिबीभत्सासु य कलिमलबहुलासु गर्भवसतिषु ।
उषितोऽसि चिरं कालं अनेकजननीनां मुनिप्रवर ! ॥१७॥

अर्थ--हे मुनिप्रवर ! तू कुदेवयोनितैं चयकरि अनेक माताकी गर्भकी वसतीविषै बहुत काल बस्या, कैसी है--अशुचि कहिये अपवित्र है, बहुरि बीभत्स है घिणावणी है, बहुरि कैसी है कलिमल बहुत है जामैं पापरूप मलिन मलकी बहुलता है ॥

भावार्थ-इहां मुनिप्रवर ऐसा संबोधन है सो प्रधानपणै मुनिनिकूं उपदेश है,जो मुनिपद ले मुनिनिमैं प्रधान कहावै अर शुद्धात्मरूप निश्चय

चारित्रके सन्मुख न होय ताकूं कहै है जो बाह्य द्रव्यलिंग तौ बहुतवार धारि च्यार गतिमैंही भ्रमण किया देवभी हुवा तौ तहांतैं चयकरि ऐसे मलिन गर्भवास विषैं आया तहांभी बहुतवार वस्या ॥ १७ ॥

आगैं फेरि कहैं—जो ऐसे गर्भवासतैं नीसरि जन्म ले अनेक मातानिका दूध पिया;—

पीओसि थणच्छीरं अणंतजम्मंतराइं जणणीणं ।
अण्णाण्णाण महाजस! सायरसलिलाहु अहिययरं॥१८॥

पीतोऽसि स्तनक्षीरं अनंतजन्मांतराणि जननीनाम् ।
अन्यासामन्यासां महायशः! सागरसलिलात् अधिकतरम्॥१८॥

अर्थ—हे महाजस ! तिस पूर्वोक्त गर्भवासविषैं अन्य अन्य जन्म विषैं अन्य अन्य माताका स्तनका दूधतैं समुद्रके जलतैं भी अतिशयकरि अधिक पिया ॥

भावार्थ—जन्म जन्म विषै अन्य अन्य माताके स्तनका दूध एता पीया ताकूं एकत्र कीजिये तौ समुद्रके जलतैंभी अतिशयकरि अधिक होय, इहां अतिशयका अर्थ अनंतगुणां जाननां जातैं अनंतकालका एकत्रित किया अनंतगुणा होय ॥ १८ ॥

आगैं फेरि कहै हैं जो जन्म लेकरि मरण किया तत्र माताका रुद-नका अश्रुपातका जलभी एता भया,—

तुह मरणे दुक्खेण अण्णण्णाणं अणेयजणणीणं ।
रुण्णाण णयणणीरं सायरसलिलाहु अहिययरं ॥ १९ ॥

तव मरणे दुःखेन अन्यासामन्यासां अनेकजननीनाम् ।
रुदितानां नयननीरं सागरसलिलात् अधिकतरम् ॥१९॥

अर्थ—हे मुने! तैं माताका गर्भमें यसि जन्म लेकरि मरण किया सो तेरे मरण करि अन्य अन्य जन्मविषैं अन्य अन्य माताका रुदनतैं नयननिका नीर एकत्र कीजिये तब समुद्रके जलतैंभी अतिशय करि अधिकगुणा होय अनंतगुणा होय ॥

आगें फेरि कहै हैं जो संसारमैं जन्म लीए तिनिमै केश नख नाल कटे तिनिका पुंज कीजिये तौ मेरुतैं अधिकराशि होयः—

भवसायरे अणंते छिण्णुज्झिय केसणहरणालट्ठी।
पुजइ जइको वि जए हवदि य गिरिसमधिया रासी॥

भवसागरे अनंते छिन्नोज्झितानि केशनखरनालास्थीनि।
पुंजयति यदि कोऽपि देवः भवति च गिरिसमधिकः राशिः॥

अर्थ—हे मुने! या अनंत संसार सागरमैं तैं जन्म लिये तिनिमै केश नख नाल अस्थि कटे टूटे तिनिका जो कोई देव पुंज करै तौ मेरु गिरितैं भी अधिक राशि होय अनतगुणा होय ॥ २० ॥

आगें कहै हैं जो-हे आत्मन्! तू जल थल आदि स्थानक विषै सर्वत्र वस्याः—

जलथलसिहिपवणंबरगिरिसरिदरितरुवणाइ सव्वत्थ।
वसिओसि चिरं कालं तिहुवणमज्झे अणप्पवसो॥२१॥

जलस्थलशिखिपवनांबरगिरिसरिद्दरीतरुवनादिषु सर्वत्र।
उषितोऽसि चिरं कालं त्रिभुवनमध्ये अनात्मवशः॥२१॥

अर्थ—हे जीव! तू जलविषै, थल कहिये भूमिविषै, शिखि कहिये अग्निविषैं, तथा पवनविषैं, अंबर कहिये आकाशविषैं गिरि कहिये पर्वतविषैं, सरित कहिये नदीविषैं, दरी कहिये पर्वतकी गुफाविषै तरु कहिये वृक्षनिविषैं वननिविषै बहुत कहा कहिये सर्वही स्थानकनिविषैं

तीनलोकविषैं बहुतकालपर्यन्त वस्या निवास किया, कैसा भया संता-अनात्मवश कहिये पराधीन भया संता ॥

भावार्थ—निज शुद्धात्माकी भावनाविना कर्मके आधीन भया तीन लोकमैं सर्व दु:खसहित सर्वत्र वास किया ॥ २१ ॥

आगैं फेरि कहै हैं जो हे जीव ! तैं या लोकमै सर्व पुद्गल भखे तौ हू तृप्त न भया;—

गसियाइं पुग्गलाइं भुवणोदरवत्तियाइं सव्वाइ ।
पत्तोसि तो ण तित्तिं पुणरुत्तं[1] ताइं भुंजंतो ॥ २२ ॥

ग्रसिताः पुद्गलाः भुवनोदरवर्त्तिनः सर्वे ।
प्राप्तोऽसि तन्न तृप्तिं पुनरुक्तान् तान् भुंजानः ॥ २२ ॥

अर्थ—हे जीव ! तैं या लोकका उदरविषैं वर्त्तते जे पुद्गल स्कध तेनि सर्वनिकूं ग्रसे भखे बहुरि तिनिकूं पुनरुक्त फेरि फेरि भोगता संता हू तृप्तिकूं प्राप्त न भया ॥

फेरि कहै हैं;—

तिहुयणसलिलं सयलं पीयं तिण्हाइ पीडिएण तुमे ।
तो वि ण तण्हाछेओ जाओ चिंतेह भवमहणं ॥ २३ ॥

त्रिभुवनसलिलं सकलं पीतं तृष्णाया पीडितेन त्वया ।
तदपि न तृष्णाछेदः जातः चिन्तय भवमथनम् ॥२३॥

अर्थ-हे जीव ! तैं या लोकविषैं तृष्णाका पीड्या तीन भुवनका जल समस्त पिया तौऊ तृषाका व्युच्छेद न भया ते तातैं तू या ससारका मथन कहिये तेरै नाश होय तैसें निश्चय रत्नत्रय चिंतवन करि ॥

१—मुद्रित सस्कृत प्रतिमें 'पुणरुत्र' ऐसा पाठ है जिसकी सस्कृत 'पुनारूप' इसप्रकार है ।

भावार्थ—संसारमैं काहू प्रकार तृप्तिता नांहीं तातैं जैसैं अपनैं संसारका अभाव होय तैसैं चितवन करना निश्चय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकूं सेवनां यह उपदेश है ॥ २३ ॥

आगैं फेरि कहै है,—

गहिउज्झियाइं मुणिवर कलेवराइं तुमे अणेयाइं ।
ताणं णत्थिपमाणं अणंतभवसायरे धीर ॥ २४ ॥

गृहीतोज्झितानि मुनिवर कलेवराणि त्वया अनेकानि ।
तेषां नास्ति प्रमाणं अनन्तभवसागरे धीर ! ॥ २४ ॥

अर्थ—हे मुनिवर ! हे धीर ! तैं या अनंत भवसागरविषैं कलेवर कहिये शरीर अनेक ग्रहण किये अर छोड़े तिनिका परिमाण नाहीं है ॥

भावार्थ—हे मुनिप्रधान ! तू किछू इस शरीरसूं स्नेह किया चाहै तौ या संसारविषैं ऐसे शरीर छोड़े अर गहे तिनिका कछू परिमाण न किया जाय है ॥ २४ ॥

आगैं कहै हैं जो—पर्याय थिर नांही है आयुकर्मके आधीन है सो अनेक प्रकार क्षीण होय है,—

विसवेयणरत्तक्खयभयसत्थग्गहणसंकिलेसाणं ।
आहारुस्सासाणं णिरोहणा खिज्जए आऊ ॥ २५ ॥
हिमजलणसलिलगुरुयरपव्वयतरुरुहणपडणभंगेहिं ।
रसविज्जजोयधारण अणणपसंगेहिं विविहेहिं ॥ २६ ॥
इय तिरिय मणुय जम्मे सुइरं उववज्जिऊण बहुवारं ।
अवमिच्चुमहादुक्खं तिव्वं पत्तोसि तं मित्त ॥ २७ ॥

विषवेदनारक्तक्षयभयशस्त्रग्रहणसंक्लेशानाम् ।
आहारोच्छ्वासानां निरोधनात् क्षीयते आयुः ॥ २५ ॥

हिमज्वलनसलिलगुरुतरपर्वततरुरोहणपतनभङ्गैः।
रसविद्यायोगधारणानयप्रसंगेः विविधैः ॥ २६ ॥

इति तिर्यग्मनुष्यजन्मनि सुचिरं उत्पद्य बहुवारम्।
अपमृत्युमहादुःखं तीव्रं प्राप्तोऽसि त्वं मित्र!॥ २७॥

अर्थ—विपभक्षणतैं वेदनाकी पीड़ाके निमित्ततैं रक्त कहिये रुधिर ताका क्षयतै भय शस्त्रकरि घाततै सक्लेश परिणामतैं आहारका तथा श्वासका निरोधतैं, इनि कारणनितैं आयुका क्षय होय है॥

बहुरि हिम कहिये शीत पालानैं अग्नितैं जलतैं बडे पर्वतके चढनेतैं पड़नेते बडे वृक्ष परि चढ़करि पड़नेतैं शरीरका भग होनेतैं बहुरि रस कहिये पारा आदिककी विद्या ताका संयोग करि धारण करै भखै तातैं बहुरि अन्याय कार्य चोरी व्यभिचार आदिके निमित्ततैं ऐसैं अनेक प्रकारके कारणतैं आयुका व्युच्छेद होय कुमरण होय हैं।

यातैं कहै है जो—हे मित्र! ऐसैं तिर्यंच मनुष्य जन्मविपै बहुत-काल बहुतवार उपजि करि अपमृत्यु कहिये कुमरण तिससबधी तीव्र महादु'खकूं प्राप्त भया॥

भावार्थ—या ससारविषैं प्राणीकी आयु तिर्यंच मनुष्य पर्यायविपैं अनेक कारणनितैं छिदै है तातै कुमरण होय है तातैं मरतै तीव्र दु ख होय है तथा खोटे परिणामनितैं मरणकरि फेरि दुर्गतिहीमैं पडै है, ऐसैं यह जीव संसारमैं महादु.ख पावै है यातैं आचार्य दयालु होय बारबार दिखावैं हैं अर ससारतैं मुक्त होनेंका उपदेश करै हैं ऐसै जानना॥२५-२६-२७॥

आगैं निगोदका दु'खकूं कहै है,—

छत्तीसं तिण्णि सया छावट्ठिसहस्सवारमरणाणि।
अंतोमुहुत्तमज्झे पत्तोसि निगोयवासम्मि॥ २८॥

पट्त्रिंशत् त्रीणि शतानि पट्षष्टिसहस्रवारमरणानि ।
अन्तर्मुहूर्त्तमध्ये प्राप्तोऽसि निकोतवासे ॥ २८ ॥

अर्थ—हे आत्मन् ! तू निगोदके वासमैं एक अंतमुहूर्त्तमैं छ्यासठि हजार तीनसैं छत्तीस वार मरणकूं प्राप्त हूवा ।

भावार्थ-निगोदमें एक श्वासकै अठारवैं भाग प्रमाण आयु पावै है तहां एक मुहूर्त्तकै सैंतीससै तिहत्तरि श्वासोच्छ्वास गिणै है तिनिमैं छत्तीससैपिच्यासी श्वासोच्छ्वास अर एक श्वासका तीसरा भागके छ्यासठि हजार तीनसै छत्तीस वार निगोदमैं जन्म मरण होय है ताके दुःख यह प्राणी सम्यग्दर्शनभाव पाये विना मिथ्यात्वका उदयकै वशीभूत भया सहै है। भावार्थ—अंतर्मुहूर्त्तमैं छ्यासठि हजार तीनसै छत्तीस वार जामन मरण कह्या सो अठ्यासी श्वास घाटि मुहूर्त्त ऐसा अन्तर्मुहूर्त्तविषैं जाननां ॥ २८ ॥

इसही अंतर्मुहूर्त्तके जन्म मरणमैं क्षुद्र भवका विशेष कहै हैं,

वियलिंदए असीदी सट्ठी चालीसमेव जाणेह ।
पंचिंदिय चउवीसं खुद्दभवंतो मुहुत्तस्स ॥ २९ ॥
विकलेंद्रियाणामशीतिं षष्टिं चत्वारिंशतमेव जानीहि ।
पंचेंद्रियाणां चतुर्विंशतिं क्षुद्रभवान् अन्तर्मुहूर्त्तस्य ॥ २९ ॥

अर्थ—इनि अन्तर्मुहूर्त्तके भवनिमैं वेंद्रियके क्षुद्रभव अस्सी तेंद्रियके साठि चौइन्द्रियके चालीस पंचेंद्रियके चौवीस ऐसै—हे आत्मन् ! तू क्षुद्रभव जानि ।

भावार्थ—क्षुद्रभव अन्य शास्त्रमैं ऐसैं गिनैं हैं पृथ्वी अप तेज वायु साधारण निगोदके सूक्ष्म बादरकरि दश अर सप्रतिष्ठित वनस्पति एक ऐसैं ग्यारह स्थानकके भव तौ एक एकके छह हजार बार ताके छ्यासठि

हजार एकसौ बत्तीस भये, बहुरि इस गाथामैं कहे ते बेंद्रिय आदिके दोयसौ च्यार ऐसैं ६६३३६ एक अन्तर्मुहूर्त्तमै क्षुद्रभव कहे हैं ॥२९॥

आगैं कहै हैं कि हे आत्मन् ! तू इस दीर्घससारविषैं ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार सम्यग्दर्शनादि रत्नत्रयकी प्राप्ति बिना भ्रम्या यातै अब रत्नत्रय अगीकार करि,

रयणत्तये अलद्धे एवं भमिओसि दीहसंसारे।
इय जिणवरेहिं भणियं तं रयणत्तं समायरह ॥३०॥

रत्नत्रये अलब्धे एवं भ्रमितोऽसि दीर्घसंसारे।
इति जिणवरैर्भणितं तत् रत्नत्रयं समाचर ॥३०॥

अर्थ—हे जीव ! तू सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जो रत्नत्रय ताकूं न पाये यातैं इस दीर्घ अनादिसंसारविषैं पूर्वैं कह्या तैसैं भ्रम्या ऐसा जानि-करि अब तू तिस रत्नत्रयका आचरणकरि, ऐसैं जिनेश्वरदेव कह्या है ॥

भावार्थ—निश्चय रत्नत्रय पाये बिना यह जीव मिथ्यात्वके उदयतैं संसारमैं भ्रमै है यातैं रत्नत्रयका आचरणका उपदेश है ॥ ३० ॥

आगैं शिष्य पूछै जो वह रत्नत्रय कैसा है ताका समाधान करै है जो रत्नत्रय ऐसा है;—

अप्पा अप्पम्मि रओ सम्माइट्ठी हवेइ फुडु जीवो।
जाणइ तं सण्णाणं चरदिह चारित्तमग्गुत्ति ॥३१॥

आत्मा आत्मनि रतः सम्यग्दृष्टिः भवति स्फुटं जीवः।
जानाति तत् संज्ञानं चरतीह चारित्रं मार्ग इति ॥३१॥

अर्थ—जो आत्मा आत्माविषैं रत होय यथार्थरूपका अनुभव करि तद्रूप होय, श्रद्धान करै सो प्रगट सम्यग्दृष्टी होय, बहुरि तिस आत्माकूं जानैं सो सम्यग्ज्ञान है, बहुरि तिस आत्माकूं आचरण करै रागद्वेषरूप

न परिणमै सो चारित्र है; ऐसैं यह निश्चय रत्नत्रय है सो मोक्षमार्ग है ॥

भावार्थ—आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण सो निश्चय रत्नत्रय है, अर वाह्य याका व्यवहारजीवअजीवादितत्त्वनिका श्रद्धान जाननां परद्रव्य परभावका त्याग करनां है ऐसैं निश्चय व्यवहारस्वरूप रत्नत्रय मोक्षका मार्ग है। तहा निश्चय तौ प्रधान है या विनां व्यवहार संसारस्वरूपही है, बहुरि व्यवहार है सो निश्चयका साधनस्वरूप है या विना निश्चयकी प्राप्ति नाहीं है, अर निश्चयकी प्राप्ति भये पीछैं व्यवहार कछू है नांही ऐसैं जानना ॥ ३१ ॥

आगैं संसारविषैं या जीवनैं जन्म मरण किये ते कुमरण किये अव सुमरणका उपदेश करै हैं;—

अण्णे कुमरणमरणं अणेयजम्मंतराइं मरिओसि।
भावहि सुमरणमरणं जरमरणविणासणं जीव ! ॥३२॥

अन्यस्मिन् कुमरणमरणं अनेकजन्मान्तरेषु मृतः असि।
भावय सुमरणमरणं जन्ममरणविनाशनं जीव ! ॥३२॥

अर्थ—हे जीव या संसारविषैं अनेक जन्मान्तरविषै अन्य कुमरण मरण जैसैं होय तैसैं तू मूवा अव तू जा मरणतैं जन्म मरणका नाश होय ऐसा सुमरण भाय ॥

भावार्थ—मरण संक्षेपकरि अन्य शास्त्रविषैं सतरह प्रकार कह्या है, सो ऐसैं—आवीचिकामरण १ तद्भवमरण २ अवधिमरण ३ आद्यान्तमरण ४ बालमरण ५ पंडितमरण ६ आसन्नमरण ७ बालपंडितमरण ८ सशल्यमरण ९ पलायमरण १० वशार्त्तमरण ११ विप्राणसमरण १२ गृध्रपृष्टमरण १३ भक्तप्रत्याख्यानमरण १४ इंगिनीमरण १५ प्रायोपगमनमरण १६ केवलिमरण १७ ऐसैं सतरह।

इनिका स्वरूप ऐसा—जो आयुका उदय समय समय करि घटै है सो समय समय मरण है ये आवीचिकामरण है ॥ १ ॥

बहुरि जो वर्त्तमान पर्यायका अभाव सो तद्भवमरण है ॥ २ ॥

बहुरि जो जैसा मरण वर्त्तमान पर्यायका होय तैसाही अगिली पर्यायका होयगा सो अवधिमरण है, याका दोय भेद तहा जैसा प्रकृति स्थिति अनुभाग वर्त्तमानका उदय आया तैसाही अगिलीका उदय आवै सो सर्वावधिमरण है, अर एकदेशबंध उदय होय तौ देशावधि मरण कहिये ॥ ३ ॥

बहुरि जो वर्त्तमान पर्यायका स्थिति आदिक जैसा उदय था तैसा अगिलीका सर्वतो वा देशतो बंध उदय न होय सो आद्यन्तमरण है॥४॥

पांचवां बालमरण है, सो बाल पाच प्रकार है;—अव्यक्त बाल, व्यवहारबाल, ज्ञानबाल,दर्शनबाल चारित्रबाल । तहां जो धर्म अर्थ काम इनिकार्यनिकूं न जानैं इनिका आचरणकूं समर्थ जाका शरीर नाहीं होय सो अव्यक्तबाल है। जो लोकका अर शास्त्रका व्यवहारकूं न जानैं तथा बालक अवस्था होय सो व्यवहारबाल है। वस्तुका यथार्थ ज्ञानरहित ज्ञानबाल है । तत्वश्रद्धानरहित मिथ्यादृष्टी दर्शनबाल है । चारित्र रहित प्राणी चारित्रबाल है। इनिका मरना सो बालमरण है। इहा प्रधानपणैं दर्शनबालहीका ग्रहण है जातै सम्यग्दृष्टीकै अन्य बालपणां होतैं भी दर्शनपडितताका सद्भावतैं पंडितमरणविषैंही गणिये है। तहां दर्शनबालका सक्षेपतैं दोय प्रकार मरण कह्या है—इच्छाप्रवृत्त १ अनिच्छाप्रवृत्त २ तहां अग्निकरि धूमकरि शस्त्रकरि विषकरि जलकरि पर्वतके तटतैं पड़नेकरि अति शीत उष्णकी बाधाकरि बंधनकरि क्षुधा-तृषाके अवरोधकरि जीभ उपाडनेकरि विरुद्ध आहार सेवनेकरि बाल अज्ञानी चाहि करि मरै सो इच्छाप्रवृत्त है। अर जीवनेका इच्छुक होय अर मरै सो अनिच्छा प्रवृत्त है ॥। ५ ॥

बहुरि पंडितमरण च्यार प्रकार है,-व्यवहारपंडित सम्यक्त्वपंडित, ज्ञानपंडित, चारित्रपंडित । तहा लोकशास्त्रका व्यवहारविषैं प्रवीण होय

सो व्यवहारपंडित है। सम्यक्त्व सहित होय सो सम्यक्त्वपंडित है। सम्यग्ज्ञानसहित होय सो ज्ञानपडित है। सम्यक् चारित्रकरि सहित होय सो चारित्रपंडित है। इहाँ दर्शन ज्ञान चारित्रसहित पंडितका ग्रहण है जातैं व्यवहारपंडित मिथ्यादृष्टी बालमरणमैं आय गया ॥ ६ ॥

बहुरि जो मोक्षमार्गमैं प्रवर्त्तनेवाला साधु संघतैं छूट्या ताकूं आसन्न कहिये है तिनिमैं पार्श्वस्थ स्वच्छंद कुशील ससक्तभी लेने, ऐसै पंच प्रकार भ्रष्ट साधुनिका मरण सो आसन्नमरण है ॥ ७ ॥

बहुरि सम्यग्दृष्टी श्रावकका मरण सो बालपंडितमरण है ॥ ८ ॥

बहुरि सशल्यमरण दोय प्रकार—तहां मिथ्यादर्शन माया निदान ये तीन शल्य तौ भावशल्य है, अर पच स्थावर अर त्रसमैं असैनी ये द्रव्यशल्यसहित हैं ऐसैं सशल्यमरण है ॥ ९ ॥

बहुरि जो प्रशस्तक्रियाविषैं आलसी होय व्रतादिविषैं शक्तिकूं छिपावै ध्यानादिकतैं दूरि भागैं ऐसाका मरण सो पलाय मरण है ॥ १० ॥

वशार्त्तमरण च्यार प्रकार है—सो आर्तरौद्र ध्यानसहित मरण है तहा पांच इंद्रियनिके विषयनिविषैं रागद्वेषसहित मरण सो इन्द्रियवशार्त्त मरण है, साता असाताकी वेदनासहित मरै सो वेदनावशार्त्तमरण है, क्रोध मान माया लोभ कषायके वशतैं मरै सो कषायवशार्त्तमरण है, हास्य विनोद कषायके वशतैं मरै सो नोकषायवशार्त्तमरण है ॥ ११ ॥

बहुरि जो अपना व्रत क्रिया चारित्रविषैं उपसर्ग आवै सो कह्याभी न जाय अर भ्रष्ट होनेका भय आवै तब अशक्त भया अन्नपानीका त्यागकरि मरै सो विप्राणसमरण है ॥ १२ ॥

बहुरि जो शस्त्रग्रहणकरि मरण होय सो गृध्रपृष्टमरण है ॥ १३ ॥

बहुरि जो अनुक्रमसूं अन्नपानीका यथाविधि त्यागकरि मरै सो भक्तप्रत्याख्यान मरण है ॥ १४ ॥

बहुरि जो सन्यास करै अर अन्यपास वैयावृत्त्य करावै सो इंगिनीमरण है ॥ १५ ॥

बहुरि जो प्रायोपगमन सन्यास करै काहू पास वैयावृत्त्य न करावै अपनैं आपभी न मरै प्रतिमायोग रहै सो प्रायोपगमनमरण है ॥१६॥

बहुरि जो केवली मुक्तिप्राप्त होय सो केवलिमरण है ॥ १७ ॥

ऐसैं सतरह प्रकार कहे तिनिका संक्षेप ऐसा किया है—जो मरण पांच प्रकार है,— पंडितपंडित, पंडित, बालपंडित, बाल, बालबाल। तहां दर्शन ज्ञान चारित्रका अतिशयकरि सहित होय सो तौ पंडितपंडित है, अर इनिकी प्रकर्षता जाकै न होय सो पंडित है; सम्यग्दृष्टी श्रावण सो बाल पंडित, अर पूर्वै च्यार प्रकार पंडित कहे तिनिमैंसू एकभी भाव जाकै नांही सो बाल है, अर जो सर्वतैं न्यून होय सो बालबाल है। इनिमैं पंडितपंडितमरण अर पंडितमरण बालपंडितमरण ये तीन प्रशस्त सुमरण कहे है अन्यरीति होय सो कुमरण है। ऐसैं जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र एकदेशसहित मरै सो सुमरण है, ऐसा सुमरण करनेका उपदेश है ॥ ३२ ॥

आगैं यह जीव संसारमैं भ्रमैं है तिस भ्रमणके परावर्तनका स्वरूप मनमैं धारि निरूपण करै हैं, तहां प्रथमही सामान्यकरि लोकके प्रदेशनिकी अपेक्षाकरि कहै हैं;—

सो णत्थि दव्वसवणो परमाणुपमाणमेत्तओ णिलओ।
जत्थ ण जाओ ण मओ तियलोयपमाणिओ सव्वो॥३३

सः नास्ति द्रव्यश्रमणः परमाणुप्रमाणमात्रो निलयः।
यत्र न जातः न मृतः त्रिलोकप्रमाणकः सर्वः ॥३३

अर्थ—यह जीव द्रव्यलिंगका धारक मुनिपणा होतैं संतैं भी यहु तीन लोक प्रमाण सर्व स्थानक हैं तामैं एक परमाणुपरिमाण एक प्रदेशमात्रभी ऐसा स्थान नांही जामैं जनम्यां नांहीं तथा मूवा नांही॥

भावार्थ— द्रव्यलिंग धारकरिभी सर्वलोकमैं यह जीव जनम्या मर्‍या ऐसा प्रदेश न रह्या जामैं जनम्या मर्‍या नांही, ऐसा भावलिंगविना द्रव्यलिंगतैं मुक्तिप्राप्त न भया ऐसा जानना ॥ ३३ ॥

आगैं याही अर्थकूं दृढ़ करनेकूं भावलिंगकूं प्रधानकरि कहै हैं,

कालमणंतं जीवो जम्मजरामरणपीडिओ दुक्खं ।
जिणलिंगेण वि पत्तो परंपराभावरहिएण ॥ ३४ ॥

कालमनंतं जीवः जन्मजरामरणपीडितः दुःखम् ।
जिनलिंगेन अपि प्राप्तः परम्पराभावरहितेन ॥ ३४ ॥

अर्थ-यह जीव या संसारविषै जामैं परंपरा भावलिंग न भया संता अनतकालपर्यन्त जन्म जरा मरणकरि पीडित दुःखहीकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ-द्रव्यलिंग धाऱ्या अर तामैं परंपराकरि भी भावलिंगकी प्राप्ति न भई यातैं द्रव्यलिंग निष्फल गया मुक्तिकी प्राप्ति न भई संसारहीमै भ्रम्या।

इहां आशय ऐसा जो द्रव्यलिंग है सो भावलिंगका साधन है परन्तु काललब्धिविना द्रव्यलिंग धारेभी भावलिंगकी प्राप्ति न होय यातैं द्रव्यलिंग निष्फल जाय है ऐसैं मोक्षमार्ग प्रधानकरि भावलिंगही है। इहां कोई कहै है ऐसैं है तो द्रव्यलिंग पहले काहेकूं धारणां ? ताकूं कहिये ऐसैं मानै तौ व्यवहारका लोप होय है तातैं ऐसैं माननां जो द्रव्यलिंग पहले धारना, ऐसा न जानना जो याहीतैं सिद्धि है भावलिंगकूं प्रधान मानि तिसकै सन्मुख उपयोग राखना द्रव्यलिंगकूं यत्नतैं साधना ऐसा श्रद्धान भला है ॥ ३४ ॥

आगैं पुद्गल द्रव्यकू प्रधानकरि भ्रमण कहै हैं,—

पडिदेससमयपुग्गलआउगपरिणामणामकालट्ठं ।
गहिउज्झियाइं बहुसो अणंतभवसायरे जीवो ॥ ३५ ॥

प्रतिदेशसमयपुद्गलायुः परिणामनामकालस्थम् ।
गृहीतोज्झितानि बहुशः अनंतभवसागरे जीवः ॥ ३५ ॥

अर्थ—इस जीवनैं या अनंत अपार भवसमुद्रविषैं लोकाकाशके जेते प्रदेश हैं तिनि प्रति समय समय अर पर्यायके आयुप्रमाण काल अर अपने जैसा योगकषायके परिणमन स्वरूप परिणाम अर जैसा गतिजाति आदि नामकर्मके उदयतैं भया नाम अर काल जैसा उत्सर्पिणी अवसर्पिणी तिनि विषैं पुद्गलके परमाणुरूप स्कध ते बहुतवार अनतवार ग्रहण किये अर छोड़े ॥

भावार्थ—भावलिंग विना लोकमैं जेते पुद्गल स्कध हैं ते ते सर्व ही ग्रहे अर छोडे तौऊ मुक्त न भया ॥ ३५ ॥

आगैं क्षेत्रकू प्रधान करि कहै हैं,—

तेयाला तिण्णि सया रज्जूण लोयखेत्तपरिमाणं ।
मुत्तूणट्ठ पएसा जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो ॥ ३६ ॥

त्रिचत्वारिंशत् त्रीणि शतानि रज्जूनां लोकक्षेत्रपरिमाणं ।
मुक्त्वाऽष्टौ प्रदेशान् यत्र न भ्रमितः जीवः ॥ ३६ ॥

अर्थ—यहु लोक तीनसै तियालीस राजू परिमाण क्षेत्र है ताकै बीचि मेरुकै तलै गोस्तनाकार आठ प्रदेश हैं तिनिकूं छोडिकरि अन्य प्रदेश ऐसा न रह्या जामैं यह जीव नाही जनम्या मर्‍या ॥

भावार्थ—'ढुरुढुल्लिओ' ऐसा प्राकृतमैं भ्रमण अर्थका धातुका आदेश है, अर क्षेत्र परावर्त्तनमैं मेरुकै तलैं आठ प्रदेश लोकके मध्यके हैं तिनिकू जीव अपने प्रदेशनिके मध्यदेश उपजै हैं तहातैं क्षेत्रपरावर्त्तनका प्रारभ कीजिये है तातैं तिनिकूं पुनरुक्त भ्रमणमैं न गिणिये है ॥ ३६ ॥

आगैं यह जीव शरीरसहित उपजै मरै है तिस शरीरमैं रोग होय हैं तिनिकी संख्या दिखावै हैं:—

एक्केक्कंगुलि वाही छणणवदी होंति जाण मणुयाणं ।
अवसेसे य सरीरे रोया भण कित्तिया भणिया ॥ ३७ ॥

एकैकांगुलौ व्याधयः पण्णवतिः भवंति जानीहि मनुष्यानां ।
अवशेषे च शरीरे रोगाः भण कियन्तः भणिताः ॥

अर्थ—इस मनुष्यके शरीरविषैं एक एक अगुलमै छिनवै छिनवै रोग होय है तब कहो अवशेप समस्त शरीरविपैं केते रोग कहै ऐसैं जानि ॥३७

आगैं कहै हैं हे जीव ! तिनि रोगनिका दुःख तैं सह्या,—

ते रोगा वि य सयला सहिया ते परवसेण पुव्व भवे ।
एवं सहसि महाजस किं वा बहुएहिं लविएहिं ॥३८॥

ते रोगा अपि च सकलाः सोढास्त्वया परवशेण पूर्वभवे ।
एवं सहसे महायशः ! किं वा बहुभिः लपितैः ॥ ३८ ॥

हे महायश ! हे मुने ! तैं पूर्वोक्त सब रोगनिकूं पूर्वभवविपैं तौ परवश सहे, ऐसैं ही फेरि सहैगा, बहुत कहनेकरि कहा ?

भावार्थ—यह जीव पराधीन हुवा सर्व दुःख सहै है जो ज्ञान भावना करै अर दुःख आयां तासूं चिगै नाही ऐसैं स्ववशि सहै तो कर्मका नाश करि मुक्त हो जाय, ऐसैं जानना ॥ ३८ ॥

आगैं कहै हैं जो-अपवित्र गर्भवासमैं भी वस्या,—

पित्तंतमुत्तफेफसकालिज्जयरुहिरखरिसकिमिजाले ।
उयरे वसिओसि चिरं नवदसमासेहिं पत्तेहिं ॥३९॥

पित्तांत्रमूत्रफेफसयकृद्रुधिरखरिसकृमिजाले ।
उदरे उषितोऽसि चिरं नवदशमासैः प्राप्तैः ॥३९॥

अर्थ—हे मुने ! तू ऐसे मलिन अपवित्र उदरकै विषै नव मास तथा दश मास प्राप्ति करि वस्या, कैसा है उदर जामैं पित्त अर आतनि-करि वेढ्या अर मूत्रका स्रवण अर फेफस कहिये जो रुधिर विना मेद फूलिजाय बहुरि कालिज्ज[1] कहिये कालजो बहुरि रुधिर बहुरि खरिस

[1] पेटके दक्षिणभागमैं जलका आधाररूप मासपिंडकी थैली तथा मासका विकार ।

कहिये जो अपक्व मलसूं मिल्या रुधिर श्लेष्म बहुरि कृमिजाल कहिये लट जीवनिके समूह ये सर्व पाइये, ऐसा स्त्रीका उदरविषैं बहुत बार वस्या ॥ ३९ ॥

फेरि याहीकूं कहै हैं;—

दियसंगट्ठियमसणं आहारिय मायभुत्तमण्णांते ।
छद्दिखरिसाण मज्झे जठरे वसिओसि जणणीए ॥४०॥

द्विजसंगस्थितमशनं आहृत्य मातृभुक्तमन्नान्ते ।
छर्दिखरिसयोर्मध्ये जठरे उषितोऽसि जनन्याः ॥४०॥

अर्थ—हे जीव ! तू जननी जो माता ताके उदरगर्भविषै वस्या तहां माताका अर पिताका भोगकै अंत छर्दि कहिये वमनका अन्न खरिस कहिये अपक्व मल रुधिरसूं मिल्या तिनिकै मध्य वस्या, कहा करि वस्या—माताका दांतनिकरि चाब्या तिनि दांतनिकै लग्या तिष्ठ्या औठ्या जो भोजन माताके खाये पीछैं जो उदरमैं गया ताका रस आहारकरि वस्या ॥ ४० ॥

आगैं कहै हैं जो गर्भतैं नीसरि बालपणां ऐसा भोग्या;—

सिसुकाले य अयाणे असुईमज्झम्मि लोलिओसि तुमं ।
असुई असिया बहुसो मुणिवर ! बालत्तपत्तेण ॥४१॥

शिशुकाले च अज्ञाने अशुचिमध्ये लोलितोऽसि त्वम् ।
अशुचिः अशिता बहुशः मुनिवर ! बालत्वप्राप्तेन ॥४१॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू बालपणेके कालविषैं अज्ञान अवस्थामैं अशुचि अपवित्र स्थाननिविषैं अशुचिकै बीचि लोट्या बहुरि बहुतवार अशुचि वस्तु ही खाई, बालपणाकूं पाय ऐसी चेष्टा करी ॥

भावार्थ—इहां 'मुनिवर' ऐसा संबोधन है सो पूर्ववत् जानना, बाह्य आचरणसहित मुनि होय ताहीकूं इहां प्रधानपणैं उपदेश है जो बाह्य आचरण किया सो तौ बडा कार्य किया परन्तु भावविना यह निष्फल है तातैं भावके सन्मुख रहनां, भावविना ये अपवित्र स्थान मिले हैं ॥ ४१ ॥

आगैं कहै हैं—यह देह ऐसा है ताकूं विचारौ,—

मंसट्ठिसुक्कसोणियपित्तंतसवत्तकुणिमदुग्गंधं ।
खरिसवसपूयखिब्भिस भरियं चिंतेहि देहउडं ॥ ४२ ॥

मांसास्थिशुक्रश्रोणितपित्तांत्रस्रवत्कुणिमदुर्गन्धम् ।
खरिसवसापूयकिल्विषभरितं चिन्तय देहकुटम् ॥४२॥

अर्थ—हे मुने ! तू देहरूप घटकूं ऐसा विचारि, कैसा है देहघट—मांस अर हाड अर शुक्र कहिये वीर्य अर श्रोणित कहिये रुधिर अर पित्त कहिये उष्णविकार[1] अर अंत्र कहिये आंतरे ऊरते तिनिकरि तत्काल मृतककी ज्यों दुर्गंध है, बहुरि कैसा है देहघट खरिस कहिये रुधिरसूं मिल्या अपकमल, वसा कहिये मेद अर पूय कहिये बिगड्या लोही राधि ये सर्व मलिन वस्तुनिकरि पूर्ण भऱ्या है ऐसा देहरूप घटकूं विचारि ॥

भावार्थ—यह जीव तौ पवित्र है शुद्धज्ञानमयी है अर ये देह ऐसा तामैं वसना अयोग्य है ऐसा जनाया है ॥ ४२ ॥

आगैं कहै हैं—जो कुटुम्बतैं छूट्या सो नांही छूट्या भावतैं छूटे छूट्या कहिये,—

भावविमुत्तो मुत्तो ण य मुत्तो बंधवाइमित्तेण ।
इय भाविऊण उज्झसु गंधं अब्भंतरं धीर ॥ ४३ ॥

---

१ उष्णविकार ।

भावविमुक्तः मुक्तः न च मुक्तः बांधवादिमित्रेण ।
इति भावयित्वा उज्झय गन्थमाभ्यन्तरं धीर ! ॥४३॥

अर्थ—जो मुनि भावनिकरि मुक्त भया ताकूं मुक्त कहिये अर बाधव आदि कुटुम्ब तथा मित्र आदिकरि मुक्त भया ताकूं मुक्त न कहिये यातैं हे धीर ! मुनि तू ऐसा जानिकरि अभ्यन्तरकी वासनांकूं छोडि ॥

भावार्थ–जो बाह्य बाधव कुटुम्ब तथा मित्र इनिकूं छोडिकरि निर्ग्रंथ भया अर अभ्यन्तरका ममत्व भावरूप वासना तथा इष्ट अनिष्ट विषैं रागद्वेष वासना न छूटी तौ ताकूं निर्ग्रंथ न कहिये, अभ्यन्तर वासना छूटे निर्ग्रंथ है तातैं यह उपदेश है जो अभ्यन्तर मिथ्यात्व कषाय छोडि भावमुनि होनां ॥ ४३ ॥

आगैं कहै हैं जे पूर्वैं मुनि भये तिनिनैं भाव शुद्ध विना सिद्धि न पाई तिनिका उदाहरणमात्र नाम कहै हैं, तहां प्रथमही बाहुबलीका उदाहरण कहै हैं ;—

देहादिचत्तसंगो माणकसाएण कलुसिओ धीर ! ।
अत्तावणेण जादो बाहुबली कित्तियं कालं ॥ ४४ ॥

देहादित्यक्तसंगः मानकषायेन कलुषितः धीर ! ।
आतापनेन जातः बाहुबली कियन्तं कालम् ॥४४॥

अर्थ–देखो, बाहुबली श्री ऋषभदेवका पुत्र सो देहादिकतैं छोड्या है परिग्रह जानैं ऐसा निर्ग्रंथ मुनि भया तौऊ मानकषाय करि कलुष परिणामरूप भया संता केतेयक काल आतापन योग करि तिष्ठ्या सिद्धि न पाई ॥

भावार्थ–बाहुबलीतैं भरतचक्रवर्ती विरोध करि युद्ध आरंभ्या तहां भरत अपमान पाया तापीछैं बाहुबली विरक्त होय निर्ग्रंथ मुनि भये परन्तु कछू मानकषायकी कलुषता रही जो भरतकी भूमिमैं मैं कैसैं रहूं तब कायोत्सर्ग योगकरि एकवर्षताई तिष्ठे केवलज्ञान न पाया पीछैं कलुषता मिटी,

तब केवलज्ञान उपज्या, तातैं कहै हैं जो ऐसे महान पुरुष बडी शक्तिके धारकभी भावशुद्धिबिना सिद्धि न पाई तब अन्यकी कहा कथा ? तातैं भाव शुद्ध करना यह उपदेश है ॥ ४४ ॥

आगैं मधुपिंगमुनिका उदाहरण कहै हैं: —

महुपिंगो णाम मुणी देहाहारादिचत्तवावारो ।
सवणत्तणं ण पत्तो णियाणमित्तेण भवियणुय॥४५॥

मधुपिंगो नाम मुनिः देहाहारादित्यक्तव्यापारः ।
श्रमणत्वं न प्राप्तः निदानमात्रेण भव्यनुत ! ॥ ४५ ॥

अर्थ—मधुपिंगनामा मुनि है सो कैसा भया देह आहारादिविषैं छोड्या है व्यापार जानैं तोऊ निदानमात्रकरि भावश्रमणपणाकूं प्राप्त न भया ताहि भव्यजीवनिकरि नमने योग्य मुनि तू देखि ॥

भावार्थ—मधुपिंगलनामा मुनिकी कथा पुराणमैं है ताका संक्षेप ऐसा;—इस भरतक्षेत्रविषैं सुरम्यदेशमैं पोदनापुरका राजा तृणपिंगलका पुत्र मधुपिंगल था सो चारणयुगलनगरका राजा सुयोधनकी पुत्री सुलसाका स्वयंवरमैं आया था अर तहांही साकेतापुरीका राजा सगर आयाथा सो सगरके मंत्री, मधुपिंगलकूं कपटकरि सामुद्रिक शास्त्रकूं नवीन बणाय दूषण दिया जो याके नेत्र पिंगल है मांजरा है जो याकूं कन्या वरैं सो मरणकूं प्राप्त होय तब कन्या सगरकै गलै वरमाला गेरी मधुपिंगलकूं वर्‍या नांही, तब मधुपिंगल विरक्त होय दीक्षा लई पीछैं कारणपाय सगरका मंत्रीका कपटकूं जाणि क्रोधकरि निधान किया जो मेरै तपका फल यह होहु "जन्मान्तरविषैं सगरके कुलकूं निर्मूल करूं" तापीछैं मधुपिंगल मरि करि महाकालासुरनामा असुर देव भया तब सगरकूं मंत्री सहित मारणेका उपाय देखता भया तब क्षीरकदंब ब्राह्मणका पुत्र पर्वत पापी याकूं मिल्या तब पशुनिकी हिंसारूप यज्ञका सहायी होय कही, सगर राजाकूं यज्ञका उपदेश करि यज्ञ कराय तेरा यज्ञका सहायी हूंगा

तब पर्वत सगर पासि यज्ञ कराया पशु होमे, तिस पापतैं सगर सातवैं नरक गया अर कालासुर सहायी भया सो यज्ञके कर्ताकूं स्वर्ग गये दिखाये। ऐसैं मधुपिंगल नामा मुनि निदानकरि महाकालसुर होय महापाप उपार्ज्या, तातैं आचार्य कहै हैं मुनि होय तोऊ भाव बिगडे सिद्धिकू न पावै याकी कथा पुराणनितैं विस्तारतैं जाननी॥

आगै वशिष्ठ मुनिका उदाहरण कहै हैं,—

अण्णं च वसिट्ठमुणि पत्तो दुक्खं णियाणदोसेण।
सो णत्थि वासठाणो जत्थ ण ढुरुढुल्लिओ जीवो॥४६॥

अन्यश्च वसिष्ठमुनिः प्राप्तः दुखं निदानदोषेण।
तन्नास्ति वासस्थानं यत्र न भ्रमितः जीव!॥ ४६॥

अर्थ—बहुरि अन्य कहिये और एक वशिष्ठनामा मुनि निदानके दोषकरि दुःखकू प्राप्तभया यातैं ऐसा लोकमैं वासस्थान नाहीं जामैं यहु जीव जन्ममरणसहित भ्रमणकूं प्राप्त नाहीं भया॥

भावार्थ—वशिष्ठमुनिकी कथा ऐसैं है,—गंगा अर गंधवती दोऊ नदीका जहां संग भया है तहां जठरकौशिकनामा तापसीकी पल्ली है तहां एक वशिष्ट नामा तापसी पचाग्नितैं तपै था तहां गुणभद्र वीरभद्र नामा दोय चारणमुनि आये तिनि वशिष्ट तापसकूं कही जो तू अज्ञानतप करै है यामैं जीवनिकी हिंसा होय है, तब तापस प्रत्यक्ष हिंसा देखि अर विरक्त होय जैनदीक्षा लई मासोपवाससहित आतापनयोग स्थाप्या, तिस तपके माहात्म्यतैं सात व्यन्तरदेव आय कही, हमकूं आज्ञा द्यो सोही करां, तब वशिष्ठ कही अबारतौ मेरै कछू प्रयोजन नांही जन्मांतरमैं तुमकू यादि करूंगा। पाछैं वशिष्ठ मथुरापुरी आय मासोपवाससहित आतापन जोग स्थाप्या ताकूं मथुरापुरीके राजा उग्रसेनने देखि भक्ति थकी या विचारी जो याकूं मैं पारणा कराऊंगा ऐसैं

आगै कहै हैं—भावरहित चौरासीलाख योनिमैं भ्रमै हैं,—

सो णत्थि तं पएसो चउरासीलक्खजोणिवासम्मि ।
भावविरओ वि सवणो जत्थ ण ढुरुढुल्लिओजीवो ॥४७॥

सः नास्ति त्वं प्रदेशः चतुरशीतिलक्षयोनिवासे ।
भावविरतःअपि श्रमणः यत्र न भ्रमितः जीवः ॥४७॥

अर्थ—या ससारमैं चौरासीलाख योनि तिनिके वासमै ऐसा प्रदेश नांही है जामैं यह जीव द्रव्यलिग मुनि होय करि भी भावरहित भया सता न भ्रमण किया ॥

भावार्थ—द्रव्यलिग धारि निर्ग्रंथ मुनि होय करि शुद्धस्वरूपका अनुभवरूप भावविना यह जीव चौरासी लाख योनिमै भ्रमताही रह्या, ऐसा ठिकानां नाही रह्या जामैं जनम्या मऱ्या न होय,, ऐसे जानना ॥

आगैं चौरासी लाख योनिका भेद कहै हैं,-पृथ्वी, अप, तेज, वायु, नित्यनिगोद, इतरनिगोद, ये तौ सात सात लाख हैं ते बयालीस लाख भये; बहुरि वनस्पति दश लाख हैं, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय, दोय दोय लाख हैं, पन्चेन्द्रिय तिर्यंच च्यार लाख, देव च्यार लाख, नारकी च्यार लाख, मनुष्य चौदह लाख । ऐसैं चौरासी लाख हैं । ये जीवनिके उपजनेके ठिकानें जानने ॥ ४७ ॥

आगैं कहै हैं जो—द्रव्यमात्रकरि लिंगी न होय, भावकरि लिंगी होय है;—

भावेण होइ लिंगी णहु लिंगी होइ दव्वमित्तेण ।
तम्हा कुणिज्ज भावं किं कीरइ दव्वलिंगेण ॥४८॥

भावेन भवति लिंगी न हि लिंगी भवति द्रव्यमात्रेण ।
तस्मात् कुर्याः भावं किं क्रियते द्रव्यलिंगेन ॥ ४८ ॥

अर्थ—लिंगी होय है सो भावलिंगहीतैं होय है द्रव्यलिगकरि लि-

गी नाही होय है यह प्रकट है, तातैं भावलिंगही धारण करना. द्रव्य लिंगकरि कहा कीजिये ॥

भावार्थ—आचार्य कहै हैं जो—मिथ्यात्व कहा कहिये भावलिंग विना लिंगी नामही नाही होय जातैं यह प्रकट है. भाव शुद्ध न देखै तब लोक ही कहै जो काहेका मुनि है कपटी है तातैं द्रव्यलिंगकरि कछू साध्य नाही. भावलिंगही धारना ॥ ४८ ॥

आगैं याहीकूं दृढ करनेकूं द्रव्यलिंगधारककै उलटा उपद्रव भया, ताका उदाहरण कहै हैं:—

दंडयणयरं सयलं डहिओ अब्भंतरेण दोसेण ।
जिणलिंगेण वि बाहू पडिओ सो रउरवे णरये ॥४९॥

दण्डकनगरं सकलं दग्ध्वा अभ्यन्तरेण दोषेण ।
जिनलिंगेनापि बाहुः पतितः सः रौरवे नरके ॥४९॥

अर्थ—देखो, बाहुनामा मुनि बाह्य जिनलिंगकरि सहित था तौऊ अभ्यंतरके दोषकरि समस्त दंडकनामा नगरकूं दग्ध किया अर सप्तम पृथ्वीका रौरवनामा बिलमैं पड्या ॥

भावार्थ—द्रव्यलिंग धारि किछू तप करै ताकरि किछू सामर्थ्य वधै तब कछू कारण पाय क्रोध करि आपका अर परका उपद्रव करनेंका कारण बनावै तातैं द्रव्यलिंग भावसहित धारणा ही श्रेष्ठ है अर केवल द्रव्यलिंग तौ उपद्रवका कारण होय है, ऐसैं याका उदाहरण बाहु मुनिका बताया ताकी कथा ऐसैं,—दक्षिणदिशामैं कुंभकारकटकनगरविषैं दंडकनामा राजा, ताकै बालकनाम मंत्री, तहा अभिनंदन आदि पाचसौ मुनि आये, तिनिमैं एक खंडकनामा मुनि था, तानैं बालकनाम मंत्रिकूं वादविषैं जीत्या, तब मंत्री क्रोधकरि एक भांडकूं मुनिका रूप कराय राजाकी राणी सुव्रता सहित रमता राजाकूं दिखाया, अर कही जो देखो

राजाकै ऐसी भक्ति है जो अपनी स्त्री भी दिगंबरकूं रमबानैं दई है तब राजा दिगम्बरनितैं क्रोध करि पाचसै मुनिनिकूं घाणीमै पिलवाया,ते मुनि उपसर्ग सहि परमसमाधि करि सिद्धि प्राप्त हुये। पीछे तिसनगर बाहुनामा मुनि आया ताकूं लोकनि मनैं किया जो इहा राजा दुष्ट है सो तुम नगरमै प्रवेश मति करौ आगैं पाचसै मुनि घाणीमैं पेल्या है सो तुमकू भी तैसैंही करैगा। तब लोकनिके वचनकरि बाहु मुनिकू क्रोध उपज्या तब अशुभतैजससमुद्घात करि राजाकूं मत्री सहित सर्वनगरकूं भस्म किया। राजा मंत्री सातवै नरक रौरवनामा बिलामैं पडे तहाही बाहुमुनिभी मरि करि रौरवबिलामैं पड्या। ऐसै द्रव्यलिंगमैं भावके दोषतैं उपद्रव होय है तातें भावलिंगका प्रधान उपदेश है ॥ ४९ ॥

आगें इसही अर्थपरि दीपायनमुनिका उदाहरण कहै हैं,

अवरो वि दव्वसवणो दंसणवरणाणचरणपब्भट्ठो।
दीवायणुत्ति णामो अणंतसंसारिओ जाओ ॥ ५० ॥

अपरः अपि द्रव्यश्रमणः दर्शनवरज्ञानचरणप्रभ्रष्टः।
दीपायन इति नाम अनंतसांसारिकः जातः ॥ ५० ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो पहलै बाहु मुनि कह्या तैसैं ही और भी दीपायननामा द्रव्यश्रमण सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रतैं भ्रष्ट भया सता अनंतसंसारी भया ॥

भावार्थ—पूर्ववत् याकी कथा संक्षेपतैं ऐसी, नवमा बलभद्र श्रीनेमिनाथतीर्थंकरकूं पूछी जो स्वामिन्! या द्वारिकापुरी समुद्रमैं है सो याकी स्थिति केतेककाल है? तब भगवान् कही रोहिणीको भाई दीपायन तेरो मामो बारह वर्ष पीछैं मद्यका निमित्तकरि क्रोधकरि या पुरीकूं दग्ध करिसी, ऐसे भगवानके वचन सुनि निश्चयकरि दीक्षा ले पूर्वदेशनैं गया, बारह वर्ष व्यतीत करनेंकूं तप करना आरंभ्या, अर बलभद्र

सागरदत्तनामा मुनि ऋद्धिधारीकूं वनमैं पूजनेंकू जाय हैं, तब शिवकुमार मुनि पासि जाय अपना पूर्वभव सुनि संसारसूं विरक्त होय दीक्षा लई, अर दृढधरनामा श्रावकके घर प्रासुक आहार लिया, ता पीछैं स्त्रीनिके निकट असिधाराव्रत परम ब्रह्मचर्य पालता सता बारह वर्ष ताईं तपकरि अतसन्यास मरणकरि ब्रह्मकल्पविषैं विद्युन्मालीदेव भया, तहांतैं चयकरि जंबूकुमार भया सो दीक्षा लेय केवलज्ञान पाय मोक्ष गया। ऐसैं शिवकुमार भावमुनि मोक्ष पाई, याकी विस्तारसहित कथा जंबूचरित्रमैं है तहांतैं जाननीं; ऐसैं भाव लिंग प्रधान है ॥ ५१ ॥

आगैं शास्त्र भी पढै अर सम्यग्दर्शनादिरूप भाव विशुद्ध न होय तौ सिद्धिकूं न पावै, ताका उदाहरण अभव्यसेन का कहै हैं;—

केवलिजिणपण्णत्तं[1] एयादसअंग सयलसुयणाणं।
पढिओ अभव्वसेणो ण भावसवणत्तणं पत्तो ॥५२॥

केवलिजिनप्रज्ञप्तं एकादशांगं सकलश्रुतज्ञानम्।
पठितः अभव्यसेनः न भावश्रमणत्वं प्राप्तः ॥ ५२ ॥

अर्थ—अभव्यसेननामा द्रव्यलिंगी मुनि है सो केवली भगवानका प्ररूप्या ग्यारह अग पढ्या तथा ग्यारह अंगकूं पूर्ण श्रुतज्ञान भी कहिये जातैं एता पढ्याकूं अर्थ अपेक्षा पूर्ण श्रुतज्ञान भी होय जाय है, तहा अभव्यसेन एता पढ्या तौऊ भावश्रमणपणाकूं प्राप्त न भया ॥

भावार्थ—इहा ऐसा आशय है जो कोई जानैगा बाह्य क्रिया मात्रतै तौ सिद्धि नाही अर शास्त्रके पढनेंकरि तौ सिद्धि है तौ यह भी जानना

१—मुद्रित सस्कृत सटीक प्रतिमैं यह गाथा इस प्रकार है,—

अंगाइं दस य दुण्णि य चउदसपुव्वाइं सयलसुयणाणं।
पढिओ अ भव्वसेणो ण भावसवणत्तण पत्तो ॥ ५२ ॥
अंगानि दश च द्वे च चतुर्दशपूर्वाणि सकलश्रुतज्ञानम्।
पठितश्च भव्यसेनः न भावश्रमणत्व प्राप्तः ॥ ५२ ॥

सत्य नाही जातैं शास्त्र पढने मात्रतैभी सिद्धि नांही है-अभव्यसेन द्रव्य-मुनिभी भया अर ग्यारह अगभी पढ्या तोऊ जिनवचनकी प्रतीति न भई यातैं भावलिंग न पाया। अभव्यसेनकी कथा पुराणनिमैं प्रसिद्ध है तहांतैं जाननी ॥ ५२ ॥

आगैं शास्त्र पढ्या विना शिवभूति मुनि तुपमापकूं घोखता ही भावकी विशुद्धिकूं पाय मोक्ष पाई ताका उदाहरण कहै हैं,—

तुसमासं घोसंतो भावविसुद्धो महाणुभावो य।
णामेण य सिवभूई केवलणाणी फुडं जाओ ॥ ५३ ॥

तुपमापं घोपयन् भावविशुद्धः महानुभावश्च।
नाम्ना च शिवभूतिः केवलज्ञानी स्फुटं जातः ॥ ५३ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो-शिवभूति मुनि है सो शास्त्र न पढ्या तुप माप ऐसा शब्दकू घोखता संता भावकरि विशुद्धितातैं महानुभाव होयकरि केवल ज्ञान पाया यह प्रकट है॥

भावार्थ—कोई जानैगा कि शास्त्र पढे ही सिद्धि है सो ऐसैं भी नाही, शिवभूति मुनि तुपमाप ऐसा शब्द मात्रही घोखता भावनिकी विशुद्धतातैं केवलज्ञान पाया, याकी कथा ऐसैं,—कोई शिवभूति नामा मुनि था सो गुरुनिपासि शास्त्र पढ़ै सो धारणा होय नाही, तब गुरुनि यह शब्द पढाया जो "मा रुप मा तुप" सो या शब्दकूं घोखने लगा। याका अर्थ यह जो रोप मति करै तोप मति करै॥

भावार्थ—राग द्वेप मति करै यातैं सर्व सिद्धि है। तब यह भी शुद्ध याद[1] न रह्या तब 'तुपमाप' ऐसा पाठ घोखने लगा, दोप पदके 'रुकार 'तुकार' विस्मरण होय गये अर तुप माप ऐसा यादि रह्या ताकूं घोखता विचरै। तब कोई एक स्त्री उडदकी दालि धोवै थी ताकूं काहूनैं

---

[1] माकार, ऐसा पाठ सुसगत है।

पूछी, तू कहा करै है-तब वानैं कही-तुप अर माप भिन्न न्यारे न्यारे करूं हूं। तब या मुनिनैं सुनि तुप माप शब्दका भावार्थ यह जान्या जो यह शरीर तौ तुप है अर यह आत्मा माप है, दोऊ भिन्न हैं न्यारे न्यारे हैं, ऐसा भाव जानि आत्माका अनुभव करने लगा, चिन्मात्र शुद्ध आत्माकूं जानि तामैं लीन भया, तब घाति कर्मका नाशकरि केवलज्ञान उपजाया। ऐसैं भावनिकी विशुद्धितातैं सिद्धि भई जानि भाव शुद्ध करना, यह उपदेश है ॥ ५३ ॥

आगै य ही अर्थकूं सामान्यकरि कहै हैं,

भावेण होइ णग्गो बाहिरलिंगेण किं च णग्गेण।
कम्मपयडीय णियरं णासइ भावेण दव्वेण ॥ ५४ ॥

भावेन भवति नग्नः वहिर्लिंगेन किं च नग्नेन।
कर्मप्रकृतीनां निकरं नाशयति भावेन द्रव्येण ॥ ५४ ॥

अर्थ—भावकरि नग्न होय है बाह्य नग्नलिंगकरि कहा कार्य होय है. नाही होय है जातैं भाव सहित द्रव्यलिंगकरि कर्मप्रकृतिके समूहका नाश होय हे॥

भावार्थ—आत्माकै कर्मप्रकृतिका नाशकरि निर्जरा तथा मोक्ष होना कार्य है, सो यह कार्य द्रव्यलिंग ही करि तौ नांही होय है, भावसहित द्रव्यलिंग भये कर्मकी निर्जरा नामा कार्य होय है, केवल द्रव्यलिंगकरि तौ न होय है, तातैं भावसहित द्रव्यलिंग धारणां यह उपदेश है ॥५४॥

आगै याही अर्थकू दृढ करै है;—

णग्गत्तणं अकज्जं भावणरहियं जिणेहिं पण्णत्तं।
इय णाऊण य णिच्चं भाविज्जहि अप्पयं धीर ॥ ५५ ॥

नग्नत्वं अकार्यं भावरहितं जिनैः प्रज्ञप्तम्।
इति ज्ञात्वा नित्यं भावयेः आत्मानं धीर ! ॥ ५५ ॥

अर्थ—भावरहित नग्नपणां है सो अकार्य है कछू कार्यकारी नाही यह जिनभगवाननैं कह्या है, ऐसैं जानिकरि हे धीर! हे धैर्यवान मुने निरन्तर नित्य आत्माहीकूं भाय ॥

भावार्थ—आत्माकी भावना विना केवल नग्नपणां कछू कार्य करने वाला नाहीं तातैं चिदानन्दस्वरूप आत्माहीकी भावना निरन्तर करणीं, या सहित नग्नपणा सफल है ॥ ५५ ॥

आगैं शिष्य पूछै है जो—भावलिंगकूं प्रधानकरि निरूपण किया सो भावलिंग कैसा है? ताका समाधानकू भावलिंगका निरूपण करै हैं,—

देहादिसंगरहिओ माणकसाएहिं सयलपरिचत्तो।
अप्पा अप्पम्मि रओ स भावलिंगी हवे साहू ॥ ५६ ॥

देहादिसंगरहितः मानकषायैः सकलपरित्यक्तः।
आत्मा आत्मनि रतः स भावलिंगी भवेत् साधु ॥५६॥

अर्थ—भावलिंगी साधु ऐसा होय है—देह आदिक जे परिग्रह तिनितैं रहित होय बहुरि मान कषायकरि रहित होय बहुरि आत्मा विषैं लीन होय सो आत्मा भावलिंगी है ॥

भावार्थ—आत्माका स्वाभाविक परिणामकू भाव कहिये है तिसमयी लिंग कहिये चिह्न तथा लक्षण तथा रूप होय सो भावलिंग है। तहां आत्मा अमूर्त्तीक चेतनारूप है ताका परिणाम दर्शन ज्ञान है तिसमैं कर्मके निमित्ततैं बाह्य तौ शरीरादिक मूर्तीक पदार्थका संबंध है अर अंतरंग मिथ्यात्व अर रागद्वेष आदि कषायनिका भाव है। तातैं कहै हैं— जो बाह्य तौ देहादिक परिग्रहतैं रहित अर अंतरंग रागादिक परिणाम-विषैं अहंकाररूप मानकषाय परभावनिविषैं आपा मानना तिस भावतैं रहित होय, अर अपना दर्शनज्ञानरूप चेतनाभाव ताविषैं लीन होय सो भाव लिंग है, यह भाव होय सो भावलिंगी साधु है ॥ ५६ ॥

आगैं याही अर्थकूं स्पष्टकरि कहै हैं,—

ममत्तिं परिवज्जामि णिम्ममत्तिमुवट्ठिदो ।
आलंबणं च मे आदा अवसेसाइं वोसरे ॥ ५७ ॥

ममत्वं परिवर्जामि निर्ममत्वमुपस्थितः ।
आलंबनं च मे आत्मा अवशेषानि व्युत्सृजामि ॥५७॥

अर्थ—भावलिंगी मुनिके ऐसे भाव होय है-मैं परद्रव्य अर परभावनितैं ममत्व कहिये अपनां माननां ताकू छोड़ूहूँ बहुरि मेरा निजभाव ममत्वरहित है ताकू अंगीकार करि तिष्ठू हूँ, अब मेरै आत्माहीका अवलबन है और सर्वहीकूं छोड़ू हूँ ॥

भावार्थ—सर्व परद्रव्यनिका आलंबन छोड़ि अपने आत्म स्वरूप विषैं तिष्ठै ऐसा भावलिंग है ॥ ५७ ॥

आगैं कहै हैं जो-ज्ञान दर्शन संयम त्याग संवर योग ये भाव भावलिंगी मुनिकै होय हैं ते अनेक है तौऊ आत्माही है तातैं इनितैं भी अभेदका अनुभव करै है,—

आदा खु मज्झ णाणे आदा मे दंसणे चरित्ते य ।
आदा पच्चक्खाणे आदा मे संवरे जोगे ॥ ५८ ॥

आत्मा खलु मम ज्ञाने आत्मा मे दर्शने चरित्रे च ।
आत्मा प्रत्याख्याने आत्मा मे संवरे योगे ॥ ५८ ॥

अर्थ—भावलिंगी मुनि विचारै है जो-मेरै ज्ञानभाव प्रगट है ताविषैं आत्माहीकी भावना है कछू ज्ञान न्यारा वस्तु नांही है ज्ञान है सो आत्मा ही है, तैसैं दर्शनविषैं भी आत्माही है, बहुरि चारित्र है सो ज्ञानविषैं थिरता रहना है सो या विषै भी आत्माही है, बहुरि प्रत्याख्यान आगामी परद्रव्यका सबध छोड़ना है सो या भावविषै आत्माही है, बहुरि सवर परद्रव्यके भावरूप न परिणमनेका है सो या भावविषैं भी मेरै आत्माही

है, बहुरि योग नाम एकाग्र चितारूप समाधि ध्यानका है सो या भावविषैं भी मेरैं आत्माही है ॥

भावार्थ—ज्ञानादिक कछू न्यारे पदार्थ तौ है नांही, आत्माहीके भाव है सञ्ज्ञादिकके भेदतैं न्यारे कहिये हैं, तहा अभेददृष्टिकरि देखिये तब ये सर्वभाव आत्माही हैं तातैं भावलिंगी मुनिके अभेद अनुभवमें विकल्प नाही है; तातैं निर्विकल्प अनुभवतैं सिद्धि है यह जाणि ऐसैं करै है ॥ ५८ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करते कहै हैं,—

अनुष्टुप् श्लोक।

एगो मे सस्सदो अप्पा णाणदंसणलक्खणो।
सेसा मे बाहिरा भावा सव्वे संजोगलक्खणा ॥५९॥

एकः मे शाश्वतः आत्मा ज्ञानदर्शनलक्षणः।
शेषाः मे बाह्याः भावाः सर्वे संयोगलक्षणाः ॥५९॥

अर्थ—भावलिंगी विचारै है जो ज्ञान दर्शन जाका लक्षण ऐसा अर शाश्वता नित्य ऐसा आत्मा है सोही एक मेरा है बाकी भाव हैं ते मोतैं बाह्य हैं ते सर्वही सयोगस्वरूप हैं परद्रव्य हैं ॥

भावार्थ—ज्ञानदर्शनस्वरूप नित्य एक आत्मा है सो तौ मेरा रूप है एक स्वरूप है अर अन्य परद्रव्य हैं ते मोतैं बाह्य हैं सर्व सयोगस्वरूप हैं, भिन्न हैं, यह भावना भावलिंगी मुनिकै है ॥ ५९ ॥

आगैं कहै हैं जो मोक्ष चाहै है सो ऐसैं आत्माकी भावना करै,

भावेह भावसुद्धं अप्पा सुविसुद्धणिम्मलं चेव।
लहु चउगइ चइऊणं जइ इच्छसि सासयं सुक्खं ॥६०॥

भावय भावशुद्धं आत्मानं सुविशुद्धनिर्मलं चैव।
लघु चतुर्गतिं च्युत्वा यदि इच्छसि शाश्वतं सौख्यम् ॥६०॥

अर्थ—हे मुनिजन हो ! जो च्यारगतिरूप संसारतै छुटिकरि शीघ्र शाश्वता सुखरूप मोक्ष तुम चाहोहो तौ भावकरि शुद्ध जैसैं होय तैसैं अतिशयकरि विशुद्ध निर्मल आत्माकूं भावौ ॥

भावार्थ—जो ससारतैं निवृत्तिकरि मोक्ष चाहोहो तौ द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्मतैं रहित शुद्ध आत्माकूं भावौ ऐसा उपदेश है ॥ ६० ॥

आगैं कहै हैं जो आत्माकूं भावै सो याका स्वभावकू जाणि भावै सो मोक्ष पावै;—

जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो ।
सो जरमरणविणासं कुणइ फुडं लहइ णिव्वाणं ॥६१॥

यः जीवः भावयन् जीवस्वभावं सुभावसंयुक्तः ।
सः जरामरणविनाशं करोति स्फुटं लभते निर्वाणम् ॥६१॥

अर्थ—जो भव्यपुरुष जीवकूं भावता संता भले भावकरि संयुक्त भया जीवका स्वभावकूं जाणि करि भावै सो जरा मरणका विनाशकरि प्रगट निर्वाणकूं पावै है ॥

भावार्थ—जीव ऐसा नाम तौ लोकमैं प्रसिद्ध है परन्तु याका स्वभाव कैसा है ऐसा लोककै यथार्थ ज्ञान नाहीं अर मतातरके दोपतैं याका स्वरूप विपर्यय होय रह्या है तातैं याका यथार्थ स्वरूप जानि भावै हैं ते संसारतैं निवृत्त होय मोक्ष पावै हैं ॥ ६१ ॥

आगै जीवका स्वरूप सर्वज्ञदेव कह्या है सो कहै हैं;—

जीवो जिणपण्णत्तो णाणसहाओ य चेयणासहिओ ।
सो जीवो णायव्वो कम्मक्खयकरणणिम्मित्तो ॥ ६२ ॥

जीवः जिनप्रज्ञप्तः ज्ञानस्वभावः च चेतनासहितः ।
सः जीवः ज्ञातव्यः कर्मक्षयकरणनिमित्तः ॥ ६२ ॥

अर्थ- जिन सर्वज्ञ देव जीवका स्वरूप ऐसा कह्या है;—जीव है सो चेतनासहित है बहुरि ज्ञानस्वभाव है, ऐसा जीवका भावना कर्मका क्षयके निमित्त जाननां ॥

भावार्थ—जीवका चेतनासहित विशेषण कियातैं तौ चार्वाक जीवकूं चेतनासहित न मानै है ताका निराकरण है। बहुरि ज्ञानस्वभाव-विशेषणतैं साङ्ख्यमती ज्ञानकूं प्रधान धर्म मानै है जीवकूं उदासीन नित्य चेतनारूप मानै है ताका निराकरण है, तथा नैयायिकमती गुण गुणीका भेद मानि ज्ञानकूं सदा भिन्न मानै है ताका निराकरण है। बहुरि ऐसा जीवका स्वरूपका भावना कर्मका क्षयकै निमित्त होय है, अन्य प्रकार भया मिथ्याभाव है ॥ ६२ ॥

आगै कहै हैं जो जे पुरुष जीवका अस्तित्व मानैं है ते सिद्ध होय हैं,—

जेसिं जीवसहावो णत्थि अभावो य सव्वहा तत्थ ।
ते होंति भिण्णदेहा सिद्धा वचिगोयरमतीदा ॥ ६३ ॥

येषां जीवस्वभावः नास्ति अभावः च सर्वथा तत्र ।
ते भवन्ति भिन्नदेहाः सिद्धाः वचोगोचरातीताः ॥ ६३ ॥

अर्थ—जिनि भव्यजीवनिकै जीवनामा पदार्थ सद्भावरूप है अर सर्वथा अभावरूप नांही है ते भव्यजीव देह तैं भिन्न ऐसे सिद्ध होय हैं, ते कैसे हैं सिद्ध-वचनगोचरतैं अतीत हैं ॥

भावार्थ-जीव है सो द्रव्यपर्यायस्वरूप है सो कथंचित् अस्तित्व-रूप है कथंचित् नास्तिस्वरूप है तहा पर्याय अनित्य है या जीवकै कर्मके निमित्ततैं मनुष्य तिर्यंच देव नारक पर्याय होय हैं ताका कदाचित् अभाव देखि जीवका सर्वथा अभाव मानैं है। ताके सम्बोधनकूं ऐसा कह्या है-जो जीवका द्रव्यदृष्टिकरि नित्य स्वभाव है, पर्यायका अभाव होतैं

सर्वथा अभाव न मानै है सो देहतैं भिन्न होय सिद्ध होय है, ते सिद्ध वचनगोचर नाही है, अर जे देहकूं विनसता देखि जीवका सर्वथा नाश मानैं हैं ते मिथ्यादृष्टि हैं, ते सिद्ध कैसैं होय, न होय ॥६३॥

आगै कहै हैं जो जीवका स्वरूप वचनकै अगोचर है अर अनुभवगम्य है सो ऐसा है;—

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेयणागुणमसद्दं[1] ।
जाणमलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥ ६४ ॥

अरसमरूपमगंधं अव्यक्तं चेतनागुणं अशब्दम् ।
जानीहि अलिंगग्रहणं जीवं अनिर्दिष्टसंस्थानम् ॥६४॥

अर्थ—हे भव्य ! तू जीवका स्वरूप-ऐसा जानि-कैसा है अरस कहिये पंच प्रकार खाटो मीठो कड़ो कषायलो खारो रसकरि रहित है बहुरि कालो पीलो लाल सुफेद हर्‍यो या प्रकार अरूप कहिये पांच प्रकार रूप करि रहित है; बहुरि दोय प्रकार गंधकरि रहित है बहुरि अव्यक्त कहिये इन्द्रियनिके गोचरव्यक्त नांही है, बहुरि चेतनागुण है जामैं, बहुरि अशब्द कहिये शब्दकरि रहित है, बहुरि अलिंगग्रहण कहिये जाका कोऊ चिह्न इन्द्रियद्वारै ग्रहणमैं आता नाही, अर अनिर्दिष्ट संस्थान कहिये चौकूंणा गोल आदि कछू आकार जाका कह्या जाता नांही ऐसा जीव जाणौं ॥

भावार्थ—रस रूप गंध शब्द येतौ पुद्गलके गुण है-तिनिका निषेधरूप जीव कह्या, बहुरि अव्यक्त, अलिंगग्रहण अनिर्दिष्टसंस्थान कह्या, सो ये भी पुद्गलके स्वभावकी अपेक्षाकरि निषेधरूपही जीव कह्या, अर चेतनागुण कह्या सो ये जीवका विधिरूप कह्या । सो निषेध अपेक्षा तौ वच-

---

१—संस्कृत मुद्रित प्रतिमें 'चेयणागुणसमद्द' ऐसा प्राकृत पाठ है जिसका "चेतनागुणसमार्द्र" ऐसा संस्कृत है, वचनिका प्रतियोंमें उपरिलिखित पाठ है ।

नके अगोचर जानना अर विधि अपेक्षा स्वसवेदगोचर जाननां, ऐसै जीवका स्वरूप जानि अनुभवगोचर करनां। यह गाथा समयसार प्रवचनसार ग्रथमैं भी है सो याका व्याख्यान टीकाकार विशेषकरि कह्या है सो तहातैं जाननां ॥ ६४ ॥

आगैं जीवका स्वभाव ज्ञानस्वरूप भावनां कह्या सो वह ज्ञानके प्रकार भावना सो कहै हैं;—

भावहि पंचपयारं णाणं अण्णाणणासणं सिग्घं ।
भावणभावियसहिओ दिवसिवसुहभायणो होइ ॥६५॥

भावय पंचप्रकारं ज्ञानं अज्ञाननाशनं शीघ्रम् ।
भावनाभावितसहितः दिवशिवसुखभाजनं भवति ॥६५॥

अर्थ—हे भव्यजन ! तू यह ज्ञान पांच प्रकार भाय, कैसा है यह ज्ञान—अज्ञानका नाशकरनेंवाला है, कैसा भया भाय, भावनाकरि भावित जो भाव तिमसहित भाय, बहुरि कैसा भया शीघ्र भाय, यातै तू दिव कहिये स्वर्ग शिव कहिये मोक्ष ताका भाजन होय ॥

भावार्थ—यद्यपि ज्ञान जाननस्वभावकरि एक प्रकार है तौऊ कर्मके क्षयोपशम क्षयकी अपेक्षा पच प्रकार भया है तामैं मिथ्यात्वभावकी अपेक्षाकरि मतिश्रुत अवधि ये तीन मिथ्याज्ञानभी कहाये हैं, तातैं मिथ्याज्ञानका अभाव करनेकूं मति श्रुत अवधि मनःपर्यय केवल ज्ञानस्वरूप पंच प्रकार सम्यग्ज्ञान जानि तिनिकूं भावना, परमार्थ विचार तैं ज्ञान एकही प्रकार है, यह ज्ञानकी भावना स्वर्गमोक्षकी दाता है ॥ ६५ ॥

आगैं कहै हैं जो—पढ़नां सुननां भी भावविना कछू है नांही,—

पढिएण वि किं कीरइ किं वा सुणिएण भावरहिएण ।
भावो कारणभूदो सायारणयारभूदाणं ॥ ६६ ॥

पठितेनापि किं क्रियते किं वा श्रुतेन भावरहितेन ।
भावः कारणभूतः सागारानगारभूतानाम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—भावरहित पढना सुनना तिनिकरि कहा कीजिये कछू भी कार्यकारी नांहीं है तातैं श्रावकपणा तथा मुनिपणा इनिका कारणभूत भावही है ॥

भावार्थ—मोक्षमार्गमै एकदेश सर्वदेश व्रतनिकी प्रवृत्तिरूप मुनिश्रावकपणा है सो दोऊका कारणभूत निश्चय सम्यग्दर्शनादिक भाव हैं, तहा भावविना व्रतक्रियाकी कथनी कछू कार्यकारि नाहीं है, तातै ऐसा उपदेश है जो भावविना पढ़ना सुनना आदिकरि कहा कीजिये, केवल खेदमात्र है, तातैं भावसहित कछू करो सो सफल है । इहा ऐसा आशय है जो कोऊ जानेगा पढ़ना सुननांही ज्ञान है सो ऐसै नाहीं है, पढ़ि सुनिकरि आपकूं ज्ञानस्वरूप जानि अनुभव करै तब भाव जानिये है, तातै बार बार भावनाकरि भाव लगायेही सिद्धि है ॥ ६६ ॥

आगै कहै हैं जो—बाह्य नग्नपणांही करि ही सिद्धि होय तौ नग्न तौ सारेही होय हैं;—

दव्वेण सयल णग्गा णारयतिरिया य सयलसंघाया ।
परिणामेण असुद्धा ण भावसवणत्तण पत्ता ॥ ६७ ॥

द्रव्येण सकला नग्नाः नारकतिर्यंचश्च सकलसंघाताः ।
परिणामेन अशुद्धाः न भावश्रमणत्वं प्राप्ताः ॥६७॥

अर्थ—द्रव्यकरि बाह्य तौ सकल प्राणी नागा होय हैं नारकी जीव अर तिर्यंच जीव तौ निरन्तर वस्त्रादिककरि रहित नागाही रहैं हैं, बहुरि सकलसंघात कहनेतैं अन्य मनुष्य आदिक भी कारण पाय नग्न होय हैं तौऊ परिणामकरि अशुद्ध हैं तातैं भावश्रमणपणांकूं प्राप्त नांही भये ॥

भावार्थ—जो नग्न रहे ही मुनिलिंग होय तौ नारकी तिर्यंच आदि सकल जीवसमूह नग्न रहैं हैं ते सर्वही मुनि ठहरै तातै मुनिपणां तौ भाव शुद्ध भयेही होय है, अशुद्ध भाव होय तेतै द्रव्यकरि नग्न भी होय तौ भावमुनिपणां न पावै है ॥ ६७ ॥

आगै याही अर्थकूं दृढ़ करनेंकूं केवल नग्नपणां निष्फल दिखावै हैं,—

णग्गो पावइ दुक्खं णग्गो संसारसायरे भमई।
णग्गो ण लहइ बोहिं जिणभावणवज्जिओ सुइरं ॥६८॥

नग्नः प्राप्नोति दुःखं नग्नः संसारसागरे भ्रमति।
नग्नः न लभते बोधिं जिनभावनावर्जितः सुचिरं ॥६८॥

अर्थ—नग्न है सो सदा दुःख पावै है, बहुरि नग्न है सो सदा संसारसमुद्रमैं भ्रमै है, बहुरि नग्न है सो बोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप स्वानुभव ताहि न पावै है, कैसा है नग्न—जो जिन भावना-करि वर्जित है सो ॥

भावार्थ—जिनभावना जो सम्यग्दर्शन भावना तिसकरि वर्जित जो जीव है सो नग्न भी रहै तौ बोधि जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग ताकूं न पावै है याहीतैं संसारसमुद्रमैं भ्रमता संसारहीमैं दुःखकूं पावै है, तथा वर्त्तमानमैं भी जो पुरुष नागा होय है सो दुःखहीकूं पावै है; सुख तौ भावमुनि नागा होय ते ही पावैं हैं ॥ ६८ ॥

आगै इसही अर्थकूं दृढ़ करनेंकूं कहै हैं जो द्रव्यनग्न होय मुनि कहावै ताका अपयश होय है,—

अयसाण भायणेण य किं ते णग्गेण पावमलिणेण।
पेसुण्णहासमच्छरमायाबहुलेण सवणेण ॥ ६९ ॥

अयशसां भाजनेन किं ते नग्नेन पापमलिनेन।
पैशून्यहासमत्सरमायाबहुलेन श्रमणेन ॥ ६९ ॥

अर्थ—हे मुने ! तेरे ऐसे नग्नपणांकरि तथा मुणिपणाकरि कहा साध्य है, कैसा है—पैशून्य कहिये अन्यका दोष कहनेंका स्वभाव, हास्य कहिये अन्यका हास्य करना, मत्सर कहिये आपसमानतैं ईर्षा राखि परकूं नीचा पाडनेकी बुद्धि, माया कहिये कुटिल परिणाम, ये भाव हैं बहुत प्रचुर जामैं, याहीतैं कैसा है पापकरि मलिन है, याहीतैं कैसा है अयश कहिये अपकीर्त्ति तिनिका भाजन है ॥

भावार्थ—पैशून्य आदि पापनिकरि मैला ऐसा नग्नपणास्वरूप मुनिपणाकरि कहा साध्य है ? उलटा अपकीर्त्तिका भाजन होय व्यवहार धर्मकी हास्य करावनहार होय है; तातैं भावलिंगी होना योग्य है-यह उपदेश है ॥ ६९ ॥

आगैं ऐसैं भावलिंगी होनां यह उपदेश करै है,—

पयडहिं जिणवरलिंगं अब्भिंतरभावदोसपरिसुद्धो ।
भावमलेण य जीवो वाहिरसंगम्मि मयलियई ॥ ७० ॥

प्रकटय जिनवरलिंगं अभ्यन्तरभावदोषपरिशुद्धः ।
भावमलेन च जीवः वाह्यसंगे मलिनयति ॥ ७० ॥

अर्थ—हे आत्मन् ! तू अभ्यन्तर भावदोषनिकरि अत्यंत शुद्ध ऐसा जिनवरलिंग कहिये वाह्य निर्ग्रन्थलिंग प्रगटकरि, भावशुद्धि विनां द्रव्यलिंग विगडि जायगा जासैं भावमलिनकरि जीव है सो बाह्य परिग्रहविषैं मलिन होय है ॥

भावार्थ—जो भाव शुद्धकरि द्रव्यलिंग धारै तौ भ्रष्ट न होय अर भाव मलिन होय तौ बाह्य भी परिग्रहकी सगतिकरि द्रव्यलिंगभी विगाड़ै तातैं प्रधानपणैं भावलिंगहीका उपदेश है, विशुद्ध भाव विना बाह्य भेष धारणां योग्य नांही ॥ ७० ॥

आगैं कहै हैं जो भावरहित नग्न मुनि है सो हास्यका स्थान है—

धम्मम्मि णिप्पवासो दोसावासो य उच्छुफुल्लसमो।
णिप्फलणिग्गुणयारो णडसवणो णग्गरूवेण ॥ ७१ ॥

धर्मे निप्रवासः दोषावासः च इक्षुपुष्पसमः।
निष्फलनिर्गुणकारः नटश्रमणः नग्नरूपेण ॥ ७१ ॥

अर्थ—धर्म कहिये अपनां स्वभाव तथा दशलक्षणस्वरूप तिसविषै जाका वास नाही सो जीव दोषनिका आवास है अथवा दोष जामैं वसै है सो इक्षुके फूल समान है जाके कछू फल नांही अर गधादिक गुण नाही सो ऐसा मुनि वो नग्नरूपकरि नटश्रमण कहिये नाचनेंवाला भांडका स्वाग सारिखा है ॥

भावार्थ—जाकै धर्म वासना नाही तातैं क्रोधादिक दोष ही वसै अर दिगंबररूप धारै तो वह मुनि इक्षुके फूल सारिखा निर्गुण अर निष्फल है ऐसे मुनिकै मोक्षरूप फल न लागै, अर सम्यग्ज्ञानादिक गुण जामैं नाही तब नग्न भया भाटकासा स्वाग दीखै, सो भी भांड नाचै तब शृंगारादिक करि नाचै तो शोभा पावै, नग्न होय नाचै तब हास्यकूं पावै तैसे केवल द्रव्य नागा हास्यका स्थानक है ॥ ७१ ॥

आगैं इसही अर्थका समर्थनरूप कहै हैं जो—द्रव्यलिंगी बोधि समाधि जैसी जिनमार्गमैं कही है तैसी नांही पावै है;—

जे रायसंगजुत्ता जिणभावणरहियदव्वणिग्गंथा ।
न लहंति ते समाहिं बोहिं जिणसासणे विमले ॥७२॥

ये रागसंयुक्ताः जिनभावनारहितद्रव्यनिर्ग्रंथाः ।
न लभंते ते समाधिं बोधिं जिनशासने विमले ॥७२॥

अर्थ—जे मुनि राग कहिये अभ्यंतर परद्रव्यसूं प्रीति सोही भया संग कहिये परिग्रह ताकरि युक्त है, बहुरि जिनभावना कहिये शुद्धस्व-

रूपकी भावनाकरि रहित हैं ते द्रव्यनिर्ग्रन्थ हैं तौहू निर्मल जिनशासन-विषैं जो समाधि कहिये धर्मशुक्लध्यान अर बोधि कहिये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रस्वरूप मोक्षमार्ग ताहि न पावैं हैं ॥

भावार्थ--द्रव्यलिंगी अभ्यन्तरका राग छोडै नांही परमात्माकू भावै नांही तब कैसै मोक्षमार्ग पावै तथा समाधिमरण कैसैं पावै ॥७२॥

आगैं कहै है जो--पहलै मिथ्यात्व आदिक दोष छोड़िकरि भावकरि नग्न होय पीछै द्रव्यमुनि होय यह मार्ग है,-

भावेण होइ णग्गो मिच्छत्ताई य दोस चइऊणं।
पच्छा दव्वेण मुणी पयडदि लिंगं जिणाणाए ॥७३॥
भावेन भवति नग्नः मिथ्यात्वादीन् च दोषान् त्यक्त्वा।
पश्चात् द्रव्येण मुनिः प्रकटयति लिंगं जिनाज्ञया ॥ ७३ ॥

अर्थ-पहलें मिथ्यात्व आदि दोषनिकू छोड़ि अर भावकरि अतरंग नग्न होय एकरूप शुद्ध आत्माका श्रद्धान ज्ञान आचरण करै पीछैं मुनि द्रव्यकरि बाह्य लिंग जिन आज्ञाकरि प्रगट करै यह मार्ग है ॥

भावार्थ—भाव शुद्ध हुवा विना पहलैं ही दिगंबररूप धारि ले तौ पीछै भाव बिगडै तब भ्रष्ट होय, अर भ्रष्ट होय मुनि भी कहावो करै तौ मार्गकी हास्य करावै तातै जिन आज्ञा यही है—भाव शुद्ध करि बाह्य मुनिपणा प्रगट करो ॥ ७३ ॥

आगैं कहै है जो—शुद्ध भावही स्वर्गमोक्षका कारण है, मलिनभाव संसारका कारण है,—

भावो वि दिव्वसिवसुक्खभायणे भाववज्जिओ सवणो।
कम्ममलमलिणचित्तो तिरियालयभायणो पावो ॥७४॥
भावः अपि दिव्यशिवसौख्यभाजनं भाववर्जितः श्रमणः।
कर्ममलमलिनचित्तः तिर्यगालयभाजनं पापः ॥ ७४ ॥

अर्थ-भाव है सो ही स्वर्गमोक्षका कारण है बहुरि भावकरि वर्जित श्रमण है सो पापस्वरूप है तिर्यंचगतिका स्थानक है, कैसा है श्रमण-कर्ममलकरि मलिन है चित्त जाका ॥

भावार्थ—भावकरि शुद्ध है सो तौ स्वर्ग मोक्षका पात्र है अर भावकरि मलिन है सो तिर्यंचगतिमैं निवास करै है । ७४ ॥

आगैं फेरि भावके फलका माहात्म्य कहै है,—

खयरामरमणुयकरंजलिमालाहिं च संथुया विउला ।
चक्कहररायलच्छी लब्भइ[1] बोही सुभावेण ॥ ७५ ॥

खचरामरमनुजकरांजलिमालाभिश्च संस्तुता विपुला ।
चक्रधरराजलक्ष्मीः लभ्यते-बोधिः सुभावेन ॥ ७५ ॥

अर्थ—सुभाव कहिये भले भाव करि मंदकषायरूप विशुद्ध भाव करि चक्रवर्त्ती आदि राजा तिनिकी विपुल कहिये बड़ी लक्ष्मी पावै है, कैसी है—खचर कहिये विद्याधर अमर कहिये देव मनुज कहिये मनुष्य इनिकी अंजुलीमाला कहिये हस्तनिकी अंजुली तिनिकी पंक्ति करि संस्तुत कहिये नमस्कारपूर्वक स्तुति करने योग्य है, बहुरि केवल यह लक्ष्मीही नाहीं पावै है बोधि कहिये रत्नत्रयात्मक मोक्षमार्ग भी पावै है

भावार्थ—विशुद्ध भावनिका यह माहात्म्य है ॥ ७५ ॥

आगै भावनिका विशेष कहै हैं,—

भावं तिविहपयारं सुहासुहं सुद्धमेव णायव्वं ।
असुहं च अट्टरुद्दं सुह धम्मं जिणवरिंदेहिं ॥ ७६ ॥

भावः त्रिविधप्रकारः शुभोऽशुभः शुद्ध एव ज्ञातव्यः ।
अशुभश्च आर्त्तरौद्रं शुभः धर्म्यं जिनवरेन्द्रैः ॥ ७६ ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'लब्भेइ बोही ण भव्वणुआ' ऐसा पाठ है ।

अर्थ-जिनवरदेव भाव तीनप्रकार कह्या है-शुभ, अशुभ, शुद्ध ऐसैं। तहां अशुभ तौ आर्त्तरौद्र ये ध्यान है अर शुभ है सो धर्मध्यान है।७६।

सुद्धं सुद्धसहावं अप्पा अप्पम्मि तं च णायव्वं।
इदिजिणवरेहिं भणियं जं सेयं तं समायरह।७७॥

शुद्धः शुद्धस्वभावः आत्मा आत्मनि सः च ज्ञातव्यः।
इति जिनवरैः भणितं यः श्रेयान् तं समाचर॥ ७७॥

अर्थ—बहुरि शुद्ध है सो अपनां शुद्धस्वभाव आपहीमैं है ऐसैं जिनवरदेव कह्या है सो जानना तिनिमैं जो कल्याणरूप होय ताकू अं-गीकार करौ॥

भावार्थ—भगवान भाव तीनं प्रकार कह्या है, शुभ, अशुभ शुद्ध। तहा अशुभ तौ आर्तरौद्र ध्यान हैं सो तौ अतिमलिन है त्याज्य ही है, बहुरि शुभ है सो धर्मध्यान है सो यह कथंचित् उपादेय है जातैं मदक-पायरूप विशुद्ध भावकी प्राप्ति है, बहुरि शुद्ध भाव है सो सर्वथा उपादेय है जातैं यह आत्माका स्वरूपही है। ऐसैं हेय उपादेय जानि त्याग ग्रहण करना तातैं ऐसा कह्या है जो कल्याणकारी होय सो अंगीकार करना यह जिनदेवका उपदेश है॥ ७७॥

आगैं कहै है जो जिनशासनका ऐसा माहात्म्य है,—

पयलियमाणकसाओ पयलियमिच्छत्तमोहसमचित्तो।
पावइ तिहुवणसारं बोही जिणसासणे जीवो॥ ७८॥

प्रगलितमानकषायः प्रगलितमिथ्यात्वमोहसमचित्तः।
आप्नोति त्रिभुवनसारं बोधिं जिनशासने जीवः॥७८॥

अर्थ—यह जीव है सो जिनशासनविषैं तीन भुवनमै सार ऐसी बोधि कहिये रत्नत्रयात्मक मोक्ष मार्ग ताहि पावै है; कैसा भया संता-

प्रगलितमानकषाय कहिये प्रकर्षकरि गल्या है मान कषाय जाका, काहू परद्रव्यसूं अहंकाररूप गर्व नांही करै है, बहुरि कैसा भया संता प्रगलित कहिये गलिगया है नष्ट भया है मिथ्यात्वका उदयरूप मोह जाका याही-तैं समचित्त है परद्रव्यविषैं ममकाररूप मिथ्यात्व अर इष्ट अनिष्टबुद्धिरूप रागद्वेष जाकै नाही है ॥

भावार्थ—मिथ्यात्वभाव अर कषाय भावका स्वरूप अन्य मतविषै यथार्थ नाही, यह कथनी या वीतरागरूप जिनमतमैं ही है, तातैं यह जीव मिथ्यात्व कषायके अभावरूप मोक्षमार्ग तीन भवनमैं सार जिन-मतका सेवनही तैं पावैं है, अन्यत्र नांही ॥

आगैं कहै हैं जो—जिनशासनविषैं ऐसा मुनिही तीर्थंकर प्रकृति बाधै है,—

विसयविरत्तो सवणो छद्दसवरकारणाइं भाऊण ।
तित्थयर नामकम्मं बंधइ अइरेण कालेण ॥ ७९ ॥

विषयविरक्तः श्रमणः षोडशवरकारणानि भावयित्वा ।
तीर्थंकरनामकर्म बध्नाति अचिरेण कालेन ॥ ७९ ॥

अर्थ—इन्द्रियनिके विषयनिकरि विरक्त है चित्त जाका ऐसा श्रमण कहिये मुनि है सो सोलहकारण भावनाकूं भाय तीर्थंकर नाम प्रकृति है ताहि थोरेही कालकरि बाधे है ॥

भावार्थ—यह भावका माहात्म्य है, विषयनितैं विरक्त भाव होय सोलह कारण भावना भावै तौ अचिंत्य है माहात्म्य जाका ऐसी तीन लोककरि पूज्य तीर्थंकर नामा प्रकृति बाधै ताकू भोगि अर मोक्षकूं प्राप्त होय । इहा सोलहकारण भावनाके नाम,—दर्शनविशुद्धि, विनयसपन्नता, शीलव्रतेष्वनतिचार, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग, सवेग, शक्तितस्त्याग, शक्ति-तस्तप, साधुसमाधि, वैयावृत्त्यकरण, अर्हद्भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति,

प्रवचनभक्ति, आवश्यकापरिहाणि, सन्मार्गप्रभावना, प्रवचनवात्सल्य, ऐसैं सोलह भावना हैं। इनिका स्वरूप तत्वार्थ सूत्रकी टीकातैं जाननां। इनिमैं सम्यग्दर्शन प्रधान है, यह न होय अर पंदरह भावनाका व्यवहार होय तौ कार्यकारी नांही, अर यह होय तौ पंदरह भावनाका कार्य यही करिले, ऐसैं जाननां॥

आगैं भावकी विशुद्धितानिमित्त आचरण कहै हैं;—

बारसविहतवयरणं तेरसकिरियाउ भाव तिविहेण।
धरहि मणमत्तदुरियं णाणांकुसएण मुणिपवर॥ ८०॥

द्वादशविधतपश्चरणं त्रयोदश क्रियाः भावय त्रिविधेन।
धर मनोमत्तदुरितं ज्ञानाङ्कुशेन मुनिप्रवर! ॥ ८०॥

अर्थ—हे मुनिप्रवर! मुनिनिमैं श्रेष्ठ! तू बारह प्रकार तप चर अर तेरह प्रकार क्रिया मन वच कायकरि भाय, अर ज्ञानरूप अंकुशकरि मनरूप माते हाथीकूं धारि अपने वशमैं राखि॥

भावार्थ—यह मनरूप हस्ती मदोन्मत्त बहुत है सो तपश्चरण क्रियादिकसहित ज्ञानरूप अंकुशहीतैं वशि होय है तातैं यह उपदेश है जो तपश्चरण क्रियादिकसहित ज्ञानरूप अंकुशहीतै वशिहोय है और प्रकार नांही। इहां बारह तपके नाम:—अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्या, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन, कायक्लेश ये तौ छहप्रकार बाह्यतप हैं, बहुरि प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग, ध्यान ये छह प्रकार अभ्यंतर तप हैं, इनिका स्वरूप तत्वार्थसूत्रकी टीकातैं जानना। बहुरि तेरह क्रिया ऐसैं,-पंच परमेष्ठीकूं नमस्कार ये पांच क्रिया; छह आवश्यकक्रिया निषिधिकाक्रिया, आसिकाक्रिया। ऐसैं भाव शुद्ध होनेके कारण कहे॥ ८०॥

आगैं द्रव्यभावरूप सामान्यकरि जिनलिंगका स्वरूप कहै हैं,—

पंचविहचेलचायं खिदिसयणं दुविहसंजमं भिक्खू।
भावं भाविय पुव्वं जिणलिंगं णिम्मलं सुद्धं॥ ८१॥

पंचविधचेलत्यागं क्षितिशयनं द्विविधसंयमं भिक्षुः।
भावं भावयित्वा पूर्वं जिनलिंगं निर्मलं शुद्धम्॥ ८१॥

अर्थ—निर्मल शुद्ध जिनलिंग ऐसा है--जहा पचप्रकार वस्त्रका त्याग है, बहुरि जहां भूमिविषैं शयन है, बहुरि जहा दोय प्रकार सयम है, बहुरि जहा भिक्षाभोजन है, बहुरि भावितपूर्व कहिये पहलैं शुद्ध आत्माका स्वरूप परद्रव्यतैं भिन्न सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्रमयी भया वारवार भावनाकरि अनुभव किया ऐसा जामैं भाव है ऐसा निर्मल कहिये वाह्यमलरहित शुद्ध कहिये अन्तर्मलरहित जिनलिंग है॥

भावार्थ—इहां लिंग द्रव्य भावकरि दोयप्रकार है तहां द्रव्य तौ वाह्य त्याग अपेक्षा है जामैं पाचप्रकार वस्त्रका त्याग है, ते पच प्रकार. ऐसैं,-अडज कहिये रेसमतें उपज्या, वोंडुज कहिये कपासतैं उपज्या, रोमज कहिये ऊनतै उपज्या, वल्कलज कहिये वृक्षकी त्वचा छालितैं उपज्या, चर्मज कहिये मृग आदिककी चर्मतैं उपज्या, ऐसैं पाच प्रकार कहे, तहा ऐसै नाही जानना जो—इनि सिवाय और वस्त्र ग्राह्य है--ये तौ उपलक्षणमात्र कहे हैं तातै सर्वही वस्त्रमात्रका त्याग जाननां। बहुरि भूमिविषैं सोवना वैठना तहा काष्ठ तृण भी गिणि लेनां। बहुरि इद्रिय मनका वशि करना छह कायके जीवनिकी रक्षा करनां ऐसैं दोय प्रकार सयम है। बहुरि भिक्षा भोजन करना जामैं कृत कारित अनुमोदनाका दोष न लागै—छियालीस दोष टलै, बत्तीस अंतराय टलै ऐसैं यथाविधि आहार करै। ऐसैं तौ बाह्यलिंगहै। बहुरि पूर्वैं कह्या तैसैं होय सो भावलिंग है। ऐसैं दोय प्रकार शुद्ध जिनलिंग कह्या है, अन्य प्रकार श्वेताबरादिक कहैं हैं सो जिनलिंग नाही है॥ ८१॥

आगैं जिनधर्मकी महिमा कहै हैं,—

जह रयणाणं पवरं वज्जं जह तरुगणाण गोसीरं।
तह धम्माणं पवरं जिणधम्मं [1]भाविभवमहणं ॥८२

यथा रत्नानां प्रवरं व्रजं यथा तरुगणानां गोशीरम्।
तथा धर्माणां प्रवरं जिनधर्मं भाविभवमथनम् ॥८२॥

अर्थ—जैसैं रत्नविषैं प्रवर कहिये श्रेष्ठ उत्तम वज्र कहिये हीरा है बहुरि जैसै तरुगण कहिये बड़े वृक्षनिविषैं प्रवर श्रेष्ठ उत्तम गोसीर कहिये बावन चन्दन है तैसैं धर्मनिविषैं उत्तम श्रेष्ठ जिनधर्म है, कैसा है जिन धर्म—भाविभवमथन कहिये आगामी संसारका मथन करनेवाला है यातै मोक्ष होय है ॥

भावार्थ—धर्म ऐसा सामान्य नाम तौ लोकमैं प्रसिद्ध है अर लोक अनेक प्रकारकरि क्रियाकांडादिकनैं धर्म जानि सेवै है, तहां परीक्षा किये मोक्षकी प्राप्ति करनेंवाला जिनधर्मही है अन्य सर्व संसारके कारण हैं ते क्रियाकांडादिक संसारहीमैं राखैं हैं, कदाचित् संसारके भोगकी प्राप्ति करै है तौऊ फेरि भोगनिमैं लीन होय तब एकेंद्रियादि पर्याय पावै तथा नरककूं पावै है ऐसैं अन्यधर्म नाममात्रहैं तातैं उत्तम जिनधर्म जानना ८२

आगैं शिष्य पूछै है जो—जिनधर्म उत्तम कह्या सो धर्मका कहा स्वरूप है? ताका स्वरूप कहै हैं जो धर्म ऐसा है,—

पूयादिसु वयसहियं पुण्णं हि जिणेहिं सासणे भणियं।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो॥ ८३॥

पूजादिषु व्रतसहितं पुण्यं हि जिनैः शासने भणितम्।
मोहक्षोभविहीनः परिणामः आत्मनः धर्मः॥ ८३॥

---

[1]—मुद्रित संस्कृतसटीक प्रतिमें "भावि भवमहण" ऐसे दो पद हैं जिनकी संस्कृत "भावय भवमथनं" इस प्रकार है।

अर्थ—जिनशासनविषैं जिनेन्द्रदेव ऐसै कह्या है जो पूजा आदिक कै विषैं अर व्रतसहित होय सो तौ पुण्य है वहुरि मोहके चोभकरि रहित जो आत्माका परिणाम सो धर्म है ॥

भावार्थ—लौकिक जन तथा अन्यमति केई कहै है जो—पूजा आदिक शुभक्रिया तिनिविषैं अर व्रतक्रियासहित है सो जिनधर्म है सो ऐसैं नाही है। जिनमतमैं जिनभगवान ऐसैं कह्या है जो पूजादिकविषैं अर व्रतसहित होय सो तो पुण्य है, तहा पूजा अर आदि शब्द करि भक्ति वंदना वैयावृत्त्य आदिक लेना यह तौ देव गुरु शास्त्रके अर्थि होय है वहुरि उपवास आदिक व्रत हैं सो शुभक्रिया हैं इनिमैं आत्माका रागसहित शुभपरिणाम है ताकरि पुण्यकर्म निपजैहैं तातैं इनिकूं पुण्य कहे हैं, याका फल स्वर्गादिक भोगकी प्राप्ति है। वहुरि मोहका चोभ रहित आत्माके परिणाम लेणे, तहा मिथ्यात्व तौ अतत्वार्थश्रद्धानहै, वहु-रि क्रोध मान अरति शोक भय जुगुप्सा ये छह तौ द्वेषप्रकृति है वहुरि माया लोभ हास्य रति पुरुष स्त्री नपुसक ये तीन विकार ऐसै सात प्रकृति रागरूप हैं इनिके निमित्ततैं आत्माका ज्ञानदर्शनस्वभाव विकारसहित चोभरूप चलाचल व्याकुल होय है यातैं इनिका विकारनितैं रहित होय तब शुद्ध दर्शनज्ञानरूप निश्चय होय सो आत्माका धर्म है, इस धर्मतैं आत्माकै आगामी कर्मका तौ आस्रव रुकि संवर होय है अर पूर्वैं बंधे कर्म तिनिकी निर्जरा होय है, संपूर्ण निर्जरा होय तब मोच होय है, तथा एकदेश मोहके चोभकी हानि होय है तातैं शुभपरिणामकूं भी उपचार करि धर्म कहिये है, अर जे केवल शुभपरिणामहीकू धर्म मांनि सतुष्टहैं तिनिकै धर्मकी प्राप्ति नाही है, यह जिनमतका उपदेश है ॥८३॥

आगैं कहै हैं जो-पुण्यहीकूं धर्म जांणि श्रद्धै है तिनिकै केवल भोगका निमित्त है कर्मचयका निमित्त नांही,-

सद्दहदि य पत्तेदियरोचेदि च तह पुणो वि फासेदि।
पुण्णं भोयणिमित्तं ण हु सो कम्मक्खयणिमित्तं ॥८४॥

श्रद्दधाति च प्रत्येति च रोचते च तथा पुनरपि स्पृशति ।
पुण्यं भोगनिमित्तं न हि तत् कर्मक्षयनिमित्तम् ॥ ८४ ॥

अर्थ—जे पुरुष पुण्यकूं धर्म जांणि श्रद्धान करै हैं बहुरि प्रतीति करै हैं बहुरि रुचि करै हैं बहुरि स्पर्शै है तिनिकै पुण्य भोगका निमित्त है यातैं स्वर्गादिक भोग पावैं हैं, बहुरि सो पुण्य, कर्मका क्षयका निमित्त न होय है, यह प्रगट जानो ॥

भावार्थ—शुभक्रियारूप पुण्यकू धर्म जांणि याका श्रद्धान ज्ञान आचरण करै है ताकै पुण्यकर्मका बंध होय है ताकरि स्वर्गादिके भोगकी प्राप्ति होय है, अर ताकरि कर्मका क्षयरूप संवर निर्जरा मोक्ष न होय ॥ ८४ ॥

आगैं कहै है जो आत्माका स्वभावरूप धर्म्म है सो ही मोक्षका कारण है ऐसा नियम है,-

अप्पा अप्पम्मि रओ रायादिसु सयलदोसपरिचत्तो ।
संसारतरणहेदू धम्मोत्ति जिणेहिं णिद्दिट्ठं ॥ ८५ ॥

आत्मा आत्मनि रतः रागादिषु सकलदोषपरित्यक्तः ।
संसारतरणहेतुः धर्म इति जिनैः निर्दिष्टम् ॥ ८५ ॥

अर्थ—जो आत्मा आत्माहीविषैं रत होय, कैसा भया रत होय–रागादिक समस्त दोषनिकरि रहित भया सता ऐसा धर्म जिनेश्वरदेवनैं संसारसमुद्रतैं तिरणेका कारण कह्या है ॥

भावार्थ–जो पूर्वे कह्याथा मोहके क्षोभकरि रहित आत्माका परिणाम है सो धर्म है सो ऐसा धर्मही संसारतैं पारकरि मोक्षका कारण भगवान कह्या है, यह नियम है ॥ ८५ ॥

आगैं याही अर्थके दृढ़ करनेंकूं कहै हैं जो–आत्माकूं इष्ट नांही करै है अर समस्त पुण्यकूं आचरण करै है तौऊ सिद्धिकूं न पावै है,-

अह पुणु अप्पा णिच्छदि पुण्णाइं करेदि णिरवसेसाइं
तह वि ण पावदि सिद्धिं संसारत्थो पुणो भणिदो ॥८६॥

अथ पुनः आत्मानं नेच्छति पुण्यानि करोति निरवशेषानि।
तथापि न प्राप्नोति सिद्धिं संसारस्थः पुनः भणितः ॥८६॥

अर्थ—अथवा जो पुरुष आत्माकूं नाही इष्ट करै है ताका स्वरूप न जानैं है अंगीकार नाही करै है अर सर्व प्रकार समस्त पुण्यकूं करै है तौऊ सिद्धि कहिये मोक्ष ताहि नहीं पावै है बहुरि वह पुरुष संसारहीमैं तिष्ठ्या रहै है ॥

भावार्थ—आत्मिक धर्म धार्यां विना सर्वप्रकार पुण्यका आचरण करै तौऊ मोक्ष न होय संसारहीमैं रहै है, कदाचित् स्वर्गादिक भोग पावै तौ तहा भोगनिमैं आसक्त होय वसै, तहातैं चय एकेंद्रियादिक होय संसारहीमैं भ्रमै है ॥

आगैं इस कारणकरि आत्माहीका श्रद्धान करौ प्रयत्नकरि जाणौ मोक्ष पावौ ऐसा उपदेश करै हैं,—

एएण कारणेण य तं अप्पा सद्दहेह तिविहेण।
जेण य लभेह मोक्खं तं जाणिज्जह पयत्तेण ॥ ८७ ॥

एतेन कारणेन च तं आत्मानं श्रद्धत्त त्रिविधेन।
येन च लभध्वं मोक्षं तं जानीत प्रयत्नेन ॥ ८७ ॥

अर्थ—पूर्वैं कह्याथा जो आत्माका धर्म तौ मोक्ष है तिसही कारण कहै है जो—हे भव्यजीव हो! तुम तिस आत्माकूं प्रयत्नकरि सर्वप्रकार उद्यमकरि यथार्थ जानो, बहुरि तिस आत्माकूं श्रद्धो, प्रतीतिकरो, आचरो मन वचन कायकरि ऐसैं करो जाकरि मोक्ष पावो ॥

भावार्थ-जाके जानें श्रद्धान करे मोक्ष होय ताहीका जानना श्रद्धना

मोक्षप्राप्ति करै है तातैं आत्माका जानना सर्वप्रकार उद्यमकरि करना याहीतैं मोक्षकी प्राप्ति होय है, तातैं भव्यजीवनिकूं यही उपदेश है।८७।

आगैं कहै हैं वाह्यहिंसादिक क्रिया विनाही अशुद्धभावतैं तंदुलमत्स्य तुल्य जीवभी सातवें नरक गया तब अन्य वड़े जीवनिकी कहा कथा ?

मच्छो वि सालिसित्थो असुद्धभावो गओ महाणरयं।
इय णाउं अप्पाणं भावह जिणभावणं णिच्चं ॥ ८८ ॥

मत्स्यः अपि शालिसिक्थः अशुद्धभावः गतः महानरकम्।
इति ज्ञात्वा आत्मानं भावय जिनभावनां नित्यम् ॥८८॥

अर्थ—हे भव्यजीव ! तू देखि शालिसिक्थ कहिये तंदुलनामा मत्स्य है सो भी अशुद्धभावस्वरूप भया सता महानरक कहिये सातवें नरक गया इस हेतुतैं तोकूं उपदेश करै हैं जो अपनें आत्माकूं जाननेंकूं निरंतर जिनभावना भाय ॥

भावार्थ—अशुद्धभावके माहात्म्यकरि तंदुल मत्स्य अल्पजीवभी सातवै नरक गया तौ अन्य वड़ाजीव क्यों नरक न जाय तातैं भाव शुद्ध करनेंका उपदेश है। अर भाव शुद्ध भये अपनां परका स्वरूप जानना होय है, अर अपना परका स्वरूपका ज्ञान जिनदेवकी आज्ञाकी भावना निरन्तर भाये होय है, तातैं जिनदेवकी आज्ञाकी भावना निरंतर करनां योग्य है।

तंदुल मत्स्यकी कथा ऐसै है—काकंदीपुरीका राजा सूरसेन था सो मांसभक्षी भया अतिलोलुपी निरन्तर मास भक्षणका अभिप्राय राखै ताकै पितृप्रियनामा रसोईदार सो अनेक जीवनिका मास निरन्तर भक्षण करावै ताकूं सर्प डस्या सो मरिकरि स्वयंभूरमणसमुद्रमैं महामत्स्य भया अर राजा सूरसेनभी मरि वहांही वा महामत्स्यके कानमैं तंदुल मत्स्य भया, तहां महामत्स्यके मुखमैं अनेक जीव आवै अर निकसि जाय तब

तंदुल मत्स्य तिनिकूं देखिकरि विचारैं जो ये महामत्स्य निर्भागी है जो मुखमें आये जीवनिकूं भखै नाही है, मेरा शरीर जो एता वडा होता तौ या समुद्रके सर्व जीवनिकूं भखता; ऐसे भावनिके पापतैं जीवनिकूं भखे विनाही सातवैं नरकमैं गया अर महामत्स्य तौ भखणेवाला था सो तौ नरक जायही जाय, यातैं अशुद्धभावसहित बाह्य पाप करना तौ नरकका कारणहै ही परन्तु बाह्य हिंसादिक पापके किये विना केवल अशुद्धभावही तिस समान है, तातैं भावमैं अशुभ ध्यान छोडि शुभध्यान करना योग्य है। इहां ऐसा भी जानना जो पहलैं राज पायाथा सो पूर्वै पुण्य किया था ताका फलथा पीछैं कुभाव भये तब नरक गया यातैं आत्मज्ञान विना केवल पुण्यही मोक्षका साधन नांही है ॥ ८८ ॥

आगें कहै हैं, जो भावरहितनिका बाह्य परिग्रहका त्यागादिक सर्व निष्प्रयोजन है,—

बाहिरसंगच्चाओ गिरिसरिदरिकंदराइ आवासो।
सयलो णाणज्झयणो णिरत्थओ भावरहियाणं ॥ ८९ ॥

बाह्यसंगत्यागः गिरिसरिद्दरीकंदरादौ आवासः।
सकलं ध्यानाध्ययनं निरर्थकं भावरहितानाम् ॥ ८९ ॥

अर्थ—जे पुरुष भावकरि रहित हैं शुद्ध आत्माकी भावनारहित हैं अर बाह्य आचरणकरि सन्तुष्ट हैं तिनिका बाह्य परिग्रहका त्याग है सो निरर्थक है, बहुरि गिरि कहिये पर्वत दरी कहिये पर्वतकी गुफा सरित् कहिये नदीके निकट कदर कहिये पर्वतका जलकरि विदार्या स्थानक इत्यादिकविषैं आवास कहिये वसना निरर्थक है, बहुरि ध्यान करनां आसनकरि मनकूं थाभना अध्ययन कहिये पढना ये सब निरर्थक है ॥

भावार्थ—बाह्य क्रियाका फल आत्मज्ञानसहित होय तौ सफल होय नांतरि सर्व निरर्थक है, पुण्यका फल होय तौऊ संसारका ही कारण है मोक्षफल नांही ॥ ८९ ॥

आगैं उपदेश करै है जो—भावशुद्धके अर्थि इन्द्रियादिक वशि करौ भावशुद्धविनां वाह्य भेषका आडंवर मति करौ,—

भंजसु इंदियसेणं भंजसु मणमक्कडं पयत्तेण ।
मा जणरंजणकरणं वाहिरवयवेस तं कुणसु ॥ ९० ॥

भंग्धि इन्द्रियसेनां भंग्धि मनोमर्कटं प्रयत्नेन ।
मा जनरंजनकरणं वहिर्व्रतवेष ! त्वंकार्षीः ॥९० ॥

अर्थ—हे मुने ! तू इंद्रियकी सेना है ताहि भंजनकरि विपयनिमैं रमावै मति, वहुरि मनरूप वंदर है ताहि प्रयत्नकरि वड़ा उद्यमकरि भजन-करि वशीभूतकरि, वहुरि वाह्यव्रतका भेष लोकका रंजन करनेंवाला मति धारण करै ।

भावार्थ–वाह्य मुनिका भेप लोकका रंजन करनेवाला है तातैं यह उपदेश है, लोकरंजनतैं कछू परमार्थ सिद्धि नांही तातैं इन्द्रिय मनके वश करनेकूं वाह्य यत्न करै तौ श्रेष्ठ है अर इन्द्रिय मन वशि किये विना केवल लोकरंजनमात्र भेप धारनेमैं कछू परमार्थसिद्धि है नाही ९०

आगैं फेरि उपदेश कहै हैं,–

णवणोकसायवग्गं मिच्छत्तं चयसु भावसुद्धीए ।
चेइयपवयणगुरुणं करेहिं भत्तिं जिणाणाए ॥९१॥

नवनोकपायवर्गं मिथ्यात्वं त्यज भावशुद्धया ।
चैत्यप्रवचनगुरुणां कुरु भक्तिं जिनाज्ञया ॥ ९१ ॥

अर्थ—हे मुने ! तू नव जे हास्य रति अरति शोक भय जुगुप्सा स्त्रीवेद पुरुषवेद नपुंसकवेद ये नोकपायवर्ग वहुरि मिथ्यात्व इनिकूं छोडि, वहुरि जिनआज्ञाकरि चैत्य प्रवचन गुरु इनिकी भक्ति करि ॥ ९१ ॥

आगैं फेरि कहै हैं,—

तित्थयरभासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं ।
भावहि अणुदिणु अतुलं विसुद्धभावेण सुयणाणं ॥९२॥

तीर्थंकरभाषितार्थं गणधरदेवैः ग्रथितं सम्यक् ।
भावय अनुदिनं अतुलं विशुद्धभावेन श्रुतज्ञानम् ॥ ९२ ॥

अर्थ—हे मुने ! तू तीर्थंकर भगवाननैं कह्या अर गणधर देवनिनै गूंथ्या शास्त्ररूप रचना करी ऐसा श्रुतज्ञान है ताहि सम्यक् प्रकार भावशुद्धिकरि निरन्तर भाय, कैसा श्रुतज्ञान—अतुल है या बराबर अन्यमतका भाष्या श्रुतज्ञान नांही है ॥ ९२ ॥

ऐसैं किये कहा होय है ? सो कहै हैं,-

पा[1]ऊण णाणसलिलं णिम्महतिसडाहसोसउम्मुक्का ।
हुंति सिवालयवासी तिहुयणचूडामणी सिद्धा ॥९३॥

प्राप्य ज्ञानसलिलं निर्मथ्यतृषादाहशोषोन्मुक्ता ।
भवंति शिवालयवासिनः त्रिभुवनचूडामणयः सिद्धाः ॥९३

अर्थ—पूर्वोक्त प्रकार भाव शुद्ध किये ज्ञानरूप जलकूं पीय करि सिद्ध होय हैं, कैसैं हैं सिद्ध—निर्मथ्य कहिये मथ्या न जाय ऐसा तृषा दाह शोष ताकरि रहित हैं ऐसे सिद्ध होय हैं ज्ञानरूप जलपियेका ये फल है, बहुरि कैसे हैं सिद्ध—शिवालय कहिये मुक्तिरूप महल ताके वसनेवाले हैं लोकके शिखरपरि जिनका वास है, याहीतैं कैसे हैं—तीन भवनके चूडामणि हैं मुकुटमणि हैं तथा तीन भवनमैं ऐसा सुख नाही ऐसा परमानद अविनाशी सुख नांही, ऐसा परमानंद अविनाशी सुखकूं भोगवैं हैं, ऐसे तीन भवनके मुकुटमणि हैं ॥

1—एक वचनिका प्रतिमें 'पीऊण' ऐसा पाठ है जिसका संस्कृत 'पीत्वा' है अर्थात् 'पी कर' ।

भावार्थ- शुद्ध भाव किये ज्ञानरूप जल पिये तृष्णा दाह शोष मिटै है तातैं ऐसैं कह्या है जो परमानन्दरूप सिद्ध होय है ॥ ९३ ॥

आगैं भावशुद्धिकै अर्थि फेरि उपदेश करैं हैं;—

दस दस दोसुपरीसह सहदि मुणी सयलकाल काएण।
सुत्तेण अप्पमत्तो संजमघादं पमुत्तूण ॥ ९४ ॥

दश दश द्वौ सुपरीषहान् सहस्व मुने! सकलकालं कायेन।
सूत्रेण अप्रमत्तः संयमघातं प्रमुच्य ॥ ९४ ॥

अर्थ—हे मुने! तू दश दश दोय कहिये बाईस जे सुपरीषह कहिये अतिशयकरि सहनेयोग्य ऐसे परीषह तिनिकूं सूत्रेण कहिये जैसैं जिन वचनमैं कहे तिसरीतिकरि निःप्रमादी भया सता संयमका घात निवारिकरि अर तेरे कायकरि सदा काल निरंतर सहि ॥

भावार्थ—जैसैं संयम न बिगडै अर प्रमादका निवारण होय तैसैं निरन्तर मुनि क्षुधा तृषा आदिक बाईस परीषह सहै। इनिका सहनेंका प्रयोजन सूत्रमैं ऐसा कह्या है जो—इनिके सहनेंतैं कर्मकी निर्जरा होय है अर संयमके मार्गतैं छूटनां न होय परिणाम दृढ़ होय है ॥ ९४ ॥

आगैं कहै हैं जो—परीषह सहनेंमैं दृढ़ होय तौ उपसर्ग आये भी दृढ़ रहै चिगै नांही, ताका दृष्टांत कहै हैं,—

जहपत्थरो ण भिज्जइ परिट्ठिओ दीहकालमुकएण।
तह[1] साहू वि ण भिज्जइ उवसग्गपरीषहेहिंतो ॥ ९५ ॥

यथा प्रस्तरः न भिद्यते परिस्थितः दीर्घकालमुदकेन।
तथा साधुरपि न भिद्यते उपसर्गपरीषहेभ्यः ॥ ९५ ॥

अर्थ—जैसैं पाषाण है सो जलकरि बहुतकाल तिष्ठ्या भी भेदकूं प्राप्त न होय है तैसैं साधु है सो उपसर्ग परीषहनिकरि नांही भिदै है ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'तह साहू ण विभिज्जइ' ऐसा पाठ है।

भावार्थ–पाषाण ऐसा कठिन है जो जलमैं बहुतकाल रहै तौऊ तामैं जल प्रवेश न करै तैसैं साधुके परिणाम ऐसे दृढ़ होय है जो उपसर्ग परीषह आये संयमके परिणामतैं च्युत न होय हैं, अर पूर्वैं कह्या जो संयमका घात जैसैं न होय तैसैं परीषह सहै जो कदाचित् संयमका घात होता जानैं तौ जैसैं घात न होय तैसैं करै ॥ ९५ ॥

आगै परीषह आये भाव शुद्ध रहै ऐसा उपाय कहैं हैं,–

भावहि अणुवेक्खाओ अवरे पणवीसभावणा भावि ।
भावरहिएण किं पुण बाहिरलिंगेण कायव्वं ॥ ९६ ॥

भावय अनुप्रेक्षाः अपराः पंचविंशतिभावनाः भावय ।
भावरहितेन किं पुनः बाह्यलिंगेन कर्त्तव्यम् ॥ ९६ ॥

अर्थ–हे मुने ! तू अनुपेक्षा कहिये अनित्य आदि बारह अनुप्रेक्षा हैं तिनहिं भाय, बहुरि अपर कहिये और पांच महाव्रतनिकी पचीस भावना कही हैं तिनहिं भाय, भावरहित जो बाह्य लिंग है ताकरि कहा कर्त्तव्य है ? कछू भी नांही ॥

भावार्थ—कष्ट आये बारह अनुप्रेक्षा चिंतवन करनें योग्य हैं तिनिके नाम–अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ, धर्म इनिका अर पचीस भावनाका भावना बडा उपाय है । इनिका बारंबार चिंतवन किये कष्टमैं परिणाम बिगडै नांही, तातैं यह उपदेश है ॥ ९६ ॥

आगैं फेरि भावशुद्ध रखनेकूं ज्ञानका अभ्यास करै हैं;—

सव्वविरओ वि भावहि णव य पयत्थाइं सत्त तच्चाइं ।
जीवसमासाइं मुणी चउदसगुणठाणणामाइं ॥ ९७ ॥

सर्वविरतः अपि भावय नव पदार्थान् सप्त तत्त्वानि ।
जीवसमासान् मुने ! चतुर्दशगुणस्थाननामानि ॥ ९७ ॥

अर्थ—हे मुने तू सर्व परिग्रहादिकतैं विरक्त भया है महाव्रतनिकरि सहित है तौउ भावविशुद्धिकै अर्थि नवपदार्थ सप्त तत्व चउदह जीव-समास चउदह गुणस्थान इनिके नाम लक्षण भेद इत्यादिकनिकी भावना करि ॥

भावार्थ—पदार्थनिका स्वरूपका चितवन करनां भावशुद्धिका बड़ा उपाय है तातैं यह उपदेश है। इनिका नाम स्वरूप अन्यग्रथनितैं जाननां ॥ ९७ ॥

आगैं भावशुद्धिकै अर्थि अन्य उपाय कहै हैं;—

णवविहबंभं पयडहि अव्बंभं दसविहं पमोत्तूण।
मेहुणसण्णासत्तो भमिओसि भवण्णवे भीमे ॥ ९८ ॥

नवविधब्रह्मचर्यं प्रकटय अब्रह्म दशविधं प्रमुच्य ।
मैथुनसंज्ञासक्तः भ्रमितोऽसि भवार्णवे भीमे ॥ ९८ ॥

अर्थ—हे जीव ! तू नव प्रकार ब्रह्मचर्य है ताहि प्रगटकरि भावनिमैं प्रत्यक्ष करि, पूर्वैं कहाकरि—दशप्रकार अब्रह्म है ताहि छोड़िकरि, ये उपदेश काहेतैं दिया जातै तू मैथुनसज्ञा जो कामसेवन की अभिलाषा ताविषैं आसक्त भया अशुद्ध भावकरि इस भीम भयानक ससाररूप समुद्रविषै भ्रम्या ॥

भावार्थ-यह प्राणी मैथुनसंज्ञाविषैं आसक्त भया गृहस्थपणां आदिक अनेक उपायकरि स्त्रीसेवनादिक अशुद्धभावकरि अशुभ कार्यनिमैं प्रवर्तै है ताकरि इस भयानक ससारसमुद्रविषैं भ्रमै है तातैं यह उपदेश है जो दशप्रकार अब्रह्मकूं छोडि नव प्रकार ब्रह्मचर्यकूं अंगीकार करौ। तहा दशविध अब्रह्म तौ ऐसैं-प्रथम तौ स्त्रीका चिंतवन होय १ पीछैं देखनेंकी चिता होय २ पीछैं निश्वास डारै ३ पीछैं ज्वर उपजै ४ पीछैं दाह उपजै ५ पीछैं कामकी रुचि उपजै ६ पीछैं मूर्च्छा होय ७ पीछैं उन्माद उपजै ८ पीछैं जीवनेंका सदेह उपजै ९ पीछैं मरण होय १० ऐसैं दशप्रकार अब्रह्म

है। वहुरि नवविध ब्रह्मचर्य ऐसैं—नवकारणनितैं ब्रह्मचर्य बिगड़ै है तिनिकै नाम-स्त्री सेवनेंका अभिलाष १ स्त्रीका अंगका स्पर्शन २ पुष्ट रसका सेवन ३ स्त्रीकरि ससक्त वस्तुका सेवन शय्या आदिक ४ स्त्रीका मुख नेत्र आदिकनिका देखना ५ स्त्रीका सत्कार पुरस्कार करनां ६ पहलैं स्त्रीका सेवन किया ताकी यादि करनां ७ आगामी स्त्रीसेवनका अभि-लाप करना ८ मनवांछित इष्ट विषयनिका सेवनां ९ ऐसैं नव प्रकार हैं तिनिका वर्जनां सो नवभेदरूप ब्रह्मचर्य है। अथवा मन वचन काय कृत कारित अनुमोदना करि ब्रह्मचर्य पालनां ऐसैं भी नव प्रकार कहिये है। ऐसैं करना सो भी भाव शुद्ध होनेका उपाय है ॥ ९८ ॥

आगैं कहै हैं जो भाव सहित मुनि है सो आराधनाका चतुष्ककूं पावै है, भावविना सो भी संसारमैं भ्रमै है,—

भावसहिदो य मुणिणो पावइ आराहणाचउक्कं च ।
भावरहिदो य मुणिवर भमइ चिरं दीहसंसारे ॥९९॥

भावसहितश्च मुनीनः प्राप्नोति आराधनाचतुष्कं च ।
भावरहितश्च मुनिवर ! भ्रमति चिरं दीर्घसंसारे ॥ ९९ ॥

अर्थ—हे मुनिवर ! जो भावसहित है सो दर्शन ज्ञान चारित्र तप ऐसा आराधनका चतुष्यकूं पावै है सो मुनिनिमैं प्रधान है, बहुरि, जो भावरहित मुनि है सो वहुतकाल दीर्घसंसारमैं भ्रमै है ॥

भावार्थ-निश्चय सम्यक्त्वका शुद्ध आत्माका अनुभूतिरूप श्रद्धान है सो भाव है ऐसे भावसहित होय ताकै च्यार आराधना होय हैं ताका फल अरहंत सिद्ध पद है बहुरि ऐसे भावकरि रहित होय ताकै आराधना न होय ताका फल संसारका भ्रमण है, ऐसा जाणि भाव शुद्ध करना यह उपदेश है ॥ ९९ ॥

आगैं भावहीके फलका विशेष कहै हैं,—

पावंति भावसवणा कल्लाणपरंपराइं सोक्खाइं ।
दुक्खाइं दव्वसवणा णरतिरियकुदेवजोणीए ॥ १०० ॥

प्राप्नुवंति भावश्रमणाः कल्याणपरंपराः सौख्यानि ।
दुःखानि द्रव्यश्रमणाः नरतिर्यक्कुदेवयोनौ ॥ १०० ॥

अर्थ—जे भावश्रमण हैं भावमुनि हैं ते कल्याणकी परंपरा जामैं ऐसे सुखनिकूं पावै हैं बहुरि जे द्रव्य श्रमण हैं ते तिर्यंच मनुष्य कुदेव योनिविषैं दु.खनिकूं पावै हैं।

भावार्थ—भावमुनि सम्यग्दर्शनसहित हैं ते तौ सोलै कारण भावनां भाय गर्भ जन्म तप ज्ञान निर्वाण पंच कल्याण तिनिसहित तीर्थंकर पद पाय मोक्ष पावै हैं, बहुरि जे सम्यग्दर्शनरहित द्रव्यमुनि हैं ते तिर्यंच मनुष्य कुदेव योनि पावैं हैं। यह भावके विशेषतैं फलका विशेष है ॥ १०० ॥

आगैं कहै हैं जो अशुद्ध भावकरि अशुद्धही आहार किया यातैं दुर्गतिही पाई,—

छायालदोसदूसियमसणं गसिउं असुद्धभावेण ।
पत्तोसि महावसणं तिरियगईए अणप्पवसो ॥ १०१ ॥

षट्चत्वारिंशद्दोषदूषितमशनं ग्रसितं अशुद्धभावेन ।
प्राप्तः असि महाव्यसनं तिर्यग्गतौ अनात्मवशः ॥ १०१ ॥

अर्थ—हे मुने ! तैं अशुद्ध भावकरि छियालीस दोषनिकरि दूषित अशुद्ध अशन कहिये आहार ग्रस्या खाया ताकारण करि तिर्यंचगतिविषैं पराधीन भया संता महान बड़ा व्यसन कहिये कष्ट ताकूं प्राप्त भया ॥

भावार्थ—मुनि आहार करै सो छियालीस दोषरहित शुद्ध करै है बत्तीस अंतराय टालै है चौदह मलदोषरहित करै है, सो जो मुनि होयकरि सदोष आहार करै तौ जानिये याके भावभी शुद्ध नाही ताकूं यह उप-

देश है जो हे मुने ! तैं दोषसहित अशुद्ध आहार किया तातैं तिर्यंच गतिमैं पूर्वैं भ्रम्या कष्ट सह्या तातैं भाव शुद्धकरि शुद्ध आहार करि, ज्यो फेरि नाही भ्रमैं। छियालीस दोषनिमैं सोलह तौ उद्गम दोष हैं ते आहारके उपजनेंके हैं ते श्रावक आश्रित हैं, बहुरि सोलह उत्पादन दोष हैं ते मुनिके आश्रय हैं, बहुरि दश दोष एषणाके हैं ते आहारके आश्रित है; बहुरि च्यार प्रमाणादिक है। इनिका नाम तथा स्वरूप मूलाचार आचारसारग्रंथतैं जानना ॥ १०१ ॥

आगैं फेरि कहै हैं,—

सच्चित्तभत्तपाणं गिद्धी दप्पेणऽधी पभुत्तूण[1]।
पत्तोसि तिव्वदुक्खं अणाइकालेण तं चित्त[2] ॥ १०२ ॥

सचित्तभक्तपानं गृद्ध्या दर्पेण अधीः प्रभुज्य।
प्राप्तोऽसि तीव्रदुःखं अनादिकालेन त्वं चिन्तय ॥१०२॥

अर्थ—हे जीव ! तू दुर्बुद्धी अज्ञानी भया संता अतिचार करि तथा अतिगर्व उद्धतपणाकरि सचित्त भोजन तथा पान जीवनिसहित आहार पानी लेकरि अनादिकालतैं लगाय तीव्र दु.खकूं पाया ताहि चिंतवनकरि विचारि ॥

भावार्थ—मुनिकूं उपदेश करै हैं जो—अनादिकालतैं लगाय जेतैं अज्ञानी रह्या जीवका स्वरूप न जान्यां तेतैं सचित्त जीवनि सहित आहार पानी करता संता संसारमैं तीव्र नरकादिकका दु ख पाया अब मुनि होय करि भाव शुद्धकरि सचित्त आहार पानी मति करै नातरि फेरि पूर्ववत् दु ख भोगवैगा ॥ १०२ ॥

१—मुद्रित सस्कृत प्रतिमें 'पभुत्त ण' इसकी सस्कृत 'प्रभुक्त्वा' की है।

२—मुद्रित सस्कृत प्रतिमें 'चित्त' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'चित्त' है अर्थात् 'हे चित्त' ऐसा सबोधनपद किया है।

आगैं फेरि कहै हैं;—

कंदं मूलं वीयं पुप्फं पत्तादि किंचि सच्चित्तं।
असिऊण माणगव्वं भमिओसि अणंतसंसारे ॥१०३॥

कंदं मूलं बीजं पुष्पं पत्रादि किंचित् सचित्तम्।
अशित्वा मानगर्वे भ्रमितः असि अनंतसंसारे ॥१०३॥

अर्थ—कंद कहिये जमीकद आदिक, बीज कहिये बीज चणा आदिक अन्नादिक, मूल कहिये आदो मूला गाजर आदिक, पुष्प कहिये फूल, पत्र कहिये नागरवेल आदिक, इनिकूं आदि लेकरि जो कछू सचित्त वस्तु ताहि मानकरि गर्वकरि भक्षण करी; ताकरि हे जीव! तू अनंतसंसारविषैं भ्रम्या॥

भावार्थ—कन्दमूलादिक सचित्त अनतजीवनिकी काय है तथा अन्य वनस्पति बीजादिक सचित है तिनिकूं भक्षण किया। तहा प्रथम तौ मान करि जो हम तपस्वी हैं हमारे घरवार नांही वनके पुष्प फलादिक खाय करि तपस्या करैं हैं ऐसैं मिथ्यादृष्टी तपस्वी होय मानकरि खाये तथा गर्वकरि उद्धत होय दोष गिन्यां नाही स्वच्छद होय सर्व भखी भया। ऐसैं इनि कदादिककूं खाय यही जीव ससारमैं भ्रम्या अब मुनि होय इनिका भक्षण मति करै, ऐसा उपदेश है। अर अन्यमतके तपस्वी कंदमूलादिक फल फूल खाय आपकूं महत मानैंहैं तिनिका निषेध है॥ १०३॥

आगैं विनय आदिका उपदेश करै है तहां प्रथमही विनयका वर्णन है;—

विणयं पंचपयारं पालहि मणवयणकायजोएण।
अविणयणरा सुविहियं तत्तो मुत्तिं न पावंति ॥१०४॥

विनयः पंचप्रकारं पालय मनोवचनकाययोगेन ।
अविनतनराः सुविहितां ततो मुक्तिं न प्राप्नुवंति ॥१०४॥

अर्थ-हे मुने ! जा कारणतैं अविनयवान नर है ते भले प्रकार विहित जो मुक्ति ताहि न पावै है अभ्युदय तीर्थंकरादिसहित मुक्ति न पावै है तातैं हम उपदेश करैं है जो हस्त जोडना पगां पडना आएतैं उठना सामा जाना अनुकूल वचन कहना यह पचप्रकार विनय अथवा ज्ञान दर्शन चारित्र तप अर इनिका धारक पुरुष इनिका विनय करना ऐसैं पंचप्रकार विनयकूं तू मन वचन काय तीनूं योगनिकरि पालि ॥

भावार्थ—विनयविना मुक्ति नाही तातैं विनयका उपदेश है, विनयमैं बडे गुण हैं ज्ञानकी प्राप्ति होय है मानकषायका नाश होय है शिष्टाचारका पालना है कलहका निवारण है इत्यादि विनयके गुण जाननें, तातैं सम्यग्दर्शनादिकरि जे महान हैं तिनिका विनय करना यह उपदेश है, अर जे विनय विना जिनमार्गतैं भ्रष्ट भये वस्त्रादिकसहित जे मोक्षमार्ग मानने लगे तिनिका निषेध है ॥ १०४ ॥

आगैं भक्तिरूप वैयावृत्त्यका उपदेश करैं हैं,—

णियसत्तिए महाजस भत्तीराएण णिच्चकालम्मि ।
तं कुण जिणभत्तिपरं विज्जावच्चं दसवियप्पं ॥१०५॥

निजशक्त्या महायशः ! भक्तिरागेण नित्यकाले ।
त्वं कुरु जिनभक्तिपरं वैयावृत्यं दशविकल्पम् ॥१०५॥

अर्थ—हे महायश ! हे मुने ! भक्तिका रागकरि तिस वैयावृत्त्यकूं सदाकाल अपनी शक्तिकरि तू करि, कैसैं-जिनभक्तिविषै तत्पर होय तैसैं-कैसा है वैयावृत्त्य-दशविकल्प है दशभेदरूप है, वैयावृत्य नाम परके दुःख कष्ट आये टहल वदगी करनेका है, ताके दशभेद—आचार्य, उपा

ध्याय, तपस्वि, शैक्ष्य, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु, मनोज्ञ ये दश-भेद मुनिके हैं तिनिका कीजिये है तातैं दशभेद कहे है ॥ १०५ ॥

आगैं अपने दोषकूं गुरु पासि कहना ऐसी गर्हाका उपदेश करै हैं:-

जं किंचिकय दोसं मणवयकाएहिं असुहभावेणं ।
तं गरहि गुरुसयासे गारव मायं च मोत्तूण ॥१०६॥

यः कश्चित् कृतः दोषः मनोवचःकायैः अशुभभावेन ।
तं गर्ह गुरुसकाशे गारवं मायां च मुक्त्वा ॥१०६॥

अर्थ—हे मुने ! जो कछु मन वचन कायकरि अशुभ भावनितैं प्रतिज्ञामैं दोष लग्या होय ताकू गुरु पासि अपना गौरव कहिये अपना महतपणा गर्व छोडिकरि बहुरि माया कहिये कपट छोड़ि करि मन वचन काय सरल करि गर्हाकरि वचन प्रकासि ॥

भावार्थ-आपकू कोई दोष लाग्या होय अर निष्कपट होय गुरूकूं कहै तो वह दोष निवृत्त होय, अर आप शल्यवान रहैं तो मुनिपदमैं यह बडा दोष है, तातैं अपना दोष छिपावना नांही; जैसा होय तैसा सरलबुद्धितैं गुरुनिपासि कहना तब दोष मिटै, यह उपदेश है। कालके निमित्ततैं मुनिपदतैं भ्रष्ट भये पीछै गुरुनिपासि प्रायश्चित न लिया तब विपरीत होय सम्प्रदाय न्यारा बांध्या, ऐसैं विपर्यय भया ॥ १०६ ॥

आगैं क्षमाका उपदेश करै है;—

दुज्जणवयणचडक्कं णिट्ठुरकडुयं सहंति सप्पुरिसा ।
कम्ममलणासणट्ठं भावेण य णिम्ममा सवणा ॥१०७॥

दुर्जनवचनचपेटां निष्ठुरकटुकं सहन्ते सत्पुरुषाः ।
कर्ममलनाशनार्थं भावेन च निर्ममाः श्रमणाः ॥१०७॥

अर्थ—सत्पुरुष मुनि है ते दुर्जनके वचनरूप चपेट जो निष्ठुर

कहिये कठोर दयारहित अर कटुक कहिये सुनतेही काननिकूं कड़ा सूल समान लागै ऐसी चपेट है ताहि सहैं हैं, ते कौन अर्थि सहैं हैं—कर्मनिके नाश होनेंके अर्थि पूर्वैं अशुभकर्म बाध्या था ताके निमित्ततैं दुर्जननैं कटुक वचन कह्या आप सुन्यां ताकूं उपशम परिणामतैं आप सहै तब अशुभकर्म उदय होइ खिरि गया ऐसैं कटुकवचन सहे कर्मका नाश होय है, बहुरि ते मुनि सत्पुरुष कैसे हैं अपनें भावकरि वचनादिककरि निर्ममत्व हैं वचनतैं तथा मान कषायतैं अर देहादिकतैं ममत्व नाही है, ममत्व होय तौ दुर्वचन सह्या न जाय, यह न जानै जो ये मोकूं दुर्वचन कह्या, तातैं ममत्वके अभावतैं दुर्वचन सहै है। तातैं मुनि होय करि काहूतैं क्रोध न करनां यह उपदेश है। लौकिकमैं भी जे बडे पुरुष हैं ते दुर्वचन सुनिकै क्रोध न करैं हैं तब मुनिकूं तौ सहना उचितही है, जे क्रोध करैं हैं ते कहवेके तपस्वी हैं, साचे तपस्वी नाही॥ १०७॥

आगैं क्षमाका फल कहै हैं,—

पावं खवइ असेसं खमाय पडिमंडिओ य मुणिपवरो।
खेयरअमरणराणं पसंसणीओ धुवं होइ॥ १०८॥

पापं क्षिपति अशेषं क्षमया परिमंडितः च मुनिप्रवरः।
खेचरामरनराणां प्रशंसनीयः ध्रुवं भवति॥ १०८॥

अर्थ—जो मुनिप्रवर मुनिनमैं श्रेष्ठ प्रधान क्रोधके अभावरूप क्षमा करि मंडित है सो मुनि समस्त पापकूं क्षय करै है, बहुरि विद्याधर देव मनुष्यनिकरि प्रशंसा करनेंयोग्य निश्चयकरि होय है॥

भावार्थ—क्षमा गुण बडा प्रधान है जातैं सर्वकै स्तुति करनेंयोग्य पुरुष होय, जे मुनि हैं तिनिकै उत्तमक्षमा होय है ते तौ सर्व मनुष्य देव विद्याधरनिकै स्तुतियोग्य होयही होय अर तिनिकै सर्व पापका क्षय होयही होय, तातैं क्षमा करनां योग्य है ऐसा उपदेश है। क्रोधी सर्वकै निंदनें योग्य होय हैं तातैं क्रोधका छोडना श्रेष्ठ है॥ १०८॥

आगे ऐसें क्षमागुण जानि क्षमा करना क्रोध छोड़ना ऐसें कहै है;-

इय णाऊण खमागुण खमेहि तिविहेण सयलजीवाणं।
चिरसंचियकोहसिहिं वरखमसलिलेण सिंचेह ॥१०९॥

इति ज्ञात्वा क्षमागुण ! क्षमस्व त्रिविधेन सकलजीवान्।
चिरसंचितक्रोधशिखिनं वरक्षमासलिलेन सिंच ॥ १०९ ॥

अर्थ—हे क्षमागुण मुने ! क्षमा है गुण जाकै ऐसा मुनिका सबोधन है, इति कहिये पूर्वोक्त क्षमागुणकूं जाणि अर सकलजीवनिपरि मन वचन कायकरि क्षमाकरि, वहुरि वहुत काल करि सचय किया जो क्रोधरूप अग्नि ताहि क्षमारूप जलकरि सींचि, बुझाय ॥

भावार्थ—क्रोधरूप अग्निहै सो पुरुषमै भले गुण हैं तिनिकू दग्ध करनेवाला है अर परजीवनिका घात करनेंवाला है तातै याकू क्षमारूप जलकरि बुझावना, अन्य प्रकार यह बुझै नाही, अर क्षमा गुण सर्व गुणनिमै प्रधान है। तातै यह उपदेश है जो क्रोधकूं छोड़ि क्षमा ग्रहण करना ॥ १०९ ॥

आगै दीक्षाकालादिककी भावनाका उपदेश करै है,—

दिक्खाकालाईयं[1] भावहि अवियार[2]दंसणविसुद्धो।
उत्तमबोहिणिमित्तं असारसाराणि मुणिऊण ॥ ११० ॥

दीक्षाकालादिकं भावय अविकारदर्शनविशुद्धः।
उत्तमबोधिनिमित्तं असार[3]साराणि ज्ञात्वा ॥ ११० ॥

१—मुद्रित सस्कृत प्रतिमें 'दीक्खाकालईय' इसकी सस्कृत 'दीक्षाकालादीयं' की है।

२—मुद्रितसस्कृत प्रतिमें 'अविचार दसणविशुद्धो' ऐसे दो पद किये हैं जिनकी सस्कृत 'हे अविचार ! दशनविशुद्ध' इस प्रकार है।

३—सस्कृत टीकामें 'असारसाराणि' का अर्थ 'सार और असारको जान कर ऐसा किया है।

अर्थ—हे मुने! तू दीक्षाकाल आदिककी भावना करि, कैसा भया संता—अविकार कहिये अतीचाररहित जो निर्मल सम्यग्दर्शन ताकरि सहित भया संता, पूर्वैं कह्याकरि ससारकूं असार जाणिकरि, काहेकै अर्थि—उत्तमबोधि कहिये सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्रकी प्राप्तिके निमित्त ॥

भावार्थ—दीक्षा लेहै तब ससार भोगकूं असार जाणि अत्यंत वैराग्य उपजै है तैसैं ही ताकै आदिशब्दतैं रोगोत्पत्ति मरणकालादिक जानना तिनिकालनिमैं जैसे भाव होय तैसे ही संसारकूं असार जाणि विशुद्ध सम्यग्दर्शनसहित भया संता उत्तमबोधि जो जामैं केवलज्ञान उपजै है ताकै अर्थि दीक्षाकालादिककी निरन्तर भावनाकरणी, ऐसा उपदेश है।११०

आगैं भावलिंग शुद्धकरि द्रव्यलिंग सेवनेका उपदेश करै हैं,—

सेवहि चउविहलिंगं अब्भंतरलिंगसुद्धिमावण्णो।
बाहिरलिंगमकज्जं होइ फुडं भावरहियाणं ॥१११॥

सेवस्व चतुर्विधलिंगं अभ्यंतरलिंगशुद्धिमापन्नः।
बाह्यलिंगमकार्यं भवति स्फुटं भावरहितानाम् ॥१११॥

अर्थ—हे मुनिवर! तू अभ्यंतरलिंगकी शुद्धि कहिये शुद्धताकूं प्राप्त भया संता च्यार प्रकार बाह्यलिंग है ताहि सेवन करि जातैं जे भावरहित हैं तिनिकै प्रगटपणैं बाह्यलिंग अकार्य है, कार्यकारी नांही है ॥

भावार्थ—जे भावकी शुद्धताकरि रहित हैं अपनी आत्माका यथार्थ श्रद्धान ज्ञान आचरण जिनकै नाही तिनिकै बाह्यलिंग कछू कार्यकारी नाही है, कारण पाय तत्काल बिगडे है, तातैं यह उपदेश है—पहलैं भावकी शुद्धताकरि द्रव्यलिंग धारणां। सो यह द्रव्यलिंग च्यारि प्रकार कह्या, ताकी सूचना ऐसी जो-मस्तकका, डाढीका, मूंछका, केशाका तौ लौच करना तीन चिह्न तौ ये अर चौथा नीचले केश राखनां, अथवा वस्त्रका त्याग, केशनिका लौंच करना, शरीरका स्नानादिककरि

सस्कार न करनां, प्रतिलेखन मयूरपिच्छका राखना, ऐसैंभी च्यार प्रकार बाह्यलिंग कह्या है। ऐसैं सर्व बाह्य वस्त्रादिककरि रहित नग्न रहनां, ऐसा नग्नरूप भावविशुद्धिविना हास्यका ठिकांना है अर कछू उत्तम फलभी नाही है॥ १११॥

आगैं कहै हैं जो-भाव विगडनेंके कारण च्यार सज्ञा हैं तिनिकरि संसार भ्रमण होय है, यह दिखावै हैं,—

आहारभयपरिग्गहमेहुणसण्णाहि मोहिओसि तुमं।
भमिओ संसारवणे अणाइकालं अणप्पवसो ॥११२॥

आहारभयपरिग्रहमैथुनसंज्ञाभिः मोहितः असि त्वम्।
भ्रमितः संसारवने अनादिकालं अनात्मवशः ॥११२॥

अर्थ—हे मुने! तू आहार भय मैथुन परिग्रह ये च्यारि सं ज्ञा तिनि करि मोहित भया अनादिकालतैं लगाय पराधीन भया सं ता स साररूप वनमैं भ्रम्या॥

भावार्थ—संज्ञा नाम वांछाका चेत रहनेंका है सो आहारकी दिशि भयकी दिशि मैथुनकी दिशि परिग्रहकी दिशि प्राणीकै निरतर चेत रहै है, यह जन्मान्तरमैं चली जाय है जन्म लेतेही तत्काल उघडै है, याहीके निमित्ततैं कर्मनिका बंध करि संसारवनमैं भ्रमैं है, तातैं मुनिनिकूं यह उपदेश है जो अब इनि संज्ञानिका अभाव करौ॥ ११२॥

आगैं कहै हैं जो बाह्य उत्तरगुणकी प्रवृत्तिभी भाव शुद्ध करि करणीं;—

बाहिरसयणत्तावणतरुमूलाईणि उत्तरगुणाणि।
पालहि भावविसुद्धो पूयालाभं ण ईहंतो[1]॥ ११३॥

१—सस्कृत मुद्रित प्रतिमें "नईहंतो" ऐसा एक पद किया है जिसकी सस्कृत 'अनीहमान.' ऐसी की है।

बहिःशयनातापनतरुमूलादीन् उत्तरगुणान् ।
पालय भावविशुद्धः पूजालाभं न ईहमानः ॥११३॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू भावकरि विशुद्ध भया संता पूजालाभादिकफूं न चाहता संता बाह्य शयन आतापन वृक्षमूलयोग धारना इत्यादिक उत्तरगुण हैं तिनिकूं पालि ॥

भावार्थ—शीतकालमैं बाह्य खांडे सोवनां बैठना, ग्रीष्मकालमैं पर्वतके शिखर सूर्यसन्मुख आतापनयोग धरना, वर्षाकालमैं वृक्षके मूल योग धरनां जहां बूंद वृक्षपरि पडैं पीछे भेली होय शरीरपरि पडैं यामैं किछू प्रासुकका भी संकल्प अर बाधा बहुत इनिकूं आदि लेकरि ये उत्तरगुण हैं तिनिका पालना भी भाव शुद्धिकरि करना । भावशुद्धि विना करै तौ तत्काल बिगडै अर फल किछू नाहीं तातैं भाव शुद्ध करि करनेका उपदेश है । ऐसा तौ न जानना जो इनिका बाह्य करनां निषेध है, ये भी करनें अर भाव शुद्ध करना यह आशय है । अर केवल पूजालाभादिकै अर्थि अपनी महंतता दिखावनेंके अर्थि करै तौ कछू फललाभकी प्राप्ति नांही है ॥ ११३ ॥

आगैं तत्त्वकी भावना करनेंका उपदेस करै हैं;—

भावहि पढमं तच्चं बिदियं तदियं चउत्थ पंचमयं ।
तियरणसुद्धो अप्पं अणाइणिहणं तिवग्गहरं ॥ ११४॥

भावय प्रथमं तत्त्वं द्वितीयं तृतीयं चतुर्थं पंचमकम् ।
त्रिकरणशुद्धः आत्मानं अनादिनिधनं त्रिवर्गहरम् ॥११४॥

अर्थ—हे मुने ! तू प्रथमतत्त्व जो जीवतत्त्व ताकूं भाय, बहुरि द्वितीयतत्त्व जो अजीवतत्त्व ताकूं भाय, बहुरि तृतीयतत्त्व जो आस्रवतत्त्व ताकूं भाय, बहुरि चतुर्थतत्त्व जो बंधतत्त्व ताकूं भाय, बहुरि पंचमतत्त्व जो संवरतत्त्व ताकूं भाय, बहुरि त्रिकरण कहिये मन वचन काय

कृत कारित अनुमोदनाकरि शुद्ध भया संता आत्माकूं भाय. कैसा है आत्मा अनादिनिधन है, बहुरि कैसा है त्रिवर्ग कहिये धर्म अर्थ काम इनिका हरनेंवाला है ॥

भावार्थ—प्रथम जीवतत्त्वकी भावना तौ सामान्य जीव दर्शन ज्ञानमयी चेतना स्वरूप है ताकी भावना करनीं पीछैं ऐसा मैं हूं ऐसें आत्मतत्त्वकी भावना करनीं, बहुरि दूसरा अजीवतत्त्व है सो सामान्य अचेतन जड़ है सो पांचभेदरूप पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल है इनिकूं विचारणें पीछै भावना करनीं जो ये मैं नांही हूं, बहुरि तीसरा आस्रवतत्त्व है सो जीव पुद्गलके संयोगजनित भाव हैं तिनिमैं अनादि-कर्मसंबंधतैं जीवके भाव तौ रागद्वेष मोह हैं अर अजीव पुद्गलके भाव-कर्मका उदयरूप मिथ्यात्व अविरत कषाय योग ये द्रव्य आस्रव हैं तिनिकी भावना करनीं जो ये मेरै होय हैं मेरे रागद्वेषमोह भाव हैं तिनि-करि कर्मका बंध होय है तिनितैं संसार होय है तातैं तिनिका कर्त्ता न होना, बहुरि चौथा बंधतत्त्व है सो मैं रागद्वेपमोहरूप परिणमूं हूं सो तौ मेरा चेतनाका विभाव है इनितैं बंधै हैं ते पुद्गल हैं अर कर्म पुद्गल हैं अर कर्म पुद्गल ज्ञानावरण आदि आठ प्रकार होय बंधै है ते स्वभाव प्रकृति स्थिति अनुभाग प्रदेशरूप च्यार प्रकार होय बंधै हैं ते मेरे वि-भाव तथा पुद्गलकर्म सर्व हेय हैं संसारके कारण है मोकूं रागद्वेष मोहरूप न होना ऐसैं भावना करनीं, बहुरि पांचवा तत्व संवर है सो रागद्वेषमोह-रूप जीवके विभाव हैं तिनिका न होनां अर दर्शन ज्ञानरूप चेतनाभाव थिर होना यह संवर है सो अपना भाव है अर याही करि पुद्गल कर्मजनित भ्रमण मिटै है। ऐसैं इनि पांच तत्त्वनिकी भावना करनेमैं आत्मतत्त्वकी भावना प्रधान है ताकरि कर्मकी निर्जरा होय मोक्ष होय है, आत्मा भाव शुद्ध अनुक्रमतैं होनां यह तौ निर्जरातत्त्व भया अर सर्व कर्मका अभाव होनां यह मोक्षतत्त्व भया। ऐसैं सात तत्त्वकी भावनां करनीं। याहीतैं आत्मतत्त्वका विशेषण किया जो आत्मतत्त्व कैसा है—धर्म अर्थ काम इस त्रिवर्गका अभाव करै है याकी भावनातैं त्रिवर्गतैं न्यारा चौथा पुरु-

पार्थ मोक्ष है सो होय है। बहुरि यह आत्मा ज्ञानदर्शनमयीचेतनास्वरूप अनादिनिधन है जाका आदि भी नांहीं अर निधन कहिये नाश भी नाही। बहुरि भावना नाम बार बार अभ्यास करना चितवन करनेका है सो मन करि वचनकरि कायकरि आप करना तथा परकूं करावना करतेकू भला जानना, ऐसैं त्रिकरण शुद्ध करि भावना करनी। माया मिथ्या निदान शल्य न राखणीं, ख्याति लाभ पूजाका आशय न राखना ऐसैं तत्वकी भावना करनेंतैं भाव शुद्ध होय हैं। याका उदाहरण ऐसा जो—स्त्री आदि इ द्रियगोचर होय तब ताकै विषैं तत्व विचारना जो ये स्त्री है सो कहा है? जीवनामक तत्वकी एक पर्याय है अर याका शरीर है सो पुद्गलतत्वकी पर्याय है अर यह हावभाव चेष्टा करै है सो या जीवकै तौ विकार भया है सो आस्रवतत्व है अर बाह्य चेष्टा पुद्गलकी है, या विकारतैं या स्त्री की आत्माकै कर्मका वंध होय है, यहु विकार याकै न होय तौ आस्रव बध याकै न होय। बहुरि कदाचित् मैं भी याकू देखि विकाररूप परिणमू तौ मेरै भी आस्रव वंध होय तातैं मोकूं विकाररूप न होना यह संवर तत्व है बनैं तौ कछू उपदेश करि याका विकार मेटूं ऐसैं तत्वकी भावनातैं अपना भाव अशुद्ध न होय तातैं जो दृष्टिगोचर पदार्थ आवै ताविषैं ऐसैं तत्वकी भावना राखणीं यह तत्वकी भावनाका उपदेश है॥ ११४॥

आगैं कहै हैं—ऐसैं तत्वकी भावना जेतैं नांही तेतैं मोक्ष नांही-

जाव ण भावइ तच्चं जाव ण चिंतेइ चिंतणीयाइं।
ताव ण पावइ जीवो जरमरणविवज्जियं ठाणं ॥११५॥

यावन्न भावयति तत्वं यावन्न चिंतयति चिंतनीयानि।
तावन्न प्राप्नोति जीवः जरामरणविवर्जितं स्थानम् ११५

अर्थ—हे मुने! जैतैं यह जीव आदि तत्वनिकू नाही भावै है,

बहुरि चिंतवन करने योग्यकूं नाही चितै है तेतै जरा अर मरणकरि रहित जो स्थान मोक्ष ताहि नांही पावै है ॥

भावार्थ—तत्वकी भावना तौ पूर्वैं कही सो चिंतवन करने योग्य धर्म शुक्लध्यानका विषयभूत सो ध्येय वस्तु अपनां शुद्ध दर्शनमयी चेतनाभाव अर ऐसाही अरहंत सिद्ध परमेष्ठीका स्वरूप ताका चिंतवना जेतैं या आत्माकै नांही, तेतैं संसारतैं निवृत्त होनां नांही, तातैं तत्वकी भावना अर शुद्धस्वरूपका ध्यानका उपाय निरन्तर राखणा यह उपदेश है ॥ ११५ ॥

आगैं कहै हैं जो-पाप पुण्यका अर बंध मोक्षका कारण परिणाम ही है,—

पावं हवइ असेसं पुण्णमसेसं च हवइ परिणामा ।
परिणामादो बंधो मुक्खो जिणसासणे दिट्ठो ॥११६॥

पापं भवति अशेषं पुण्यमशेषं च भवति परिणामात् ।
परिणामाद्बंधः मोक्षः जिनशासने दृष्टः ॥ ११६ ॥

अर्थ—पाप पुण्य बंध मोक्षका कारण परिणामही कह्या तहां जीवकै मिथ्यात्व विषय कषाय अशुभलेश्यारूप तीव्र परिणाम होय तिनितैं तौ पापास्रवका बंध होय है, बहुरि परमेष्ठीकी भक्ति जीवनिकी दया इत्यादिक मंदकषाय शुभलेश्यारूप परिणाम होय तातैं पुण्यास्रवका बंध होय है, अर शुद्ध परिणामरहित विभावरूप परिणामतैं बंध होय है । तहां शुद्धभावकै सन्मुख रहनां ताके अनुकूल शुभ परिणाम राखनें अशुभ परिणाम सर्वथा मेटनां, यह उपदेश है ॥ ११६ ॥

आगैं पुण्य पापका बंध जैसे भावनिकरि होय तिनिकूं कहै हैं, तहां प्रथमही पापबंधके परिणाम कहै हैं;—

मिच्छत्त तह कसायाऽसंजमजोगेहिं असुहलेसेहिं ।
बंधइ असुहं कम्मं जिणवयणपरम्मुहो जीवो ॥११७॥

मिथ्यात्वं तथा कषायासंयमयोगैः अशुभलेश्यैः ।
वध्नाति अशुभं कर्म जिनवचनपराङ्मुखः जीवः ॥११७॥

अर्थ—मिथ्यात्व तथा कषाय अर असंयम अर योग ते कैसे, अशुभ है लेश्या जिनिमैं ऐसे भावनि करि तौ यह जीव अशुभ कर्मकूं बांधै है, कैसा जीव अशुभ कर्मकूं बांधै है-जिनवचनतैं पराङ्मुख है सो पाप बाधै है ॥

भावार्थ—मिथ्यात्व भाव तौ तत्वार्थका श्रद्धानरहित परिणाम है, बहुरि कषाय क्रोधादिक हैं, अर असयम परद्रव्यके ग्रहणरूप है त्यागरूप भाव नांही, ऐसे इन्द्रियनिके विषयनितैं प्रीति जीवनिकी विराधनासहित भाव है, योग मनवचनकायके निमित्ततैं आत्मप्रदेशका चलनां है। ये भाव हैं ते जब तीव्रकषायसहित कृष्णनील कापोत अशुभ लेश्यारूप होय तब या जीवके पापकर्मका बध होय है। तहा पापवंध करनें वाला जीव कैसा है-ताकै जिनवचनकी श्रद्धा नांही, इस विशेषणका आशय यह जो अन्य मतके श्रद्धानीकै जो कदाचित् शुभलेश्याके निमित्ततैं पुण्यका भी बध होय तौ ताकूं पापहीमैं गिणिये, अर जो जिन आज्ञामैं प्रवर्तै है ताकै कदाचित् पापभी वंधै तौ वह पुण्यजीवनिकी ही पंक्तिमैं गिणिये है, मिथ्यादृष्टीकूं पापजीवनिमैं गिण्या है सम्यग्दृष्टीकूं पुण्यजीवनिमैं गिण्या है। ऐसैं पापबंधके कारण कहे ॥ ११७ ॥

आगैं यातैं उलटा जीव है सो पुण्य बांधै है ऐसैं कहै हैं;—

तव्विवरीओ बंधइ सुहकम्मं भावसुद्धिमावण्णो ।
दुविहपयारं बंधइ संखेपेणेव वज्जरियं ॥ ११८ ॥

तद्विपरीतः बध्नाति शुभकर्म भावशुद्धिमापन्नः ।
द्विविधप्रकारं बध्नाति संक्षेपेणैव कथितम् ॥ ११८ ॥

अर्थ—तिस पूर्वोक्त जिनवचनका श्रद्धानी मिथ्यात्वरहित

सम्यग्दृष्टी जीव है सो शुभकर्मकूं बांधै है कैसा है जीव भावनिकी जो विशुद्धि ताकूं प्राप्त है। ऐसैं दोऊ प्रकार दोऊ शुभाशुभ कर्म बांधै है यह संक्षेपकरि जिन कह्या ॥

भावार्थ—पूर्वें कह्या जिनवचनतैं पराङमुख मिथ्यात्वसहित जीव तिसतैं विपरीत कहिये जिन आज्ञाका श्रद्धानी सम्यग्दृष्टी जीव है सो विशुद्धभावकूं प्राप्त भया शुभकर्मकूं बांधै है जातैं याके सम्यक्त्वके माहात्म्यकरि ऐसे उज्ज्वल भाव हैं ताकरि मिथ्यात्वकी लार बंध होती पापप्रकृतिनिका अभाव है, कदाचित् किंचित् कोई पापप्रकृति बंधै है तिनिका अनुभाग मंद होय है कछू तीव्र पापफलका दाता नाही तातैं सम्यग्दृष्टी शुभकर्महीका बांधनेवाला है। ऐसैं शुभ अशुभ कर्मके बंधका संक्षेपकरि विधान सर्वज्ञदेवनै कह्या है सो जानना ॥ ११९ ॥

आगैं कहै है जो—हे मुने ! तू ऐसी भावनाकरि,—

णाणावरणादीहिं य अट्ठहिं कम्मेहिं वेढिओ य अहं ।
डहिऊण इण्हिं पयडमि अणंतणाणाइगुणचित्तां ११९

ज्ञानावरणादिभिः च अष्टभिः कर्मभिः वेष्टितश्च अहं ।
दग्ध्वा इदानीं प्रकटयामि अनंतज्ञानादिगुणचेतनां ॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू ऐसी भावनाकरि जो मैं ज्ञानवरणकूं आदि लेकरि आठ कर्म हैं तिनितैं वेढ्याहू यातैं इनिकूं भस्मकरि अनंतज्ञानादि गुणनिजस्वरूप चेतनाकूं प्रगट करूं ॥

भावार्थ—आपकूं कर्मनिकरि वेढ्या मानैं अर तिनिकरि अनंतज्ञानादि गुण आच्छादे मानैं तब तिनि कर्मनिका नाश करना विचारै, तातैं कर्मनिका बंधकी अर तिनिका अभावकी भावना करनेका उपदेश है, अर कर्मनिका अभाव शुद्धस्वरूपके ध्यावनेतैं होय है सो करनेका उपदेश है। कर्म आठ हैं ते ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय ये तौ घातिया कर्म हैं, इनिकी प्रकृति सैंतालीस हैं, तिनिमैं केवलज्ञाना-

वरणतैं तौ अनंतज्ञान आच्छादित है, अर केवलदर्शनावरणतैं अनंत-दर्शन आच्छादित है, अर मोहनीयतैं अनंतसुख प्रगट न होय है अर अंतरायतैं अनंतवीर्य प्रगट न होय है सो इनिका नाश करनां। बहुरि च्यारि अघाति कर्म हैं तिनितैं अव्याबाध अगुरुलघु सूक्ष्मता अवगाहना ये गुण प्रगट न होय हैं, इनि अघातिकर्मनिकी प्रकृति एकसौ एक है। तिनि घातिकर्मनिका नाश भये अघाति कर्मनिका स्वयमेव अभाव होय है, ऐसैं जाननां ॥ ११९ ॥

आगैं इनि कर्मनिका नाश होनेकूं अनेक प्रकार उपदेश है ताकूं संक्षेपकरि कहै हैं,—

सीलसहस्सट्ठारस चउरासीगुणगणाण लक्खाइं ।
भावहि अणुदिणु णिहिलं असप्पलावेण किं वहुणा १२०

शीलसहस्राष्टादश चतुरशीतिगुणगणानां लक्षाणि ।
भावय अनुदिनं निखिलं असत्प्रलापेन किं वहुना ॥१२०॥

अर्थ—शील तौ अठारह हजार भेदरूप है बहुरि उत्तरगुण चौरासी लाख हैं तहा आचार्य कहै हैं जो—हे मुने! बहुत झूंठे प्रलापरूप निरर्थक वचनकरि कहा? इनि शीलनिकूं अर उत्तरगुणनिकूं सर्वकूं तू निरन्तर भाय, इनिकी भावना चिंतवन अभ्यास निरन्तर राखि, इनिकी प्राप्ति होय तैसैं करि ॥

भावार्थ—आत्मा जीवनामा वस्तु है सो अनंतधर्मस्वरूप है, संक्षेप करि याकी दोय परिणति हैं, एक स्वाभाविक एक विभावरूप। तामैं स्वाभाविक तौ शुद्धदर्शनज्ञानमयी चेतनापरिणाम है; अर विभावपरिणाम कर्मके निमित्ततैं हैं, ते प्रधानकरि तौ मोहकर्मके निमित्ततैं भये संक्षेप करि मिथ्यात्व रागद्वेष हैं तिनिके विस्तारकरि अनेक भेद हैं। बहुरि अन्यकर्मके उदयकरि विभाव होय है तिनिमैं पौरुष प्रधान नांही तातैं उपदेश अपेक्षा ते गौण हैं। ऐसैं ये शील अर उत्तरगुण स्वभाव विभाव

परिणतिके भेदतैं भेदरूपकरि कहे हैं, तहां शीलकी तौ दोय प्रकार प्ररूपणा है—एकतौ स्वद्रव्य परद्रव्यके विभाग अपेक्षा है अर स्त्रीके संसर्गकी अपेक्षा है। तहां परद्रव्यका संसर्ग मन वचन कायकरि होय अर कृत कारित अनुमोदनाकरि होय सो न करणां, इनिकूं परस्पर गुणें नव भेद होंय। बहुरि आहार, भय, मैथुन, परिग्रह ये च्यार सज्ञा हैं इनिकरि परद्रव्यका संसर्ग होय हैं ताका न होनां यातैं नवभेदनिकूं च्यार सज्ञानितै गुणें छत्तीस होय। बहुरि पाच इंद्रियनिके निमित्ततैं विषयनिका संसर्ग होय है तिनिकी प्रवृत्तिका अभावरूप पाच इंद्रियनिकरि छत्तीसकूं गुणें एकसौ अस्सी होय हैं। बहुरि पृथ्वी, अप, तेज, वायु, प्रत्येक साधारण ये तौ एकेंद्रिय अर द्वीन्द्रिय त्रींद्रिय चतुरिंद्रिय पचेंद्रिय ऐसैं दशभेदरूप जीवनिका संसर्ग इनिकी हिंसारूप प्रवर्त्तनेतैं परिणाम विभावरूप होय हैं सो न करणा, ऐसैं एकसौ अस्सी भेदनिकूं दशकरि गुणें अठारासै होय। बहुरि क्रोधादिक कषाय अर असंयम परिणामतैं परद्रव्यस बंधी विभावपरिणाम होय हैं तिनिके अभावरूप दश लक्षण धर्म हैं तिनितैं गुणे अठारह हजार होय हैं। ऐसैं परद्रव्यके संसर्गरूप कुशीलके अभावरूप शीलके अठारह हजार भेद हैं इनिके पाले परम ब्रह्मचर्य होय हैं, ब्रह्म कहिये आत्मा ताविषैं प्रवर्त्तना रमना ताकूं ब्रह्मचर्य कहिये है।

बहुरि स्त्रीके संसर्गकी अपेक्षा ऐसैं है,—स्त्री दोय प्रकार, तहां अचेतन स्त्री तौ काष्ठ पाषाण लेप कहिये चित्राम ये तीन मन अर काय इनि दोयकरि ससर्ग होय, इहां वचन नाही तातैं दोयकरि गुणो छह होय। बहुरि कृतकारित अनुमोदनाकरि गुणें अठारह होय। बहुरि पांच इन्द्रियनिकरि गुणें निव्वै होय। बहुरि द्रव्य भावकरि गुणे एक सौ अस्सी होय। बहुरि क्रोध मान माया लोभ इनि च्यार कषायनिकरि गुणें सातसैवीस होय। बहुरि चेतन स्त्री देवी मनुष्यणी तिर्यंचणी ऐसै तीन, सो इनि तीननिनैं मन वचन कायकरि गुणें नव होय। तिनिकूं

कृत कारित अनुमोदनाकरि गुणें सत्ताईस होय। तिनिकूं पांच इन्द्रिय-नितैं गुणें एकसौ पैंतीस होय तिनिकूं द्रव्य अर भाव इनि दोयकरि गुणें दोयसै सत्तरि होय। तिनिकूं च्यार संज्ञातै गुणे एक हजार अस्सी होय। इनिकूं अनंतानुबंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण संज्व-लन क्रोध मान माया लोभ इनि सोलह कषायनितैं गुणें सतराहजार दोयसैं अस्सी होय है। ऐसैं अचेतनस्त्रीके सातसैवीस मिलाये अठारह हजार होय हैं, ऐसैं स्त्रीके संसर्गतैं विकार परिणाम होय ते कुशील हैं इनिका अभावरूप परिणाम ते शील हैं याकूं भी ब्रह्मचर्यसंज्ञा है॥

बहुरि चौरासी लाख उत्तरगुण ऐसैं हैं जो आत्माके विभाव परिणा-मनिके बाह्यकारणनिकी अपेक्षा भेद होय है, तिनिके अभावरूप ये गुण-निके भेद हैं, तिनि विभावनिका संक्षेपकरि भेदनिकी गणना ऐसैं;—हिंसा १ अनृत २ स्तेय ३ मैथुन ४ परिग्रह ५ क्रोध ६ मान ७ माया ८ लोभ ९ भय १० जुगुप्सा ११ अरति १२ शोक १३ मनोदुष्टत्व १४ वचनदुष्टत्व १५ कायदुष्टत्व १६ मिथ्यात्व १७ प्रमाद १८ पैशून्य १९ अज्ञान २० इन्द्रियनिका अनुग्रह २१ ऐसैं इकईस दोष है, तिनिकूं अतिक्रम व्यतिक्रम अतीचार अनाचार इनि च्यारनितैं गुणें चौरासी होय हैं। बहुरि पृथ्वी अप तेज वायु प्रत्येक साधारण ये तौ थावर एकेंद्रिय जीव छह अर विकल तीन पंचेंद्रिय एक ऐसैं जीवनिका दश भेद तिनिका परस्पर आरं-भतैं घाव होत परस्पर गुणें सौ (१००) होय इनितैं चौरासीकूं गुणे चौरासी सौ होय है। बहुरि तिनिकूं दश शील विराधनातैं गुणें चौराशी हजार होय, तिनि दशके नाम—स्त्रीसंसर्ग १ पुष्टरसभोजन २ गधमाल्यका ग्रहण ३ शयनासन सुन्दरका ग्रहण ४ भूषणका मंडन ५ गीतवादित्रका प्रसंग ६ धनका सम्प्रयोजन ७ कुशीलका संसर्ग ८ राज-सेवा ९ रात्रिसंचरण १० ये दश शील विराधना हैं। बहुरि तिनिकूं आलोचनाके दश दोष हैं जो गुरुनि पासि लगे दोषनिकी आलोचना

करै सो सरल होय न करै कछू शल्य राखै ताके दश भेद किये हैं तिनितैं गुणें आठ लाख चालीस हजार होय है। बहुरि आलोचनाकूं आदि देय प्रायश्चित्तके भेद है तिनितैं गुणें चौरासीलाख होय है। सो सर्व दोषनिके भेद है इनिका अभावतैं गुण है इनिकी भावना राखै चितवन अभ्यास राखै इनिकी संपूर्ण प्राप्ति होनेंका उपाय राखै, ऐसैं, इनिकी भावनाका उपदेश है। आचार्य कहै हैं जो बारबार बहुत वचनके प्रलाप करि तौ कछू साध्य नांही जो कछू आत्माके भावकी प्रवृत्तिके व्यवहारके भेद है तिनिकूं गुण संज्ञा है तिनिकी भावना राखणी बहुरि इहां एता और जानना जो—गुणस्थान चौदह कहे हैं तिस परिपाटीकरि गुण दोषनिका विचार है। तहां मिथ्यात्व सासादन मिश्र इनि तीननिमैं तौ विभावपरणतिही है तहां तौ गुणका विचार नांही। बहुरि अविरत देशविरत आदिमैं गुणका एकदेश आवै है, तहां अविरतमैं मिथ्यात्व अनतानुबंधी कषायके अभावरूप गुणका एकदेश सम्यक्त अर तीव्र राग द्वेषका अभावरूप गुण आवै है, बहुरि देश विरतमैं कछू व्रतका एकदेश आवै है। अर प्रमत्तमैं महाव्रतरूप सामायिक चारित्रका एकदेश आवै है जातैं पापसंबंधी तौ राग द्वेष तहां नाही परन्तु धर्मसम्बन्धी राग अर सामायिक राग द्वेषका अभावका नाम है तातैं सामायिकका एकदेशही कहिये, अर इहां स्वरूपके सन्मुख होनेविषैं क्रियाकाडके संबंधतैं प्रमाद है तातैं प्रमत्त नाम दिया है। बहुरि अप्रमत्तविषैं स्वरूप साधनेंविषैं प्रमादतौ नांही परन्तु कछू स्वरूपके साधनेंका राग व्यक्त है तातैं तहांभी सामायिकका एकदेशही कहिये। बहुरि अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरणविषैं राग व्यक्त नांही अव्यक्तकषायका सद्भाव है तातैं सामायिक चारित्रकी पूर्णता कही। बहुरि सूक्ष्मसांपराय है सो अव्यक्तकषायभी सूक्ष्म रहिगई तातैं याका नाम सूक्ष्मसांपराय दिया। बहुरि उपशांतमोह क्षीणमोहविषैं कषायका अभावही है तातैं जैसा आत्माका मोहविकाररहित शुद्ध स्वरूप था ताका अनुभव भया तातैं यथाख्यात चारित्र नाम पाया, ऐसैं मोहकर्मके अभावकी अपेक्षा तौ तहांही उत्तरगुणनिकी पूर्णता कहिये

परन्तु आत्माका स्वरूप अनंतज्ञानादि स्वरूप है सो घातिकर्मके नाश भये अनंतज्ञानादि प्रगट होय तब सयोगकेवली कहिये तहांभी कछू योगनिकी प्रवृत्ति है तातैं अयोगकेवली चौदहवां गुणस्थान है तहां योगनिकी प्रवृत्ति मिटि अवस्थित आत्मा होय जाय है तब चौदहमां ... गुणनिकी पूर्णता कहिये। ऐसैं गुणस्थाननिकी अपेक्षा उत्तरगुणनिकी प्रवृत्ति विचारणी। ये बाह्य अपेक्षा भेद हैं अंतरंग अपेक्षा विचारिये तब संख्यात असंख्यात अनंत भेद होय हैं, ऐसैं जानना ॥ १२० ॥

आगैं भेदनिका विकल्पतैं रहित होय ध्यान करनेका उपदेश करे हैं:-

झायहि धम्मं सुक्कं अट्ट रउद्दं च झाण मुत्तूण।
रुद्दट्ट झाइयाइं इमेण जीवेण चिरकालं ॥ १२१ ॥

ध्याय धर्म्यं शुक्लं आर्तं रौद्रं च ध्यानं मुक्त्वा।
रौद्रार्ते ध्याते अनेन जीवेन चिरकालम् ॥ १२१ ॥

अर्थ—हे मुने! तू आर्तरौद्र ध्यानकूं छोडि अर शुक्लध्यान हैं तिनिहि ध्याय जातैं रौद्र अर आर्तध्यानतौ या जीवनैं अनादितैं लगाय बहुतकाल ध्याये ॥

भावार्थ—आर्तरौद्र ध्यान तौ अशुभ हैं संसारके कारण हैं तहां ये दोय ध्यान तौ जीवकै बिना उपदेशही अनादितैं प्रवर्त्तै हैं तातैं तिनिकूं छोडनेंका उपदेश है। बहुरि धर्मशुक्ल ध्यान हैं ते स्वर्ग मोक्षके कारण हैं इनिकूं कबहूं ध्याये नांही तातैं तिनिकूं ध्यावनेंका उपदेश है। तहां ध्यानका स्वरूप एकाग्रचिंतानिरोध कह्या है—तहां धर्मध्यानमैं तौ धर्मानुरागका सद्भाव है सो धर्मके मोक्षमार्गके कारणनिविषैं रागसहित एकाग्रचिंतानिरोध होय है तातैं शुभरागके निमित्ततैं पुण्यबंधभी होय है अर विशुद्धताके निमित्ततैं पापकर्मकी निर्जराभी होय है। बहुरि शुक्लध्यानमैं

आठवें नवमें दशमें गुणस्थान तौ अव्यक्तराग है तहां अनुभव अपेक्षा उपयोग उज्ज्वल है तातैं शुक्लनाम पाया है अर यातैं ऊपरिके गुणस्थाननिमैं राग कषायका अभावही है तातैं सर्वथाही उपयोग उज्ज्वल है तहां शुक्लध्यान युक्तही है। तहां एता विशेष और है जो उपयोगका एकाग्रपणां रूप ध्यानकी स्थिति अन्तर्मुहूर्त्तकी कही है तिस अपेक्षा तेरमें चौदमें गुणस्थान ध्यानका उपचार है अर योगक्रियाके थमनकी अपेक्षा ध्यान कह्या है। यह शुक्लध्यान कर्मकी निर्जराकरि जीवकूं मोक्ष प्राप्त करै है, ऐसैं ध्यानका उपदेश जानना ॥ १२१ ॥

आगैं कहै हैं यह ध्यान भावलिंगी मुनिनिकूं मोक्ष करै है;—

जे के वि दव्वसमणा इंदियसुहआउला ण छिंदंति ।
छिंदंति भावसवणा झाणकुठारेहिं भवरुक्खं ॥ १२२ ॥

ये केऽपि द्रव्यश्रमणा इन्द्रियसुखाकुलाः न छिंदन्ति ।
छिन्दन्ति भावश्रमणाः ध्यानकुठारैः भववृक्षम् ॥१२२॥

अर्थ—केई द्रव्यलिंगी श्रमण हैं ते तौ इन्द्रियसुखविषैं व्याकुल हैं तिनिकै,यह धर्मशुक्लध्यान होय नाही ते तौ संसाररूप वृक्षके काटनेकूं समर्थ नांही हैं, बहुरि जे भावलिंगी श्रमण हैं ते ध्यानरूप कुहाडेनिकरि संसाररूप वृक्षकूं काटैं हैं ॥

भावार्थ—जे मुनि द्रव्यलिंग तौ धारैं हैं परन्तु परमार्थसुखका अनुभव जिनिकै न भया तातैं इस लोक परलोकविसैं इन्द्रियनिका सुख हीकूं चाहैं हैं तपश्चरणादिक भी याही अभिलाषतैं करैं हैं तिनिकै धर्मशुक्लध्यान काहे तैं होय ? न होय, बहुरि जिनिमैं परमार्थ सुखका उपाय धर्म शुक्लध्यान है ताकू करि ससारका अभाव करैं हैं तातैं भावलिंगी होय ध्यानका अभ्यास करनां ॥ १२२ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृष्टान्तकरि दृढ करै हैं;—

जह दीवो गब्भहरे मारुयवाहाविवज्जिओ जलइ ।
तह रायानिलरहिओ झाणपईवो वि पज्जलइ ॥ १२३ ॥

यथा दीपः गर्भगृहे मारुतबाधाविवर्जितः ज्वलति ।
तथा रागानिलरहितः ध्यानप्रदीपः अपि प्रज्वलति ॥

अर्थ—जैसैं दीपक है सो गर्भगृह कहिये जहां पवनका संचार नांही ऐसा मध्यका घर ताविषैं पवनकी बाधाकरि रहित निश्चल भया उज्वलै है उद्योत करै है तैसैं अंतरंग मनविषैं रागरूपी पवनकरि रहित ध्यानरूपी दीपक भी प्रज्वलै है एकाग्र होय ठहरै है आत्मरूपकूं प्रकाशै है ॥

भावार्थ—पूर्वे कह्या था जो इन्द्रियसुखकरि व्याकुल है तिनिकै शुभ ध्यान न होय है ताका यह दीपकका दृष्टान्त है—जहां इन्द्रियनिके सुखविषैं जो राग सोही भई पवन सो विद्यमान है तिनिकै ध्यानरूपी दीपक कैसैं निर्बाध उद्योत करै? न करै, अर जिनिकै यह रागरूप पवन बाधा न करै तिनिकै ध्यानरूप दीपक निश्चल ठहरै है ॥ १२३ ॥

आगे कहै हैं—जो ध्यानविषैं परमार्थ ध्येय शुद्ध आत्माका स्वरूप है तिसस्वरूपके आराधनेविषैं नायक प्रधान पंच परमेष्ठी हैं तिनिकूं ध्यावनां, यह उपदेश करै हैं;—

झायहि पंच वि गुरवे मंगलचउसरणलोयपरियरिए ।
णरसुरखेयरमहिए आराहणणायगे वीरे ॥ १२४ ॥

ध्याय पंच अपि गुरून् मंगलचतुः शरणपरिकरितान् ।
नरसुरखेचरमहितान् आराधनानायकान् वीरान् ॥१२४॥

अर्थ—हे मुने! तू पंच गुरु कहिये पंच परमेष्ठी हैं तिनहिं ध्याय, इहां 'अपि' शब्द है सो शुद्धात्मस्वरूपके ध्यानकूं सूचै है, ते पंच परमेष्ठी कैसे हैं—मंगल कहिये पापका गालणा अथवा सुखका देना अर

चउशरण कहिये च्यार शरण अर लोक कहिये लोकके प्राणी तिनिकरि अरहंत सिद्ध साधु केवलि प्रणीत धर्म ये परिकरित कहिये परिवारित हैं युक्त हैं, बहुरि नर सुर विद्याधरनिकरि सहित हैं पूज्य हैं लोकोत्तम कहे हैं, बहुरि आराधनाके नायक हैं, बहुरि वीर हैं कर्मनिके जीतनेंकूं सुभट हैं तथा विशिष्ट लक्ष्मीकूं प्राप्त हैं तथा देहैं, ऐसे पंच परम गुरुकूं ध्याय ॥

भावार्थ—इहां पंच परमेष्ठीकूं ध्यावनां कह्या तहां ध्यानविषैं विघ्नके निवारनेवाले च्यार मंगलस्वरूप कहे ते येही हैं, बहुरि च्यार शरण अर लोकोत्तम कहे हैं ते भी इनिहीकूं कहे हैं, इनिसिवाय प्राणीकूं अन्य शरणा रक्षा करनेंवाला भी नाहीं है, अर लोकविषैं उत्तमभी येही हैं। बहुरि आराधना दर्शन ज्ञान चारित्र तप ये च्यार हैं ताकै नायक स्वामीभी येही हैं, कर्मनिकूं जीतनेंवालेभी येही हैं। तातैं ध्यानके कर्त्ताकूं इनिका ध्यान श्रेष्ठ है, शुद्धस्वरूपकी प्राप्ति इनिहीके ध्यानतैं होय है तातैं यह उपदेश है ॥ १२४ ॥

आगैं ध्यान है सो ज्ञानका एकाग्र होना है सो ज्ञानका अनुभवन का उपदेश करै हैं,—

णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण।
वाहिजरमरणवेयणडाहविमुक्का सिवा होंति ॥ १२५ ॥

ज्ञानमयविमलशीतलसलिलं प्राप्य भव्याः भावेन।
व्याधिजरामरणवेदनादाहविमुक्ताः शिवाः भवन्ति ॥

अर्थ—भव्यजीव हैं ते ज्ञानमयी निर्मल शीतल जल है ताहि सम्यक्त्वभावकरि सहित पीयकरि अर व्याधिस्वरूप जो जरा मरण ताकी वेदना पीड़ा ताहि भस्म करि मुक्त कहिये संसारतैं रहित शि[illegible] परमानंद सुखरूप होय हैं ॥

भावार्थ—जैसैं निर्मल अर शीतल ऐसे जलके पीये पित्तका दाहरूप व्याधि मिटै अर साता होय है तैसैं यह ज्ञान है सो जब रागादिकमलतैं रहित निर्मल होय अर आकुलतारहित शांतभावरूप होय ताकी भावनाकरि रुचि श्रद्धा प्रतीतिकरि पीवै यासूं तन्मय होय तौ जरा मरणरूप दाह वेदना मिटि जाय अर संसारतैं निवृत्त होय सुखरूप होय, तातैं भव्यजीवनिकूं यह उपदेश है जो ज्ञानमैं लीन होहू ॥ १२५ ॥

आगैं कहै हैं जो—या ध्यानरूप अग्निकरि संसारका बीज आठ कर्म एक बार दग्ध भये पीछैं फेरि ससार न होय है, सो यह बीज भावमुनिकै दग्ध होय है;—

जह बीयम्मि य दड्ढे ण वि रोहइ अंकुरो य महिवीढे ।
तह कम्मबीयदड्ढे भवंकुरो भवसवणाणं ॥ १२६ ॥

यथा बीजे च दग्धे नापि रोहति अंकुरश्च महीपीठे ।
तथा कर्मबीजदग्धे भवांकुरः भावश्रमणानाम् ॥ १२६ ॥

अर्थ—जैसैं पृथ्वीके स्थलविषैं बीज दग्ध होनैं संतैं तिसका अंकुर है सो फेरि नाही ऊगै है तैसैं जे भावलिंगी श्रमण हैं तिनिकै संसारका कर्मरूपी बीज दग्ध हो जाय है, यातैं संसाररूप अंकुरा फेरि नांही होय है ॥

भावार्थ—संसारका बीज ज्ञानावरणादिक कर्म है सो कर्म भावश्रमणकै ध्यानरूप अग्निकरि दग्ध हो जाय है तातैं फेरि संसाररूप अंकुरा काहेतैं होय ? तातैं भावश्रमण होय धर्म शुक्लध्यानतैं कर्मका नाश करनां योग्य है, यह उपदेश है। कोई सर्वथा एकाती अन्यथा कहै जो कर्म अनादि है ताका अंत भी नांही, ताका यह निषेध भी है, बीज अनादि है सो एक बार दग्ध भये पीछैं फेरि न ऊगै तैसैं जानना ॥ १२६ ॥

आगैं संक्षेपकरि उपदेश करै हैं,—

भावसवणो वि पावइ सुक्खाइं दुहाइं दव्वसवणो य।
इय णाउं गुणदोसे भावेण य संजुदो होइ ॥ १२७ ॥

भावश्रमणः अपि प्राप्नोति सुखानि दुःखानि द्रव्यश्रमणश्च।
इति ज्ञात्वा गुणदोषान् भावेन च संयुतः भव ॥ १२७॥

अर्थ—भावश्रमण तौ सुखनिकूं पावै है वहुरि द्रव्यश्रमण है सो दु.खनिकूं पावै है ऐसैं गुण दोपनिकू जाणि हे जीव तू भावकरि सयुक्त सयमी होहु ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शनसहित तौ भावश्रमण होय है सो ससारका अभावकरि सुखनिकूं पावै है, अर मिथ्यात्वसहित द्रव्यश्रमण भेपमात्र होय है सो संसारका अभाव न करि सकै है तातैं दु'खनिकूं पावै है यातैं उपदेश करै हैं जो दोऊका गुण दोप जाणि भावसयमी होना योग्य है, यह सर्व उपदेशका सक्षेप है ॥ १२७ ॥

आगैं फेरि भी याहीका उपदेश अर्थरूप सक्षेपकरि कहै है,—

तित्थयरगणहराइं अब्भुदयपरंपराइं सोक्खाइं।
पावंति भावसहिया संखेवि जिणेहिं वज्जरियं ॥१२८॥

तीर्थकरगणधरादीनि अभ्युदयपरंपराणि सौख्यानि।
प्राप्नुवंति भावश्रमणाः संक्षेपेण जिनैः भणितम् ॥१२८॥

अर्थ—जे भावसहित मुनि हैं ते अभ्युदयसहित तीर्थंकर गणधर आदि पदवीके सुख तिनिकूं पावैं हैं यह संक्षेपकरि कह्या है ॥

भावार्थ—तीर्थंकर गणधर चक्रवर्त्ती आदि पदवीके सुख बड़े अभ्युदयसहित हैं तिनहिं भावसहित सम्यग्दृष्टी मुनि हैं ते पावैं हैं, यहु सर्व उपदेशका संक्षेपकरि उपदेश कह्या है तातैं भावसहित मुनि होना योग्य है ॥ १२८ ॥

आगैं आचार्य कहै हैं जो-जे भावश्रमण हैं ते धन्य हैं तिनिकूं हमारा नमस्कार होहू,—

ते धण्णा ताण णमो दंसणवरणाणचरणसुद्धाणं ।
भावसहियाण णिच्चं तिविहेण पणट्ठमायाण ॥१२९॥

ते धन्याः तेभ्यः नमः दर्शनवरज्ञानचरणशुद्धेभ्यः ।
भावसहितेभ्यः नित्यं त्रिविधेन प्रणष्टमायेभ्यः ॥१२९॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो-जे मुनि सम्यग्दर्शन श्रेष्ठ विशिष्ट ज्ञान अर निर्दोष चारित्र इनिकरि शुद्ध हैं याहीतैं भावकरि सहित हैं, बहुरि प्रणष्ट भई है माया कहिये कपटपरिणाम जिनिकै ऐसे हैं ते धन्य हैं तिनिकै अर्थि हमारा मन वचन कायकरि सदा नमस्कार होहु ॥

भावार्थ—भावलिंगीनिमैं दर्शन ज्ञान चारित्रकरि जे शुद्ध है तिनिकी आचार्यनिकैं भक्ति उपजी है तातैं तिनिकूं धन्य कहिकरि नमस्कार किया है सो युक्त है, जिनिकै मोक्षमार्गविषैं अनुराग है जे तिनिमैं मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिमैं प्रधानता दीखै तिनिकूं नमस्कार करै ही करैं ॥ १२९ ॥

आगै कहै हैं-जे भावश्रमण हैं ते देवादिककी ऋद्धि देखि मोहकूं प्राप्त न होय है,—

इड्ढिमतुलं विउव्विय किण्णरकिंपुरिसअमरखयरेहिं ।
तेहिं वि ण जाइ मोहं जिणभावणभाविओ धीरो ॥१३०॥

ऋद्धिमतुलां विकुर्वद्भिः[1] किंनरकिंपुरुषामरखचरैः ।
तैरपि न याति मोहं जिनभावनाभावितः धीरः ॥१३०॥

अर्थ—जिनभावना जो सम्यक्त्वभावना ताकरि वासित जो जीव है सो किंनर किंपुरुष देव अर कल्पवासी देव अर विद्याधर इनिकरि विक्रि-

१—संस्कृत मुद्रित प्रतिमें 'विकृता' ऐसा पाठ है ।

यारूप विस्तारी जो अतुल ऋद्धि तिनिकरि मोहकूं प्राप्त न होय है जातैं कैसा है सम्यग्दृष्टी जीव—धीर है दृढबुद्धि है निःशंकित अंगका धारक है ॥

भावार्थ—जिसकै जिनसम्यक्त्व दृढ है तिसकै संसारकी ऋद्धि तृणवत् है परमार्थसुखहीकी भावना है विनाशीक ऋद्धिकी वांछा काहेकूं होय ? ॥ १३० ॥

आगैं इसहीका समर्थन है जो- ऐसी ऋद्धि ही न चाहै तौ अन्य सांसारिक सुखकी कहा कथा ?,—

किं पुण गच्छइ मोहं णरसुरसुक्खाण अप्पसाराणं ।
जाणंतो पस्संतो चिंतंतो मोक्ख मुणिधवलो ॥१३१॥

किं पुनः गच्छति मोहं नरसुरसुखानां अल्पसाराणाम् ।
जानन् पश्यन् चिंतयन् मोक्षं मुनिधवलः ॥ १३१ ॥

अर्थ—सम्यग्दृष्टी जीव पूर्वोक्त प्रकारकी ही ऋद्धिकूं न चाहै तौ मुनिधवल कहिये मुनिप्रधान है सो अन्य जे मनुष्य देवनिके सुख भोगादिक जिनिमैं अल्पसार-ऐसे जिनिविषैं कहा मोहकूं प्राप्त होय ? कैसा है मुनिधवल—मोक्षकूं जानता है तिसहीकी तरफ दृष्टि है तिसहीका चितवन करै है ।

भावार्थ—जे मुनिप्रधान हैं तिनकी भावना मोक्षके सुखनिमैं है ते बड़ी बड़ी देव विद्याधरनिकी फैलाई विक्रियाऋद्धि विषैंही लालसा न करै तौ किंचित्मात्र विनाशीक जे मनुष्य देवनिका भोगादिकका सुख तिनिविषैं वाछा कैसैं करै ? न करै ॥ १३१ ॥

आगैं उपदेश करै हैं जो—जेतैं जरा आदिक न आवैं ते तैं अपनां हित करौ;—

उत्थरइ जा ण जरओ रोयग्गी जा ण डहइ देहउडिं ।
इंदियबलं न वियलइ ताव तुमं कुणहि अप्पहियं ॥१३२॥

आक्रमते यावन्न जरा रोगाग्निर्यावन्न दहति देहकुटीम् ।
इन्द्रियबलं न विगलति तावत् त्वं कुरु आत्महितम् ॥१३२॥

अर्थ—हे मुने ! जेतैं तेरै जरा वृद्धपणा न आवै बहुरि रोगरूप अग्नि तेरी देहरूप कुटीकूं जेतैं दग्ध न करै बहुरि जेतैं इन्द्रियनिका बल न घटै तेतैं अपना हितकू करि ॥

भावार्थ—वृद्ध अवस्थामैं देह रोगनिकरि जर्जरी होय इंद्रिय क्षीण पड़ै तब असमर्थ भया इस लोकके कार्य उठनां बैठना भी न करि सकै तब परलोक संबधी तपश्चरणादिक तथा ज्ञानाभ्यास स्वरूपका अनुभवादिक कार्य कैसैं करै तातैं यह उपदेश है जो—जेतैं सामर्थ्य है तेतैं अपनां हितरूप कार्य करिल्यो ॥ १३२ ॥

आगैं अहिंसाधर्मका उपदेश वर्णन करै हैं;—

छज्जीव षडायदणं णिच्चं मणवयणकायजोएहिं ।
कुरु दय परिहर मुणिवर भावि अपुव्वं महासत्तं[1] ॥१३३॥

[2]षट्जीवान् षडायतनानां नित्यं मनोवचनकाययोगैः ।
कुरु दयां परिहर मुनिवर भावय अपूर्वं महासत्त्वम् ॥१३३॥

अर्थ—हे मुनिवर ! तू छहकायके जीवनिकी दयाकरि, बहुरि छह अनायतनकूं परिहरि छोडि, कैसैं छोडि—मन वचन कायके योगनिकरि छोडि; बहुरि अपूर्व जो पूर्वैं न भया ऐसा महासत्त्व कहिये सर्व जीवनिमैं व्यापक महासत्त्व चेतनाभाव ताहि भाय ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'महासत्त' ऐसा संबोधनपद किया है जिसकी संस्कृत 'महासत्त्व' है ।

२—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'षट्जीवषडायतनानां' एक पद किया है ।

भावार्थ—अनादिकालतैं जीवका स्वरूप चेतनास्वरूप न जाण्या तातैं जीवनिकी हिंसा करी तातै यह उपदेश है जो अब जीवात्माका स्वरूप जाणि छह कायके जीवनिकी दया करि। बहुरि अनादिहीतैं आप्त आगम पदार्थका अर इनका सेवनेंवालाका स्वरूप जाण्या नाही तातैं अनाप्त आदि छह अनायतन जे मोक्षमार्गके ठिकाणे नांही तिनिकूं भले जांणि सेवन किया तातैं यह उपदेश है जो अनायतनका परिहार करि जीवका स्वरूपका उपदेशक ये दोऊही तैं पूर्वैं जाणे नाही, भाया नाहीं तातैं अब भाय, ऐसा उपदेश है॥ १३३॥

आगैं कहै हैं जो—जीवका तथा उपदेश करनेंवालाका स्वरूप जाण्या विना सर्वजीवनिके प्राणनिका आहार किया ऐसैं दिखावै हैं;—

दसविहपाणाहारो अणंतभवसायरे भमंतेण॥
भोयसुहकारणट्ठं कदो य तिविहेण सयलजीवाणं॥१३४

दशविधप्राणाहारः अनंतभवसागरे भ्रमता।
भोगसुखकारणार्थं कृतश्च त्रिविधेन सकलजीवानां॥

अर्थ—हे मुने! तै अनतभवसागरमैं भ्रमता सकल त्रस थावर जीवनिके दशविध प्राणनिका आहार, भोग सुखकै कारणकै अर्थि मन वचनकायकरि किया॥

भावार्थ—अनादिकालतैं जिनमतका उपदेशविना अज्ञानी भया तैं त्रसथावर जीवनिके प्राणनिका आहार किया तातैं अब जीवनिका स्वरूप जांणि जीवनिकी दया पालि भोगाभिलाप छोडि, यह उपदेश है॥१३४॥

फेरि कहै हैं—ऐसैं प्राणीनिकी हिंसाकरि संसारमैं भ्रमिकरि दुःख पाया;—

पाणिवहेहि महाजस चउरासीलक्खजोणिमज्झम्मि।
उप्पजंत मरंतो पत्तोसि निरंतरं दुक्खं॥ १३५॥

प्राणिविधैः महायशः ! चतुरशीतिलक्षयोनिमध्ये ।
उत्पद्यमानः म्रियमाणः प्राप्तोऽसि निरंतरं दुःखम् ॥१३५॥

अर्थ—हे मुने ! हे महायश ! तैं प्राणीनिके घातकरि चौरासी लाख योनिकै मध्य उपजतैं अर मरतैं निरतर दु.ख पाया ॥

भावार्थ—जिनमतके उपदेश विना जीवनिकी हिंसा करि यह जीव चौरासी लाख योनिमैं उपजै है अर मरै है. हिंसातैं कर्मबंध होय है, कर्मबंधके उदयतैं उत्पत्तिमरणरूप संसार होय है, ऐसैं जन्म मरण का दु.ख सहै है तातैं जीवनिकी दयाका उपदेश है ॥

आगै तिस दयाहीका उपदेश करै है,—

जीवाणमभयदाणं देहि मुणी पाणिभूयसत्ताणं ।
कल्लाणसुहणिमित्तं परंपरा तिविहसुद्धीए ॥ १३६ ॥

जीवानामभयदानं देहि मुने प्राणिभूतसत्त्वानाम् ।
कल्याणसुखनिमित्तं परंपरया त्रिविधशुद्धया ॥ १३६ ॥

अर्थ—हे मुने ! जीवनिकू अर प्राणीभूत सत्त्व इनिकू अपनां परपरायकरि कल्याण अर सुख ताकै अर्थि मन वचन कायकी शुद्धता-करि अभयदान दे ॥

भावार्थ—जीव तौ पचेंद्रियनिकू कहे हैं अर प्राणी विकलत्रयकूं कहे हैं अर भूत वनस्पतीकूं कहे है अर सत्त्व पृथ्वी अप तेज वायु इनि-कूं कहे हैं। इनि सर्व जीवनिकूं आप समान जाणि अभयदान देनेंका उपदेश है, यातैं शुभ प्रकृतिनिका बंध होनेंतैं अभ्युदयका सुख होय है परपराकरि तीर्थंकरपद पाय मोक्ष पावै है, यह उपदेश है ॥ १३६ ॥

आगैं यह जीव षट् अनायतनके प्रसंगकरि मिथ्यात्वतैं संसार मैं भ्रमै है ताका स्वरूप कहै है, तहां प्रथमही मिथ्यात्वके भेदनिकं कहै हैं,—

असियसय किरियवाई अक्किरियाणं च होइ चुलसीदी।
सत्तट्ठी अण्णाणी वेणैया होंति बत्तीसा ॥ १३७ ॥

अशीतिशतं क्रियावादिनामक्रियाणां च भवति चतुरशीतिः।
सप्तषष्टिरज्ञानिनां वैनयिकानां भवति द्वात्रिंशत् ॥१३७॥

अर्थ—एकसौ अस्सी तौ क्रियावादी हैं चौरासी अक्रियावादीनिके भेद हैं अज्ञानी सडसठि भेदरूप हैं विनयवादी बत्तीस हैं ॥

भावार्थ-वस्तुका स्वरूप अनत धर्म स्वरूप सर्वज्ञ कह्या है सो प्रमाण नयकरि सत्यार्थ सधै है, तहां जिन्होंके मतमैं सर्वज्ञ नाही तथा सर्वज्ञका स्वरूप यथार्थ निश्चयकरि ताका श्रद्धान न किया ऐसे अन्य-वादी तिनिनैं वस्तुका एक धर्म ग्रहणकरि तिसका पक्षपात किया जो—हमनैं ऐसैं मान्या है सो ऐसैं ही है अन्य प्रकार नांही है। ऐसैं विधि निषेधकरि एक एक धर्मके पक्षपाती भये तिनिके ये संक्षेपकरि तीनसह तरेसठि भेद भये।

तहां केई तौ गमन करनां बैठनां खड़ा रहनां खानां पीनां सोवनां उप-जनां विनसना देखनां जानना करनां भोगना भूलनां यादि करना प्रीति करनां हर्ष करनां विषाद करनां द्वेष करनां जीवना मरनां इत्यादिक क्रिया हैं तिनिकूं जीवादिक पदार्थनिकै देखि कोई कैसी क्रियाका पक्ष किया है कोईनें कैसी क्रियाका पक्ष किया है ऐसैं परस्पर क्रियाविवादकरि भेद भये हैं तिनिके संक्षेपकरि एकसौ अस्सी भेद निरूपण किये हैं, विस्तार किये बहुत होय हैं। बहुरि केई अक्रियावादी हैं तिनिनैं जीवादिक पदा-र्थनिविषैं क्रियाका अभाव मांनि परस्पर विवाद करैं हैं, केई कहैं हैं जीव जानैं नांही है, केई कहैं हैं कछू करै नांही हैं, केई कहैं हैं भोगवै नांही है, केई कहै हैं उपजै नांही है, केई कहै हैं विनसै नांही है, केई कहै हैं गमन नांही करै है, केई कहै हैं तिष्ठै नांही है इत्यादिक क्रियाके अभा-

वका पक्षपातकरि सर्वथा एकान्ती होय हैं तिनिके संक्षेपकरि चौरासी भेद किये हैं बहुरि केई अज्ञानवादी हैं, तिनिमैं केई तौ सर्वज्ञका अभाव मानैं हैं, केई कहैं हैं जीव अस्ति है यह कौन जानैं केई कहै हैं जीव नास्ति हैं यह कौन जानैं, केई कहैं हैं जीव नित्य है यह कौन जानैं, केई कहै हैं जीव अनित्य है यह कौन जानैं; इत्यादिक सशय विपर्यय अनध्यवसायरूप भये विवाद करैं हैं, तिनिके संक्षेपकरि सडसठि भेद कहे हैं। बहुरि केई विनयवादी हैं, ते केई कहै हैं देवादिकका विनयतैं सिद्धि है, केई कहै हैं गुरुके विनयतैं सिद्धि है, केई कहै हैं माताके विनयतैं सिद्धि है, केई कहैं हैं पिताके विनयतैं सिद्धि है केई कहै हैं राजाके विनयतैं सिद्धि है, केई कहैं हैं सर्वके विनयतैं सिद्धि है इत्यादिक विवाद करैं है तिनिके संक्षेपकरि वत्तीस भेद किये हैं। ऐसैं सर्वथा एकांतीनिके तीनसह तरेसठि भेद सक्षेपकरि किये हैं, विस्तार किये वहुत होय हैं इनिमैं केई ईश्वरवादी हैं केई कालवादी हैं, केई स्वभाववादी हैं, केई विनयवादी हैं, केई आत्मावादी हैं तिनिका स्वरूप गोमट्टसारादि ग्रंथनितैं जाननां, ऐसै मिथ्यात्वके भेद हैं ॥ १३७ ॥

आगैं कहै हैं—अभव्यजीव है सो अपनी प्रकृतिकूं छोड़ै नांही ताका मिथ्यात्व मिटै नांही है;—

ण मुयइ पयडि अभव्वो सुट्ठु वि आयण्णिऊण जिणधम्मं ।
गुडदुद्धं पि पिबंता ण पण्णया णिव्विसा होंति ॥१३८॥

न मुंचति प्रकृतिमभव्यः सुष्ठु अपि आकर्ण्य जिनधर्मम्
गुडदुग्धमपि पिबंतः न पन्नगाः निर्विषाः भवंति ॥१३८॥

अर्थ—अभव्यजीव है सो भलै प्रकार जिनधर्म है ताहि सुणिकरि भी अपनी प्रकृति स्वभाव है ताहि न छोडै है, इहां दृष्टांत जे सर्प हैं ते गुडसहित दुग्धकूं पीवते संते भी विषरहित नांही होय हैं॥

भावार्थ—जो कारण पाय भी न छूटै ताकूं प्रकृति स्वभाव कहिये है, जो अभव्यका स्वभाव यह है जो अनेकांत है तत्वस्वरूप जामैं ऐसा वीतरागविज्ञानस्वरूप जिनधर्म मिथ्यात्व का मैंटने वाला है ताका भलैंप्रकार स्वरूप सुणिकरिभी जाका मिथ्यात्वस्वरूप भाव बदलै नांही है सो यह वस्तुका स्वरूप है काहूका किया नांही। इहां उपदेश अपेक्षा ऐसैं जाननां जो अभव्यरूप प्रकृति तौ सर्वज्ञगम्य है तथापि अभव्यकी प्रकृति सारिखी प्रकृति न राखणी, मिथ्यात्व छोडनां यह उपदेश है ॥ १३८ ॥

आगै याही अर्थकूं दृढ करै हैं,—

मिच्छत्तछण्णदिट्ठी दुद्धीए दुम्मएहिं दोसेहिं।
धम्मं जिणपण्णत्तं अभव्वजीवो ण रोचेदि ॥ १३९ ॥

मिथ्यात्वछन्नदृष्टिः दुर्धिया दुर्मतैः दोषैः।
धर्मं जिनप्रज्ञप्तं अभव्यजीवः न रोचयति ॥ १३९ ॥

अर्थ—अभव्यजीव है सो जिनप्रणीत धर्म है ताहि न रोचै है न श्रद्धै है रुचि न करै है, जातैं कैसा है अभव्यजीव दुर्मत जे सर्वथा एकान्ती तिनिके प्ररूपे अन्यमत तेही भये दोष तिनिकरि अपनी दुर्बुद्धिकरि मिथ्यात्वतैं आच्छादित है बुद्धि जाकी ॥

भावार्थ—मिथ्यात्वके उपदेशकरि अपनी दुर्बुद्धिकरि जाकै मिथ्या दृष्टि है ताकूं जिनधर्म न रुचै है तब जाणिये यह अभव्यजीवके भाव हैं यथार्थ अभव्यजीवकूं तौ सर्वज्ञ जाणैं है अर ये अभव्यके चिन्ह है तिनितैं परीक्षाकरि जानिये हैं ॥ १३९ ॥

आगैं कहै हैं जो ऐसे मिथ्यात्वके निमित्ततैं दुर्गतिका पात्र होय है—

कुच्छियधम्मम्मि रओ कुच्छियपासंडि भत्तिसंजुत्तो।
कुच्छियतवं कुणंतो कुच्छियगइभायणो होइ॥ १४० ॥

कुत्सितधर्मे रतः कुत्सितपाषंडिभक्तिसंयुक्तः।
कुत्सिततपः कुर्वन् कुत्सितगतिभाजनं भवति ॥ १४० ॥

भावार्थ—आचार्य कहै हैं जो—कुत्सित निंद्य मिथ्याधर्ममें रत है लीन है, अर जो पाषंडी निंद्यभेषी तिनिकी भक्तिसंयुक्त हैं बहुरि जो निंद्य मिथ्याधर्म सेवै मिथ्यादृष्टीनिकी भक्ति करै मिथ्या अज्ञानतप करै सो दुर्गतिहि पावै तातैं मिथ्यात्व छोडनां यह उपदेश है ॥ १४० ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करते संते ऐसें कहै हैं, जो ऐसें मिथ्यात्व करि मोह्या जीव संसारमैं भ्रम्या;—

इय मिच्छत्तावासे कुणयकुसत्थेहिं मोहिओ जीवो।
भमिओ अणाइकालं संसारे धीर चिंतेहि ॥ १४१ ॥

इति मिथ्यात्वावासे कुनयकुशास्त्रैः मोहितः जीवः।
भ्रमितः अनादिकालं संसारे धीर! चिन्तय ॥ १४१ ॥

अर्थ—इति कहिये पूर्वोक्त प्रकार मिथ्यात्वका आवास ठिकाणां जो यह मिथ्यादृष्टीनिका संसार ताविषैं कुनय जो सर्वथा एकान्त तिनिसहित जे कुशास्त्र तिनिकरि मोह्या बेचेत भया जो यह जीव सो अनादिकालतैं लगाय संसारविषैं भ्रम्या, ऐसैं हे धीर! मुने! तू विचारि ॥

भावार्थ—आचार्य कहै हैं जो पूर्वोक्त तीनसौ तरेसठि कुवादिनिकरि सर्वथा एकांतपक्षरूप कुनयकरि रचे शास्त्र तिनिकरि मोहित भया यह जीव संसारविषैं अनादितैं भ्रमै है, सो हे धीरमुनि! अब ऐसे कुवादिनिकी संगति भी मति करै यह उपदेश है ॥ १४१ ॥

आगैं कहै हैं जो पूर्वोक्त तीनसौ तरेसठि पाषडीनिका मार्ग छोडि जिनमार्गविषैं मन लगावो;—

पासंडी तिण्णि सया तिसट्ठिभेया उमग्ग मुत्तूण।
रुंभहि मणु जिणमग्गे असप्पलावेण किं बहुणा ॥ १४२

पाषण्डिनः त्रीणि शतानि त्रिषष्टिभेदाः उन्मार्गं मुक्त्वा ।
रुन्द्धि मनः जिनमार्गे असत्प्रलापेन किं बहुना ॥ १४२ ॥

अर्थ—हे जीव ! तीनसौ तरेसठि पाषडी कहे तिनिका मार्गकूं छोडि अर जिनमार्गविषैं अपनें मनकू थामि यह संक्षेप है, और निरर्थक प्रलापरूप कहनेंकरि कहा ? ॥

भावार्थ—ऐसें मिथ्यात्वका निरूपण किया तहां आचार्य कहै हैं जो-बहुत निरर्थक वचनालापकरि कहा ? एता ही संक्षेप करि कहै हैं-जो तीनसौ तरेसठि कुवादि पाषडी कहे तिनिका मार्ग छोड़िकरि जिनमार्गविषैं मनकूं थांभनां, अन्यत्र जानें न देना । इहां इतना विशेष और जाननां जो-कालदोषतैं इस पंचमकालमैं अनेक पक्षपातकरि मतांतर भये हैं तिनिकूं भी मिथ्या जाणि तिनिका प्रसग न करनां, सर्वथा एकान्तका पक्षपात छोड़ि अनेकान्तरूप जिनवचनका शरण लेणां ॥ १४२ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनका निरूपण करै हैं, तहां कहै हैं—जो सम्यग्दर्शन रहित प्राणी है सो चालता मृतक है,—

जीवविमुक्को सवओ दंसणमुक्को य होइ चलसवओ ।
सवओ लोयअपुज्जो लोउत्तरयम्मि चलसवओ ॥१४३॥

जीवविमुक्तः शवः दर्शनमुक्तश्च भवति चलशवः ।
शवः लोके अपूज्यः लोकोत्तरे चलशवः ॥ १४३ ॥

अर्थ—लोकविषैं जीवकरि रहित होय ताकूं शव कहिये, मृतक मुरदा कहिये है तैसैंही जो सम्यग्दर्शनकरि रहित पुरुष है सो चालता मृतक है, बहुरि मृतक तौ लोकविषैं अपूज्य है अग्निकरि दग्ध कीजिये है तथा पृथ्वीमैं गाडिये है अर दर्शनरहित चालता मुरदा है सो लोकोत्तर जे मुनि सम्यग्दृष्टी तिनिकै विषैं अपूज्य है ते ताकू वदनादिक नांही करैं हैं, मुनिभेष धरैं तौऊ संघबाह्य राखैं हैं अथवा परलोकमैं निद्यगति पाय अपूज्य होय हैं ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन विना पुरुष मृतकतुल्य है ॥ १४३ ॥

आगे सम्यक्त्वका महानपणां कहै हैं,—

जह तारयाण चंदो मयराओ मयउलाण सव्वाणं ।
अहिओ तह सम्मत्तो रिसिसावयदुविहधम्माणं ॥१४४॥

यथा तारकाणां चन्द्रः मृगराजः मृगकुलानां सर्वेषाम् ।
अधिकः तथा सम्यक्त्वं ऋषिश्रावकद्विविधधर्माणाम् ॥१४४॥

अर्थ—जैसें तारानिके समूहविषैं चद्रमा अधिक है बहुरि मृगकुल कहिये पशूनिके समूहविषैं मृगराज कहिये सिंह सो अधिक है तैसें ऋषि कहिये मुनि अर श्रावक तैसें दोय प्रकार धर्मनिविषैं सम्यक्त्व है सो अधिक है ॥

भावार्थ—व्यवहारधर्मकी जेती प्रवृत्ति हैं तिनिमैं सम्यक्त्व अधिक है या विना सर्व संसारमार्ग बंधका कारण है ॥ १४४ ॥

फेरि कहै हैं;—

जह फणिराओ सोहइ[1] फणमणिमाणिक्ककिरणविप्फुरिओ ।
तह विमलदंसणधरो जिण[2]भत्तीपवयणे जीवो ॥ १४५ ॥

यथा फणिराजः शोभते फणमणिमाणिक्यकिरणविस्फुरितः ।
तथा विमलदर्शनधरः जिनभक्तिः प्रवचने जीवः ॥ १४५ ॥

अर्थ—जैसें फणिराज कहिये धरणेंद्र है सो फण जो सहस्र फण तिनिमैं जे मणि तिनके मध्य जे रक्त माणिक्य ताकी किरणनिकरि

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'रेहइ' ऐसा पाठ है जिसका 'राजते' संस्कृत है ।

२—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'जिणभत्तीपवयणो' ऐसा एकपदरूप पद है जिसकी संस्कृत "जिनभक्तिप्रवचन" है । यह पाठ यतिभंग सा मालूम होता है ।

विस्फुरित कहिये दैदीप्यमान सोहै है तैसैं निर्मल सम्यग्दर्शनका धारक जीव है सो जिनभक्तिसहित है यातैं प्रवचन जो मोक्षमार्गका प्ररूपण ताविषैं सोहै है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वसहित जीवकी जिन प्रवचनविषैं बड़ी अधिकता है जहां तहा शास्त्रविषैं सम्यक्त्वकी ही प्रधानता कही है ॥ १४५ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनसहित लिग है ताकी महिमा कहै हैं;—

जह तारायणसहियं ससहरबिंबं खमंडले विमले ।
भाविय तवँवयविमलं जिणलिंगं दंसणविसुद्धं ॥१४६॥

यथा तारागणसहितं शशधरबिंबं खमंडले विमले ।
भावितं तपोव्रतविमलं जिनलिंगं दर्शनविशुद्धम् ॥१४६॥

अर्थ–जैसैं निर्मल आकाशमंडलविषैं तारानिके समूह सहित चद्रमाका बिंब सोहै है तैसैंही जिनशासनविषैं दर्शनकरि विशुद्ध अर भावित किये जे तप अर व्रत तिनिकरि निर्मल जिनलिंग है सो सोहै है ॥

भावार्थ—जिनलिग कहिये निर्ग्रन्थ मुनिभेष है सो यद्यपि तपव्रतनिकरि सहित निर्मल है तौऊ सम्यग्दर्शन विना सोहै नहीं, या सहित होय तब अत्यत शोभायमान होय है ॥ १४६ ॥

आगैं कहै हैं जो ऐसैं जाणिकरि दर्शनरत्नकूं धारो, ऐसैं उपदेश करै हैं,—

इय णाउं गुणदोसं दंसणरयणं धरेह भावेण ।
सारं गुणरयणाणं सोवाणं पढम मोक्खस्स ॥१४७॥

१—मुद्रित सस्कृत प्रतिमें 'तह वयविमल' ऐसा पाठ है जिसकी सस्कृत 'तथा व्रतविमल' है । २ इस गाथाका चतुर्थ पाद यतिभग है । इसकी जगह पर 'जिणलिंगं दंसणेण सुविसुद्ध' होना ठीक जँचता है ।

इति ज्ञात्वा गुणदोषं दर्शनरत्नं धरतभावेन ।
सारं गुणरत्नानां सोपानं प्रथमं मोक्षस्य ॥१४७॥

अर्थ–हे मुने ! तू इति कहिये पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वके तौ गुण अर मिथ्यात्वके दोष तिनहिं जाणिकरि सम्यक्त्वरूप रत्न है ताहि भावकरि धारि, कैसा है सम्यक्त्वरत्न–गुणरूप जे रत्न हैं तिनिमैं सार है उत्तम है, बहुरि कैसा है—मोक्षरूप मंदिरका प्रथम सोपान है चढ़नेकी पहली पैडी है ॥

भावार्थ—जेते व्यवहार मोक्षमार्गके अंग हैं गृहस्थकै तौ दानपूजादिक अर मुनिकै महाव्रत शीलसंयमादिक, तिनिमैं सर्वमैं सार सम्यग्दर्शन है यातैं सर्व सफल है, तातैं मिथ्यात्वकूं छोड़ि सम्यग्दर्शन अंगीकार करना यह प्रधान उपदेश है ॥ १४७ ॥

आगैं कहै है जो सम्यग्दर्शन होय है सो जीव पदार्थका स्वरूप जांनि याकी भावना करै ताका श्रद्धानकरि अर आपकूं जीव पदार्थ जानि अनुभवकरि प्रतीति करै ताकै होय है सो यह जीव पदार्थ कैसा है ताका स्वरूप कहै हैं;—

कत्ता भोइ अमुत्तो मरीरमित्तो अणाइनिहणो य ।
दंसणणाणुवओगो णिद्दिट्ठो जिणवरिंदेहिं ॥ १४८ ॥

कर्त्ता भोक्ता अमूर्त्तः शरीरमात्रः अनादिनिधनः च ।
दर्शनज्ञानोपयोगः जीवः निर्दिष्टः जिनवरेन्द्रैः ॥१४८॥

अर्थ—जीवनामा पदार्थ है सो कैसा है—कर्त्ता है, भोगी है अमूर्त्तीक है, शरीर प्रमाण है, अनादिनिधन है, दर्शन ज्ञान है उपयोग जाकै ऐसा है सो जिनवरेन्द्र जो सर्वज्ञदेव वीतराग तिसनैं कह्या है ॥

भावार्थ—इहां जीवनामा पदार्थके छह विशेषण कहै तिनिका आशय ऐसा जो—कर्त्ता कह्या सो निश्चयनयकरि तौ अपनां अशुद्ध रागा-

दिक भाव तिनिका अज्ञान अवस्थामैं आप कर्त्ता है अर व्यवहारनयकरि पुद्गल कर्म जे ज्ञानावरण आदि तिनिका कर्त्ता है अर शुद्धनयकरि अपनें शुद्धभावका कर्त्ता है। बहुरि भोगी कह्या सो निश्चयनयकरि तौ अपनां ज्ञानदर्शन मयी चेतनांभावका भोक्ता है, अर व्यवहारनयकरि पुद्गलकर्मका फल जो सुख दु:ख आदिक ताका भोक्ता है। बहुरि अमूर्त्तीक कह्या सो निश्चयकरि तौ स्पर्श रस गंधवर्ण शब्द ये पुद्गलके गुण पर्याय है तिनिकरि रहित अमूर्त्तीक है अर व्यवहारकरि जेतैं पुद्गल-कर्मतैं बध्या है तेतैं मूर्त्तीक भी कहिये है। बहुरि शरीर परिमाण कह्या सो निश्चयनयकरि तौ असंख्यातप्रदेशी लोकपरिमाण है परन्तु संकोच विस्तारशक्तिकरि शरीरतैं कछू घाटि प्रदेश प्रमाण आकार रहै है। बहुरि अनादिनिधन कह्या सो पर्यायदृष्टिकरि देखिये तब तौ उपजै विनसै है तौऊ द्रव्यदृष्टिकरि देखिये तब अनादिनिधन सदा नित्य अविनाशी है। बहुरि दर्शन ज्ञान उपयोगसहित कह्या सो देखनां जानना-रूप उपयोगस्वरूप चेतनारूप है। बहुरि इनि विशेषणनिकरि अन्यमती अन्यप्रकार सर्वथा एकान्तकरि मानैं है तिनिका निषेध भी जाननां, सो कैसैं? कर्त्ताविशेषणकरि तौ सांख्यमती सर्वथा अकर्त्ता मानै है ताका निषेध है। बहुरि भोक्ता विशेषणकरि बौद्धमती क्षणिक मानि कहै हैं कर्मकूं करै और, अर भोगवै और है, ताका निषेध है, जो जीव कर्म करै है ताका फल सो ही जीव भोगवै है ऐसैं बौद्धमतीके कहनेंका निषेध है। बहुरि अमूर्त्तीक कहनेंतैं मीमांसक आदिक इस शरीरसहित मूर्त्तीक ही मानै है ताका निषेध है। बहुरि शरीरप्रमाण कहनेंतैं नैयायिक वैशेषिक वेदान्ती आदि सर्वथा सर्वव्यापक मानै हैं ताका निषेध है। बहुरि अनादिनिधन कहनेंतैं बौद्धमती सर्वथा क्षणस्थायी मानै है ताका निषेध है। बहुरि दर्शनज्ञानउपयोगमयी कहनेंतैं सांख्यमती तो ज्ञानरहित चेतनामात्र मानै है, अर नैयायिक वैशेषिक गुणगुणीकै सर्वथा भेद मानि ज्ञान अर जीवकै सर्वथा भेद मानैं है, अर बौद्धमतका विशेष विज्ञाना-द्वैतवादी ज्ञानमात्रही मानै है, अर वेदान्ती ज्ञानका कछू निरूपण न करै

है, तिनिका निषेध है। ऐसैं सर्वज्ञका कह्या जीवका स्वरूप जांणि आपकूं ऐसा मानि श्रद्धा रुचि प्रतीति करणीं। बहुरि जीव कहनेहीमैं अजीव पदार्थ जान्या जाय है, अजीव न होय तौ जीव नाम कैसैं कहता तातैं अजीवका स्वरूप कह्या है तैसा ताका श्रद्धान आगम अनुसार करनां। ऐसैं अजीव पदार्थका स्वरूप जाणि अर इनि दोऊनिके संयोगतैं अन्य आस्रव बन्ध संवर निर्जरा मोक्ष इनि भावनिकी प्रवृत्ति होय है, तिनिका आगमअनुसार स्वरूप जाणि श्रद्धान किये सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होय है, ऐसैं जानना ॥ १४८ ॥

आगै कहै हैं जो-यह जीव ज्ञान दर्शन उपयोगमयी है तोऊ अनादि पुद्गल कर्म संयोगतैं याकै ज्ञान दर्शनकी पूर्णता न होय है तातैं अल्प ज्ञानदर्शन अनुभवमैं आवै है, अर तिनिमै भी अज्ञानके निमित्ततैं इष्ट अनिष्ट बुद्धिरूप राग द्वेष मोहभावकरि ज्ञान दर्शनमैं कलुषतारूप सुख दुःखादिक भाव अनुभवन मैं आवै है, यह जीव निजभावनारूप सम्यग्दर्शनकू प्राप्त होय है तब ज्ञानदर्शन सुख वीर्यके घातक कर्मनिका नाश करै है, ऐसा दिखावै है,—

दंसणणाणावरणं मोहणियं अंतराइयं कम्मं ।
णिट्ठवइ भवियजीवो सम्मं जिणभावणाजुत्तोः ॥१४९॥

दर्शनज्ञानावरणं मोहनीयं अन्तरायकं कर्म ।
निष्ठापयति भव्यजीवः सम्यक् जिनभावनायुक्तः ॥१४९॥

अर्थ—सम्यक् प्रकार जिनभावनाकरि युक्त भव्य जीव है सो ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय अंतराय ये च्यार घातिकर्म हैं तिनिकूं निष्ठापन करै है संपूर्ण अभाव करै है।

भावार्थ—दर्शनका घातक तौ दर्शनावरण कर्म है, ज्ञानका घातक ज्ञानावरण कर्म है, सुखका घातक मोहनीय कर्म है, वीर्यका घातक अंतरायकर्म है, तिनिका नाशकूं सम्यक् प्रकार जिनभावना कहिये जिन

आज्ञा मांनि जीव अजीव आदि तत्त्वका यथार्थ निश्चयकरि श्रद्धावान भया होय सो जीव करै है, तातैं जिन आज्ञा मानि यथार्थ श्रद्धान करना यह उपदेश है ॥ १४८ ॥

आगैं कहै हैं इनि घाति कर्मनिका नाश भये अनंतचतुष्टय प्रकट होय हैं;—

बलसोक्खणाणदंसण चत्तारि वि पायडा गुणा होंति ।
णट्ठे घाइचउक्के लोयालोयं पयासेदि ॥ १५० ॥

बलसौख्यज्ञानदर्शनानि चत्वारोऽपि प्रकटा गुणा भवंति ।
नष्टे घातिचतुष्के लोकालोकं प्रकाशयति ॥ १५० ॥

अर्थ—पूर्वोक्त घातिकर्मका चतुष्क ताका नाश भये बल सुख ज्ञान दर्शन ये च्यार गुण प्रगट होय हैं, बहुरि जीवके ये गुण प्रकट होय तब लोकालोककूं प्रकाशै है ॥

भावार्थ—घातिकर्मका नाश भये अनंतदर्शन अनंतज्ञान अनंतसुख अनंतवीर्य ये अनंतचतुष्टय प्रकट होय है । तहां अनंत दर्शनज्ञानतैं तौ षट्द्रव्यकरि भर्‍या जो यह लोक तामैं जीव अनतानत अर पुद्गल तिनितैंभी अनंतानंत गुणें अर धर्म अधर्म आकाश ये तीन द्रव्य अर असंख्याते लोकाणू इनि सर्व द्रव्यनिके अतीत अनागत वर्त्तमान काल सबधी अनतपर्याय न्यारे न्यारेकूं एकैं काल देखै है अर जानै है, अर अनतसुखकरि अत्यंततृप्तिरूप है, अर अनन्तशक्तिकरि अब काहू निमित्तकरि अवस्था पलटै नाही है । ऐसैं अनतचतुष्टयरूप जीवका निजस्वभाव प्रगट होय है तातैं जीवके स्वरूपका ऐसा परमार्थकरि श्रद्धान करना सो ही सम्यग्दर्शन है ॥ १५० ॥

आगैं जाकै अनतचतुष्टय प्रगट होय ताकूं परमात्मा कहिये है ताके अनेक नाम हैं तिनिमैं केतेक प्रगटकरि कहियें है;—

णाणी सिव परमेट्ठी सव्वण्हू विण्हु चउमुहो बुद्धो।
अप्पो वि य परमप्पो कम्मविमुक्को य होइ फुडं॥१५१॥
ज्ञानी शिवः परमेष्ठी सर्वज्ञः विष्णुः चतुर्मुखः बुद्धः।
आत्मा अपि च परमात्मा कर्मविमुक्तः च भवति स्फुटम्॥

अर्थ—परमात्मा है सो ऐसा है-ज्ञानी है, शिव है, परमेष्ठी है, सर्वज्ञ है, विष्णु है, चतुर्मुख ब्रह्मा है, बुद्ध है, आत्मा है, परमात्मा है, कर्मकरि विमुक्त कहिये रहित है, यह प्रगट जाणों॥

भावार्थ—ज्ञानी कहनेंतें तो साख्यमती ज्ञानरहित उदासीन चैतन्यरहित मानै है ताका निषेध है बहुरि शिव है सर्वकल्याणपरिपूर्ण है जैसें साख्यमती नैयायिक वैशेषिक मानै है तैसा नांही है, बहुरि परमेष्ठी है परम उत्कृष्ट पदविषै तिष्ठै है अथवा उत्कृष्ट इष्टत्व स्वभाव है जैसें अन्य मती केई अपनां इष्ट किछू थापि ताकूं परमेष्ठी कहैं हैं तैसें नाही है, बहुरि सर्वज्ञ है सर्व लोकालोककूं जाणैं है अन्य केई कोई एक प्रकरण सवधा सर्व वात जाणै ताकूं भी सर्वज्ञ कहै है तैसा नांही है, बहुरि विष्णु है जाकै ज्ञान सर्व ज्ञेयमैं व्यापक है-अन्यमती वेदान्ती आदि कहै हैं जो सर्व पदार्थनिमैं आप है सो ऐसैं नाही है, बहुरि चतुर्मुख कहनेंतें केवली अरहतके समवसरणमैं च्यार मुख च्यारू दिशामैं दीखै है ऐसा अतिशय है तातैं चतुर्मुख कहिये है-अन्यमती ब्रह्माकूं चतुर्मुख कहैं हैं सो ऐसा ब्रह्मा कोई है नाहीं, बहुरि बुद्ध है सर्वका ज्ञाता है बौद्धमती क्षणिककूं बुद्ध कहैं हैं तैसा नाही है बहुरि आत्मा है अपनें स्वभावही विषै निरन्तर प्रवर्तै है,-अन्यमती वेदान्ती सर्व विषै प्रवर्तता आत्माकूं मानै हैं तैसा नाही है, बहुरि परमात्मा है आत्माका पूर्णरूप अनंतचतुष्टय जाकैं प्रगट भया है तातैं परमात्मा है बहुरि कर्म जे आत्माके स्वभावके घातक घातिकर्म तिनितैं रहित भया है तातैं कर्मविमुक्त है अथवा कछू करनेयोग्य कार्य न रह्या तातैं भी कर्मविप्रमुक्त है साख्यमती नैयायिक सदाही कर्मरहित मानैं हैं तैसैं नांही हैं ऐसैं परमात्माके सार्थक

नाम हैं अन्यमती अपने इष्टके नाम एकही कहै हैं तिनिका सर्वथा एकान्तका अभिप्रायकरि अर्थ विगडै है सो यथार्थ नाही। अरहतके ये नाम नयविवक्षातै सत्यार्थ है, ऐसै जानना ॥ १५१ ॥

आगैं आचार्य कहै है जो-ऐसा देव है सो मोकूं उत्तम बोधि द्यो—

इय घाइकम्ममुक्को अट्ठारहदोसवज्जियो सयलो।
तिहुवणभवणपदीवो देऊ मम उत्तमं बोहिं ॥१५२॥

इति घातिकर्ममुक्तः अष्टादशदोषवर्जितः सकलः।
त्रिभुवनभवनप्रदीपः ददातु मह्यं उत्तमां बोधिम् ॥१५२॥

अर्थ—इति कहिये ऐसै घाति कर्मनिकरि रहित क्षुधा तृषा आदि पूर्वोक्त अठारह दोषनिकरि वर्जित सकल कहिये शरीरसहित अर तीन भुवनरूपी भवनके प्रकाशनेकू प्रकृष्टदीपक तुल्य देव है सो मोकूं उत्तम बोधि कहिये सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रकी प्राप्ति द्यो, ऐसैं आचार्यने प्रार्थना करी है ॥

भावार्थ—इहां और तौ पूर्वोक्त प्रकार जानना, अर सकल विशेषण है ताका यह आशय है जो मोक्षमार्गकी प्रवृत्तिके उपदेश वचनके प्रवर्तें विना न होय अर वचनकी प्रवृत्ति शरीर विना न होय तातैं अरहतका आयुकर्मका उदयतै शरीरसहित अवस्थान रहै है, अर सुस्वर आदि नामकर्मके उदयतै वचनकी प्रवृत्ति होय है, ऐसैं अनेक जीवनिका कल्याण करनेवाला उपदेश प्रवर्तें है। अन्यमतीनिकै ऐसा अवस्थान परमात्माकै सभवै नांही तातै उपदेशकी प्रवृत्ति न बणै तब मोक्षमार्गका उपदेश भी न प्रवर्त्तै ऐसैं जानना ॥ १५२ ॥

आगै कहै हैं—जे ऐसे अरहत जिनेश्वरके चरणनिकू नमैं हैं ते ससारकी जन्मरूप वेलिकूं काटै हैं,—

जिणवरचरणंबुरुहं णमंति जे परमभत्तिराएण ।
ते जम्मवेल्लिमूलं खणंति वरभावसत्थेण ॥ १५३ ॥

जिनवरचरणाम्बुरुहं नमन्ति ये परमभक्तिरागेण ।
ते जन्मवल्लीमूलं खनन्ति वरभावशस्त्रेण ॥ १५३ ॥

अर्थ—जे पुरुष परमभक्ति अनुरागकरि जिनवरके चरणकमलनिकूं नमैं हैं ते श्रेष्ठभावरूप शस्त्रकरि जन्म कहिये संसार सोई भई बेलि ताका मूल जो मिथ्यात्व आदि कर्म ताहि नष्ट करैं हैं खोदि डारैं हैं ॥

भावार्थ—अपनी श्रद्धा रुचि प्रतीति तातैं जिनेश्वर देवकूं नमैं है ताका सत्यार्थस्वरूप सर्वज्ञ वीतरागपणाकूं जाणि भक्तिके अनुरागकरि नमस्कार करैं हैं तब जानिये सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति ताका ये चिह्न है तातैं जानिये याकै मिथ्यात्वका नाश भया, अब आगामी संसारकी वृद्धि याकै न होयगी—ऐसा जनाया है ॥ १५३ ॥

आगैं कहै हैं जो—जिनसम्यक्त्वकूं प्राप्त भया पुरुष है सो आगामी कर्मकरि न लिपै है;—

जह सलिलेण ण लिप्पइ कमलिणिपत्तं सहावपयडीए ।
तह भावेण ण लिप्पइ कसायविसएहिं सप्पुरिसो ॥ १५४ ॥

यथा सलिलेन न लिप्यते कमलिनीपत्रं स्वभावप्रकृत्या ।
तथा भावेन न लिप्यते कषायविषयैः सत्पुरुषः ॥ १५४ ॥

अर्थ—जैसें कमलिनीका पत्र है सो अपनें प्रकृतिस्वभावकरि जलकरि नाहीं लिपै है, तैसें सम्यग्दृष्टी सत्पुरुष है सो अपने भावकरि क्रोधादिक कषाय अर इंद्रियके विषय इनिकरि नाहीं लिपै है ॥

भावार्थ—सम्यग्दृष्टी पुरुषके मिथ्यात्व अर अनंतानुबंधीकषायका तौ सर्वथा अभावही है अन्य कषायका यथासंभव अभाव है, तहां मि-

थ्यात्व अनंतानुबंधीके अभावतैं ऐसा भाव होय है। जो परद्रव्यमात्रका तौ कर्त्तापणांकी बुद्धि नाही है अर अब शेष कषायके उदयतैं कछू राग द्वेष प्रवर्तै है तिनिकूं कर्मके उदयके निमित्ततैं भये जानै है तातैं तिनि-विषैं भी कर्त्तापणांकी बुद्धि नांही है तथापि तिनि भावनिकं रोगवत् भये जांणि भले न जाणै है, ऐसे भावकरि कषाय विषयनितैं प्रीति बुद्धि नांही तातैं तिनितैं न लिपै है; जलकमलवत् निर्लेप रहै है। यातैं आगामी कर्म-का बध न होय है संसारकी वृद्धि नांही होय है, ऐसा आशय जाननां ॥ १५४ ॥

आगैं आचार्य कहै हैं जो--जे पूर्वोक्त भावकरि सहित सम्यग्दृष्टी सत्पुरुष हैं ते ही सकल शील सयमादि गुणनिकरि संयुक्त हैं, अन्य नाही,—

ते वि य भणामिहं जे सयलकलासीलसंजमगुणेहिं।
बहुदोसाणावासो सुमलिणचित्तो ण सावयसमो सो॥

तान् अपि च भणामि ये सकलकलाशीलसंयमगुणैः।
बहुदोषाणामावासः सुमलिनचित्तः न श्रावकसमः सः॥

अर्थ—पूर्वोक्त भावकरि सहित सम्यग्दृष्टी पुरुष हैं अर शील संयम गुणनिकरि सकल कला कहिये संपूर्ण कलावान होय हैं, तिनिहीकूं हम मुनि कहैं हैं। बहुरि जो सम्यग्दृष्टी नाही है मलिनचित्तकरि सहित मिथ्योदृष्टी है अर बहुत दोषनिका आवास है ठिकाणां है सो तौ भेष धारै है तौऊ श्रावकसमानभी नाही है॥

भावार्थ—जो सम्यग्दृष्टी है अर शील कहिये उत्तर गुण अर संयम कहिये मूलगुण तिनिकरि सहित है सो मुनि है। अर जो मिथ्यादृष्टी कहिये मिथ्यात्वकरि जाका चित्त मलिन है अर क्रोधादि विकाररूप बहुत दोष जामैं पाइये है सो तौ मुनिभेष धारै -तौऊ है श्रावकसमानभी

नांही है, श्रावक सम्यग्दृष्टी होय अर गृहस्थाचारके पापनिकरि सहित होय तौऊ जिस बराबरि केवल भेषी मुनि नांही है. ऐसैं आचार्य कहै हैं ॥ १५५ ॥

आगैं कहै हैं जो—सम्यग्दृष्टी होयकरि जिनिनैं कषायरूप सुभट जीते तेही धीर वीर हैं.—

ते धीरवीरपुरिसा खमदमखग्गेण विप्फुरंतेण ।
दुज्जयपबलबलुद्धरकसायभड णिज्जिया जेहिं ॥१५६॥

ते धीरवीरपुरुषाः क्षमादमखड्गेण विस्फुरता ।
दुर्जयप्रबलबलोद्धतकषायभटाः निर्जिता यैः ॥ १५६ ॥

अर्थ—ज्यां पुरुषां क्षमा अर इंद्रियनिका दमन सो ही भया विस्फुरता कहिये सवाऱ्या हूवा मलिनता रहित उज्ज्वल तीक्ष्ण खड्ग ताकरि जिनिका जीतनां कठिन ऐसे दुर्जय अर प्रबल बलकरि उद्धत ऐसे कषाय रूप सुभटनिकूं जीतैं ते धीरवीर सुभट है, अन्य संग्रामादिकमैं जीतैं ते कहवेके सुभट हैं ॥

भावार्थ—युद्धमैं जीतनेवाले शूरवीर तौ लोकमैं बहुत हैं अर जे कषायनिकूं जीतैं हैं ते विरले हैं ते मुनिप्रधान हैं ते ही शूरवीरनिमैं प्रधान हैं, जे सम्यग्दृष्टी होय कषायनिकूं जीति चारित्रवान होय हैं ते मोक्ष पावैं हैं; यह आशय है ॥ १५६ ॥

आगैं कहै हैं जो—जे आप दर्शन ज्ञान चारित्ररूप होय अन्यकूं तिनिसहित करैं ते धन्य हैं;—

धण्णा ते भयवंता दंसणणाणग्गपवरहत्थेहिं ।
विसयमयरहरपडिया भविया उत्तारिया जेहिं ॥१५७॥

ते धन्याः भगवंतः दर्शनज्ञानाग्रप्रवरहस्तैः ।
विषयमकरधरपतिताः भव्याः उत्तारिताः यैः ॥ १५७ ॥

अर्थ—ऐसा सत्पुरुषा विषयरूप मकरधर जो समुद्र ताविषैं पड्या जे भव्यजीव तिनिकूं पार उतार्‍या, काहेकरि दर्शन अर ज्ञान तेही भये अग्र मुख्य दोय हाथ तिनिकरि उतारे, ते मुनि प्रधान भगवान इंद्रादिककरि पूज्य ज्ञानी धन्य हैं ॥

भावार्थ—इस संसार समुद्रतैं आप तिरैं अन्यकूं त्यारैं ते मुनि धन्य हैं। धनादिक सामग्रीसहितकूं धन्य कहिये हैं ते कहवेके धन्य हैं ॥ १५७ ॥

आगैं फेरि ऐसे मुनिनिकी महिमा करै हैं,—

मायावेल्लि असेसा मोहमहातरुवरम्मि आरूढा।
विसयविसपुप्फफुल्लिय लुणंति मुणि णाणसत्थेहिं १५८

मायवल्लीं अशेषां मोहमहातरुवरे आरूढाम्।
विषयविषपुष्पपुष्पितां लुनंति मुनयः ज्ञानशस्त्रैः ॥ १५८ ॥

अर्थ—मुनि हैं ते माया कहिये कपटरूपी वेलि है ताहि ज्ञानरूपी शस्त्रकरि समस्तकूं काटै हैं, कैसी है मायावेलि मोह रूपी जो महा बडा वृक्ष तापरि आरूढ़ है चढ़ी है, बहुरि कैसी है विषयरूपी विषके पुष्पनिकरि फूलि रही है ॥

भावार्थ—यह मायाकषाय है सो गूढ है याका विस्तार भी बहुत है मुनिनि ताई फैलै है तातैं जे मुनि ज्ञानकरि याकूं काटैं हैं ते सांचे मुनि हैं, तेही मोक्ष पावै हैं ॥ १५८ ॥

आगैं फेरि तिनि मुनिनिका सामर्थ्यकूं कहै हैं,—

मोहमयगारवेहिं य मुक्का जे करुणभावसंजुत्ता।
ते सव्वदुरियखंभं हणंति चारित्तखग्गेण ॥१५९॥

मोहमदगारवैः च मुक्ताः ये करुणाभावसंयुक्ताः।
ते सर्वदुरितस्तंभं घ्नंति चारित्रखड्गेन ॥ १५९ ॥

अर्थ—जे मुनि मोह मद गौरव इनिकरि रहित हैं अर करुणा भावकरि महित हैं चारित्ररूपी खड्गकरि पापरूपी स्तंभ है ताहि हणैं हैं, मूलतैं काटैं हैं ॥

भावार्थ—मोह तौ परद्रव्यसूं ममत्व भाव सो कहिये. मद जात्यादिक परद्रव्यादिक सम्बन्धतैं गर्व होना ताकूं कहिये गौरव तीन प्रकार है—ऋद्धिगौरव अर सातगौरव अर रसगौरव. तहां ऋद्धिगौरव जो कछू तपोबलकरि अपनी महंतता लोकमैं होय ताका आपका मद आवै तामैं हर्ष मानैं, बहुरि सातगौरव जो अपने शरीरमैं रोगादिक न उपजै तब सुख मानैं प्रमादयुक्त होय अपना महंतपणा मानैं बहुरि रसगौरव जो मिष्ट पुष्ट रसीला आहारादिक मिलै ताके निमित्ततैं प्रमत्त होय शयनादिक करै। ऐसा गौरव इनिकरि तौ रहित हैं अर परजीवनिकी करुणाकरि युक्त हैं—ऐसा नाहीं जो परजीवसूं मोहममत्व नांहीं है यातैं निर्दय होय तिनिकूं हणैं, जेतैं राग अंश रहै तेतैं परजीवनिकी करुणाही करै उपकारबुद्धि रहै। ऐसे ज्ञानीमुनि पाप जो अशुभकर्म ताकू चारित्रके बलतैं नाश करैं हैं ॥ १५९ ॥

आगैं कहै हैं जो—ऐसे मूलगुण अर उत्तरगुणनिकरि सहित मुनि हैं ते जिनमतमैं शोभैं हैं;—

गुणगणमणिमालाए जिणमयगयणे णिसायरमुणिंदो ।
तारावलिपरियरिओ पुण्णिमइंदुव्व पवणपहे ॥१६०॥

गुणगणमणिमालया जिनमतगगने निशाकरमुनींद्रः ।
तारावलीपरिकरितः पूर्णिमेन्दुरिव पवनपथे ॥ १६० ॥

अर्थ—जैसैं पवनपथ जो आकाश ताविषैं तारानिकी पंक्तिकरि परिवारतै वेष्टित पूर्णमासीका चन्द्रमा सोभै है तैसैं जिनमतरूप आकाशविषैं गुणनिके समूह सो ही भई मणिनिकी माला ताकरि मुनीन्द्ररूप चन्द्रमा शोभै है।

भावार्थ-अट्ठाईस मूलगुण दशलक्षण धर्म तीन गुप्ति चौरासीलाख उत्तरगुण इत्यादिक गुणनिकी मालाकरि सहित मुनि है सो जिनमतमैं चन्द्रमावत् सोभै है ऐसे मुनि अन्यमतमैं नांही ॥ १६० ॥

आगैं कहै हैं जो ऐसैं जिनिकैं विशुद्ध भाव हैं ते सत्पुरुष तीर्थंकर आदिक पदका सुखनिकूं पावैं हैं;—

चक्कहररामकेसवसुरवरजिणगणहराइसोक्खाइं ।
चारणमुणिरिद्धीओ विशुद्धभावा णरा पत्ता ॥ १६१ ॥

चक्रधररामकेशवसुरवरजिनगणधरादिसौख्यानि ।
चारणमुन्यर्द्धीः विशुद्धभावा नराः प्राप्ताः ॥ १६१ ॥

अर्थ—विशुद्ध हैं भाव जिनके ऐसे नर मुनि हैं ते चक्रधर कहिये चक्रवर्त्ती षट् खडका राजेन्द्र, राम कहिये बलभद्र, केशव कहिये नारायण अर्द्धचक्री, सुरवर कहिये देवनिका इन्द्र, जिन कहिये तीर्थंकर पंच कल्याण करि सहित तीनलोक करि पूज्य पदवी, गणधर कहिये च्यार ज्ञान सप्तऋद्धिके धारक मुनि, इनिके सुखनिकूं; बहुरि चारणमुनि कहिये आकाशगामिनी आदिऋद्धि जिनिकै पाइये तिनिकी ऋद्धि इनिकूं प्राप्त भये ॥

भावार्थ-पूर्वैं ऐसे निर्मल भावके धारक पुरुष भये ते ऐसी पदवीके सुखनिकूं प्राप्त भये, अब ते ऐसे होहिगे ते पावैंगे, ऐसैं जाननां ॥१६१॥

आगैं कहै हैं मुक्तका सुखभी ऐसे ही पावैं हैं;—

सिवमजरामरलिंगमणोवममुत्तमंपरमविमलमतुलं ।
पत्ता वरसिद्धिसुहं जिणभावणभाविया जीवा ॥१६२॥

शिवमजरामरलिंगं अनुपममुत्तमं परमविमलमतुलम् ।
प्राप्तो वरसिद्धिसुखं जिनभावनाभाविता जीवाः ॥ १६२ ॥

अर्थ—जे जिनभावनाकरि भावित सहित जीवहैं तेही सिद्धि कहिये मोक्ष ताके सुखकूं पावैं हैं, कैसा है सिद्धिसुख-शिव है कल्याणरूप है काहू प्रकार उपद्रवसहित नांही है, बहुरि कैसा है-अजरामरलिंग है वृद्ध होनां अर मरना इनि दोऊनितैं रहित है लिंग कहिये चिह्न जाका बहुरि कैसा है अनुपम है जाकै संसारीक सुखकी उपमा लागै नांही, बहुरि कैसा है उत्तम कहिये सर्वोत्तम है बहुरि परम कहिये सर्वोत्कृष्ट है बहुरि कैसा है-महार्घ्य है महान् अर्घ्य पूज्य प्रशंसायोग्य है, बहुरि कैसा है विमल है कर्मके मल तथा रागादिकमलकरि रहित है, बहुरि कैसा है अतुल है याकी बराबर सांसारिक सुख नांही; ऐसा सुखकूं जिनभक्त पावै है अन्यका भक्त न पावै है ॥ १६२ ॥

आगैं आचार्य प्रार्थना करै हैं जो ऐसे सिद्धसुखकूं प्राप्त भये सिद्ध भगवान ते मोकूं भावकी शुद्धताकूं द्यो,

ते मे तिहुवणमहिया सिद्धा सुद्धा णिरंजणा णिचा ।
दिंतु वरभावसुद्धिं दंसण णाणे चरित्ते य ॥ १६३ ॥

ते मे त्रिभुवनमहिताः सिद्धाः शुद्धाः निरंजनाः नित्याः ।
ददतु वरभावशुद्धिं दर्शने ज्ञाने चारित्रे च ॥ १६३ ॥

अर्थ—सिद्ध भगवान हैं ते मोकूं दर्शन ज्ञान विषैं अर चारित्रविषैं श्रेष्ठ उत्तमभावकी शुद्धता द्यो, कैसे हैं सिद्ध भगवान तीन भवनकरि पूजनीक हैं, बहुरि कैसे हैं—शुद्ध हैं द्रव्यकर्म नोकर्मरूप मलकरि रहित हैं, बहुरि कैसे हैं—निरंजन हैं रागादिकर्म करि रहित हैं, बहुरि जिनकै कर्मका उपजना नांही है, बहुरि कैसे हैं नित्य हैं पाये स्वभावका फेरि नाश नाहीं है ।

भावार्थ—आचार्य शुद्धभावका फल सिद्ध अवस्था, अर जे निश्चयकरि इस फलकूं प्राप्त भये सिद्ध, तिनितैं यही प्रार्थना करी है जो शुद्ध भावकी पूर्णता हमारै होहू ॥ १६३ ॥

आगैं भावके कथनकूं संकोचै हैं;—

किं जंपिएण बहुणा अत्थो धम्मो य काममोक्खो य।
अण्णे वि य वावारा भावम्मि परिट्ठिया सव्वे ॥१६४॥

किं जल्पितेन बहुना अर्थः धर्मः च काममोक्षः च।
अन्ये अपि च व्यापाराः भावे परिस्थिताः सर्वे ॥१६४॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो बहुत कहनें करि कहा? धर्म अर्थ काम मोक्ष बहुरि अन्य जो किछू व्यापार है सो सर्वही शुद्धभावके विषैं समस्तपणांकरि तिष्ठया है॥

भावार्थ—पुरुषके च्यार प्रयोजन प्रधान हैं–धर्म, अर्थ, काम मोक्ष। बहुरि अन्यभी जो किछू मंत्रसाधनादिक व्यापार हैं ते आत्माके शुद्ध चैतन्य परिणामस्वरूप भावविषैं तिष्ठैं हैं, शुद्धभावतैं सर्व सिद्धि है ऐसा संक्षेपकरि कहनां जाणों, बहुत कहा कहना? ॥ १६४ ॥

आगैं इस भावपाहुडकूं पूर्ण करै हैं ताका पढनें सुनने भावनें का उपदेश करै हैं;—

इय भावपाहुडमिणं सव्वंबुद्धेहि देसियं सम्म।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ अविचल ठाणं ॥१६५॥

इति भावप्राभृतमिदं सर्वबुद्धैः देशितं सम्यक्।
यः पठति शृणोति भावयति सः प्राप्नोति अविचलं स्थानम् ॥१६५

अर्थ–इति कहिये या प्रकार या भावपाहुडकूं सर्वबुद्ध जे सर्वज्ञदेव तिनिनि उपदेश्या है सो याकूं जो भव्यजीव सम्यक् प्रकार पढ़ै सुनैं याकूं भावै सो शाश्वता सुखका स्थानक जो मोक्ष ताहि पावै है॥

भावार्थ—यह भावपाहुड ग्रंथ है सो सर्वज्ञकी परंपराकरि अर्थ लेय आचार्यनैं कह्या है तातैं सर्वज्ञहीका उपदेश्या है, केवल छद्मस्थहीका

कह्या नांही है तातैं आचार्य अपनां कर्त्तव्य प्रधानकरि न कह्या है। अर याके पढनें सुननेंका फल मोक्ष कह्या सो युक्तही है शुद्धभावतैं मोक्ष होय है अर याके पढे शुद्धभाव होय हैं, ऐसैं परंपरा मोक्षका कारण याका पढना सुनना धारणां भावना करना है। तातैं भव्यजीव हैं ते या भावपाहुडकूं पढौ सुनौ सुनावौ भावौ निरंतर अभ्यास करौ ज्यों शुद्ध-भाव होय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकी पूर्णताकूं पाय मोक्ष पावौ तहां परमानंदरूप शाश्वतसुखकूं भोगवौ॥

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्दनामा आचार्य भावपाहुडग्रंथ पूर्ण किया।

याका संक्षेप ऐसा है जो-जीवनामा वस्तुका एक असाधारण शुद्ध अविनाशी चेतनास्वभाव है। ताकी शुद्ध अशुद्ध दोय परिणति हैं-तहां शुद्धदर्शनज्ञानोपयोगरूप परिणमना सो तौ शुद्ध परिणति है याकूं शुद्ध भाव कहिये है। बहुरि कर्मके निमित्ततैं राग द्वेष मोहादिक विभावरूप परिणमना सो अशुद्धपरणति है याकूं अशुद्ध भाव कहिये। तहां कर्मका निमित्त अनादितैं है तातैं अशुद्धभावरूप अनादिहीतै परिणमै है, तिस भावतैं शुभ अशुभ कर्मका बंध होय है तिस बंधके उदयतैं फेरि अशुभभावरूप परिणमै है अनादि संतान चल्या आवै है। तहां जब इष्टदेवतादिककी भक्ति जीवनिकी दया उपकार मंदकषायरूप परिणमै तब तौ शुभकर्मका बंध करै है, ताके निमित्ततैं देवादिक पर्याय पाय किछू सुखी होय है। बहुरि तब विषय कषाय तीव्र परिणामरूप परिणमै तब पापका बंध करै है, ताकै उदयतैं नरकादिक पर्याय पाय दुःखी होय है। ऐसैं संसारमैं अशुद्धभावतैं अनादितैं यह जीव भ्रमै है, बहुरि जब कोई काल ऐसा आवै जामैं जिनेश्वरदेव सर्वज्ञ वीतरागका उपदेशकी प्राप्ति होय अर ताका श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण करै तब अपनां अर परका भेदज्ञानकरि शुद्ध अशुद्ध भावका स्वरूप जांणि अपना हित अहि-तका श्रद्धान रुचि प्रतीति आचरण होय तब शुद्धदर्शनज्ञानमयी शुद्ध-चेतना परिणमनकूं तौ हित जानैं ताका फल संसारकी निवृत्ति है ताकूं

जानैं, अर अशुद्धभावका फल संसार है ताकूं जानैं, तब शुद्धभावका अङ्गीकार अर अशुद्ध भावका त्यागका उपाय करै। तहा उपायका स्वरूप जैसा सर्वज्ञ वीतरागके आगममैं कह्या है तैसैं करै— तहा ताका स्वरूप निश्चयव्यवहारात्मक सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र-स्वरुप मोक्षमार्ग कह्या है। तहां निश्चय तौ शुद्ध स्वरूपका श्रद्धान ज्ञान चारित्रकूं कह्या है अर व्यवहार जिनदेव सर्वज्ञ वीतराग तथा ताके वचन तथा तिनि वचननिकै अनुसार प्रवर्त्तनेंवाले मुनि श्रावक तिनिकी भक्ति वन्दनां विनय वैयावृत्त्य करै, सो है, जातैं ये मोक्षमार्गमैं प्रवर्त्तावनेंकूं उपकारी हैं उपकारीका मानना न्याय है उपकार लोपनां अन्याय है। बहुरि स्वरूपके साधक अहिंसा आदि महाव्रत अर रत्नत्रयरूप प्रवृत्ति समिति गुप्तिरूप प्रवर्त्तना, अर इनिविषैं दोप लगे अपनी निन्दा गर्हादिक करना, गुरुनिका दिया प्रायश्चित लेनां, शक्ति-सारू तप करनां, परीषह सहनां, दशलक्षण धर्म विषैं प्रवर्त्तनां इत्यादि शुद्धात्माकै अनुकूल क्रियारूप प्रवर्त्तनां, इनिमैं किछू रागका अंश रहै जैतैं शुभकर्मका बंध होय है तौऊ सो प्रधान नांही जातैं इनिमैं प्रवर्त्तनें वालेकै शुभकर्मके फलकी इच्छा नांही है तातै अबंधतुल्य है; इत्यादि प्रवृत्ति आगमोक्त व्यवहार मोक्षमार्ग है यामैं प्रवृत्तिरूप परिणामैं है तौऊ निवृत्तिप्रधान है तातैं निश्चय मोक्षमार्गमैं विरोध नांही है। ऐसैं निश्चय-व्यवहारस्वरूप मोक्षमार्गका संक्षेप है, याहीकूं शुद्ध भाव कह्या है तहां भी यामैं सम्यग्दर्शन प्रधानकरि कह्या है जातैं सम्यग्दर्शनविना सर्व व्यवहार मोक्षका कारण नांही, अर सम्यग्दर्शनका व्यवहारमैं जिनदेवकी भक्ति प्रधान है, यह सम्यग्दर्शनके जनावनेकूं मुख्य चिह्न है तातैं जिन-भक्ति निरन्तर करनीं, अर जिनआज्ञा मांनि आगमोक्त मार्गमैं प्रवर्त्तनां यह श्रीगुरुनिका उपदेश है, अन्य जिन आज्ञा सिवाय सर्व कुमार्ग हैं तिनिका प्रसंग छोडनां, ऐसैं करे आत्मकल्याण होय है॥

छप्पय।

जीव सदा चिद्भाव एक अविनाशी धारै।
कर्म निमितकूं पाय अशुद्धभावनि विस्तारै॥
कर्म शुभाशुभ बांधि उदै भरमै संसारै।
पावै दुःख अनंत च्यारि गतिमैं डुलि सारै॥
सर्वज्ञदेशना पायकै तजै भाव मिथ्यात्व जब।
निजशुद्धभाव धरि कर्महरि लहै मोक्ष भरमै न तब॥

दोहा।

मंगलमय परमातमा शुद्धभाव अविकार।
नमूं पाय पाऊं स्वपद जाचूं यहै करार॥ २॥

इति श्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित भावप्राभृतकी
जयपुरनिवासी पं० जयचन्द्रजी छावड़ा कृत-
देशभाषामयवचनिका समाप्त॥ ५॥

अथ मोक्षपाहुड

—❀ ६ ❀—

ॐ नमः सिद्धेभ्यः ।

अथ मोक्षपाहुडकी वचनिका लिख्यते ।
तहां प्रथमही मंगलकै अर्थि सिद्धनिकूं नमस्कार करै हैं,—

दोहा ।

अष्ट कर्मको नाश करि शुद्ध अष्ट गुण पाय ।
भये सिद्ध निज ध्यानतैं नमूं मोक्षसुखदाय ॥ १ ॥

ऐसैं मंगलकै अर्थि सिद्धनिकूं नमस्कारकरि अर श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत मोक्षपाहुडग्रंथ प्राकृत गाथाबंध है ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है । तहां प्रथम ही आचार्य मंगलकै अर्थि परमात्माकूं नमस्कार करै हैं,—

णाणमयं अप्पाणं उवलद्धं जेण झडियकम्मेण ।
चइऊण य परदव्वं णमो णमो तस्स देवस्स ॥ १ ॥

ज्ञानमय आत्मा उपलब्धः येन क्षरितकर्मणा ।
त्यक्त्वा च परद्रव्यं नमो नमस्तस्मै देवाय ॥ १ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो-जानैं परद्रव्यकूं छोडिकरि झटितकर्म कहिये खिरै हैं द्रव्यकर्म भावकर्म नोकर्म जाकै ऐसा होयकरि अर ज्ञान-

मयी आत्माकूं पाया, ऐसे देवके अर्थि हमारा नमस्कार होहू नमस्कार होहू। दोय वार कहनेमैं अतिप्रीतियुक्त भाव जनाये हैं ॥

भावार्थ—इहा मोक्षपाहुडका प्रारभ है तहा जिननैं समस्त परद्रव्यकूं छोडि कर्मका अभावकरि केवलज्ञानानन्द स्वरूप मोक्षपद पाया तिम देवकूं मगलकै अर्थि नमस्कार किया सो यह युक्त है, जहा जैसा प्रकरण तहा तैसी योग्यता। इहा भावमोक्ष तौ अरहंतकै,अर द्रव्यभावकरि दोऊ प्रकार सिद्ध परमेष्ठीकै है यातै दोऊकूं नमस्कार जाननां ॥ १ ॥

आगैं ऐसै नमस्कार करि ग्रथ करनेंकी प्रतिज्ञा करै हैं,—

णमिऊण य तं देवं अणंतवरणाणदंसणं सुद्धं।
वोच्छं परमप्पाणं परमपयं परमजोईणं ॥ २ ॥

नत्वा च तं देवं अनंतवरज्ञानदर्शनं शुद्धम्।
वक्ष्ये परमात्मानं परमपदं परमयोगिनाम् ॥ २ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो—तिस पूर्वोक्त देवकूं नमस्कारकरि अर परमात्मा जो उत्कृष्ट शुद्ध आत्मा ताहि परम योगीश्वर जे उत्कृष्ट योग्य ध्यानके धरनहारे मुनिराज तिनि प्रति कहूगा, कैसा है पूर्वोक्त देव—अनंत अर श्रेष्ठ जो ज्ञानदर्शन ते जाकै पाइये है, बहुरि विशुद्ध है कर्ममलकरि रहित है, अथवा कैसा है परमात्मा अनंत है वर कहिये श्रेष्ठ है ज्ञान अर दर्शन जामै, बहुरि कैसा है—परम उत्कृष्ट है पद जाका ॥

भावार्थ—इस ग्रथमैं मोक्षकू जिस कारणतैं पावै अर जैसा मोक्षपद है तैसाका वर्णन करियेगा, तिस रीति तिसहीकी प्रतिज्ञा करी है। बहुरि योगीश्वरनिप्रति कहियेगा, याका आशय यह है जो—ऐसे मोक्षपदकूं शुद्ध परमात्माका ध्यानतैं पाइये है, तहां तिस ध्यानकी योग्यता योगीश्वरनिकै ही प्रधान है, गृहस्थनिकै यह ध्यान प्रधान नाही ॥ २ ॥

आगैं कहै हैं जो-जिस परमात्माकूं कहनेंकी प्रतिज्ञा करी है तिसकं योगी ध्यानी मुनि जांणि तिसकूं ध्याय परम पद पावै है;—

जं जाणिऊण जोई जोअत्थो जोइऊण अणवरयं।
अव्वावाहमणंतं अणोवमं लहइ णिव्वाणं ॥ ३ ॥
यत् ज्ञात्वा योगी योगस्थः दृष्ट्वा अनवरतम्।
अव्याबाधमनंतं अनुपमं लभते निर्वाणम् ॥ ३ ॥

अर्थ—आगैं कहैंगे जो परमात्मा ताकूं जांनिकरि योगी जो मुनि सो योग जो ध्यान ताविषैं तिष्ठ्या हूवा निरन्तर तिस परमात्माकूं अनुभव गोचरकरि निर्वाणकूं प्राप्त होय है, कैसा है निर्वाण—अव्याबाध है जहां काहू प्रकारकी बाधा नांही है, बहुरि कैसा है—अनंत है जाका नाश नांही है, बहुरि कैसा है—अनुपम है जाकूं काहूकी उपमा लागै नांही॥

भावार्थ—आचार्य कहै हैं ऐसे परमात्माकूं आगैं कहियेगा तिसकूं ध्यानविषैं मुनि निरन्तर अनुभवन करि अर केवलज्ञान उपजाय निर्वाणकूं पावै। इहां यह तात्पर्य है-जो परमात्माका ध्यानतैं मोक्ष होय है॥ ३॥

आगैं परमात्मा कैसा है-ऐसैं जनावनेंकै अर्थि आत्माकूं तीन प्रकार करि दिखावै हैं;—

तिपयारो सो अप्पा परमंतरबाहिरो हु[1] देहीणं।
तत्थ परो झाइज्जइ अंतोवाएण चयहि बहिरप्पा ॥ ४ ॥
त्रिप्रकारः स आत्मा परमन्तः बहिः स्फुटं देहिनाम्।
तत्र परं ध्यायते अन्तरुपायेन त्यज बहिरात्मानं ॥४॥

अर्थ—सो आत्मा प्राणीनिकै तीन प्रकार है-अंतरात्मा, बहिरात्मा, परमात्मा, ऐसैं। तहां अन्तरात्माके उपायकरि बहिरात्माकूं छोडिकरि परमात्माकूं ध्यायजे॥

१—मुद्रित सस्कृत प्रतिमें 'हु हेऊण' ऐसा पाठ है जिसकी सस्कृत 'तु हित्वा' की है।

भावार्थ—बहिरात्माकूं छोडि अंतरात्मारूप होय परमात्माकूं ध्यावनां, यातैं मोक्ष होय है ॥ ४ ॥

आगैं तीन प्रकार आत्माका स्वरूप दिखावै हैं;—

अक्खाणि वाहिरप्पा अंतरअप्पा हु अप्पसंकप्पो ।
कम्मकलंकविमुक्को परमप्पा भण्णए देवो ॥ ५ ॥

अक्षाणि बहिरात्मा अन्तरात्मा स्फुटं आत्मसंकल्पः ।
कर्मकलंकविमुक्तः परमात्मा भण्यते देवः ॥ ५ ॥

अर्थ—अक्ष जे इंद्रिय स्पर्शनादिक तेतौ बाह्य आत्मा हैं जातैं इंद्रियनिकरि स्पर्श आदि विषयनिका ज्ञान होय तब लोक कहै ऐसैं ही जो इंद्रिय है सो ही आत्मा है, ऐसैं जो इंद्रियनिकूं बाह्य आत्मा कहिये। बहुरि अंतरात्मा है सो अन्तरंगविषैं आत्माका प्रगट अनुभवगोचर संकल्प है, शरीर इंद्रियनितैं न्यारा मनकै द्वारैं देखनें जाननेंवाला है सो मैं हूं, ऐसैं स्वसंवेदनगोचर संकल्प सो ही अन्तरात्मा है। बहुरि कर्म जो द्रव्यकर्म ज्ञानावरणादिक अर भावकर्म राग द्वेष मोहादिक नोकर्म शरीरादिक सो ही भया कलंकमल तिसकरि विमुक्त रहित अनंतज्ञानादिकगुणसहित सो ही परमात्मा है, सो ही देव है, अन्यकूं देव कहना उपचार है ॥

भावार्थ—बाह्य आत्मा तौ इंद्रियनिकूं कह्या, अर अंतरात्मा देहमैं तिष्ठता देखनां जानना जाकै पाइये ऐसा मनकै द्वारैं संकल्प सो है, बहुरि परमात्मा कर्मकलंकसूं रहित कह्या। सो इहां ऐसा जनाया है जो—यह जीवही जेतैं बाह्य शरीरादिकहीकूं आत्मा जानै है तेतैं तौ बहिरात्मा है संसारी है, बहुरि जब येही जीव अंतरंगविषैं आत्माकूं जानै है तब यह सम्यग्दृष्टी होय है तब अंतरात्मा है, अर यह जीव जब परमात्माका ध्यान करि कर्मकलंकसूं रहित होय तब पहलै तौ केवलज्ञान उपजाय अरहंत होय है, पीछैं सिद्धपदकूं पावै है, इनि दोऊहीकूं परमात्मा

कहिये है। अरहत तौ भावकलकरहित हैं अर सिद्ध द्रव्यभावरूप दोऊ प्रकार कलंक रहित हैं, ऐसैं जाननां ॥ ५ ॥

आगैं तिस परमात्माका विशेषणकरि स्वरूप कहै हैं,—

मलरहिओ कलचत्तो अणिंदिओ केवलो विसुद्धप्पा।
परमेट्ठी परमजिणो सिवंकरो सासओ सिद्धो ॥ ६ ॥

मलरहितः कलत्यक्तः अनिंद्रियः केवलः विशुद्धात्मा।
परमेष्ठी परमजिनः शिवंकरः शाश्वतः सिद्धः ॥ ६ ॥

अर्थ—परमात्मा ऐसा है-प्रथम तौ मलरहित है द्रव्यकर्म भावकर्मरूप मलकरि रहित है, बहुरि कलत्यक्त कहिये शरीरकरि रहित है, बहुरि अनिंद्रिय कहिये इन्द्रियनिकरि रहित है अथवा अनिदित कहिये-काहू प्रकार निंदायुक्त नाही है सर्व प्रकार प्रशंसा योग्य है, बहुरि केवल कहिये केवलज्ञानमयी है, बहुरि विशुद्धात्मा कहिये विशेष करि शुद्ध है आत्मा स्वरूप जाका, ज्ञानमैं ज्ञेयके आकार प्रतिभासै है तौहू तिनिस्वरूप न हो है तथापि तिनितैं रागद्वेष नाही है, बहुरि परमेष्ठी है परमपदविषैं तिष्ठै है, बहुरि परम जिन है सर्व कर्मकूं जीतै है, बहुरि शिवकर है भव्य जीवनिकै परम मगल तथा मोक्षकू करै है, बहुरि शाश्वता है अविनाशी है, बहुरि सिद्ध है अपनें स्वरूपकी सिद्धिकरि निर्वाणपदकूं प्राप्त भये हैं ॥

भावार्थ—ऐसा परमात्मा है, ऐसे परमात्माका ध्यान करै सो ऐसाही होय है ॥ ६ ॥

आगैं सो ही उपदेश करै हैं;—

आरुहवि अंतरप्पा बहिरप्पा छंडिऊण तिविहेण।
झाइज्जइ परमप्पा उवइट्ठं जिणवरिंदेहिं ॥ ७ ॥

आरुह्य अंतरात्मानं बहिरात्मानं त्यक्त्वा त्रिविधेन।
ध्यायते परमात्मा उपदिष्टं जिनवरेन्द्रैः ॥ ७ ॥

अर्थ—वहिरात्माकूं मन वचन कायकरि छोडि अन्तरात्माका आश्रय लेयकरि परमात्माकूं ध्यायजे, यह जिनवरेन्द्र तीर्थंकर परमदेवनिनैं उपदेश्या है ॥

भावार्थ—परमात्माका ध्यान करनेका उपदेश प्रधान करि कह्या है यातैं मोक्ष पावै है ॥ ७ ॥

आगै वहिरात्माकी प्रवृत्ति कहै हैं,—

वहिरत्थे फुरियमणो इंदियदारेण णियसरूवचुओ ।
णियदेहं अप्पाणं अज्झवसदि मूढदिट्ठीओ ॥ ८ ॥

वहिरर्थे स्फुरितमनाः इन्द्रियद्वारेण निजस्वरूपच्युतः ।
निजदेहं आत्मानं अध्यवस्यति मूढदृष्टिस्तु ॥ ८ ॥

अर्थ—मूढदृष्टी अज्ञानी मोही मिथ्यादृष्टी है सो वाह्य पदार्थ जे धन धान्य कुटुम्ब आदि इष्ट पदार्थ तिनिविषैं स्फुरित है तत्पर है मन जाका, वहुरि इन्द्रियका द्वार करि अपनें स्वरूपतैं च्युत है इन्द्रियनिकूं ही आत्मा जानै है, ऐसा भया सता अपनां देह है ताहीकूं आत्मा जानै है निश्चय करै है; ऐसा मिथ्यादृष्टी वहिरात्मा है ॥

भावार्थ—ऐसा वहिरात्माका भाव है ताकूं छोडनां ॥ ८ ॥

आगै कहै हैं जो—मिथ्यादृष्टी आपनां देह सारिखा पर देहकूं देखि तिसकूं परका आत्मा मानै है;—

णियदेहसरित्थं पिच्छिऊण परविग्गहं पयत्तेण ।
अचेयणं पि गहियं झाइज्जइ परमभाएण ॥ ९ ॥

निजदेहसदृशं दृष्ट्वा परविग्रहं प्रयत्नेन ।
अचेतनं अपि गृहीतं ध्यायते परमभावेन ॥ ९ ॥

अर्थ— मिथ्यादृष्टी पुरुष अपनां देह सारिखा परका देहकूं देखि-

करि यह देह अचेतन है तौऊ मिथ्याभावकरि आत्मभावकरि बडा यत्न करि परका आत्मा ध्यावै है।

भावार्थ—बहिरात्मा मिथ्यादृष्टीकै मिथ्यात्वकर्मका उदयकरि मिथ्याभाव है सो आपना देहकूं आपा जानै है तैसेंही परका देह अचेतन है तौऊ ताकूं परकूं आत्मा जानि ध्यावै है मानैं है तामैं बडा यत्न करै है यातैं ऐसे भावकूं छोडनां यह तात्पर्य है ॥ ९ ॥

आगैं कहै है जो ऐसीही मांनितैं पर मनुष्यादिविषैं मोह प्रवर्तै है;—

सपरज्झवसाएणं देहेसु य अविदिदत्थमप्पाणं ।
सुयदाराईविसए मणुयाणं वड्ढए मोहो ॥ १० ॥

स्वपराध्यवसायेन देहेषु च अविदितार्थमात्मानम् ।
सुतदारादिविषये मनुजानां वर्द्धते मोहः ॥ १० ॥

अर्थ—ऐसे देहविषैं स्वपरका अध्यवसाय कहिये निश्चय ताकरि मनुष्यनिकै सुत दारादिक जीवनिविषैं मोह प्रवर्तै है, कैसे हैं मनुष्य—अविदित कहिये नांही जान्यां है अर्थ कहिये पदार्थ ताका आत्मा कहिये स्वरूप ज्यां ॥

भावार्थ—जिनि मनुष्यनिनैं जीव अजीव पदार्थका स्वरूप यथार्थ न जाण्यां तिनिकै देहविषैं स्वपराध्यवसाय है अपनां देहकूं आपका आत्मा जानैं हैं अर परका देहकूं परका आत्मा जानैं है तिनिकै पुत्र स्त्री आदि कुटुम्बविषैं मोह ममत्व होय है, जब जीव अजीवका स्वरूप जानैं तब देहकूं अजीव मानैं, आत्मकूं अमूर्तीक चेतन जानैं आपनां आत्माकूं आपा मानैं परका आत्माकूं पर जानैं, तब परविषैं ममत्व नांही होय। यातैं जीवादिक पदार्थका स्वरूप नीकैं जांनि मोह न करनां यह जनाया है ॥ १० ॥

आगै कहै है जो-मोहकर्मके उदयकरि मिथ्याज्ञान अर मिथ्याभाव होय है ताकरि आगामी भवविषै भी यह मनुष्य देहकूं चाहै है;—

मिच्छाणाणेसु रओ मिच्छाभावेण भाविओ संतो ।
मोहोदएण पुणरवि अंगं स[1]म्मण्णए मणुओ ॥ ११ ॥

मिथ्याज्ञानेषु रतः मिथ्याभावेन भावितः सन् ।
मोहोदयेन पुनरपि अंगं मन्यते मनुजः ॥ ११ ॥

अर्थ—यह मनुष्य है सो मोहकर्मके उदयकरि मिथ्याज्ञानकरि मिथ्याभावकरि भाया संता फेरि भी आगामी जन्मविषैं इस अंगकूं देहकू सन्मानैं है भला मांनि चाहै है ॥

भावार्थ—मोहकर्मकी प्रकृति जो मिथ्यात्व ताके उदयकरि ज्ञानभी मिथ्या होय है परद्रव्यकूं अपनां जानैं है, वहुरि तिस मिथ्यात्वहीकरि मिथ्या श्रद्धान होय है ताकरि निरन्तर परद्रव्यविषैं यह भावना रहै है जो-यह मेरै सदा प्राप्त होहू, यातैं यह प्राणी आगामी देहकूं भला जाणि चाहै है ॥ ११ ॥

आगैं कहै हैं-जो मुनि देहविषैं निरपेक्ष है देहकूं नांही चाहै हैं यामैं ममत्व न करै हैं सो निर्वाणकूं पावै है,—

जो देहे णिरवेक्खो णिद्दंदो णिम्ममो णिरारंभो ।
आदसहावे सुरओ जोई सो लहइ णिव्वाणं ॥ १२ ॥

यः देहे निरपेक्षः निर्द्वन्द्वः निर्ममः निरारंभः ।
आत्मस्वभावे सुरतः योगी सः लभते निर्वाणम् ॥१२॥

१—मुद्रित सं. प्रतिमें ' स मण्णए' ऐसा प्राकृतपाठ जिसका 'स्व मन्यते' ऐसा संस्कृत पाठ है ।

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि, देहविषै निरपेक्ष है देहकूं नांही चाहै है उदासीन है, बहुरि निर्द्वंद है राग द्वेषरूप इच्छा अनिष्ट मानितैं रहित है, बहुरि निर्ममत्व है देहादिक विषैं 'यह मेरा' ऐसी बुद्धितैं रहित है, बहुरि निरारंभ है या देहकै अर्थि तथा अन्य लौकिक प्रयोजनकै अर्थि आरंभतैं रहित है, बहुरि आत्मस्वभावविषैं रत है लीन है निरन्तर स्वभावकी भावना सहित है सो मुनि निर्वाणकूं पावै है ॥

भावार्थ—जो बहिरात्माके भावकूं छोडि अन्तरात्मा होय परमात्मा मैं लीन होय है सो मोक्ष पावै है। यह उपदेश जनाया है ॥ १२ ॥

आगैं बंधका अर मोक्षका कारणका संक्षेपरूप आगमका वचन कहै हैं,—

परदव्वरओ वज्झदि विरओ मुच्चइ विविहकम्मेहिं ।
एसो जिणउवदेसो समासदो बंधमुक्खस्स ॥ १३ ॥

परद्रव्यरतः बध्यते विरतः मुच्यते विविधकर्मभिः ।
एषः जिनोपदेशः समासतः बंधमोक्षस्य ॥ १३ ॥

अर्थ—जो जीव परद्रव्यविषैं रत है रागी है सो तौ अनेक प्रकारके कर्मनिकरि बंधै है कर्मनिका बंध करै है, बहुरि जो परद्रव्यविषै विरत है रागी नाही है सो अनेक प्रकारके कर्मनितै छूटै है, यह बंधका अर मोक्षका संक्षेपकरि जिनदेवका उपदेश है ॥

भावार्थ—बंध मोक्षके कारणकी कथनी अनेक प्रकार करि है ताका यह संक्षेप है—जो परद्रव्यसू रागभाव सो तौ बंधका कारण अर विरागभाव सो मोक्षका कारण है, ऐसा संक्षेपकरि जिनेन्द्रका उपदेश है ॥ १३ ॥

आगैं कहै है जो स्वद्रव्यविषैं रत है सो सम्यग्दृष्टी होय है अर कर्मका नाश करै है;—

सद्दव्वरओ सवणो सम्माइट्ठी हवेइ सो साहू ।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ [1]दुट्ठट्ठकम्माइं ॥१४॥

स्वद्रव्यरतः श्रमणः सम्यग्दृष्टिः भवति सः साधुः ।
सम्यक्त्वपरिणतः पुनः [3]क्षपयति दुष्टाष्टकर्माणि ॥ १४ ॥

अर्थ—जो मुनि स्वद्रव्य जो अपनां आत्मा ताविषैं रत है रुचि सहित है सो नियमकरि सम्यग्दृष्टी है, बहुरि सो ही सम्यक्त्व भावरूप परिणम्या संता दुष्ट जे आठ कर्म तिनिकूं क्षेपै है, नाश करै है ।

भावार्थ—यह भी कर्मके नाश करनेका कारणका संक्षेप कथन है जो अपनां स्वरूपकी श्रद्धा रुचि प्रतीति आचरणकरि युक्त है सो नियमकरि सम्यग्दृष्टी है, इस सम्यक्त्वभाव करि परिणम्या मुनि आठ कर्मका नाश करि निर्वाण पावै है ॥ १४ ॥

आगैं कहै हैं जो परद्रव्यविषैं रत है सो मिथ्यादृष्टी भया कर्मकूं बांधै है,—

जो पुण परदव्वरओ मिच्छादिट्ठी हवेइ सो साहू ।
मिच्छत्तपरिणदो उण बज्झदि दुट्ठट्ठकम्मेहिं ॥ १५ ॥

यः पुनः परद्रव्यरतः मिथ्यादृष्टिः भवति सः साधुः ।
मिथ्यात्वपरिणतः पुनः बध्यते दुष्टाष्टकर्मभिः ॥ १५ ॥

अर्थ—पुनः कहिये बहुरि जो साधु परद्रव्यविषैं रत है रागी है सो मिथ्यादृष्टी होय है; बहुरि सो मिथ्यात्वभावरूप परिणम्यां संता दुष्ट जे अष्ट कर्म तिनिकरि बंधै है ॥

१—मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'सो साहू के स्थानमें 'णियमेण' ऐसा पाठ है ।
२—मु. सं. प्रतिमें 'दुट्ठट्ठकम्माणि' ऐसा पाठ है ।
३—मु. सं. प्रतिमें 'क्षिपते' ऐसा पाठ है ।

भावार्थ—यह बंधके कारणका संक्षेप है तहां साधु कहनें तैं ऐसा जनाया है जो बाह्य परिग्रह छोडि निर्ग्रंथ होय तौ हू मिथ्यादृष्टी भया संता दुष्ट जे संसारके दुःख देनेंवाले अष्ट कर्म तिनिकरि बंधै है ॥१५॥

आगैं कहै हैं जो—परद्रव्यहीतैं दुर्गति होय है अर स्वद्रव्यहीतैं सुगति होय है;—

परदव्वादो दुग्गइ सद्दव्वादो हु सग्गई होई।
इय णाऊण सदव्वे कुणह रई विरय इयरम्मि ॥१६॥

परद्रव्यात् दुर्गतिः स्वद्रव्यात् स्फुटं सुगतिः भवति।
इति ज्ञात्वा स्वद्रव्ये कुरुत रतिं विरतिं इतरस्मिन् ॥ १६ ॥

अर्थ परद्रव्यतैं तौ दुर्गति होय है, बहुरि स्वद्रव्यतैं सुगति होय है यह प्रगट जाणौं, जातैं हे भव्य जीव हौ ? तुम ऐसैं जाणिकरि स्वद्रव्य-विषै रति करो अर इतर जो परद्रव्य तातैं विरति करौ ॥

भावार्थ—लोकमैं भी यह रीति है अपनें द्रव्यसूं रति करि अपनां ही भोगवै है सो सुख पावै है ताकूं कछू आपदा न आवै है, बहुरि पर-द्रव्यसूं प्रीतिकरि जैसैं तैसैं लेकरि भोगवै है ताके दुःख होय है आपदा आवै है। तातैं आचार्य संक्षेपकरि उपदेश किया जो—अपनां आत्मस्व-भावविषैं तौ रति करौ यातैं सुगति है स्वर्गादिक भी याहीतैं होय है अर मोक्षभी याहीतैं होय है, बहुरि परद्रव्यतैं प्रीति मति करौ यातैं दुर्गति होय है संसारमैं भ्रमण होय है। इहां कोई कहै जो—स्वद्रव्यमैं लीन भये मोक्ष होय है अर सुगति दुर्गति तौ परद्रव्यकी प्रीतितैं होय है ? ताकूं कहिये जो—यह सत्य है परन्तु इहां आशयतैं कह्या है जो—परद्रव्यतैं विरक्त होय स्वद्रव्यमैं लीन होय तब विशुद्धता बहुत होय है, तिस विशुद्धताके निमित्ततैं शुभकर्मभी बंधै है अर अत्यंत विशुद्धता होय तब कर्मकी निर्जरा होय मोक्ष होय है तातैं सुगति दुर्गतिका होनां कह्या तैसैं युक्त है, ऐसैं जाननां ॥ १६ ॥

आगैं शिष्य पूछै है जो—परद्रव्य कैसा है? ताका उत्तर आचार्य कहै हैं,—

आदसहावादण्णं सचित्ताचित्तमिस्सियं हवइ।
तं परदव्वं भणियं अवितत्थं सव्वदरसीहिं॥ १७॥

आत्मस्वभावादन्यत् सचित्ताचित्तमिश्रितं भवति।
तत् परद्रव्यं भणितं अवितथं सर्वदर्शिभिः॥ १७॥

अर्थ—आत्मस्वभावतैं अन्य जो किछू सचित्त तो स्त्री पुत्रादिक जीवसहित वस्तु बहुरि अचित्त धन धान्य हिरण्य सुवर्णादिक अचेतन वस्तु बहुरि मिश्र आभूषणादिसहित मनुष्य तथा कुटुम्बसहित गृहादिक ये सर्व परद्रव्य हैं, ऐसैं जानैं जीवादिक पदार्थका स्वरूप न जाण्या ताके जनावनेंके अर्थि सर्वदर्शी सर्वज्ञ भगवाननें कह्या है अथवा 'अवितथ' कहिये सत्यार्थ कह्या है॥

भावार्थ—अपना ज्ञानस्वरूप आत्मा सिवाय अन्य अचेतन मिश्र वस्तु हैं ते सर्वही परद्रव्य हैं ऐसैं अज्ञानीके जनावनेंकूं सर्वज्ञदेवने कह्या है॥ १७॥

आगे कहै हैं जो—आत्मस्वभाव स्वद्रव्य कह्या सो ऐसा है;—

दुट्ठट्ठकम्मरहियं अणोवमं णाणविग्गहं णिच्चं।
सुद्धं जिणेहिं कहियं अप्पाणं हवइ सद्दव्वं॥ १८॥

दुष्टाष्टकर्मरहितं अनुपमं ज्ञानविग्रहं नित्यम्।
शुद्धं जिनैः भणितं आत्मा भवति स्वद्रव्यम्॥ १८॥

अर्थ—दुष्ट जे संसारके दुःख देनेवाले ज्ञानावरणादिक अष्ट कर्म तिनिकरि रहित अर जाकूं काहूकी उपमा नांही ऐसा अनुपम अर ज्ञान ही है विग्रह कहिये शरीर जाकै ऐसा अर नित्य जाका नाश नांही अवि-

नाशी अर शुद्ध कहिये विकाररहित केवलज्ञानमयी आत्मा जिनें भगवान सर्वज्ञनें कह्या सो स्वद्रव्य है ॥

भावार्थ—ज्ञानानन्दमय अमूर्तीक ज्ञानमूर्ति अपनां आत्मा है सो ही एक स्वद्रव्य है अन्य सर्व चेतन अचेतन मिश्र परद्रव्य हैं ॥ १८ ॥

आगैं कहै हैं जो—जे ऐसे निजद्रव्यकूं ध्यावैं हैं ते निर्वाण पावैं हैं;—

जे झायंति सदव्वं परदव्वपरम्मुहा हु सुचरित्ता।
ते जिणवराण मग्गे अणुलग्गा लहदि णिव्वाणं ॥१९॥

ये ध्यायंति स्वद्रव्यं परद्रव्यपराङ्मुखास्तु सुचरित्राः।
ते जिनवराणां मार्गे अनुलग्नाः लभंते निर्वाणम् ॥१९॥

अर्थ—जे मुनि परद्रव्यतैं पराङ्मुख भये संते स्वद्रव्य जो निज आत्मद्रव्य ताहि ध्यावैं हैं ते प्रगट सुचरित्रा कहिये निर्दोष चारित्रयुक्त भये सते जिनवर तीर्थंकरनिके मार्गकूं अनुलग्न भये लागे सते निर्वाणकूं पावैं हैं ॥

भावार्थ—परद्रव्यका त्यागकरि जे अपनां स्वरूपकूं ध्यावैं हैं ते निश्चयचारित्ररूप होय जिनमार्गमैं लागे ते मोक्ष पावैं हैं ॥ १९ ॥

आगैं कहै हैं जो—जिनमार्गमैं लग्या योगी शुद्धात्माकूं ध्याय मोक्ष पावै है तौ कहा ताकरि स्वर्ग नहीं पावै? पावैही पावै,—

जिणवरमएण जोई झाणे झाएह सुद्धमप्पाणं।
जेण लहइ णिव्वाणं ण लहइ किं तेण सुरलोयं ॥२०॥

जिनवरमतेन योगी ध्याने ध्यायति शुद्धमात्मानम्।
येन लभते निर्वाणं न लभते किं तेन सुरलोकम् ॥२०॥

अर्थ—योगी ध्यानी मुनि है सो जिनवर भगवानके मतकरि शुद्ध आत्माकूं ध्यानविषै ध्यावै है ताकरि निर्वाणकूं पावै है तौ ताकरि कहा स्वर्ग लोक न पावै ? पावैही पावै ॥ २० ॥

भावार्थ—कोई जानैंगा जो जिनमार्गमैं लागि आत्माकूं ध्यावै सो मोक्ष पावै अर स्वर्ग तौ यातैं होय नांही, ताकूं कह्या है जो जिनमार्गमैं प्रवर्त्तनें वाला शुद्ध आत्माकूं ध्याय मोक्ष पावै है तौ ताकरि स्वर्गलोक कहा कठिन है ? यह तौ ताके मार्गमैं ही है ॥ २० ॥

आगैं या अर्थकूं दृष्टान्तकरि दृढ करै हैं,

जो जाइ जोयणसयं दियहेणेक्केण लेइ गुरुभारं ।
सो किं कोसद्धं पि हु ण सक्कए जाहु भुवणयले ॥२१॥

यः याति योजनशतं दिवसेनैकेन लात्वा गुरुभारम् ।
स किं क्रोशार्द्धमपि स्फुटं न शक्नोति यातुं भुवनतले ॥२१॥

अर्थ—जो पुरुष बडा भार लेय एक दिनकरि सौ योजन जाय सो या भुवनतलविषैं आध कोश कहा न जाय ? यह प्रगट जाणो ॥

भावार्थ—जो पुरुष बड़ा भार लेय एक दिनमैं सौ योजन चालै ताकै आधकोश चालनां तौ अत्यत सुगम भया, तैसैंही जिनमार्गतैं मोक्ष पावै तौ स्वर्ग पावना तौ अत्यंत सुगम है ॥ २१ ॥

आगैं याही अर्थका अन्य दृष्टान्त कहै हैं,—

जो कोडिए ण जिप्पइ सुहडो संगामएहिं सव्वेहिं ।
सो किं जिप्पइ इक्किं णरेण संगामए सुहडो ॥ २२ ॥

यः कोट्या न जीयते सुभटः संग्रामकैः सर्वैः ।
स किं जीयते एकेन नरेण संग्रामे सुभटः ॥ २२ ॥

अर्थ—जो कोई सुभट संग्राममैं सर्वही संग्रामके करनेवालेनिकरि सहित कोडि नरनिकूं सुगमताकरि जीतै सो सुभट एक नरकूं कहा न जीतै ? जीतैही ॥

भावार्थ—जो जिनमार्गमैं प्रवर्त्तै सो कर्मका नाश करै तौ कहा स्वर्गका रोकनेवाला एक पापकर्म ताका नाश न करै ? करैही करै ॥२२॥

आगैं कहै हैं जो—स्वर्ग तौ तपकरि सर्वही पावै है परन्तु ध्यानका योगकरि स्वर्ग पावै है सो तिस ध्यानके योगकरि मोक्ष भी पावै है,—

सग्गं तवेण सव्वो वि पावए किंतु झाणजोएण ।
जो पावइ सो पावइ परलोये सासयं सोक्खं ॥ २३ ॥

स्वर्गं तपसा सर्वः अपि प्राप्नोति किन्तु ध्यानयोगेन ।
यः प्राप्नोति सः प्राप्नोति परलोके शाश्वतं सौख्यम् ॥२३॥

अर्थ—स्वर्ग तौ तपकरि सर्वही पावै है तथापि जो ध्यानके योगकरि स्वर्ग पावै है सो ही ध्यानके योगकरि परलोकविषैं शाश्वता सुखकूं पावै है ॥

भावार्थ—कायक्लेशादिक तप तौ सर्वही मतके धारक करैं हैं ते तपस्वी मंदकषायके निमित्ततै सर्वही स्वर्गकूं पावैं हैं, बहुरि जो ध्यानकरि स्वर्ग पावै है सो जिनमार्गविषैं कह्या तैसा ध्यानके योगकरि परलोकविषैं शाश्वता है सुख जाविषैं ऐसा निर्वाणकूं पावै है ॥ २३ ॥

आगैं ध्यानके योगकरि मोक्षकूं पावै है ताकूं दृष्टान्त दार्ष्टान्तकरि दृढ करै हैं;—

अइसोहणजोएणं सुद्धं हेमं हवेइ जह तह य ।
कालाईलद्धीए अप्पा परमप्पओ हवदि ॥ २४ ॥

अतिशोभनयोगेन शुद्धं हेम भवति यथा तथा च ।
कालादिलब्ध्या आत्मा परमात्मा भवति ॥ २४ ॥

अर्थ—जैसैं सुवर्ण पाषाण है सो सोधनेंकी सामग्रीके संबंधकरि शुद्ध सुवर्ण होय है तैसें काल आदि लब्धि जो द्रव्य क्षेत्र काल भाव रूप सामग्रीकी प्राप्ति ताकरि यहु आत्मा कर्मके संयोगकरि अशुद्ध है सो ही परमात्मा होय है ॥ २४ ॥

भावार्थ—सुगम है ॥ २४ ॥

आगैं कहै हैं जो—संसारविषैं व्रत तपकरि स्वर्ग होय है सो व्रत तप भला है अव्रतादिकरि नरकादिक गति होय है सो अव्रतादिक श्रेष्ठ नांही;—

वर वयतवेहि सग्गो मा दुक्खं होउ णिरइ इयरेहिं ।
छायातवट्ठियाणं पडिवालंताण गुरुभेयं ॥ २५ ॥

वरं व्रततपोभिः स्वर्गः मा दुःखं भवतु नरके इतरैः ।
छायातपस्थितानां प्रतिपालयतां गुरुभेदः ॥ २५ ॥

अर्थ–व्रत अर तपकरि स्वर्ग होय है सो श्रेष्ठ है, वहुरि इतर जो अव्रत अर अतप तिनिकरि प्राणीकै नरकगतिविषैं दुःख होय है सो मति होहु, श्रेष्ट नाही । छाया अर आतपकै विषैं तिष्ठनेंवालेके जे प्रतिपालक कारण हैं तिनिकै बड़ा भेद है ॥

भावार्थ—जैसैं छायाका कारण तौ वृक्षादिक है, तिनिकरि छाया कोई बैठै सो सुख पावै, वहुरि आतापका कारण सूर्य अग्नि आदिक है तिनिके निमित्ततैं आताप होय ताविषैं बैठै सो दु.ख पावै ऐसैं इनिमैं बडा भेद है; तैसै जो व्रत तपकूं आचरै सो स्वर्गका सुख पावै अर इनिकूं न आचरै विषय कषायादिककूं सेवै सो नरकके दु.ख पावै, ऐसैं इनिमैं बडा भेद है । तातैं इहां कहनेका यह आशय है जो जेतैं निर्वाण न होय तेतैं व्रत तप आदिकमैं प्रवर्त्तनां श्रेष्ठ है यातैं सासारिक सुखकी प्राप्ति है अर निर्वाणके साधनें विषैं भी ये सहकारी हैं । विषय कषायादिककी प्रवृत्तिका फल तौ केवल नरकादिकके दुःख हैं सो तिनि दुःख-

निके कारणनिकूं सेवना यह तौ बडी भूलि है, ऐसैं जाननां ॥ २५ ॥

आगैं कहै है जो-संसारमै रहै जेतैं व्रत तप पालनां श्रेष्ठ कह्या परन्तु जो संसारतैं नीसर्या चाहै है सो आत्माकूं ध्यावो,—

जो इच्छइ णिस्सरिहुं संसारमहण्णवाउ रुद्दाओ[1] ।
कम्मिंधणाण डहणं सो झायइ अप्पयं सुद्धं ॥ २६ ॥

यः इच्छति निःसर्तुं संसारमहार्णवात् रुद्रात् ।
कर्मेन्धनानां दहनं सः ध्यायति आत्मानं शुद्धम् ॥२६॥

अर्थ—जो जीव रुद्र कहिये वडा विस्ताररूप जो संसाररूप समुद्र तातैं नीसरणेकूं चाहै है सो जीव कर्मरूप ईंधनका दहन करनेवाला जो शुद्ध आत्मा ताहि ध्यावै है ॥

भावार्थ—निर्वाणकी प्राप्ति कर्मका नाश होय तब होय है अर कर्मका नाश शुद्धात्माके ध्यानतैं होय है सो संसारतै नीसरि मोक्षकूं चाहै है सो शुद्ध आत्मा जो कर्ममलतैं रहित अनंत चतुष्टयसहित परमात्माकूं ध्यावै है, मोक्षका उपाय या विना अन्य नांही है ॥ २६ ॥

आगै आत्माकूं कैसे ध्यावै ताकी विधि दिखावै हैं;—

सव्वे कसाय मुत्तं गारवमयरायदोसवामोहं ।
लोयववहारविरदो अप्पा झाएइ झाणत्थो ॥ २७ ॥

सर्वान् कषायान् मुक्त्वा गारवमदरागदोषव्यामोहम् ।
लोकव्यवहारविरतः आत्मानं ध्यायति ध्यानस्थः ॥२७॥

अर्थ—मुनि है सो सर्व कषायनिकूं छोडि तथा गारव मद राग द्वेष तथा मोह इनिकूं छोडिकरि अर लोकव्यवहारतैं विरक्त भया ध्यान

१—मुद्रित स. प्रतिमें 'संसारमहण्णवस्स रुद्दस्स' ऐसा पाठ है जिसकी संस्कृत 'संसारमहार्णवस्य रुद्रस्य' ऐसी है ।

विषैं तिष्ठता आत्माकूं ध्यावै है ॥ २७ ॥

भावार्थ—मुनि आत्माकू ध्यावै सो ऐसा भया ध्यावै—प्रथम तौ क्रोध मान माया लोभ ये कषाय हैं इनि सर्वनिकूं छोडै, बहुरि गारवकूं छोडै, बहुरि मद जाति आदिका भेद आठ प्रकार है ताकूं छोडै बहुरि राग द्वेषकूं छोडै बहुरि लोकव्यवहार जो संघमैं रहनेंमैं परस्पर विनयाचार वैयावृत्त्य धर्मोपदेश पढना पढावना है ताकूं भी छोडे ध्यानविषै तिष्टै ऐसै आत्माकूं ध्यावै ॥

इहा कोई पूछै—सर्व कषायका छोडनां कह्या है तामै तौ सर्व गारव मदादिक आय गये न्यारे काहेकूं कहे? ताका समाधान ऐसैं जो—सर्व कषायनिमैं गर्भित हैं तौऊ विशेष जनावनेंकूं न्यारे कहे हैं तहा कषायकी प्रवृत्ति तौ ऐसै है जो—आपके अनिष्ट होय तासू क्रोध करै अन्यकूं नीचा मानि मान करै काहू कार्यनिमित्त कपट करै आहारादिविषैं लोभ करै, बहुरि यह गारव है सो—रस, ऋद्धि, सात, ऐसै तीन प्रकार है सो ये यद्यपि मानकषायमैं गर्भित है तौऊ प्रमादकी बहुलता इनिमैं है तातैं न्यारे कहे हैं। बहुरि मद जाति लाभ कुल रूप तप बल विद्या ऐश्वर्य इनिका होय है सो न करै। बहुरि राग द्वेष प्रीति-अप्रीतिकूं कहिये है, काहूसू प्रीति करनां काहूसू अप्रीति करना, ऐसैं लक्षणके विशेषतैं भेद करि कह्या। बहुरि मोह नाम परसू ममत्व भावका है, संसारका ममत्व तौ मुनिकै है ही नाही अर धर्मानुरागतैं शिष्य आदिविषैं ममत्वका व्यवहार है सो ये भी छोडै। ऐसैं भेदविवक्षाकरि न्यारे कहे हैं, ये ध्यानके घातक भाव हैं इनिकू छोडे विना ध्यान होय नांही, जातैं जैसैं ध्यान होय तैसैं करै ॥ २७ ॥

आगैं याहीकू विशेष करि कहै हैं,—

मिच्छत्तं अण्णाणं पावं पुण्णं चएवि तिविहेण ।
मोणव्वएण जोई जोयत्थो जोयए अप्पा ॥ २८ ॥

मिथ्यात्वं अज्ञानं पापं पुण्यं त्यक्त्वा त्रिविधेन ।
मौनव्रतेन योगी योगस्थः द्योतयति आत्मानम् ॥२८॥

अर्थ—योगी ध्यानी मुनि है सो मिथ्यात्व अज्ञान पाप पुण्य इनिकूं मन वचन कायकरि छोडि मौनव्रतकरि ध्यानविषैं तिष्ठ्या आत्माकूं ध्यावै है ॥

भावार्थ—केई अन्यमती योगी ध्यानी कहावैं है तातैं जैनलिंगी भी कोई द्रव्यलिंग धारे होय ताके निषेध निमित्त ऐसैं कह्या है जो—मिथ्यात्व अर अज्ञानकूं छोडि आत्माका स्वरूप यथार्थ जांनि श्रद्धान जानैं न किया ताकै मिथ्यात्व अज्ञान तौ लग्या रह्या तब ध्यान काहेका होय, बहुरि पुण्य पाप दोऊ बंधस्वरूप हैं इनि विषैं प्रीति अप्रीति रहै जेतैं मोक्षका स्वरूप जान्यां नांही तब ध्यान काहेका होय, बहुरि मन वचनकी प्रवृत्ति छोडि मौन न करै तौ एकाग्रता कैसै होय। तातैं मिथ्यात्व अज्ञान पुण्य पाप मन वचन कायकी प्रवृत्ति छोडना ध्यानविषैं युक्त कह्या है ऐसैं आत्माकूं ध्याये मोक्ष होय है ॥ २८ ॥

आगैं ध्यान करनेंवाला मौन करि तिष्ठै है सो कहा विचारि करि तिष्ठै है, सो कहै हैं,—

जं मया दिस्सदे रूवं तं ण जाणादि सव्वहा ।
जाणगं दिस्सदे णंतं[1] तम्हा जंपेमि केण हं ॥ २९ ॥

यत् मया दृश्यते रूपं तत् न जानाति सर्वथा ।
ज्ञायकं दृश्यते न तत् तस्मात् जल्पामि केन अहम् ॥२९॥

अर्थ—जा रूपकूं मैं देखूं हूं सो रूप मूर्तीक वस्तु है जड है अचेतन है सर्वप्रकार करि कछू ही जाणै नांही है, अर मैं ज्ञायक हूं सो

1—मु. सं प्रतिमें 'णतं' इसकी संस्कृत 'अनन्त.' की है ।

अमूर्तीकहूं यह जड अचेतन है सर्व प्रकार करि कछूही जाणै नाही है, तातैं मैं कौनसूं बोलूं ॥

भावार्थ—जो दूजा कोऊ परस्पर बात करनें वाला होय तब परस्पर बोलनां संभवै, सो आत्मा तौ अमूर्तीक–ताकै वचन बोलना नाही, अर जो रूपी पुद्गल है सो अचेतन है कछू जाणैं नाही देखै नाही। तातैं ध्यान करनेवाला कहै है–मै कौनसू बोलूं तातैं मेरै मौन है ॥ २९ ॥

आगैं कहै हैं जो–ऐसैं ध्यान करतैं सर्व कर्मके आस्रवका निरोध करि संचित कर्मका नाश करै है;—

सव्वासवणिरोहेण कम्मं खवइ संचियं ।
जोयत्थो जाणए जोई जिणदेवेण भासियं ॥ ३० ॥

सर्वास्रवनिरोधेन कर्म क्षपयति संचितम् ।
योगस्थः जानाति योगी जिनदेवेन भाषितम् ॥ ३० ॥

अर्थ—योग ध्यानविषैं तिष्ठ्या योगी मुनि है सो सर्व कर्मके आस्रवका निरोधकरि संवरयुक्त भया पूर्वैं बाधे जे कर्म ते संचयरूप हैं तिनिका क्षय करै है ऐसैं जिनदेवनै कह्या है सो जाणिये ॥

भावार्थ—ध्यानकरि कर्मका आस्रव रुकै यातैं आगामी बध होय नांही अर पूर्व संचे कर्मकी निर्जरा होय है तब केवलज्ञान उपजाय मोक्ष प्राप्त होय है, यह आत्माके ध्यानका माहात्म्य है ॥ ३० ॥

आगैं कहै हैं जो व्यवहारमैं तत्पर है ताकै यह ध्यान नांही,—

जो सुत्तो ववहारे सो जोई जग्गए सकज्जम्मि ।
जो जग्गदि ववहारे सो सुत्तो अप्पणो कज्जे ॥ ३१ ॥

यः सुप्तः व्यवहारे सः योगी जागर्ति स्वकार्ये ।
यः जागर्ति व्यवहारे सः सुप्तः आत्मनः कार्ये ॥३१॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी-मुनि व्यवहारमैं सूता है सो अपनां स्वरूपका कार्यविषैं जागै है, बहुरि जो व्यवहारविषैं जागै है सो अपना आत्मकार्यविषैं सूता है ॥

भावार्थ—मुनिकै संसारी व्यवहार तौ कछू है नांही, अर जो है तौ मुनि काहेका ? पाखंडी है। बहुरि धर्मका व्यवहार संघमैं रहना महाव्रतादिक पालना ऐसे व्यवहारमैं भी तत्पर नांही है, सर्व प्रवृत्तिकी निवृत्ति करि ध्यान करै है, सो व्यवहारमैं सूता कहिये, अर अपनें आत्मस्वरूपमैं लीन भया देखै है जाणै है सो अपनें आत्मकार्यविषैं जागै है। बहुरि जो इस व्यवहारमैं तत्पर है सावधान है स्वरूपकी दृष्टि नांही है सो व्यवहारमै जागता कहिये ॥ ३१ ॥

आगैं यह कहै हैं जो—योगी पूर्वोक्त कथनकूं जाणि व्यवहारकूं छोडि आत्मकार्य करै है;—

इय जाणिऊण जोई ववहारं चयइ सव्वहा सव्वं ।
झायइ परमप्पाणं जह भणियं जिणवरिंदेहिं ॥ ३२ ॥

इति ज्ञात्वा योगी व्यवहारं त्यजति सर्वथा सर्वम् ।
ध्यायति परमात्मानं यथा भणितं जिनवरेन्द्रैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त कथनकूं जाणिकरि योगी ध्यानी मुनि है सो व्यवहार सर्व प्रकार ही छोडै है अर परमात्माकूं ध्यावै है, कैसे ध्यावै है-जैसैं जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेवनैं कह्या है तैसैं ध्यावै है ॥

भावार्थ—सर्वथा सर्व व्यवहारकूं छोडनां कह्या, ताका तौ आशय यह जो—लोकव्यवहार तथा धर्मव्यवहार सर्वही छोडे ध्यान होय है। अर जैसैं जिनदेवनैं कह्या तैसैं परमात्माका ध्यान करनां सो अन्यमती

१—मु० सं० प्रतिमें 'जिणवरिंद्रेण' ऐसा पाठ है, जिसकी संस्कृत 'जिनवरेन्द्रेण' है।

परमात्माका स्वरूप अनेक प्रकार अन्यथा कहै है, ताका ध्यानका भी अन्यथा उपदेश करै है, ताका निषेध है। जिनदेवनै परमात्माका तथा ध्यानका स्वरूप कह्या सो सत्यार्थ है प्रमाणभूत है तैसैंही योगीश्वर करैं हैं, तेई निर्वाणकूं पावैं हैं ॥ ३२ ॥

आगैं जिनदेवनैं जैसैं ध्यान अध्ययनकी प्रवृत्ति कही है तैसैं उपदेश करै है;—

पंचमहव्वयजुत्तो पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु।
रयणत्तयसंजुत्तो झाणज्झयणं सदा कुणह ॥३३॥

पंचमहाव्रतयुक्तः पंचसु समितिषु तिसृषु गुप्तिषु।
रत्नत्रयसंयुक्तः ध्यानाध्ययनं सदा कुरु ॥ ३३ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो- पाच महाव्रतकरियुक्त भया, बहुरि पांच समिति तीन गुप्ति इनिविषैं युक्त भया, बहुरि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जो रत्नत्रय तिसकरि संयुक्त भया, हे मुनिजनहो! तुम ध्यान अर अध्ययन शास्त्रका अभ्यास ताहि करो ॥

भावार्थ—अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य परिग्रहत्याग ये तौ पाच महाव्रत, अर ईर्या भाषा एषणा आदाननिक्षेपणा प्रतिष्ठापनां ये पाच समिति, अर मन वचन कायका निग्रहरूप तीन गुप्ति, यहु तेरह प्रकार चारित्र जिनदेवनै कह्या है तिसकरि युक्त होय, अर निश्चय व्यवहाररूप सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र कह्या है इनिकरि युक्त होय करि ध्यान अर अध्ययन करवाका उपदेश है। तहां प्रधान तौ ध्यान है ही अर तिसमैं न थमै तब शास्त्रका अभ्यासमै मन लगावै यही ध्यानतुल्य है जातैं शास्त्रमैं परमात्माका स्वरूपका निर्णय है सो यह ध्यानहीका अंग है॥३३

आगैं कहै है जो रत्नत्रयकूं आराधै है सो जीव आराधक ही है,

रयणत्तयमाराहं जीवो आराहओ मुणेयव्वो ।
आराहणाविहाणं तस्स फलं केवलं णाणं ॥३४॥

रत्नत्रयमाराधयन् जीवः आराधकः ज्ञातव्यः ।
आराधनाविधानं तस्य फलं केवलज्ञानम् ॥ ३४ ॥

अर्थ—रत्नत्रय जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ताहि आराधता जीव है सो आराधक जानना, अर जो आराधनाका विधान है ताका फल केवलज्ञान है ॥

भावार्थ—जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकू आराधै है सो केवलज्ञानकूं पावै है सो जिनमार्गमैं प्रसिद्ध है ॥ ३४ ॥

आगैं कहै हैं जो शुद्ध आत्मा है सो केवलज्ञान है अर केवलज्ञान है सो शुद्धात्मा है,—

सिद्धो सुद्धो आदा सव्वण्हू सव्वलोयदरसी य ।
सो जिणवरेहिं भणियो जाण तुमं केवलं णाणं ॥३५॥

सिद्धः शुद्धः आत्मा सर्वज्ञः सर्वलोकदर्शी च ।
सः जिनवरैः भणितः जानीहि त्वं केवलं ज्ञानम् ॥३५॥

अर्थ—आत्मा जिनवर सर्वज्ञदेवनैं ऐसा कह्या है, कैसा है—सिद्ध, काहूकरि निपज्या नाही है स्वयंसिद्ध है, बहुरि शुद्ध है कर्ममलतैं रहित है, बहुरि सर्वज्ञ है सर्व लोकालोककूं जानै है बहुरि सर्वदर्शी है सर्व लोक अलोककूं देखै है, ऐसा आत्मा है सो मुने ! तिसहीकूं तू केवलज्ञान जाणि अथवा तिस केवलज्ञानहीकूं आत्मा जाणि । आत्मामैं अर ज्ञानमैं कछू प्रदेश भेद है नाही, गुण गुणी भेद है सो गौण है । यह आराधनाका फल पूर्वैं केवलज्ञान कह्या, सो है ॥ ३५ ॥

आगैं कहै हैं जो योगी जिनदेवके मतकरि रत्नत्रयकूं आराधै है सो आत्माकूं ध्यावै है;—

रयणत्तयं पि जोइ आराहइ जो हु जिणवरमएण ।
सो झायदि अप्पाणं परिहरइ परं ण संदेहो ॥३६॥

रत्नत्रयमपि योगी आराधयति यः स्फुटं जिनवरमतेन ।
सः ध्यायति आत्मानं परिहरति परं न सन्देहः ॥ ३६ ॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि जिनेश्वरदेवके मतकी आज्ञाकरि रत्नत्रय सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रकूं निश्चयकरि आराधै है सो प्रगटपणैं आत्मा हीकूं ध्यावै है जातैं रत्नत्रय आत्माका गुण है। अर गुण गुणीमैं भेद नांही, रत्नत्रयकी आराधना है सो आत्माहीका आराधन है सो ही परद्रव्यकूं छोडै है यामै संदेह नाही ॥ ३६ ॥

भावार्थ—सुगम है ॥ ३६ ॥

आगैं पूछ्या जो आत्माविषैं रत्नत्रय कैसे है ताका उत्तर आचार्य कहै हैं;—

जं जाणइ तं णाणं जं पिच्छइ तं च दंसणं णेय ।
तं चारित्तं भणियं परिहारो पुण्णपावाणं ॥ ३७ ॥

यत् जानाति तत् ज्ञानं यत्पश्यति तच्च दर्शनं ज्ञेयम् ।
तत् चारित्रं भणितं परिहारः पुण्यपापानाम् ॥ ३७ ॥

अर्थ—जो जाणै सो ज्ञान है; जो देखै सो दर्शन है, बहुरि जो पुण्य अर पापका परिहार है सो चारित्र है; ऐसैं जानना ॥

भावार्थ—इहां जाननेंवाला अर देखनेंवाला अर त्यागनेंवाला दर्शन ज्ञान चारित्रकूं कह्या सो ये तौ गुणीके गुण हैं ते कर्त्ता होय नांही यातैं जानन देखन त्यागन क्रियाका कर्त्ता आत्मा है, यातैं ये तीनूं आत्माही

हैं, गुण गुणीमैं किछू प्रदेश भेद है नांही। ऐसै रत्नत्रय है सो आत्माही है, ऐसैं जानना ॥ ३७ ॥

आगै इसही अर्थकूं अन्य प्रकार करि कहै हैं;-

तच्चरुई सम्मत्तं तच्चग्गहणं च हवइ सण्णाणं।
चारित्तं परिहारो पयपियं जिणवरिंदेहिं ॥३८॥

तत्वरुचिः सम्यक्त्वं तत्वग्रहणं च भवति संज्ञानम्।
चारित्रं परिहारः प्रजल्पितं जिनवरेन्द्रैः ॥३८॥

अर्थ- तत्वरुचि है सो सम्यक्त्व है, तत्त्वका ग्रहण है सो सम्यग्ज्ञान है, परिहार है सो चारित्रहै, ऐसैं जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेवनैं कह्या है॥

भावार्थ—जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा बंध मोक्ष इनि तत्वनिका श्रद्धान रुचि प्रतीति सो सम्यग्दर्शन है, बहुरि तिनिहीका जाननां सो सम्यग्ज्ञान है, बहुरि परद्रव्यका परिहार तिससंबंधी क्रियाकी निवृत्ति सो चारित्र है; ऐसैं जिनेश्वरदेवनैं कह्या है, इनिकूं निश्चय व्यवहार नय करि आगमकै अनुसार साधनां ॥ ३८ ॥

आगैं सम्यग्दर्शनकूं प्रधानकरि कहै हैं;--

दंसणसुद्धो सुद्धो दंसणसुद्धो लहेइ णिव्वाणं।
दंसणविहीणपुरिसो न लहइ तं इच्छियं लाहं ॥३९॥

दर्शनशुद्धः शुद्धः दर्शनशुद्धः लभते निर्वाणम्।
दर्शनविहीनपुरुषः न लभते तं इष्टं लाभम् ॥३९॥

अर्थ---जो पुरुष दर्शनकरि शुद्ध है सो ही शुद्ध है जातैं दर्शन शुद्ध है सो निर्वाणकूं पावै है, बहुरि जो पुरुष सम्यग्दर्शनकरि रहित है सो पुरुष ईप्सित लाभ जो मोक्ष ताहि न पावै है॥

भावार्थ---लोकमैं प्रसिद्ध है जो कोई पुरुष कछू वस्तु चाहै ताकी रुचि प्रतीति श्रद्धा न होय तौ ताकी प्राप्ति न होय यातैं सम्यग्दर्शनही निर्वाणकी प्राप्ति विषै प्रधान है॥ ३९॥

आगैं कहै हैं जो—ऐसा सम्यग्दर्शनका ग्रहणका उपदेश सार है ताकूं जो मानैं है सो सम्यक्त्व है;—

इय उवएसं सारं जरमरणहरं खु मण्णए जं तु ।
तं सम्मत्तं भणियं सवणाणं सावयाणं पि ॥ ४० ॥

इति उपदेशं सारं जरामरणहरं स्फुटं मन्यते यत्तु ।
तत् सम्यक्त्वं भणितं श्रमणानां श्रावकाणामपि ॥४०॥

अर्थ—इति कहिये ऐसा सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रका उपदेश है सो सार है जरा मरणका हरणेवाला है तहां याकूं जो मानैं है श्रद्धै है सो ही सम्यक्त्व कह्या है सो मुनिनिकू तथा श्रावकनिकूं सर्वहीकूं कह्या है तातैं सम्यक्त्वपूर्वक ज्ञान चारित्रकं अंगीकार करौ ॥

भावार्थ—जीवके जेते भाव हैं तिनिमैं सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र सार हैं उत्तम हैं जीवके हित है, बहुरि तिनिमैं भी सम्यग्दर्शन प्रधान है जातैं याबिनां ज्ञान चारित्रभी मिथ्या कहावै है, तातैं सम्यदर्शनकूं प्रधान जांणि पहलैं अगीकार करनां, यह उपदेश मुनि तथा श्रावक सबहीकूं है ॥ ४० ॥

आगैं सम्यग्ज्ञानका स्वरूप कहैं हैं,—

जीवाजीवविहत्ती जोई जाणेइ जिणवरमएण ।
तं सण्णाणं भणियं अवियत्थं सव्वदरसीहिं ॥ ४१ ॥

जीवाजीवविभक्ति योगी जानाति जिनवरमतेन ।
तत् संज्ञानं भणितं अवितथं सर्वदर्शिभिः ॥ ४१ ॥

अर्थ—जो योगी मुनि जीव अजीव पदार्थका भेद जिनवरके मतकरि जाणै है सो सम्यग्ज्ञान सर्वदर्शी सर्वका देखनेवाला सर्वज्ञदेवनैं कह्या है सो ही सत्यार्थ है, अन्य छद्मस्थका कह्या सत्यार्थ नाही असत्यार्थ है, सर्वज्ञका कह्या ही सत्यार्थ है ॥

भावार्थ---सर्वज्ञदेव जीव पुद्गल धर्म अधर्म आकाश काल ये छह द्रव्य कहे हैं तिनिमैं जीव तौ दर्शनज्ञानमयी चेतना स्वरूप कह्या है सो अमूर्तीक है स्पर्श रस गंध वर्ण इनितैं रहित है अर पुद्गल आदि पांच अजीव कहे हैं ते अचेतन हैं जड़ हैं। तिनिमैं पुद्गल स्पर्श रस गंध वर्ण शब्दसहित मूर्तीक है इंद्रियगोचर है, अन्य अमूर्तीक हैं, तहां आकाशादि च्यारि तौ जैसें हैं तैसें तिष्ठै हैं, अर जीव पुद्गलकै अनादिसंबंध है छद्मस्थकै इंद्रियगोचर पुद्गलस्कंध हैं तिनिकूं ग्रहणकरि रागद्वेष मोहरूप परिणमै है शरीरादिकूं आपा मानै है तथा इष्ट अनिष्ट मानि रागद्वेषरूप होय है यातैं नवीन पुद्गल कर्मरूप होय बंधकूं प्राप्त होय है, यह निमित्त नैमित्तिक भाव है, ऐसैं यह जीव अज्ञानी भया संता जीव पुद्गलका भेदकूं न जानि मिथ्याज्ञानी होय है। यातैं आचार्य कहै हैं जो जिनदेवके मततैं जीव अजीवका भेद जानि सम्यग्दर्शनका स्वरूप जानना, बहुरि यह जिनदेव कह्या सो ही सत्यार्थ है प्रमाण नयकरि ऐसैं ही सिद्ध होय है तातैं जिनदेव सर्वज्ञ है सो सर्व वस्तुकूं प्रत्यक्ष देखिकरि कह्या है। अन्यमती छद्मस्थ हैं तिनिनैं अपनी बुद्धिमैं आया तैसैं कल्पना करि कह्या है सो प्रमाणसिद्ध नांही, तिनिमैं केई वेदान्ती तौ एक ब्रह्ममात्र कहैं है अन्य किछू वस्तुभूत नांही मायारूप अवस्तु है ऐसै मानैं हैं, अर केई नैयायिक वैशेषिक जीवकूं सर्वथा नित्य सर्वगत कहैं हैं जीवकै अर ज्ञानगुणकै सर्वथा भेद मानै हैं अर अन्य कार्यमात्र हैं तिनिकूं ईश्वर करै है ऐसैं मानै हैं, बहुरि केई सांख्यमती पुरुषकूं उदासीन चैतन्यस्वरूप मानि सर्वथा अकर्त्ता मानै हैं ज्ञानकूं प्रधानका धर्म मानैं हैं, केई बौद्धमती सर्व वस्तुकूं क्षणिक मानैं हैं सर्वथा अनित्य मानैं हैं तिनिमैं भी मतभेद अनेक हैं, केई विज्ञानमात्र तत्व मानैं हैं केई सर्वथा शून्य मानैं हैं कोई अन्यप्रकार मानैं हैं, बहुरि मीमांसक कर्मकाण्डमात्रही तत्व मानैं हैं जीवकूं अणुमात्र मानैं हैं तौऊ कछू परमार्थ नित्य वस्तु नांही इत्यादि मानैं हैं, बहुरि चार्वाकमती जीवकूं तत्व मानैं नांही पंचभूततैं जीवकी उत्पत्ति मानैं हैं। इत्यादि बुद्धिकल्पित तत्व मानि

परस्पर विवाद करै हैं, सो युक्तही है—वस्तुका पूर्णरूप दीखै नांही तब जैसैं अंधे हस्तीका विवाद करैं तैसैं विवादही होय, तातैं जिनदेव सर्वज्ञ है वस्तुका पूर्णरूप देख्या है सोही कह्या है सो प्रमाण नयनिकरि अनेकान्तस्वरूप सिद्ध होय है सो इनिकी चर्चा हेतुवादके जैनके न्यायशास्त्र है तिनितैं जानी जाय है; यातैं यह उपदेश है-जिनमतमैं जीवाजीवका स्वरूप सत्यार्थ कह्या है ताकूं जानैं है सो सम्यग्ज्ञान है ऐसा जांणि जिनदेवकी आज्ञा मांनि सम्यग्ज्ञानकूं अंगीकार करना, याहीतैं सम्यक्चारित्र की प्राप्ति होय है, ऐसैं जानना ॥

आगैं सम्यक्चारित्रका स्वरूप कहै हैं,—

जं जाणिऊण जोई परिहारं कुणइ पुण्णपावाणं ।
तं चारित्तं भणियं अवियप्पं कम्मरहिएहिं ॥ ४२ ॥

यत् ज्ञात्वा योगी परिहारं करोति पुण्यपापानाम् ।
तत् चारित्रं भणितं अविकल्पं कर्मरहितैः ॥ ४२ ॥

अर्थ—योगी ध्यानी मुनि है सो तिस पूर्वोक्त जीवका भेदरूप सत्यार्थ सम्यग्ज्ञान ताहि जानिकरि अर पुण्य तथा पाप इनि दोऊनिका परिहार करै त्यागकरै सो चारित्र घातिकर्मतैं रहित जो सर्वज्ञ देव तानैं कह्या है, कैसा है निर्विकल्प है प्रवृत्तिरूप जे क्रियाके विकल्प तिनिकरि रहित है ॥ ४२ ॥

भावार्थ-चारित्र निश्चय व्यवहार भेदकरि दोय भेदरूप है, तहां महाव्रत-समिति गुप्तिके भेदकरि कह्या है सो तौ व्यवहार है तिनिमैं प्रवृत्तिरूप क्रिया है सो शुभकर्मरूप बंध करै है अर इनि क्रियानिमैं जेता अंश निवृत्ति है ताका फल बंध नांही है, ताका फल कर्मकी एक देश निर्जरा है। अर सर्व कर्मतैं रहित अपनां आत्मस्वरूपमैं लीन होनां सो निश्चय चारित्र है ताका फल कर्मका नाशही है, सो यह पुण्य पापके

परिहाररूप निर्विकल्प है, पापका तो त्याग मुनिकै है ही, अर पुण्यका त्याग ऐसैं जो—शुभ क्रियाका फल पुण्य कर्मका बंध है ताकी वांछा नांहीहै; बंधके नाशका उपाय निर्विकल्प निश्चय चारित्रका प्रधान उद्यम है। ऐसैं इहां निर्विकल्प पुण्य पापकरि रहित ऐसा निश्चय चारित्र कह्या है। चौदह्वें गुणस्थानके अंतसमय पूर्ण चारित्र होय है, तिसतैं लगताही मोक्ष होय है ऐसा सिद्धांत है ॥ ४२ ॥

आगैं कहै हैं जो-ऐसे रत्नत्रयसहित भया तप संयम समिति पालता शुद्धात्माकूं ध्यावता मुनि निर्वाण पावै है,—

जो रयणत्तयजुत्तो कुणइ तवं संजदो ससत्तीए।
सो पावइ परमपयं झायंतो अप्पयं सुद्धं ॥ ४३ ॥

यः रत्नत्रययुक्तः करोति तपः संयतः स्वशक्त्या।
सः प्राप्नोति परमपदं ध्यायन् आत्मानं शुद्धम् ॥४३॥

अर्थ-जो मुनि रत्नत्रयसंयुक्त भया संता संयमी अपनी शक्तिसारू तप करै है सो शुद्ध आत्माकूं ध्यावता संता परमपद जो निर्वाण ताहि पावै है ॥

भावार्थ-जो मुनि संयमी पंच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्ति यह तेरह प्रकार चारित्र सोही प्रवृत्तिरूप व्यवहार चारित्र संयम ताकूं अंगीकार करि अर पूर्वोक्त प्रकार निश्चय चारित्रकरि युक्त भया अपनी शक्तिसारू उपवास कायक्लेशादि बाह्य तप करै है सो मुनि अन्तरंग तप जो ध्यान ताकरि शुद्ध आत्माकूं एकाग्र चित्तकरि ध्यावता सन्ता निर्वाणकूं पावै है ॥ ४३ ॥

आगैं कहै हैं जो-ध्यानी मुनि ऐसा भया परमात्माकूं ध्यावै है,—

तिहि तिण्णि धरवि णिचं तियरहिओ तह तिएण परियरिओ।
दोदोसविप्पमुक्को परमप्पा झायए जोई ॥ ४४ ॥

त्रिभिः त्रीन् धृत्वा नित्यं त्रिकरहितः तथा त्रिकेण परिकरितः।
द्विदोषविप्रमुक्तः परमात्मानं ध्यायते योगी ॥ ४४ ॥

अर्थ—'त्रिभि.' कहिये मन वचन कायकरि, "त्रीन्" कहिये वर्षा शीत ऊष्ण तीन कालयोग तिनिहि धरि करि, बहुरि त्रिकरहित कहिये माया मिथ्या निदान तीन शल्य तीनकरि रहित भया, तथा "त्रिकेण परिकरितः" दर्शन ज्ञान चारित्र करि मंडित भया ,बहुरि दो दोष कहिये राग द्वेष तेही भये दोष तिनिकरि रहित भया योगी ध्यानी मुनि है सो परमात्मा जो सर्वकर्मरहित शुद्ध परमात्मा ताकूं ध्यावे है ॥

भावार्थ—मन वचन कायकरि तीन काल योग धरि परमात्माकूं ध्यावे सो ऐसें कष्टमैं दृढ रहै तब जाणिये याके ध्यानकी सिद्धि है, कष्ट आये चिगिजाय तब ध्यानकी सिद्धि काहेकी ? बहुरि कोई प्रकारकी चित्तमैं शल्य रहै तब चित्त एकाग्र होय नांही तब ध्यान कैसै होय ? तातैं शल्य रहित कह्या, बहुरि श्रद्धान ज्ञान आचरण यथार्थ न होय तब ध्यान काहेका तातैं दर्शन ज्ञान चारित्र मंडित कह्या, बहुरि राग द्वेष इष्ट अनिष्ट बुद्धि रहै तब ध्यान कैसैं होय ? तातैं परमात्माका ध्यान करै सो ऐसा होय करै, यह तात्पर्य है ॥ ४४ ॥

आगैं कहै हैं जो—ऐसा होय सो उत्तम सुखकूं पावै है,—

मयमायकोहरहिओ लोहेण विवज्जिओ य जो जीवो ।
णिम्मलसहावजुत्तो सो पावइ उत्तमं सोक्खं ॥४५॥

मदमायाक्रोधरहितः लोभेन विवर्जितश्च यः जीवः ।
निर्मलस्वभावयुक्तः सः प्राप्नोति उत्तमं सौख्यम् ॥४५॥

अर्थ—जो जीव मद माया क्रोध इनिकरि रहित होय बहुरि लोभ करि विशेषकरि रहित होय सो जीव निर्मल विशुद्ध स्वभावयुक्त भया उत्तम सुखकूं पावै है ॥

भावार्थ—लोकमैं ऐसैं है जो मद कहिये अतिमानी बहुरि माया कपट अर क्रोध इनिकरि रहित होय अर लोभकरि विशेष रहित होय सो सुख पावै है, तीव्रकषायी अति आकुलतायुक्त होय निरंतर दुखी रहै है; सो यह रीति मोक्षमार्गमैं भी जाणूं—जो क्रोध मान माया लोभ च्यार कषायतैं रहित होय है तब निर्मल भाव होय तब यथाख्यात चारित्र पाय उत्तम सुख पावै है ॥ ४५ ॥

आगैं कहै है जो विषय कषायनिमैं आसक्त है परमात्माकी भावनातैं रहित है रौद्रपरिणामी है सो जिनमतसूं पराङ्मुख है सो मोक्षके सुखनिकूं नांही पावै है,—

विसयकसाएहि जुदो रुद्दो परमप्पभावरहियमणो ।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणमुद्दपरम्मुहो जीवो ॥४६॥

विषयकषायैः युक्तः रुद्रः परमात्मभावरहितमनाः ।
सः न लभते सिद्धिसुखं जिनमुद्रापराङ्मुखः जीवः ॥४६॥

अर्थ—जो जीव विषय कषायनिकरि युक्त है, बहुरि रुद्रपरिणामी है हिंसादिक विषयकषायादिक पापनिविषैं हर्षसहित प्रवर्त्तै है, बहुरि परमात्माकी भावनाकरि रहित है चित्त जाका ऐसा जीव जिनमुद्रातैं पराङ्मुख है सो ऐसा सिद्धिसुख जो मोक्षका सुख ताहि नांही पावै है ॥

भावार्थ—जिनमतमैं ऐसा उपदेश है जो हिंसादिक पापनितैं विरक्त अर विषय कषायनिमैं आसक्त नाही अर परमात्माका स्वरूप जांणि तिसकी भावनासहित जीव होय है सो मोक्ष पावै है तातैं जिनमतकी मुद्रासूं जो पराङ्मुख है ताकै काहेतैं मोक्ष होय संसारहीमैं भ्रमै है। इहां रुद्रका विशेषण किया है ताका ऐसा भी आशय है जो रुद्र ग्यारा होय हैं ते, विषय कषायनिमैं आसक्त होय, जिनमुद्रातैं भ्रष्ट होय हैं तिनकै मोक्ष न होय है, तिनिकी कथा पुराणनितैं जाननी ॥ ४६ ॥

आगैं कहै हैं जो—जिनमुद्रातैं मोक्ष होय है सो यहु मुद्रा जिनि जीवनिकूं न रुचै है ते संसारमैं ही तिष्ठैं हैं,—

जिणमुद्दं सिद्धिसुहं हवेइ णियमेण जिणवरुद्दिट्ठा।
सिविणे वि ण रुच्चइ पुण जीवा अच्छंति भवगहणे ॥४७॥

जिनमुद्रा सिद्धिसुखं भवति नियमेन जिनवरोद्दिष्टा।
स्वप्नेऽपि न रोचते पुनः जीवाः तिष्ठंति भवगहने ॥४७॥

अर्थ—जिनमुद्रा है सो ही सिद्धिसुख है मुक्तिसुखही है, यह कारणविषैं कार्यका उपचार जाननां, जिनमुद्रा मोक्षका कारण है मोक्षसुख ताका कार्य है कैसी है जिनमुद्रा—जिन भगवाननैं जैसी कही है तैसीही है। तहा ऐसी जिनमुद्रा जो जीवकूं साक्षात् तौ दूरिही रहो स्वप्नविषैंभी कदाचित् भी न रुचै है ताका स्वप्ना आवै है तौहू अवज्ञा आवै है तौ सो जीव संसाररूप गहन वनविषैं तिष्ठै है मोक्षके सुखकूं नांही पावै है॥

भावार्थ—जिनदेवभाषित जिनमुद्रा मोक्षका कारण है सो मोक्षरूप ही है जातैं जिनमुद्राके धारक वर्त्तमानमैंभी स्वाधीन सुखकूं भोगवैं हैं अर पीछैं मोक्षके सुख पावै हैं। अर जा जीवकूं यह न रुचै है सो मोक्ष नांही पावै हैं संसारहीमैं रहैं हैं॥ ४७॥

आगैं कहै हैं जो परमात्माकूं ध्यावै है सो योगी लोभरहित होय नवीन कर्मका आस्रव नाही करै हैं,—

परमप्पय झायंतो जोई मुच्चेइ मलदलोहेण।
णादियदि णव कम्मं णिद्दिट्ठं जिणवरिंदेहिं॥ ४८॥

परमात्मानं ध्यायन् योगी मुच्यते मलदलोभेन।
नाद्रियते नवं कर्म निर्दिष्टं जिनवरेन्द्रैः॥ ४८॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी परमात्माकूं ध्यावता संता वर्तै है सो मल-का देनहारा जो लोभकषाय ताकरि छूटिये हैं ताकैं लोभ मल न लागैं

है याहीतैं नवीन कर्मका आस्रव ताकै न होय यह जिनवरेन्द्र तीर्थंकर सर्वज्ञदेवनैं कह्या है ॥

भावार्थ—मुनिभी होय अर परजन्मसंबंधी प्राप्तिका लोभ होय निदान करै ताकै परमात्माका ध्यान नांही यातैं जो परमात्माका ध्यान करै ताकै इस लोक परलोकसंबंधी परद्रव्यका कछू भी लोभ न होय है याहीतैं ताकै नवीनकर्मका आस्रव न होय है, यह जिनदेव कही है। यह लोभ-कषाय ऐसा है जो—दशम गुणस्थान तांई पहुंचि अव्यक्त होय भी आत्माकै मल लगावै है तातैं याका काटनाही युक्त है। अथवा जहां तांई मोक्षकी चाहरूप लोभ रहै तहां तांई मोक्ष न होय तातैं लोभका अत्यन्त निषेध है ॥ ४८ ॥

आगैं कहै हैं जो ऐसैं निर्लोभी होय दृढ सम्यक्त्व ज्ञान चारित्रवान होय परमात्माकूं ध्यावै सो परमपदकू पावै है,—

होऊण दिढचरित्तो दिढसम्मत्तेण भावियमईओ ।
झायंतो अप्पाणं परमपयं पावए जोई ॥ ४९ ॥

भूत्वा दृढचरित्रः दृढसम्यक्त्वेन भावितमतिः ।
ध्यायन्नात्मानं परमपदं प्राप्नोति योगी ॥ ४९ ॥

अर्थ—ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार योगी ध्यानी मुनि दृढसम्यक्त्वकरि भावित है मति जाकी बहुरि दृढ है चारित्र जाकै ऐसा होयकरि आत्माकूं ध्यावता संता परमपद जो परमात्मपद ताकूं पावै है ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्ररूप दृढ होय परीषह आये न चिगै, ऐसैं आत्माकूं ध्यावै सो परमपद पावै यह तात्पर्य है ॥ ४८ ॥

आगैं दर्शन ज्ञान चारित्रतैं निर्वाण होय है ऐसा कहते आये सो तहां दर्शन ज्ञान तौ जीवका स्वरूप है ते जाणें, अर चारित्र कहा है? ऐसी आशंकाका उत्तर कहै हैं,—

चरणं हवइ सधम्मो धम्मो सो हवइ अप्पसमभावो ।
सो रागरोसरहिओ जीवस्स अणण्णपरिणामो ॥ ५० ॥

चरणं भवति स्वधर्मः धर्मः सः भवति आत्मसमभावः ।
स रागरोषरहितः जीवस्य अनन्यपरिणामः ॥ ५० ॥

अर्थ—स्वधर्म कहिये आत्माका धर्म है सो चरण कहिये चारित्र है, बहुरि धर्म है सो आत्मसमभाव है सर्व जीवनिविषैं समानभाव है जो अपना धर्म है सोही सर्व जीवनिमैं है अथवा सर्व जीवनिकूं आपसमान मानना है. बहुरि जो आत्मस्वभावमें रागद्वेषकरि रहित है काहूतैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि नाही है ऐसा चारित्र है सो जैसैं जीवके दर्शन ज्ञान है तैसैंही अनन्य परिणाम है जीवहीका भाव है ॥

भावार्थ—चारित्र है सो ज्ञान विषैं रागद्वेषरहित निराकुलतारूप थिरता भाव है सो जीवहीका अभेदरूप परिणाम है, कछू अन्य वस्तु नांही है ॥ ५० ॥

आगैं जीवके परिणामकै स्वच्छताकूं दृष्टान्तकरि दिखावै हैं,—

जह फलिहमणि विसुद्धो परदव्वजुदो हवेइ अण्णं सो ।
तह रागादिविजुत्तो जीवो हवदि हु अणण्णविहो॥५१॥

यथा स्फटिकमणिः विशुद्धः परद्रव्ययुतः भवत्यन्यः सः ।
तथा रागादिवियुक्तः जीवः भवति स्फुटमन्यान्यविधः ॥५१॥

अर्थ—जैसैं स्फटिकमणि विशुद्ध है निर्मल है उज्ज्वल है सो परद्रव्य जो पीत रक्त हरित पुष्पादिक तिनिकरि युक्त भया अन्य सा दीखै पीतादिवर्णमयी दीखै, तैसैं जीव है सो विशुद्ध है स्वच्छस्वभाव है सो रागद्वेषादिक भावकरि युक्त भया संता अन्य अन्य प्रकार भया दीखै है यह प्रगट है ॥

भावार्थ—इहां ऐसा जाननां जे रागादि विकार हैं ते पुद्गलके विकार हैं अर यह जीवके ज्ञानविषैं आय झलकै तब तिनितैं उपयुक्त भया ऐसैं जानै जो ये भाव मेरेही हैं तिनिका भेदज्ञान न होय तब जीव अन्य अन्य प्रकाररूप अनुभवमैं आवै है तहां स्फटिकमणिका दृष्टान्त है ताकै अन्यद्रव्य पुष्पादिकका डांक लागै तब अन्यसा दीखै है, ऐसैं जीवके स्वच्छभावकी विचित्रता जाननीं ॥ ५१ ॥

याहीतैं आगे कहै हैं जो जेतैं मुनिकै रागद्वेषका अंश होय है तेतैं सम्यग्दर्शनकूं धारता भी ऐसा होय है,—

देव गुरुम्मिय भत्तो साहम्मिय संजदेसु अणुरत्तो ।
सम्मत्तमुव्वहंतो झाणरओ होइ जोई सो ॥५२॥

देवे गुरौ च भक्तः साधर्मिके च संयतेषु अनुरक्तः ।
सम्यक्त्वमुद्वहन् ध्यानरतः भवति योगी सः ॥ ५२ ॥

अर्थ—जो योगी ध्यानी मुनि सम्यक्त्वकूं धारता संता है अर जे तैं यथाख्यात चारित्रकूं न प्राप्त होय है तेतैं देव जो अरहंत सिद्ध अरु गुरु जो शिक्षादीक्षाका देनेवाला इनि विषैं तौ भक्तियुक्त होय है इनिकी भक्ति विनय सहित होय है, बहुरि अन्य संयमी मुनि आपसमान धर्मसहित हैं तिनिविषैं अनुरक्त है अनुरागसहित होय है सो ही मुनि ध्यानविषै प्रीतिवान होय है, अर मुनि होयकरिभी देव गुरु साधर्मीनिविषैं भक्ति अनुरागसहित न होय ताकूं ध्यानकै विषैं रुचिवान न कहिये जातैं ध्यान होय ताकै ध्यानवालासूं रुचि प्रीति होय, ध्यानवाले न रुचैं तब जानिये याकूं ध्यान भी न रुचै ऐसैं जानना ॥ ५२ ॥

आगैं कहै हैं जो—ध्यान सम्यग्ज्ञानीकै होय है सो ही तप करि कर्मका क्षय करै है,—

उग्गतवेणण्णाणी जं कम्मं खवदि भवहि बहुएहिं ।
तं णाणी तिहि गुत्तो खवेइ अंतोमुहुत्तेण ॥५३॥

तब काहेकूं राग द्वेष होय, चारित्रमोहके उदयतैं कछू धर्मराग होय ताकूं भी रोग जाणि भला न जाणै तब अन्यसूं कैसैं राग होय, परद्रव्यसूं राग द्वेष करै सो तौ अज्ञानी है; ऐसैं जानना ॥ ५४ ॥

आगैं कहै हैं जो जैसैं परद्रव्यकै विषैं रागभाव होय है तैसैं मोक्षकै निमित्तभी राग होय तौ सो भी राग आस्रवका कारण है, सो भी ज्ञानी न करै,—

आसवहेदू य तहा भावं मोक्खस्स कारणं हवदि ।
सो तेण दु अण्णाणी आदसहावा दु विवरीओ ॥ ५५ ॥

आस्रवहेतुश्च तथा भावः मोक्षस्य कारणं भवति ।
सः तेन तु अज्ञानी आत्मस्वभावात्तु विपरीतः ॥५५॥

अर्थ—जैसैं परद्रव्यविषैं राग कर्मबंधका कारण पूर्वैं कह्या तैसाही राग भाव जो मोक्षनिमित्तभी होय तौ आस्रवहीका कारण है कर्मका बंधही करै है तिस कारणकरि जो मोक्षकूं परद्रव्यको ज्यों इष्ट मानि तैसैं ही रागभाव करै तौ सो जीव मुनिभी अज्ञानी है जातैं कैसा है सो आत्मस्वभावतैं विपरीत है, आत्मस्वभावकूं जान्या नाहीं ॥

भावार्थ—मोक्ष तौ सर्व कर्मनितैं रहित अपनांही स्वभाव है आपकूं सर्व कर्म रहित होनां, तातैं ये भी रागभाव ज्ञानीकै न होय, यद्यपि चारित्र मोहका उदय होय तौ तिस रागकूं बंधका कारण जाणि रोगवत् छोड्या चाहै तौ ज्ञानी है ही, अर इस रागभावकूं भला जांणि आप करै तौ अज्ञानी है आत्माका स्वभाव सर्व रागादिकतैं रहित है ताकूं यानैं न जान्या; ऐसैं रागभावकूं मोक्षका कारण अर भला जानि करै ताका निषेध जाननां ॥ ५५ ॥

आगैं कहै हैं जो—कर्महीं मात्र सिद्धि मानै है तानैं आत्मस्वभाव जान्यां नांही सो अज्ञानी है जिनमततैं प्रतिकूल है,—

जो कम्मजादमइओ सहावणाणस्स खंडदूसयरो ।
सो तेण दु अण्णाणी जिणसासणदूसगो भणिदो ॥५६॥

यः कर्मजातमतिकः स्वभावज्ञानस्य खंडदूषणकरः ।
सः तेन तु अज्ञानी जिनशासनदूषकः भणितः ॥५६॥

अर्थ—जो कर्महीके विषै उपजै है बुद्धि जाकै ऐसा पुरुष है सो स्वभावज्ञान जो केवलज्ञान ताकूं खंडरूप दूषणका करनेवाला है, इंद्रियज्ञान खंडखंडरूप है अपने अपने विषयकू जानैं है तिसमात्रही ज्ञानकूं मानैं है तिस कारणकरि ऐसैं माननेवाला अज्ञानी है जिनमतका दूषण करै है ॥

भावार्थ—मीमासकमती कर्मवादी हैं सर्वज्ञकूं मानैं नांही, इन्द्रियज्ञानमात्रही ज्ञानकूं माने हैं, केवलज्ञानकूं मानैं नांही, ताका इहां निषेध किया है जातैं जिनमतमैं आत्माका स्वभाव सर्वका जाननेवाला केवलज्ञानस्वरूप कह्या है सो कर्मके निमित्ततैं आच्छादित होय इंद्रियनिकै द्वारै क्षयोपशमके निमित्ततैं खंडरूप भया खंड खंड विषयनिकूं जानैं है; कर्मका नाश भये केवलज्ञान प्रगट होय तब आत्मा सर्वज्ञ होय है ऐसैं मीमासक मती मानैं नाही सो अज्ञानी है जिनमततैं प्रतिकूल है कर्ममात्रहीक विषैं जाकी बुद्धि गत होय रही है, ऐसैं कोऊ और भी मानैं सो ऐसा ही जानना ॥ ५६ ॥

आगै कहै हैं जो ज्ञान चारित्र रहित होय अर तप सम्यक्त्व रहित होय अर अन्य भी क्रिया भावपूर्वक न होय तौ ऐसै केवल लिंग भेषमात्रही करि कहा सुख है ? किछू भी नांही;—

णाणं चरित्तहीणं दंसणहीणं तवेहिं संजुत्तं ।
अण्णेसु भावरहियं लिंगग्गहणेण किं सोक्खं ॥५७॥

ज्ञानं चारित्रहीनं दर्शनहीनं तपोभि: संयुक्तम् ।
अन्येषु भावरहितं लिंगग्रहणेन किं सौख्यम् ॥५७॥

अर्थ—जहां ज्ञान तौ चारित्ररहित है, बहुरि जहां तपकरि तौ युक्त है अर दर्शन जो सम्यक्त्व ताकरि रहित है, बहुरि अन्य भी आवश्यक आदि क्रिया हैं तिनि विषैं शुद्धभाव नांही है, ऐसैं लिग जो भेष ताके ग्रहणविषैं कहा सुख है ॥

भावार्थ—कोई मुनि भेषमात्र तौ मुनि भयो अर शास्त्र भी पढैं हैं ताकूं कहै हैं जो—शास्त्र पढि ज्ञान तौ किया परन्तु निश्चय चारित्र जो शुद्ध आत्माका अनुभवरूप तथा बाह्य चारित्र निर्दोष न किया अर तपका क्लेश बहुत किया अर सम्यक्त्व भावना न भई अर आवश्यक आदि बाह्य क्रियाकरी अर भाव शुद्ध न लगाया तौ ऐसै बाह्य भेषमात्रमैं तौ क्लेश ही भया कुछ शान्तभावरूप सुख तौ न भया अर यहु भेष परलोकके सुखके विषैं भी कारण न भया, तातैं सम्यक्त्वपूर्वक भेष धारना श्रेष्ठ है ॥ ५७ ॥

आगैं साख्यमती आदिका आशयका निषेध करै हैं;

अचेयणं पि चेदा जो मण्णइ सो हवेइ अण्णाणी ।
सो पुण णाणी भणिओ जो मण्णइ चेयणे चेदा ॥५८॥

अचेतनेपि चेतनं यः मन्यते सः भवति अज्ञानी ।
सः पुनः ज्ञानी भणितः यः मन्यते चेतने चेतनम् ॥५८॥

अर्थ—जो अचेतनविषैं चेतनकूं मानैं है सो अज्ञानी है बहुरि जो चेतनविषैं ही चेतनकूं मानै है सो ज्ञानी कह्या है ॥

भावार्थ—सांख्यमती ऐसैं कहै है जो पुरुष तौ उदासीन चेतनास्वरूप नित्य है अर यह ज्ञान है सो प्रधान धर्म है, ताके मतमैं सो पुरुषकूं उदासीन चेतनास्वरूप मान्या सो ज्ञान विना तौ जडही भया, ज्ञानबिना

चेतन काहेका ? बहुरि ज्ञानकूं प्रधानका धर्म मान्या अर प्रधानकूं जड मान्यां तब अचेतनविषैं चेतना मानी तब अज्ञानीही भया। बहुरि नैयायिक वैशेषिकमती गुण गुणीकै सर्वथा भेद मानैं है तब चेतना गुण जीवतैं न्यारा मान्या तब जीव तौ अचेतनही रह्या ऐसैं अचेतनविषैं चेतनपणा मान्या। बहुरि भूतवादी चार्वाक भूत पृथ्वी आदिकतैं चेतनता उपजी मानै है तहां भूत तौ जड है तिनिविषै चेतनता कैसैं उपजै। इत्यादिक अन्य भी केई मानैं हैं ते सारे अज्ञानी हैं तातैं चेतनविषैं ही चेतन मानै सो ज्ञानी है, यह जिनमत है ॥ ५८ ॥

आगैं कहै हैं जो तपरहित तौ ज्ञान अर ज्ञानरहित तप ये दोऊ ही अकार्य हैं दोऊ संयुक्त भयेही निर्वाण है,—

तवरहियं जं णाणं णाणविजुत्तो तवो वि अकयत्थो।
तम्हा णाणतवेणं संजुत्तो लहइ णिव्वाणं ॥ ५९ ॥

तपोरहितं यत् ज्ञानं ज्ञानवियुक्तं तपः अपि अकृतार्थम्।
तस्मात् ज्ञानतपसा संयुक्तः लभते निर्वाणम् ॥ ५९ ॥

अर्थ—जो ज्ञान तपरहित है बहुरि जो तप है सो भी ज्ञानरहित है तौ दोऊही आकार्य हैं तातैं ज्ञान तपकरि संयुक्त है सो निर्वाणकूं पावै है ॥

भावार्थ—अन्यमती सांख्यादिक कोई तौ ज्ञानचर्चा तौ बहुत करै है अर कहै है— ज्ञानहीतैं मुक्ति है अर तप करै नाहीं, विषयकषायनिकूं प्रधानका धर्म मांनि स्वच्छंद प्रवर्त्तै। बहुरि केई ज्ञानकूं निष्फल मानि अर त कूं यथार्थ जानैं नांही अर तप क्लेशादिकहीतैं सिद्धि मानि ताके करनेमैं तत्पर रहै। तहां आचार्य कहै हैं—ये दोऊही अज्ञानी हैं जे ज्ञानसहित तप करै हैं ते ज्ञानी हैं वैंही मोक्ष पावैं हैं, यह अनेकांतस्वरूप जिनमतका उपदेश है ॥ ५९ ॥

आगैं याही अर्थकूं उदाहरणतैं दृढ करै हैं,—

धुवसिद्धी तित्थयरो चउणाणजुदो करेइ तवयरणं ।
णाऊण धुवं कुज्जा तवयरण णाणजुत्तो वि ॥ ६० ॥

ध्रुवसिद्धिस्तीर्थंकरः चतुर्ज्ञानयुतः करोति तपश्चरणम् ।
ज्ञात्वा ध्रुवं कुर्यात् तपश्चरणं ज्ञानयुक्तः अपि ॥ ६० ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं-देखो जाकै नियमकरि मोक्ष होनी है अर च्यार ज्ञान मति श्रुत अवधि मनःपर्यय इनिकरि युक्त है ऐसा तीर्थंकर है सो भी तपश्चरण करै है, ऐसैं निश्चय करि जानि ज्ञानकरि युक्त होतैं भी तप करना योग्य है ॥

भावार्थ—तीर्थंकर मति श्रुति अवधि इनि तीन ज्ञान सहित तौ जनमै है बहुरि दीक्षा लेतैंही मन.पर्यय ज्ञान उपजै है बहुरि मोक्ष जाकै नियमकरि होनी है तोऊ तप करै हैं, तातैं ऐसा जांनि ज्ञान होतैंभी तप करनेविषैं तत्पर होनां, ज्ञानमात्रहीतैं मुक्ति न माननीं ॥ ६० ॥

आगैं जो बाह्यलिंगकरि सहित है अर अभ्यंतरलिंगरहित है सो स्वरूपाचरण चारित्रतैं भ्रष्ट भया मोक्षमार्गका विनाश करनेवाला है, ऐसा सामान्यकरि कहै हैं;—

बाहिरलिंगेण जुदो अब्भंतरलिंगरहियपरियम्मो ।
सो सगचरित्तभट्ठो मोक्खपहविणासगो साहू ॥ ६१ ॥

बाह्यलिंगेन युतः अभ्यंतरलिंगरहितपरिकर्म्मा ।
सः स्वकचारित्रभ्रष्टः मोक्षपथविनाशकः साधुः ॥ ६१ ॥

अर्थ—जो जीव बाह्यलिंग भेषकरि संयुक्त है, अर अभ्यन्तरलिंग जो परद्रव्यतैं सर्व रागादिक ममत्वभावतैं रहित आत्माका अनुभवन ताकरि रहित है परिकर्म कहिये परिवर्त्तन जामैं ऐसा मुनि है सो स्वकचारित्र कहिये अपनां आत्मस्वरूपका आचरण जो चरित्र ताकरि भ्रष्ट है, याहीतैं मोक्षमार्गका विनाश करनेंवाला है ।

भावार्थ—यह संक्षेपकरि कह्या जानूं जो बाह्यलिंगसंयुक्त है अर अभ्यंतर कहिये भावलिंग रहित है सो स्वरूपाचरण चारित्रतैं भ्रष्ट भया मोक्षमार्गका नाश करनेंवाला है ॥ ६१ ॥

आगैं कहै हैं—जो सुखकरि भाया ज्ञान है सो दुःख आये नष्ट होय है तातैं तपश्चरणसहित ज्ञानकूं भावनां;—

सुहेण भाविदं णाणं दुहे जादे विणस्सदि ।
तम्हा जहाबलं जोई अप्पा दुक्खेहि भावए ॥ ६२ ॥

सुखेन भावितं ज्ञानं दुःखे जाते विनश्यति ।
तस्मात् यथाबलं योगी आत्मानं दुःखैः भावयेत् ॥६२॥

अर्थ—जो सुखकरि भाया हुआ ज्ञान है सो उपसर्ग परीषहादिकरि दुःखकूं उपजेतैं नष्ट होजाय है तातैं यह उपदेश है जो योगी ध्यानी मुनि है सो तपश्चरणादिके कष्ट दुःखसहित आत्माकूं भावै ॥

भावार्थ—तपश्चरणका कष्ट अंगीकार करि ज्ञानकूं भावै तौ परीषह आये ज्ञानभावनातैं चिगै नांहीं तातैं शक्तिसारू दुःख सहित ज्ञानकूं भावनां, सुखहीमैं भावै दुःख आये व्याकुल होय तब ज्ञानभावना न रहै; तातैं यह उपदेश है ॥ ६२ ॥

आगैं कहै हैं जो—आहार आसन निद्रा इनिकूं जीतिकरि आत्माकूं ध्यावनां;—

आहारासणणिद्दाजयं च काऊण जिणवरमएण ।
झायव्वो णियअप्पा णाऊणं गुरुपसाएण ॥ ६३ ॥

आहारासननिद्राजयं च कृत्वा जिनवरमतेन ।
ध्यातव्यः निजात्मा ज्ञात्वा गुरुप्रसादेन ॥ ६३ ॥

अर्थ—आहार आसन निद्रा इनिकूं जीतिकरि अर जिनवरके मत करि गुरुके प्रसादकरि जानि निज आत्माकूं ध्यावणां ॥

भावार्थ—आहार आसन निद्राकूं जीतिकरि आत्माकूं ध्यावनां तौ अन्यमतीभी कहैं है परन्तु तिनिकै यथार्थ विधान नांहीं तातैं आचार्य कहै हैं कि जैसैं जिनमतमैं कह्या है तिस विधानकूं गुरुनिके प्रसादकरि जानि अर ध्याये सफल है, जैसैं जैनसिद्धान्तमैं आत्माका स्वरूप तथा ध्यानका स्वरूप अर आहार आसन निद्रा इनिके जीतनेंका विधान कह्या है तैसैं जानिकरि तिनिमैं प्रवर्त्तना ॥ ६३ ॥

आगैं आत्माकूं ध्यावनां सो आत्मा कैसा है, सो कहै हैं,—

अप्पा चरित्तवंतो दंसणणाणेण संजुदो अप्पा ।
सो झायव्वो णिच्चं णाऊणं गुरुपसाएण ॥ ६४ ॥

आत्मा चारित्रवान् दर्शनज्ञानेन संयुतः आत्मा ।
सः ध्यातव्यः नित्यं ज्ञात्वा गुरुप्रसादेन ॥ ६४ ॥

अर्थ—आत्मा है सो चारित्रवान् है बहुरि दर्शन ज्ञानकरि सहित है ऐसा आत्मा गुरुके प्रसादकरि जानि ध्यावना ॥

भावार्थ—आत्माका रूप दर्शनचारित्रमयी है सो याका रूप जैनगुरुनिके प्रसादकरि जान्या जाय है। अन्यमती अपनी बुद्धिकल्पित जैसैं तैसैं मानि ध्यावैं हैं तिनिकै यथार्थ सिद्धि नांहीं; तातैं जैनमतकै अनुसार ध्यावना ऐसा उपदेश है ॥ ६४ ॥

आगैं कहैं हैं—आत्माका जाननां भावनां विषयनितैं विरक्त होना ये उत्तरोत्तर दुःखतैं पाइये है,—

दुक्खे णज्जइ अप्पा अप्पा णाऊण भावणा दुक्खं ।
भावियसहावपुरिसो विसयेसु विरज्जए दुक्खं ॥ ६५ ॥

दुःखेन ज्ञायते आत्मा आत्मानं ज्ञात्वा भावना दुःखम् ।
भावितस्वभावपुरुषः विषयेषु विरज्यति दुःखम् ॥ ६५ ॥

अर्थ—प्रथम तौ आत्माकू जानिये है सो दुःखतैं जानिये है; बहुरि आत्माकूं जानिकरि भी भावना करनां फेरि फेरि याहीका अनुभव करनां दुःखतैं होय है, बहुरि कदाचित् भावनां भी कोई प्रकार होय तौ भायी है जिनभावना जानै ऐसा पुरुष विषयनिविषैं विरक्त बड़े दुःखतैं होय है ॥

भावार्थ—आत्माका जाननां भावनां विषयनितैं विरक्त होना उत्तरोत्तर यह योग मिलना बहुत दुर्लभ है, यातैं यह उपदेश है जो—योग मिले प्रमादी न होनां ॥ ६५ ॥

आगैं कहैं हैं जेतैं विषयनिमैं यह मनुष्य प्रवर्त्तै है तेतैं आत्मज्ञान न होय है;—

ताम ण णज्जइ अप्पा विसएसु णरो पवट्टए जाम ।
विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं ॥ ६६ ॥

तावन्न ज्ञायते आत्मा विषयेषु नरः प्रवर्त्तते यावत् ।
विषये विरक्तचित्तः योगी जानाति आत्मानम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—जेतैं यह मनुष्य इन्द्रियनिके विषयनिविषैं प्रवर्त्तै है तेतैं आत्माकूं नांही जानैं है तातैं योगी ध्यानी मुनि है सो विषयनिविषैं विरक्त है चित्त जाका ऐसा भया संता आत्माकूं जानैं है ॥

भावार्थ—जीवका स्वभावकै उपयोगकी ऐसी स्वच्छता है जो जिस ज्ञेय पदार्थसूं उपयुक्त होय तैसाही हो जाय है, तातैं आचार्य कहै हैं जो—जेतैं विषयनिमैं चित्त रहै तेतैं तिनिरूप रहै है-आत्माका अनुभव नाही होय, तातैं योगी मुनि ऐसा विचारि विषयनितैं विरक्त होय आत्मामैं उपयोग लगावै तब आत्माकूं जानै अनुभवै-तातैं विषयनितैं विरक्त होनां यह उपदेश है ॥ ६६ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करै हैं जो आत्माकूं जानि करि भी भावना बिना संसारहीमैं रहै है;—

अप्पा णाऊण णरा केई सब्भावभावपब्भट्ठा ।
हिंडंति चाउरंगं विसयेसु विमोहिया मूढा ॥ ६७ ॥

आत्मानं ज्ञात्वा नराः केचित् सद्भावभावप्रभ्रष्टाः ।
हिण्डन्ते चातुरंगं विषयेषु विमोहिताः मूढाः ॥ ६७ ॥

अर्थ—केई मनुष्य आत्माकूं जानिकरि भी अपनें स्वभावकी भावनातैं अत्यंत भ्रष्ट भये विषयनिविषैं मोहित होय करि अज्ञानी मूर्ख च्यार गति रूप संसारविषैं भ्रमैं है ॥ ६७ ॥

भावार्थ—पहलैं कह्या था जो आत्माकूं जाननां भावनां विषयनितैं विरक्त होनां ये उत्तरोत्तर दुर्लभ पाइये है, तहां विषयनिमैं लग्या प्रथम तौ आत्माकूं जानैं नांही ऐसैं कह्या, अब इहां ऐसैं कह्या जो आत्माकूं जानिकरिभी विषयनिकै वशीभूत भया भावना न करै तौ संसारहीमैं भ्रमै है; तातैं आत्माकूं जानि विषयनितैं विरक्त होना यह उपदेश है ॥ ६७ ॥

आगैं कहै हैं—जो विषयनितैं विरक्त होय आत्माकूं जानि करि भावै हैं ते संसारकूं छोड़ैं हैं—

जे पुण विसयविरत्ता अप्पा णाऊण भावणासहिया ।
छंडंति चाउरंगं तवगुणजुत्ता ण संदेहो ॥ ६८ ॥

ये पुनः विषयविरक्ताः आत्मानं ज्ञात्वा भावनासहिताः ।
त्यजन्ति चातुरंगं तपोगुणयुक्ताः न संदेहः ॥ ६८ ॥

अर्थ—पुनः कहिये बहुरि जे पुरुष मुनि विषयनितैं विरक्त होयकरि आत्माकूं जांनि भावै हैं बारबार भावनाकरि अनुभवैं हैं ते तप कहिये बारह प्रकार तप अर मूलगुण उत्तरगुणनिकरि युक्त भये संसारकूं छोड़ैं हैं, मोक्ष पावैं हैं ॥

भावार्थ—विषयनितैं विरक्त होय आत्माकूं जानि भावना करनीं यातैं संसारतैं छूटि मोक्ष पावो, यह उपदेश है ॥ ६८ ॥

आगैं कहै हैं जो परद्रव्यविषैं लेशमात्रभी राग होय तौ सो पुरुष अज्ञानी है, अपनां स्वरूप जान्यां नाही;

परमाणुपमाणं वा परदव्वे रदि हवेदि मोहादो ।
सो मूढो अण्णाणी आदसहावस्स विवरीओ ॥ ६९ ॥

परमाणुप्रमाणं वा परद्रव्ये रतिर्भवति मोहात् ।
सः मूढः अज्ञानी आत्मस्वभावात् विपरीतः ॥ ६९ ॥

अर्थ—जा पुरुषकै परद्रव्यविषैं परमाणुप्रमाणभी लेशमात्र मोहतैं रति कहिये राग प्रीति होय तौ सो पुरुष मूढ है, अज्ञानी है आत्मस्वभावतैं विपरीत है ॥

भावार्थ—भेदविज्ञान भये पीछैं जीव अजीवकूं न्यारे जानैं तब परद्रव्यकूं अपना न जानैं तब तिसतैं राग भी न होय, अर जो राग होय तौ जानिये—यानैं आपा परका भेद जान्यां नांही, अज्ञानी है, आत्मस्वभावतैं प्रतिकूल है, अर ज्ञानी भये पीछैं चारित्रमोहका उदय रहै जेतैं कछूक राग रहै है ताकूं कर्मजन्य अपराध मानै है, तिस रागतैं राग नांही है तातैं विरक्त ही है तातैं ज्ञानी परद्रव्यतैं रागी न कहिये; ऐसैं जाननां ॥ ६९ ॥

आगैं इस अर्थकूं संक्षेपकरि कहै हैं;——

अप्पा झायंताणं दंसणसुद्धीण दिढचरित्ताणं ।
होदि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं ॥ ७० ॥

आत्मानं ध्यायतां दर्शनशुद्धीनां दृढचारित्राणाम् ।
भवति ध्रुवं निर्वाणं विषयेषु विरक्तचित्तानाम् ॥ ७० ॥

अर्थ—जे पूर्वोक्त प्रकार विषयनिसूं विरक्त है चित्त जिनिका, बहुरि आत्माकूं ध्यायते सते वर्तैं हैं, बहुरि बाह्य अभ्यंतर दर्शनकी शुद्धता

जिनिकै है, वहुरि दृढ चारित्र जिनिकै है, तिनिकै निश्चयकरि निर्वाण होय है ॥

भावार्थ—पूर्वै कह्या जो विषयनिसूं विरक्त होय आत्माका स्वरूप जानि जे आत्माकी भावना करै हैं ते संसारतैं छूटै है, तिसही अर्थकूं संक्षेपकरि कह्या है—जो इंद्रियनिके विषयनिसूं विरक्त होय बाह्य अभ्यंतर दर्शनकी शुद्धताकरि दृढ चारित्र पालै हैं तिनिकै नियमकरि निर्वाणकी प्राप्ति होय है, इन्द्रियनिके विषयनिविषैं आसक्तता है सो सर्व अनर्थका मूल है तातैं इनितै विरक्त भये उपयोग आत्मामै लागै जब कार्य सिद्धि होय है ॥ ७० ॥

आगैं कहै हैं जो परद्रव्यविषैं राग है सो संसारका कारण है तातैं योगीश्वर आत्माविषैं भावना करै है,—

जेण रागो परे दव्वे संसारस्स हिं कारणं।
तेणावि जोइणो णिचं कुज्जा अप्पे समावणा ॥७१॥

येन रागः परे द्रव्ये संसारस्य हि कारणम्।
तेनापि योगी नित्यं कुर्यात् आत्मनि स्वभावनाम् ॥७१॥

अर्थ—जा कारणकरि परद्रव्यविषैं राग है सो ससारहीका कारण है तिस कारणही करि योगीश्वर मुनि हैं ते निरय आत्माहीविषैं भावना करै हैं ॥

भावार्थ—कोई ऐसी आशंका करै जो—परद्रव्यविषैं राग करे कहा होय है? परद्रव्य है सो पर है ही, अपनैं राग जिसकाल भया तिसकाल है; पीछैं मिटि जाय है ताकूं उपदेश किया है—परद्रव्यसूं राग किये परद्रव्य अपनीं लार लागै है यह प्रसिद्ध है बहुरि अपनैं रागका संस्कार दृढ होय है तब परलोक ताई भी चल्या जाय है यह तौ युक्ति सिद्ध है, अर जिनागममैं रागतैं कर्मका बंध कह्या है तिसका

उदय अन्य जन्मकूं कारण है ऐसैं परद्रव्यविषैं रागतैं संसार होय है; तातैं योगीश्वर मुनि परद्रव्यतैं राग छोडि आत्माविषैं निरन्तर भावना राखै हैं ॥ ७१ ॥

आगैं कहै हैं जो ऐसे समभावतै चारित्र होय है;—

णिंदाए य पसंसाए दुक्खे य सुहएसु य ।
सत्तूणं चेव बंधूणं चारित्तं समभावदो ॥७२॥

निंदायां च प्रशंसायां दुःखे च सुखेषु च ।
शत्रूणां चैव बंधूनां चारित्रं समभावतः ॥७२॥

अर्थ—निंदाविषैं बहुरि प्रशंसाविषैं बहुरि दुःखविषैं बहुरि सुखविषैं बहुरि शत्रूनिविषैं बहुरि बंधु मित्रनिविषैं समभाव जो समतापरिणाम रागद्वेषतैं रहितपणा, ऐसे भावतैं चारित्र होय है ॥

भावार्थ—चारित्रका स्वरूप यहु कह्या है जो आत्माका स्वभाव है सो कर्मके निमित्ततैं ज्ञानविषैं परद्रव्यतैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि होय है, तिस इष्ट अनिष्ट बुद्धिका अभावतैं ज्ञानहीमैं उपयोग लागैं ताकू शुद्धोपयोग कहिये है सो ही चारित्र है, सो यह होय जहां निन्दा प्रशसा दुःख सुख शत्रु मित्रविषैं समान बुद्धि होय है, निन्दा प्रशसाका द्विधाभाव मोहकर्मका उदयजन्य है, याका अभाव सो ही शुद्धोपयोगरूप चारित्र है ॥ ७२ ॥

आगैं कहै हैं—जो केई मूर्ख ऐसैं कहै हैं जो अबार पचमकाल है सो आत्मध्यानका काल नाही, तिनिका निषेध करै हैं,—

चरियावरिया वदसमिदिवज्जिया सुद्धभावपब्भट्ठा ।
केई जंपंति णरा ण हु कालो झाणजोयस्स ॥ ७३ ॥

चर्यावृताः व्रतसमितिवर्जिताः शुद्धभावप्रभ्रष्टाः ।
केचित् जल्पंति नराः न स्फुटं कालः ध्यानयोगस्य ॥७३॥

अर्थ—जो केई नर कहिये मनुष्य ऐसे हैं जो चर्या कहिये आचा क्रिया सो है आवृत जिनकै चारित्र मोहका उदय प्रबल है ताकरि चय प्रकट न होय है याहीतैं व्रतसमितिकरि रहित हैं वहुरि मिथ्या अभिप्रा यकरि शुद्धभावतैं अत्यंत भ्रष्ट हैं, ते ऐसैं कहैं हैं जो—अबार पंचम काल है सो यहु काल प्रगट ध्यान योगका नांही ॥ ७३ ॥

ते प्राणी कैसे हैं सो आगैं कहै है;—

सम्मत्तणाणरहिओ अभव्वजीवो हु मोक्खपरिमुक्को ।
संसारसुहे सुरदो ण हु कालो भणइ झाणस्स ॥७४॥

सम्यक्त्वज्ञानरहितः अभव्यजीवः स्फुटं मोक्षपरिमुक्तः ।
संसारसुखे सुरतः न स्फुटं कालः भणति ध्यानस्य॥७४॥

अर्थ—पूर्वोक्त ध्यानका अभाव कहनेंवाला जीव कैसा है सम्यक्त्व अर ज्ञानकरि रहित है अभव्य है याहीतैं मोक्षकरि रहित है, अर समारवे इंद्रिय सुख है तिनिहीकूं भले जांनि तिनिमैं रत है, आसक्त है, यातै कहै है--जो अबार ध्यानका काल नाही ॥

भावार्थ--जाकूं इंद्रियनिके सुखही प्रिय लागैं है अर जीवाजीव पदार्थका श्रद्धान ज्ञानतैं रहित है, सो ऐसैं कहै है जो अबार ध्यानका काल नांही। यातैं जानिये है---ऐसैं कहनेवाला अभव्य है याकै मोक्ष न होयगी ॥ ७४ ॥

फेरि कहै हैं जो अबार ध्यानका काल न कहै है तानैं पच महाव्रत पांच समिति तीन गुप्तिका स्वरूप जान्यां नांही,—

पंचसु महव्वदेसु य पंचसु समिदीसु तीसु गुत्तीसु ।
जो मूढो अण्णाणी ण हु कालोभणइ झाणस्स ॥७५॥

पंचसु महाव्रतेषु च पंचसु समितिषु तिसृषु गुप्तिषु ।
यः मूढः अज्ञानी न स्फुटं कालः भणति ध्यानस्य ॥७५॥

अर्थ—जो पाच महाव्रत पांचसमिति तीन गुप्ति इनि विषैं मूढ है अज्ञानी है इनिका स्वरूप नाही जानैं है अर चारित्रमोहके तीव्र उदयतैं इनिकूं पालि न सकै है, सो ऐसैं कहै हैं जो अवार ध्यानका काल नांही है ॥ ७५ ॥

आगैं कहै हैं जो अवार इस पंचमकालमैं धर्मध्यान होय है, यह न मानैं है सो अज्ञानी है,

भरहे दुस्समकाले धम्मज्झाणं हवेइ साहुस्स ।
तं अप्पसहावठिदे ण हु मण्णइ सो वि अण्णाणी ॥७६

भरते दुःषमकाले धर्मध्यानं भवति साधोः ।
तदात्मस्वभावस्थिते न हि मन्यते सोऽपि अज्ञानी ॥७६॥

अर्थ—इस भरतक्षेत्रविषैं दुःषमकाल जो पंचमकाल ताविषैं साधु मुनिकै धर्मध्यान होय है सो यह धर्मध्यान आत्मस्वभावके विषैं स्थित हैं तिस मुनिकै होय है; यह न मानैं सो अज्ञानी है जाकूं धर्मध्यानका स्वरूपका ज्ञान नाही ॥

भावार्थ—जिनसूत्रमैं इस भरतक्षेत्र पंचमकालमैं आत्मभावनाविषै स्थित मुनिकै धर्मध्यान कह्या है, जो यह न मानै सो अज्ञानी है, जाकूं धर्मध्यानके स्वरूपका ज्ञान नाहीं ॥ ७६ ॥

आगैं कहैं हैं—जो अवार कालमैं भी रत्नत्रयका धारी मुनि होय सो स्वर्गविषैं लौकान्तिकपणा इन्द्रपणां पाय तहांतैं चय मोक्ष जाय है, ऐसैं जिनसूत्रमैं कह्या है;—

अज्ज वि तिरयणसुद्धा अप्पा झाएवि लहइ इंदत्तं ।
लोयंतियदेवत्त तत्थ चुआ णिव्वुदिं जंति ॥ ७७ ॥

अद्य अपि त्रिरत्नशुद्धा आत्मानं ध्यात्वा लभंते इन्द्रत्वम् ।
लौकान्तिकदेवत्वं ततः च्युत्वा निर्वृतिं यांति ॥ ७७ ॥

अर्थ—अबार इस पंचमकालमैंभी जे मुनि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र शुद्धकरि संयुक्त होय हैं ते आत्माकूं ध्यायकरि इंद्रपणा पावैं हैं तथा लौकान्तिकदेवपणां पावैं हैं, बहुरि तहातैं चय करि निर्वाणकूं प्राप्त होय हैं ॥

भावार्थ—कोई कहै है जो अबार इस पंचमकालमैं जिनसूत्रमैं मोक्ष होनां कह्या नाहीं तातैं ध्यानका करनां तौ निष्फल खेद है, ताकूं कहै हैं रे भाई! मोक्ष जानो निषेध्यो है अर शुक्लध्यान निषेध्यो है; धर्मध्यान तौ निषेध्या नांहीं अबार जे मुनि रत्नत्रयकरि शुद्ध भये धर्मध्यानमैं लीन होय आत्माकूं ध्यावैं हैं ते मुनि स्वर्गमैं इन्द्रपणा पावैं हैं अथवा लौकान्तिक-देव एकाभवतारी है तिनिमैं जाय उपजै हैं तहांतैं चयकरि मनुष्य होय मोक्ष पावैं हैं। ऐसै धर्मध्यानतैं परंपरा मोक्ष होय तब सर्वथा निषेध काहेकूं कीजिये, जे निषेध करैं ते अज्ञानी मिथ्यादृष्टी है तिनिकूं विषय-कषायनिमैं स्वच्छन्द रहनां है तातैं ऐसैं कहै हैं ॥ ७७ ॥

आगैं कहै हैं जो अबार कालमैं ध्यानका अभाव मांनि अर मुनि लिंग पहलैं ग्रहण किया तिसकूं गौणकरि पापमैं प्रवर्त्तै है ते मोक्षमार्गतैं च्युत हैं,—

जे पावमोहियमई लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं ।
पावं कुणंति पावा ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि ॥७८॥

ये पापमोहितमतयः लिंगं गृहीत्वा जिनवरेन्द्राणाम् ।
पापं कुर्वन्ति पापाः ते त्यक्त्वा मोक्षमार्गे ॥ ७८ ॥

अर्थ—जे पापकर्मकरि मोहित है बुद्धि जिनिकी ऐसे हैं ते जिनव-रेन्द्र तीर्थंकरका लिंग ग्रहण करि भी पाप करैं हैं ते पापी मोक्षमार्गतैं च्युत हैं ॥

भावार्थ—जे पहलैं निर्ग्रंथ लिंग धार्‍या पीछैं ऐसी पाप बुद्धि उपजी-जो अबार ध्यानका तौ काल नांही तातैं काहेकूं प्रयास करैं, ऐसैं विचारि अर पापमैं प्रवर्त्तनें लगिजाय हैं, ते पापी हैं, तिनिकै मोक्षमार्ग नांही ॥ ७२ ॥

आगैं कहै हैं जो—जे मोक्षमार्गतैं च्युत हैं ते कैसे है;—

जे पंचचेलसत्ता ग्रंथग्गाहीय जायणासीला ।

आधाकम्मम्मि रया ते चत्ता मोक्खमग्गम्मि॥७९॥

ये पंचचेलसक्ताः ग्रंथग्राहिणः याचनाशीलाः ।

अधः कर्मणि रताः ते त्यक्ताः मोक्षमार्गे ॥७९॥

अर्थ—पंच प्रकारके चेल कहिये वस्त्र तिनिविषैं आसक्त हैं; अंडज, कर्पासज, वल्कल, चर्मज, रोमज ऐसैं पंच प्रकार वस्त्रमैं सूं कोई एक वस्त्रकूं ग्रहण करैं हैं, बहुरि ग्रंथग्राही कहिये परिग्रहके ग्रहण करनेवाले हैं, बहुरि याचनाशील कहिये याचना मांगनेकाही जिनिका स्वभाव है, बहुरि अध कर्म जो पापकर्म ताविषैं रत हैं सदोष आहार करैं हैं ते मोक्षमार्गतैं च्युत हैं ॥

भावार्थ—इहा आशय ऐसा है जो पहलैं तौ निर्ग्रंथ दिगंबर मुनि भये थे पाछैं कालदोष विचारि चारित्र पालनेंकूं असमर्थ होय निर्ग्रन्थ लिंगतैं भ्रष्ट होय वस्त्रादिक अगीकार किया,परिग्रह राखनें लगे याचना करने लगे अधः-कर्म औद्देशिक आहार करनेलगे तिनिका निषेध है ते मोक्षमार्गतैं च्युत हैं। पहलैं तौ भद्रबाहुस्वामी निर्ग्रंथ थे। पीछैं दुर्भिक्षकालमैं भ्रष्ट होय अर्द्ध-फालक कहावै थे पीछैं तिनिमैं श्वेतांबर भये तिनिमैं तिनिनैं तिस भेषके पोखनेकूं सूत्र बनाये तिनिमैं केई कल्पित आचरण तथा तिसकी साधक कथा लिखी। बहुरि इनि सिवाय अन्य भी केई भेष बदले, ऐसैं काल दोषतैं भ्रष्टनिका संप्रदाय प्रवर्त्तै है सो यह मोक्षमार्ग नांही है, ऐसा

जनाया है। यातैं इनि भ्रष्टनिकूं देखि ऐसा ही मोक्षमार्ग है, ऐसा श्रद्धान न करना ॥ ७९ ॥

आगें कहै हैं जो मोक्षमार्गी तो ऐसे मुनि हैं;—

णिग्गंथमोहमुक्का बावीसपरीषहा जियकसाया।
पावारंभविमुक्का ते गहिया मोक्खमग्गम्मि ॥८०॥
निर्ग्रंथाः मोहमुक्ताः द्वाविंशतिपरीषहाः जितकषायाः।
पापरंभविमुक्ताः ते गृहीताः मोक्षमार्गे ॥ ८० ॥

अर्थ—जे मुनि निर्ग्रंथ हैं परिग्रहकरि रहित हैं, बहुरि मोह करि रहित हैं काहू परद्रव्यसू ममत्वभाव जिनिकै नांही है, बहुरि बाईस परीषहनिका सहना जिनिकै पाइये है, बहुरि जीते हैं क्रोधादि कषाय जिनिनैं, बहुरि पापारंभकरि रहित हैं गृहस्थके करनेका आरंभादिक पाप है तिसमैं नाही प्रवर्त्तैं हैं, ऐसे हैं ते मुनि मोक्षमार्गमैं ग्रहण किये हैं माने हैं ॥

भावार्थ—मुनि हैं ते लौकिक कष्टनितैं रहित हैं जैसा जिनेश्वर मोक्ष मार्ग बाह्य अभ्यंतर परिग्रहतैं रहित नग्न दिगंबररूप कह्या है तैसेमैं प्रवर्त्तैं हैं ते ही मोक्षमार्गी हैं, अन्य मोक्षमार्गी नाही हैं ॥ ८० ॥

आगैं फेरि मोक्षमार्गी की प्रवृत्ति कहैं है,—

उद्धद्धमज्झलोये केई मज्झं ण अहयमेगागी।
इयभावणाए जोई पावंति हु सासयं ठाणं ॥ ८१ ॥
ऊर्ध्वाधोमध्यलोके केचित् मम न अहकमेकाकी।
इति भावनया योगिनः प्राप्नुवंति स्फुटं शाश्वतं स्थानं॥

अर्थ—मुनि ऐसी भावना करै—ऊर्ध्वलोक मध्यलोक अधोलोक इनि तीनूं लोकमैं मेरा कोई भी नांही है, मैं एकाकी आत्म हूं, ऐसी भावना करि योगी मुनि प्रगटपणैं शाश्वता सुख है ताहि पावै है॥

भावार्थ—मुनि ऐसी भावना करै जो त्रिलोकमैं जीव एकाकी है याका संबंधी दूजा कोई नांही है, ये परमार्थरूप एकत्व भावना है सो जा मुनिकै ऐसी भावना निरन्तर रहै है सो ही मोक्षमार्गी है. जो भेष लेकरि भी लौकिकजननिसूं लाल पाल राखै है सो मोक्षमार्गी नांही ॥८१

आगैं फेरि कहै हैं;-

देवगुरूणं भत्ता णिव्वेयपरंपरा विचिंतिंता।
झाणरया सुचरित्ता ते गहिया मोक्खमग्गम्मि ॥८२॥

देवगुरूणां भक्ताः निर्वेदपरंपरां विचिन्तयन्तः।
ध्यानरताः सुचरित्राः ते गृहीताः मोक्षमार्गे ॥८२॥

अर्थ—जे मुनि देव गुरुनिके भक्त हैं बहुरि निर्वेद कहिये ससार देह भोगतैं विरागताकी परपराकूं चिंतवन करैं है, बहुरि ध्यानके विषैं रत हैं रक्त हैं तत्पर है बहुरि भला है चरित्र जिनिकै, ते मोक्षमार्गविषैं ग्रहण किये है ॥

भावार्थ—जिनिमैं मोक्षमार्ग पाया ऐसा अरहंत सर्वज्ञ वीतराग देव अर तिसके अनुसारी बडे मुनि दीक्षा शिक्षा देनेवाले गुरु तिनिकी तौ भक्तियुक्त होय, बहुरि ससार देह भोगसूं विरक्त होय मुनि भये तैसैंही जिनकै वैराग्यभावना है, बहुरि आत्मानुभवनरूप शुद्ध उपयोगरूप एकाग्रता सोही भया ध्यान ताविषैं तत्पर है, बहुरि व्रत समिति गुप्तिरूप निश्चयव्यवहारात्मक सम्यक्त्वचारित्र जिनिकै पाईये है तेही मुनि मोक्षमार्गी है, अन्य भेषी मोक्षमार्गी नांही ॥ ८२ ॥

आगैं निश्चयनयकरि ध्यान ऐसैं करनां, ऐसैं कहै हैं;—

णिच्छयणयस्स एवं अप्पा अप्पम्मि अप्पणे सुरदो।
सो होदि हु सुचरित्तो जोई सो लहइ णिव्वाणं ॥८३॥

निश्चयनयस्य एवं आत्मा आत्मनि आत्मने सुरतः ।
सः भवति स्फुटं सुचरित्रः योगी सः लभते निर्वाणम् ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो निश्चयनयका ऐसा अभिप्राय है-जो आत्मा आत्महीविषैं आपहीकै अर्थि भलैप्रकार रत होय सो योगी ध्यानी मुनि सम्यक्चारित्रवान भया सता निर्वाणकूं पावै है ॥

भावार्थ—निश्चयनयका स्वरूप ऐसा है जो—एक द्रव्यकी अवस्था जैसी होय ताहीकूं कहै । तहां आत्माकी दोय अवस्था;—एक तौ अज्ञान अवस्था अर एक ज्ञान अवस्था । तहा जेतैं अज्ञान अवस्था रहै तेतैं तौ वंधपर्यायकूं आत्मा जानैं जो मैं मनुष्य हूं मैं पशुहूं मैं क्रोधी हूं, मैं मानीहू, मैं मायावीहूँ, मैं पुण्यवान धनवानहूँ, मैं निर्धन दरिद्रीहूँ, मैं राजाहूँ, मैं रकहूँ, मैं मुनिहूँ, मैं श्रावकहूँ इत्यादि पर्यायनिविषैं आपा मानैं तिनि पर्यायनिविषैं लीन है तब मिथ्यादृष्टी है अज्ञानी है, [याका] फल संसार है ताकूं भोगवै है । बहुरि जब जिनमतके प्रसादकरि [जी]व अजीव पदार्थनिका ज्ञान होय तब आपा परका भेद जानि ज्ञानी होय तब ऐसैं जानैं जो-मैं शुद्धज्ञानदर्शनमयी चेतनास्वरूपहूं अन्य मेरा किछूभी नांही, तब यह आत्मा आपहीविषैं आपही करि आपहीकै अर्थि लीन होय तब निश्चयसम्यक्चारित्रस्वरूप होय आपहीकूं ध्यावै, तबही सम्यग्ज्ञानी है याका फल निर्वाण है, ऐसैं जाननां ॥ ८३ ॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करते सते कहैं हैं,—

पुरिसायारो अप्पा जोई वरणाणदंसणसमग्गो ।
जो झायदि सो जोई पावहरो हवदि णिद्दंदो ॥८४॥

पुरुषाकार आत्मा योगी वरज्ञानदर्शनसमग्रः ।
यः ध्यायति सः योगी पापहरः भवति निर्द्वन्द्वः ॥८४॥

अर्थ—यह आत्मा ध्यानके योग्य कैसा है—पुरुषाकार है, बहुरि योगी है मन वचन कायके योगनिका जाके निरोध है सर्वांग सुनिश्चल है, बहुरि वर कहिये श्रेष्ठ सम्यक्रूप ज्ञान अर दर्शनकरि समग्र है परिपूर्ण है केवलज्ञानदर्शन जाके पाइये है. ऐसा आत्माकूं जो योगी ध्यानी मुनि ध्यावै है सो मुनि पापका हरनेंवाला है अर निर्द्वन्द्व है रागद्वेष आदि विकल्पनिकरि रहित है ॥

भावार्थ—जो अरहंतरूप शुद्ध आत्माकूं ध्यावै है ताका पूर्व कर्मका नाश होय है अर वर्त्तमानमैं रागद्वेषरहित होय है तब आगामी कर्मकूं नांही बांधै है ॥ ८४ ॥

आगैं कहै हैं जो ऐसैं मुनिनिकूं प्रवर्त्तनां कह्या। अब श्रावकनिकूं प्रवर्त्तनेंके अर्थि कहिये हैं;—

एवं जिणेहि कहियं सवणाणं सावयाण पुण सुणसु ।
संसारविणासयरं सिद्धियरं कारणं परमं ॥ ८५ ॥

एवं जिनैः कथितं श्रमणानां श्रावकाणां पुनः शृणुत ।
संसारविनाशकरं सिद्धिकरं कारणं परमं ॥ ८५ ॥

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्त प्रकार तौ उपदेश श्रमण जे मुनि तिनिकूं जिनदेवनैं कह्या है। बहुरि अब श्रावकनिकूं कहिये है सो सुनो, कैसा कहिये है—संसारका तौ विनाश करनेंवाला अर सिद्धि जो मोक्ष ताका करनेंवाला उत्कृष्ट कारण ऐसा उपदेश है ॥

भावार्थ—पहलैं कह्या सो तौ मुनिनिकूं कह्या अर अब आगैं कहिये है सो श्रावकनिकूं कहिये है, ऐसा कहियै है जातैं संसारका विनाश होय अर मोक्षकी प्राप्ति होय ॥ ८५ ॥

आगैं श्रावकनिकूं प्रथम कहा करनां; सो कहै हैं;—

गहिऊण य सम्मत्तं सुणिम्मलं सुरगिरीव णिक्कंप।
तं जाणे झाइज्जइ सावय! दुक्खक्खयट्ठाए ॥ ८६॥

गृहीत्वा च सम्यक्त्वं सुनिर्मलं सुरगिरेरिव निष्कंपम्।
तत् ध्याने ध्यायते श्रावक! दुःखक्षयार्थे ॥ ८६ ॥

अर्थ—प्रथम तौ श्रावकनिकूं सुनिर्मल कहिये भलै प्रकार निर्मल अर मेरुवत् नि.कप अचल अर चल मलिन अगाढ दूषणरहित अत्यंत निश्चल ऐसा सम्यक्त्वकूं ग्रहण करि तिसकं ध्यानविषैं ध्यावना, कौन अर्थि–दुःखका क्षयकै अर्थि ध्यावना ॥

भावार्थ—श्रावक पहलै तौ निरतिचार निश्चल सम्यक्त्वकूं ग्रहण-करि जाका ध्यान करै जा सम्यक्त्वकी भावनातैं गृहस्थकै गृहकार्यसंबंधी आकुलता क्षोभ दुःख होय है सो मिटि जाय है, कार्यके विगडनें सुधर-नेमें वस्तुके स्वरूपका विचार आवै तब दुःख मिटै है। सम्यग्दृष्टीकै ऐसा विचार होय है–जो वस्तुका स्वरूप सर्वज्ञनें जैसा जान्यां है तैसा निरन्तर परिणमै है सो होय है, इष्ट अनिष्ट मानि दुःखी सुखी होनां निष्फल है। ऐसे विचारतैं दुःख मिटै है यह प्रत्यक्ष अनुभवगोचर है जातैं सम्यक्त्वका ध्यान करना कह्या है ॥ ८६ ॥

आगैं सम्यक्त्वका ध्यानही की महिमा कहै हैं,—

सम्मत्तं जो झायइ सम्माइट्ठी हवेइ सो जीवो।
सम्मत्तपरिणदो उण खवेइ दुट्ठट्ठकम्माणि ॥८७॥

सम्यक्त्वं यः ध्यायति सम्यग्दृष्टिः भवति सः जीवः।
सम्यक्त्वपरिणतः पुनः क्षपयति दुष्टाष्टकर्माणि ॥८७॥

अर्थ–जो श्रावक सम्यक्त्वकूं ध्यावै है सो जीव सम्यग्दृष्टी है बहुरि सम्यक्त्वरूप परिणया संता दुष्ट जे आठ कर्म तिनिका क्षय करै है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वका ध्यान ऐसा है जो पहलैं सम्यक्त्व न भया होय तौऊ याका स्वरूप जानि याकूं ध्यावै तौ सम्यग्दृष्टी होजाय है। बहुरि सम्यक्त्व भये याका परिणाम ऐसा है जो संसारके कारण जे दुष्ट अष्ट कर्म तिनिका क्षय होय है, सम्यक्त्व होतैं ही कर्मनिकी गुणश्रेणी निर्जरा होनें लगि जाय है, अनुक्रमतैं मुनि होय तब चारित्र अर शुक्लध्यान याके सहकारी होंय तब सर्व कर्मका नाश होय है॥ ८७॥

आगैं याकूं संक्षेपकरि कहै हैं,—

किं बहुणा भणिएणं जे सिद्धा णरवरा गए काले।
सिज्झिहहि जे वि भविया जातंणइ सम्ममाहप्पं ॥८८॥

किं बहुना भणितेन ये सिद्धाः नरवराः गते काले।
सेत्स्यंति येऽपि भव्याः तज्जातीत सम्यक्त्वमाहात्म्यम्॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो—बहुत कहनेंकरि कहा साध्य है जे नरप्रधान अतीतकालविषैं सिद्ध भये अर आगामी कालविषै सिद्ध होयगे सो सम्यक्त्वका माहात्म्य जानो॥

भावार्थ—इस सम्यक्त्वका ऐसा माहात्म्य है जो अष्टकर्मका नाश करि जे मुक्तिप्राप्त अतीकालमें भये हैं तथा आगामी होंयगे ते इस सम्यक्त्वतैं ही भये हैं अर होंयगे, तातैं आचार्य कहै है जो बहुत कहनेकरि कहा! यह संक्षेपकरि कह्या जानो जो—मुक्तिका प्रधान कारण यह सम्यक्त्वही है। ऐसा मति जानो जो गृहस्थकै कहा धर्म है सो यह सम्यक्त्वधर्म ऐसा है जो सर्व धर्मनिके अगनिकूं सफल करै है॥ ८८॥

आगैं कहै हैं जो—निरन्तर सम्यक्त्व पालै हैं ते धन्य हैं—

ते धण्णा सुकयत्था ते सूरा ते वि पंडिया मणुया।
सम्मत्तं सिद्धियरं सिविणे वि ण मइलियं जेहिं ॥८९॥

ते धन्याः सुकृतार्थाः ते शूराः तेऽपि पंडिता मनुजाः ।
सम्यक्त्वं सिद्धिकरं स्वप्नेऽपि न मलिनितं यैः ॥ ८९ ॥

अर्थ-जिनि पुरुषनितैं मुक्तिका करनेवाला सम्यक्त्व है ताकूं स्वप्नावस्थाविषै भी मलिन न किया अतीचार न लगाया ते पुरुष धन्य हैं ते ही मनुष्य हैं ते ही भले कृतार्थ हैं ते ही शूरवीर हैं ते ही पंडित हैं ॥

भावार्थ--लोकमैं कछू दानादिक करै तिनिकूं धन्य कहिये है तथा विवाहादिक यज्ञादिक करै हैं तिनिकूं कृतार्थ कहै हैं युद्धमैं पाछा न होय ताकूं शूरवीर कहैं हैं, बहुत शास्त्र पढै ताकूं पंडित कहै हैं। ये सारे कहनेके हैं जो मोक्ष का कारण सम्यक्त्व ताकूं मलिन न करैं हैं निरतिचार पालै हैं ते धन्य हैं ते ही कृतार्थ हैं ते ही शूरवीर हैं तेही पंडित हैं ते ही मनुष्य हैं, या विना मनुष्य पशुसमान है, ऐसा सम्यक्त्वका माहात्म्य कह्या ॥ ८९ ॥

आगै शिष्य पूछया जो सम्यक्त्व कैसाक है? ताके समाधानकूं या सम्यक्त्वके बाह्य चिह्न बतावै हैं,—

हिंसारहिए धम्मे अट्ठारहदोसवज्जिए देवे ।
णिग्गंथे पव्वयणे सद्दहणं होइ सम्मत्त ॥९०॥

हिंसारहिते धर्मे अष्टादशदोषवर्जिते देवे ।
निर्ग्रंथे प्रवचने श्रद्धानं भवति सम्यक्त्वम् ॥ ९० ॥

अर्थ—हिंसारहित धर्म, अठारह दोषरहित देव, निर्ग्रंथ प्रवचन कहिये मोक्षका मार्ग तथा गुरु इनिविषैं श्रद्धान होत संतैं सम्यक्त्व होय है।

भावार्थ—लौकिकजन तथा अन्यमती जीवनिकी हिंसा करि धर्म मानैं हैं, अर जिनमतमैं अहिंसा धर्म कह्या है ताहीकूं श्रद्धै अन्यकूं नाहीं श्रद्धै सो सम्यग्दृष्टी है। लौकिक अन्यमतीनिनैं मानै हैं ते सर्व देव क्षुधादि

तथा रागद्वेषादि दोषनि करि संयुक्त हैं तातैं वीतराग सर्वज्ञ अरहंत देव सर्वदोषनिकरि रहित है ताकूं देव मानै श्रद्धै सो सम्यग्दृष्टी है। इहां दोष अठारह कहे ते प्रधानता अपेक्षा कहे हैं ते उपलक्षणरूप जाननें, इनि सारिखे अन्यभी जानि लेनें। बहुरि निर्ग्रंथ प्रवचन कहिये मोक्षमार्ग सोही मोक्षमार्ग है, अन्यलिंगतैं अन्यमती श्वेतांबरादिक जैनाभास मोक्ष मानैं हैं सो मोक्षमार्ग नांही है। ऐसा श्रद्धै सो सम्यग्दृष्टी है, ऐसा जाननां ॥९०॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ करते कहैं हैं,—

जहजायरूवरूवं सुसंजयं सव्वसंगपरिचत्तं ।
लिंगं ण परावेक्खं जो मण्णइ तस्स सम्मत्तं ॥९१॥

यथाजातरूपरूपं सुसंयतं सर्वसंगपरित्यक्तम् ।
लिंगं न परापेक्षं यः मन्यते तस्य सम्यक्त्वम् ॥९१॥

अर्थ—मोक्षमार्गका लिंग भेष ऐसा है यथाजातरूप तौ जाका रूप है, बाह्य परिग्रह वस्त्रादिक किंचित्मात्रभी जामैं नांही है; बहुरि सुसंयत कहिये सम्यक्प्रकार इन्द्रियनिका निग्रह अर जीवनिकी दया जामैं पाइये ऐसा संयम है; बहुरि सर्वसंग कहिये सर्वही परिग्रह तथा सर्व लौकिक जननिकी संगतितैं रहित है; बहुरि जामैं परकी अपेक्षा कछू नांही है मोक्षके प्रयोजन सिवाय अन्य प्रयोजनकी अपेक्षा नांही है। ऐसा मोक्ष-मार्गका लिंग मानै श्रद्धै तिस जीवकै सम्यक्त्व होय है॥

भावार्थ—मोक्षमार्गमैं ऐसाही लिंग है, अन्य अनेक भेष हैं ते मोक्ष-मार्गमैं नांही हैं ऐसा श्रद्धान करै ताकै सम्यक्त्व होय है। इहां परापेक्ष नांही—ऐसा कहनें तैं जनाया है जो—ऐसा निर्ग्रंथ रूप भी जो काहू अन्य आशयतैं धारै तौ वह भेष मोक्षमार्ग नांही; केवल मोक्षहीकी अपेक्षा जामैं होय ऐसा होय ताकूं मानै सो सम्यग्दृष्टी है ऐसा जाननां॥ ९१ ॥

आगैं मिथ्यादृष्टीके चिह्न कहै हैं;—

कुच्छियदेवं धम्मं कुच्छियलिंगं च वंदए जो दु।
लज्जाभयगारवदो मिच्छादिट्ठी हवे सो हु ॥९२॥

कुत्सितदेवं धर्मं कुत्सितलिंगं च वन्दते यः तु ।
लज्जाभयगारवतः मिथ्यादृष्टिः भवेत् सः स्फुटम् ॥९२॥

अर्थ—कुत्सित देव जो क्षुधादिक अर रागद्वेषादि दोषनिकरि दूषित होय सो, अर कुत्सित धर्म जो हिंसादि दोपनिकरि सहित होय सो, कुत्सितलिंग जो परिग्रहादिकरि सहित होय सो, इनिकूं जो वदै पूजै सो तो प्रगट मिथ्यादृष्टी है। इहां विशेष कहै हैं जो भले हितकरनेंवाले मानिकरि वदै पूजै सो तौ प्रगट मिथ्यादृष्टी है, परन्तु जो लज्जा भय गारव इनि कारणनि करि भी वदै पूजै सो भी प्रगट मिथ्यादृष्टी है। तहां लज्जा तौ ऐसैं—जो लोक इनिकूं वंदै पूजै है हम नांही पूजैंगे तौ लोक हमको कहा कहैंगे? हमारी या लोकमैं प्रतिष्ठा जायगी? ऐसैं तौ लज्जाकरि वंदै पूजै। बहुरि भय ऐसैं जो—इनिकूं राजादिक मानैं हैं, हम न मानैंगे तौ हम ऊपरि कछू उपद्रव आवैगा ऐसैं भयकरि वंदै पूजै। बहुरि गारव ऐसैं जो—हम बड़े हैं महत पुरुष हैं, सर्वहीका सन्मान करैं हैं इनिकार्यनिमैं हमारी वड़ाई है, ऐसैं गारवकरि वदना पूजनां होय है। ऐसैं मिथ्यादृष्टीके चिह्न कहे॥ ९२॥

आगैं इसही अर्थकूं दृढ़ करते संते कहैं हैं;—

सपरावेक्खं लिंगं राई देवं असंजयं वंदे।
माणइ मिच्छादिट्ठी ण हु मण्णइ सुद्धसम्मत्ती ॥९३॥

स्वपरापेक्षं लिंगं रागिणं देवं असंयतं वन्दे।
मानयति मिथ्यादृष्टिः न स्फुटं मानयति शुद्धसम्यक्ती ॥९३॥

अर्थ—स्वपरापेक्ष तौ लिंग जो कछू आप लौकिक प्रयोजन मनमैं धारि भेष ले सो स्वापेक्ष है, बहुरि काहू परकी अपेक्षातैं धारै काहूके आग्रहतैं तथा राजादिकका भयतैं धारै सो परापेक्ष है। बहुरि रागी देव जाकै स्त्री आदिका राग पाइये, बहुरि संयमरहित इनिकूं ऐसैं कहै जो मैं वंदू हूँ, तथा तिनिकू मानैं श्रद्धै सो मिथ्यादृष्टी है। बहुरि शुद्धसम्यक्त्व भये संतैं तिनिकूं न मानैं है, श्रद्धै नाही, वंदै पूजै नांही ॥

भावार्थ—ये कहे तिनिसूं मिथ्यादृष्टीकै प्रीति भक्ति उपजै है, जो निरतिचार सम्यक्त्ववानहै सो इनिकूं न मानै है ॥ ९३ ॥

सम्माइट्ठी सावय धम्मं जिणदेवदेसियं कुणदि ।
विवरीयं कुव्वंतो मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ॥ ९४ ॥

सम्यग्दृष्टिः श्रावकः धर्मं जिनदेवदेशितं करोति ।
विपरीतं कुर्वन् मिथ्यादृष्टिः ज्ञातव्यः ॥ ९४ ॥

अर्थ—जो जिनदेवका उपदेश्या धर्म करै है सो सम्यग्दृष्टी श्रावक है, बहुरि जो अन्यमतका उपदेश्या धर्म करै है सो मिथ्यादृष्टी जानना ॥ ९४ ॥

भावार्थ-ऐसैं कहनेंतैं इहां कोई तर्क करै जो—यह तौ अपनां मत पोषनेंकी पक्षपातमात्र वार्त्ता कही? ताकूं कहिये है, जो—ऐसैं नांही है, जामैं सर्व जीवनिका हित होय सो धर्म है सो ऐसा अहिंसारूप धर्म जिनदेवहीनैं प्ररूप्याहै, अन्यमतमैं ऐसा धर्मका निरूपण नाही, ऐसैं जानना ॥ ९४ ॥

आगैं कहै हैं जो—मिथ्यादृष्टी जीव है सो संसारविषै दुःखसहित भ्रमै है,—

मिच्छादिट्ठी जो सो संसारे संसरेइ सुहरहिओ ।
जम्मजरमरणपउरे दुक्खसहस्साउलो जीवो ॥ ९५ ॥

मिथ्यादृष्टिः यः सः संसारे संसरति सुखरहितः।
जन्मजरामरणप्रचुरे दुःखसहस्राकुलः जीवः ॥ ९५ ॥

अर्थ—जो मिथ्यादृष्टी जीव है सो जरा मरणनिकरि प्रचुर भया अर दु.खनिके हजारानिकरि व्याप्त जो संसार ताविषैं सुखकरि रहित दु.खी भया भ्रमैं है ॥

भावार्थ—मिथ्याभावका फल संसारमैं भ्रमण करनां ही है, सो यह संसार जन्म जरा मरण आदि हजारा दु.खनि करि भर्‍या है, तिनि दु.खनिकूं मिथ्यादृष्टी या संसारमैं भ्रमता संता भोगवै है। इहां दुःख तौ अनंतां हैं हजारा कहने तैं प्रसिद्ध अपेक्षा बहुलता जनाई हैं ॥ ९५ ॥

आगैं सम्यक्त्व मिथ्यात्व भावके कथनकूं संकोचै हैं,—

सम्म गुण मिच्छ दोसो मणेण परिभाविऊण तं कुणसु।
जं ते मणस्स रुच्चइ किं बहुणा पलविएणं तु ॥ ९६ ॥

सम्यक्त्वे गुणः मिथ्यात्वे दोषः मनसा परिभाव्य तत् कुरु।
यत् ते मनसे रोचते किं बहुना प्रलपितेन तु ॥ ९६ ॥

अर्थ—हे भव्य ! ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार सम्यक्त्वके गुण अर मिथ्यात्वके दोष तिनिकूं अपनें मनकरि भावनाकरि अर जो अपना मनकूं रुचै प्रिय लागै सो कर, बहुत प्रलापरूप कहनेंकरि कहा साध्य है। ऐसैं आचार्यनैं उपदेश किया है ॥

भावार्थ—ऐसैं आचार्यनैं कह्या है जो—बहुत कहनेकरि कहा? सम्यक्त्व मिथ्यात्वके गुण दोष पूर्वोक्त जांनि जो मनमैं रुचै सो करो। तहां ऐसा उपदेशका आशय है जो—मिथ्यात्वकूं छोडो सम्यक्त्वकूं ग्रहण करो यातैं संसारका दुःख मेटि मोक्ष पावो ॥ ९६ ॥

आगैं कहै हैं जो मिथ्यात्व भाव न छोड्या तब बाह्य भेषतैं कछू नांही है;—

बाहिरसंगविमुक्को णा वि मुक्को मिच्छभाव णिग्गंथो ।
किं तस्स ठाणमउणं ण वि जाणदि अप्पसमभावं ॥९७॥

बहिः संगविमुक्तः नापि मुक्तः मिथ्याभावेन निर्ग्रंथः ।
किं तस्य स्थानमौनं न अपि जानाति आत्मसमभावं ॥९७॥

अर्थ—जो बाह्य परिग्रहतैं रहित अर मिथ्याभावसहित निर्ग्रंथ भेष धारण किया है सो परिग्रह रहित नांही है ताकै ठाण कहिये खड़ा होय कायोत्सर्ग करनेंकरि कहा साध्य है? अर मौन धारै ताकरि कहा साध्य है? जातैं आत्माका समभाव जो वीतराग परिणाम ताकूं न जानै है ॥

भावार्थ जो आत्माका शुद्ध स्वभावकूं जांनि सम्यग्दृष्टी होय है। अर मिथ्याभावसहित परिग्रह छोडि निर्ग्रंथ भी भया है, कायोत्सर्ग करनां मौन धारना इत्यादि बाह्य क्रिया करै है तौ ताकी क्रिया मोक्षमार्गमैं सराहनेयोग्य नाही है जातैं सम्यक्त्वविना बाह्य क्रियाका फल संसारही है ॥ ९७ ॥

आगैं आशंका उपजै है जो सम्यक्त्वविना बाह्यलिंग निष्फल कह्या तहां जो बाह्यलिंग मूलगुण बिगाडै ताकै सम्यक्त्व रहै कि नाही? ताका समाधानकूं कहै हैं,—

मूलगुणं छित्तूण य बाहिरकम्मं करेइ जो साहू ।
सो ण लहइ सिद्धिसुहं जिणलिंगविराहगो णियदं ॥

मूलगुणं छित्वा च बाह्यकर्म करोति यः साधुः ।
सः न लभते सिद्धिसुखं जिणलिंगविराधकः नियतं ॥

अर्थ—जो मुनि निर्ग्रंथ होय मूलगुण धारण करै है तिनिकूं छेदनकरि बिगाड़करि केवल बाह्यक्रियाकर्म करै है सो सिद्धि जो मोक्ष ताका सुखकूं नांही पावै है जातैं ऐसा मुनि जिनलिंगका विराधक है ॥

भावार्थ—जिन आज्ञा ऐसी है जो–सम्यक्त्वसहित मूलगुण धारि धन्य जे साधु किया है ते करै हैं। तहां मूलगुण अट्ठाईस कहे हैं—पांच महाव्रत ५ पाच समिति ५ पचइंद्रियनिका निरोध ५ छह आवश्य ६ भूमिशयन १ स्नानका त्याग १ वस्त्रका त्याग १ केशलोच १ एकबार भोजन १ खड़ा भोजन १ दंतधावनका त्याग १ ऐसैं अट्ठाईस मूलगुण हैं तिनिकूं विराधकरि अर कायोत्सर्ग मौन तप ध्यान अध्ययन करै है तौ तिनि क्रियानिकरि मुक्ति न होय है। जातैं जो ऐसैं श्रद्धान करै जो-हमारै सम्यक्त्व तौ है ही, बाह्य मूलगुण बिगडै तौ बिगडो हम मोक्षमार्गीही हैं—तौ ऐसी श्रद्धातैं तौ जिन आज्ञा भंग करनेतैं सम्यक्त्वकाभी भंग होय है तब मोक्ष कैसैं होय अर कर्मके प्रबल उदयतैं चारित्र भ्रष्ट होय। अर जिन आज्ञा है तैसा श्रद्धान रहै तौ सम्यक्त्व रहै है, अर मूलगुण विनां केवल सम्यक्त्वहीतैं मुक्ति नाही, अर सम्यक्त्वविना केवल क्रियाहीतैं मुक्ति नांही, ऐसैं जानना। इहां कोई पूछै—मुनिकै स्नानका त्याग कह्या अर हम ऐसैं भी सुनै हैं जो चांडाल आदिका स्पर्श होय तौ दंडस्नान करै है? ताका समाधान जो—जैसै गृहस्थ स्नान करै है तैसैं स्नान करनेका त्याग है जातैं यामैं हिंसाकी बहुलता है, बहुरि मुनिकै ऐसा स्नान है जो-क़मंडलुमै प्रासुकजल रहै ताकरि मंत्र पढ़ि मस्तकपरि धारामात्र देहैं अर तिसदिन उपवास करै है सो ऐसा स्नान है सो नाममात्र स्नानहै, इहां मंत्र अर तपस्नान प्रधान है जलस्नान प्रधान नाही, ऐसैं जानना ॥९८॥

आगैं कहै हैं जो आत्मस्वभावतैं विपरीत बाह्य क्रियाकर्म है सो कहा करै? मोक्षमार्गमैं तौ कछू भी कार्य न करै है,—

किं काहिदि बहिकम्मं किं काहिदि बहुविहं च खवणं तु
किं काहिदि आदावं आदसहावस्स विवरीदो ॥ ९९ ॥

किं करिष्यति बहिः कर्म किं करिष्यति बहुविधं च क्षमणं तु।
किं करिष्यति आतापः आत्मस्वभावात् विपरीतः॥ ९९॥

अर्थ—आत्मस्वभावतैं विपरीत प्रतिकूल बाह्यकर्म जो क्रियाकांड सो कहा करैगा ? कछू मोक्षका कार्य तौ किंचिन्मात्रभी नाहीं करैगा, बहुरि बहुत अनेक प्रकार क्षमण कहिये उपवासादि बाह्य तप सो भी कहा करैगा? कछू भी नांही करैगा, बहुरि आतापनयोगआदि कायक्लेश सो कहा करैगा ? कछू भी नाहीं करैगा ॥

भावार्थ—बाह्य क्रियाकर्म शरीराश्रित है अर शरीर जड़ है आत्मा चेतन है, तहां जड़की क्रिया तौ चेतनकूं कछू फल करै है नांही जैसा चेतनाका भाव जेती क्रियामैं मिलै है जाका फल चेतनकूं लागै है। तहा चेतनका अशुभ उपयोग मिलै तब तौ अशुभकर्म बधै, अर शुभयोग मिलै तब शुभकर्म वधै, अर जब शुभ अशुभ दोऊतैं रहित उपयोग होय तब कर्म न बंधै, पहले कर्म बधे तिनिकी निर्जरा करि मोक्ष करै है। ऐसैं चेतना उपयोगकै अनुसार फलै, तातैं ऐसैं कह्या है जो बाह्य क्रियाकर्मतैं तौ कछू मोक्ष होय है नाहीं, शुद्ध उपयोग भये मोक्ष होय है। तातैं दर्शन ज्ञान उपयोगका विकार मेटि शुद्ध ज्ञान चेतनाका अभ्यास करनां मोक्षका उपाय है ॥ ९९ ॥

आगैं याही अर्थका फेरि विशेप कहै हैं;—

जदि पढदि बहुसुदाणि य जदि काहिदि बहुविहं य चारित्तं
तं बालसुद्धं चरणं हवेइ अप्पस्स विवरीदं ॥ १०० ॥

यदि पठति बहुश्रुतानि च यदि करिष्यति बहुविधं च चारित्रं।
तत् बालश्रुतं चरणं भवति आत्मनः विपरीतम् ॥ १०० ॥

अर्थ—जो आत्मस्वभावतैं विपरीत बाह्य बहुत शास्त्रनिकूं पढैगा बहुरि बहुत प्रकार चारित्रकूं आचरैगा तौ ते सर्वही बालश्रुत अर बालचारित्र होयगा। जो आत्मस्वभावतैं विपरीत शास्त्रका पढना अर चारित्रका आचरना ये सर्व ही बालश्रुत बालचारित्र हैं अज्ञानीकी क्रिया है

जातैं ग्यारह अंग नव पूर्व पर्यन्त तौ अभव्यजीवभी पढै है अर बाह्य मूलगुणरूप चारित्रभी पालै है तौऊ मोक्षके योग्य नाहीं,ऐसैं जाननां ॥१००

आगैं कहै हैं जो—ऐसा साधु मोक्ष पावै है;—

वेरग्गपरो साहू परदव्वपरम्मुहो य जो होदि ।
संसारसुहविरत्तो सगसुद्धसुहेसु अणुरत्तो ॥ १०१ ॥
गुणगणविहूसियंगो हेयोपादेयणिच्छिओ साहू ।
झाणज्झयणे सुरदो सो पावइ उत्तमं ठाणं ॥ १०२ ॥

वैराग्यपरः साधुः परद्रव्यपराङ्मुखश्च यः भवति ।
संसारसुखविरक्तः स्वकशुद्धसुखेषु अनुरक्तः ॥ १०१ ॥
गुणगणविभूषितांगः हेयोपादेयनिश्चितः साधुः ।
ध्यानाध्ययने सुरतः स प्राप्नोति उत्तमं स्थानम् ॥१०२॥

अर्थ—जो साधु ऐसा होय सो उत्तमस्थान जो लोकशिखरपरि सिद्ध क्षेत्र तथा मिथ्यात्वआदि चौदह गुणस्थाननितैं परैं शुद्धस्वभाव रूप स्थान सो पावै है। कैसा भया प्रथम तौ वैराग्यविषैं तत्पर होय संसार देह भोगतैं पहलैं विरक्त होय मुनि भया तिसही भावनायुक्त होय; बहुरि परद्रव्यतैं पराङ्मुख होय जैसैं वैराग्य भया तैसैंही परद्रव्यका त्यागकरि तिसतैं पराङ्मुख रहै; बहुरि संसारसंबंधी इन्द्रियनिकै द्वारै विषयनितैं सुखसा होय है तातैं विरक्त होय, बहुरि अपनां आत्मीक शुद्ध कषायनिकैं क्षोभ रहित निराकुल शांतभावरूप ज्ञानानंद ताविषैं अनुरक्त होय; लीन होय वारंवार तिसहीकी भावना रहै। बहुरि गुणके गणकरि विभूषित है आत्मप्रदेशरूप अंग जाका, मूलगुण उत्तरगुणनिकरि आत्माकूं अलंकृत शोभायमान किये है, बहुरि हेय उपादेय तत्त्वका निश्चय जाकै होय, निज आत्मद्रव्य तौ उपादेय है अर अन्य परद्रव्यके निमित्ततैं भये अपनें विकारभाव ते सर्व हेय हैं, ऐसा जाकै निश्चय होय, बहुरि साधु

होय आत्माके स्वभावके साधनविषैं नीकैं तत्पर होय बहुरि धर्म शुक्लध्यान अर अध्यात्मशास्त्रनिकूं पढि ज्ञानकी भावनाविषैं तत्पर होय सुरत होय भलै प्रकार लीन होय। ऐसा साधु उत्तमस्थान जो मोक्ष ताकूं पावै है॥ १०१-१०२॥

भावार्थ—मोक्षके साधनेंके ये उपाय हैं अन्य कछू नांही है ॥ १०१-१०२॥

आगैं कहै हैं—जो सर्वतैं उत्तम पदार्थ शुद्ध आत्मा है सो या देह-हीमैं तिष्ठै है ताकूं जानो,—

णविएहिं जं णविज्जइ झाइज्जइ झाइएहिं अणवरयं।
थुव्वंतेहिं थुणिज्जइ देहत्थं किं पि तं मुणह॥ १०३॥

नतैः यत् नम्यते ध्यायते ध्यातैः अनवरतम्।
स्तूयमानैः स्तूयते देहस्थं किमपि तत् जानीत॥१०३॥

अर्थ—हे भव्यजीव हो! तुम या देहविषैं जो तिष्ठ्या ऐसा कछू क्यों है ताहि जानो, कैसा है—लोकमैं नमने योग्य इंद्रादिक हैं तिनि-करि तौ नमनें योग्य अर ध्यावनें योग्य है, बहुरि जे स्तुति करने योग्य तीर्थंकरादिक हैं तिनिकै स्तुति करनें योग्य है, ऐसा कछू है सो या देहही-विषैं तिष्ठै है ताकूं यथार्थ जानो॥

भावार्थ—शुद्ध परमात्मा है सो यद्यपि कर्मकरि आच्छादित है तौऊ भेदज्ञानीनिकैं या देहहीविषैं तिष्ठ्या हीकूं ध्याय करि तीर्थंकरादि भी मोक्ष पावै है, यातैं ऐसा कह्या है जो—लोकमैं नमने योग्य तौ इन्द्रादिक हैं अर ध्यावनें योग्य तीर्थंकरादिक हैं तथा स्तुति करनें योग्य तीर्थंकरादिक हैं ते भी जाकूं नमैं हैं ध्यावैं हैं जाकी स्तुति करैं हैं ऐसा वचन कछू वचनकै अगोचर भेदज्ञानीनिकै अनुभवगोचर परमात्मा वस्तु है ताका स्वरूप जानो ताकूं नमो ध्यावो, बाहरि काहेकूं हेरो, ऐसा उपदेश है॥ १०३॥

आगैं आचार्य कहै हैं जो—अरहंतादिक पंच परमेष्ठी हैं ते भी आत्माविषैं ही हैं तातैं आत्मा ही शरण है;—

अरुहा सिद्धायरिया उज्झाया साहु पंच परमेट्ठी।
ते वि हु चिट्ठहि आधे तम्हा आदा हु मे सरणं ॥१०४

अर्हन्तः सिद्धा आचार्या उपाध्यायाः साधवः पंच परमेष्ठिनः।
ते अपि स्फुटं तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मादात्मा स्फुटं मे शरणं ॥१०४॥

अर्थ–अर्हन्त सिद्ध आचार्य उपाध्याय अर साधु ये पंचपरमेष्ठी हैं ते भी आत्माविषैं ही चेष्टारूप हैं आत्माकी अवस्था हैं तातैं मेरै आत्माहीका शरणा है, ऐसैं आचार्य अभेदनय प्रधानकरि कह्या है॥

भावार्थ—ये पांच पद आत्माहीके हैं जब यह आत्मा घातिकर्मका नाश करै है तब अरहन्तपद होय है, बहुरि सो ही आत्मा अघाति कर्मनिका नाशकरि निर्वाणकू प्राप्त होय है तब सिद्धपद कहावै है, बहुरि जब शिक्षा दीक्षा देनेवाला मुनि होय है तब आचार्य कहावै है, बहुरि पठनपाठनविषैं तत्पर ऐसा मुनि होय है तब उपाध्याय कहावै है, अर जब रत्नत्रयस्वरूप मोक्षमार्गकूं केवल साधैही तब साधु कहावै है, ऐसैं पांचूं पद आत्माहीमैं हैं। सो आचार्य विचारै हैं जो या देहमैं आत्मा तिष्ठै है सो यद्यपि कर्मआच्छादित है तौऊ पांचू पदयोग्य है, याहीकूं शुद्धस्वरूप ध्याये पांचूं पदका ध्यान है तातैं मेरै या आत्माहीका शरणा है ऐसी भावना करी है, अर पन्चपरमेष्ठीका ध्यानरूप अंतमंगल जनाया है॥ १०४॥

आगैं कहै हैं जो अंतसमाधिमरणमैं च्यारि आराधनाका आराधन कह्या है सो ये भी आत्माहीकी चेष्टा है तातैं आत्माहीका मेरै शरणां है;—

सम्मत्तं सण्णाणं सच्चारित्तं (य) सत्तवं चेव।
चउरो चिट्ठहि आदे तम्हा आदा हु मे सरणं ॥१०५॥

सम्यक्त्वं सज्ज्ञानं सच्चारित्रं सत्तपः चैव ।
चत्वारः तिष्ठन्ति आत्मनि तस्मादात्मा स्फुटं मे शरणं ॥१०५॥

अर्थ—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र अर सम्यक् तप ये च्यारि आराधना हैं तेभी आत्माविषैही चेष्टारूप हैं, ये च्यारू आत्माहीकी अवस्था हैं, तातैं आचार्य कहै हैं मेरै आत्माहीका शरणा है॥१०५॥

भावार्थ-आत्माका निश्चयव्यवहारात्मक तत्त्वार्थश्रद्धानरूप परिणाम सो सम्यग्दर्शन है, बहुरि सशय विमोह विभ्रम इनिकरि रहित अर निश्चयव्यवहारकरि निजस्वरूपका यथार्थ जानना सो सम्यग्ज्ञान है, बहुरि सम्यग्ज्ञानकरि तत्वार्थनिकूं जानि रागद्वेपादिकसू रहित परिणाम सो सम्यक्चारित्र है; बहुरि अपनी शक्ति अनुसार सम्यग्ज्ञानपूर्वक कष्ट आदरि स्वरूपका साधनां सो सम्यक्तप है; ऐसैं ये च्यारूही परिणाम आत्माके है तातै आचार्य कहै हैं मेरै आत्माहीका शरण है, याहीकी भावनामैं च्यारू आयगये। अंतसल्लेखनामैं च्यारि आराधनाका आराधन कह्या है, तहां सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यारनिका उद्योत उद्यवन निर्वहण साधन निस्तरण ऐसै पचप्रकार आराधना कह्या है, सो आत्माके भावनेमैं च्यारू आयगये, ऐसैं अतसल्लेखनाकी भावना याहीमैं आयगई ऐसैं जाननां। तथा आत्माही परमगलरूप है ऐसा भी जनाया है ॥ १०५ ॥

आगै यह मोक्षपाहुडग्रंथ पूर्ण कियां ताका पढने सुननें भावनेका फल कहै हैं,—

एवं जिणपण्णत्तं मोक्खस्स य कारणं सुभत्तीए ।
जो पढइ सुणइ भावइ सो पावइ सासयं सुक्खं ॥१०६॥

एवं जिनप्रज्ञप्तं मोक्षस्य च कारणं सुभक्त्या ।
यः पठति शृणोति भावयति सः प्राप्नोति शाश्वतं सौख्यं ॥१०६॥

अर्थ--एवं कहिये ऐसैं पूर्वोक्त प्रकार जिनदेवनें कह्या ऐसा मोक्षपाहुड ग्रंथ है ताहि जो जीव भक्तिभावकरि पढै है याकी वारंवार चिंतवनरूप भावना करै है तथा सुनै है सो जीव शाश्वता सुख जो नित्य अतीन्द्रिय ज्ञानानंदमय सुख ताहि पावै है ॥

भावार्थ—मोक्षपाहुडमैं मोक्ष अर मोक्षका कारणका स्वरूप कह्या है अर जे मोक्षका कारणका स्वरूप अन्यप्रकार मानै हैं तिनिका निषेध किया है तातैं या ग्रंथके पढनें सुननें तै ताका यथार्थ स्वरूपका ज्ञान श्रद्धान आचरण होय है तिस ध्याननैं कर्मका नाश होय अर ताकी वारंवार भावना करनेंतै ताविषैं दृढ होय एकाग्रध्यानकी सामर्थ्य होय है, तिस ध्यानतैं कर्मका नाश होय शाश्वता सुखरूप मोक्षकी प्राप्ति होय है। तातैं या ग्रंथकूं पढनां सुनना निरन्तर भावना राखनी यह आशय है ॥ १०६ ॥

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्द आचार्यनें यह मोक्षपाहुडग्रंथ संपूर्ण किया। याका सपेक्ष ऐसा —जो यह जीव शुद्ध दर्शन ज्ञानमयी चेतनास्वरूप है तौऊ अनादिहीतैं पुद्गल कर्मके संयोगतैं अज्ञान मिथ्यात्व रागद्वेषादिक विभावरूप परिणमै है तातैं नवीनकर्मबंधके संतानकरि संसारमैं भ्रमै है। तहां जीवकी प्रवृत्तिके सिद्धान्तमैं सामान्यकरि चौदह गुणस्थान निरूपण किये हैं-तिनिमैं मिथ्यात्वके उदयकरि मिथ्यात्वगुणस्थान होय है, अर मिथ्यात्वकी सहकारिणी अनंतानुबंधी कषाय है ताके केवल उदयकरि सासादन गुणस्थान होय है, अर सम्यक्त्व मिथ्यात्व दोऊके मिलापरूप मिश्रप्रकृतिके उदयकरि मिश्रगुणस्थान होय है, इनि तीन गुणस्थाननिमैं तौ आत्मभावनाका अभाव ही है। बहुरि जब काललब्धिकें निमित्ततैं जीवाजीव पदार्थनिका ज्ञान श्रद्धान भये सम्यक्त्व होय तब या जीवकूं अपनां परका अर हिताहितका हेय उपादेयका जाननां होय है तब आत्माकी भावना होय है तब अविरतनाम चौथा गुणस्थान होय है अर जब एकदेश परद्रव्यतैं निवृत्तिका परिणाम होय है तब जो एकदेश-

चारित्ररूप पांचमां गुणस्थान होय है ताकूं श्रावकपद कहिये, बहुरि सर्वदेश परद्रव्यतैं निवृत्तिरूप परिणाम होय तब सकलचारित्ररूप छठा गुणस्थान कहिये, यामैं कछु सञ्ज्वलन चारित्र मोहका तीव्र उदयतैं स्वरूपके साधनेविषैं प्रमाद होय है तातैं ताका नाम प्रमत्त है; इहांतैं लगाय ऊपरिके गुणस्थानवालेकूं साधु कहिये है। बहुरि जब संज्वलन चारित्र मोहका मंद उदय होय तब प्रमादका अभाव होय तब स्वरूपके साधनेंविषैं बडा उद्यम होय तब याका नाम अप्रमत्त ऐसा सातवा गुणस्थान है, यामैं धर्मध्यानकी पूर्णता है। बहुरि जब इस गुणस्थानमैं स्वरूपमैं लीन होय तब सातिशय अप्रमत्त होय है श्रेणीका प्रारभ करै है तब यातैं ऊपरी चारित्रमोहका अव्यक्त उदयरूप अपूर्वकरण अनिवृत्तिकरण सूक्ष्मसांपराय नाम धारक ये तीन गुणस्थान होय हैं। चौथासू लगाय दशमां सूक्ष्मसापरायताई कर्मकी निर्जरा विशेपताकरि गुणश्रेणीरूप होय है। तब यातैं ऊपरि मोहकर्मका अभावरूप ग्यारमां बारमा उपशातकषाय क्षीणकपाय गुणस्थान होय है। ता पीछैं तीन घातिया कर्म रहे तिनिका नाशकरि अनत चतुष्टय प्रगट होय अरहंत होय है तहा सयोगी जिन नाम गुणस्थान है, इहां योगकी प्रवृत्ति है। बहुरि योगनिका निरोध करि अयोगीजिन नामा चौदमा गुणस्थान होय है,तहा अघातिकर्मकाभी नाशकरि अर लगताही अनतर समय निर्वाणपदकू प्राप्त होय है, तहा संसारका अभावतैं मोक्ष नाम पावै है। ऐसैं सर्व कर्मका अभावरूप मोक्ष होय है, ताका कारण सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र कहे तिनिकी प्रवृत्ति चौथे गुणस्थान सम्यक्त्व प्रगट होनेतैं एकदेश कहिये, तहाते लगाय आगै जैसैं जैसैं कर्मका अभाव होय तैसैं तैसैं सम्यग्दर्शनादिकी प्रवृत्ति बधती जाय अर जैसैं जैसैं इनिकी प्रवृत्ति बधै तैसैं तैसैं कर्मका अभाव होता जाय जब घाति कर्मका अभाव होय तब तेरह चौदह गुणस्थान अरहत होय तब जीवनमुक्त कहावै अर चौदह गुणस्थानके—अत रत्नत्रय की पूर्णता होय है तातैं अघाति कर्मकाभी नाश होय अभाव होय तब साक्षात् मोक्ष होय तब सिद्ध कहावै। ऐसैं मोक्षका अर

मोक्षके कारणका स्वरूप जिन आगमतैं जानि अर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र मोक्षका कारण कह्या है ताकूं निश्चय व्यवहाररूप यथार्थ जानि सेवना अर तप भी मोक्षका कारण है सो भी चारित्रमैं अन्तर्भूत करि त्रयात्मकही कह्या है। ऐसैं इनि कारणनितैं प्रथम तौ तद्भवही मोक्ष होय है। अर जेतैं कारणकी पूर्णता न होय ता पहली कदाचित् आयुकर्मकी पूर्णता होय तौ स्वर्गविषैं देव होय है तहां भी यह वांछा रहै जो यह शुभोपयोगका अपराध है इहातें चयकरि मनुष्य होऊगा, तब सम्यग्दर्शनादि मोक्षमार्गकूं सेय मोक्ष प्राप्त होऊंगा, ऐसी भावना रहै है तब तहातैं चय मोक्ष पावै है। अर अबार इस पंचमकालमैं द्रव्य क्षेत्र काल भावकी सामग्रीका निमित्त नाही तातैं तद्भव मोक्ष नाही तौऊ जो रत्नत्रयकूं शुद्धताकरि सेवै तौ इहातैं देव पर्याय पाय पीछैं मनुष्य होय मोक्ष पावै है। तातैं यह उपदेश है जैसैं बनैं तैसैं रत्नत्रयकी प्राप्तिका उपाय करनां, तहां भी सम्यग्दर्शन प्रधान है ताका उपाय तौ अवश्य चाहिये, तातैं जिनागमकूं समझि सम्यक्त्वका उपाय अवश्य करना योग्य है ऐसैं इस ग्रंथका संक्षेप जानो॥

छप्पय।

सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण शिवकारण जानूं
ते निश्चय व्यवहाररूप नीकैं लखि मानूं।
सेवो निशदिन भक्तिभाव धरि निजबल सारू,
जिन आज्ञा सिर धारि अन्यमत तजि अघकारू॥
इस मानुषभवकूं पायकै अन्य चारित मति धरो
भविजीवनिकूं उपदेश यह गहिकरि शिवपद संचरो॥१॥

दोहा ।

वंदूं मंगलरूप जे अर मंगलकरतार ।
पंच परम गुरु पद कमल ग्रंथ अंत हितकार ॥ २ ॥

इहां कोई पूछै—जो ग्रंथनिमैं जहां तहां पंचणमोकारकी महिमा बहुत लिखी, मंगलकार्यमैं विघ्नके मेटनेंकूं यही प्रधान कह्या, अर यामैं पंच परमेष्ठीकूं नमस्कार है सो पंचपरमेष्ठीकी प्रधानता भई, पंचपरमेष्ठीकूं परम गुरु कहे तहां याही मंत्रकी महिमा तथा मंगलरूपपणा अर यातैं विघ्नका निवारण अर पंचपरमेष्ठीकै प्रधानपणा अर गुरुपणा अर नमस्कार करनें योग्यपणां कैसैं है? सो कहनां ।

ताका समाधानरूप कछूक लिखिये है—तहां प्रथम तौ पंचणमोकार मंत्र है, ताके पैंतीस अक्षर हैं. सो ये मंत्रके बीजाक्षर हैं तथा इनिका जोड सर्व मंत्रनितैं प्रधान है, इनि अक्षरनिका गुरु आम्नायतैं शुद्ध उच्चारण होय तथा साधन यथार्थ होय तब ये अक्षर कार्यमैं विघ्नके निवारणेंकूं कारण हैं तातैं मंगलरूप हैं। जो 'मं' कहिये पाप ताकूं गालै ताकूं मंगल कहिये तथा 'मंग' कहिये सुखकूं ल्यावै दे ताकूं मंगल कहिये सो यातैं दोऊ कार्य होय हैं। उच्चारणतैं विघ्न टलैं हैं, अर्थ विचारे सुख होय है, याही तैं याकूं मंत्रनिमैं प्रधान कह्या है, ऐसैं तौ मंत्रके आश्रय महिमा है। बहुरि पंचपरमेष्ठीकूं नमस्कार यामैं है-ते पंचपरमेष्ठी अरहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ये हैं सो इनिका स्वरूप तौ ग्रंथनिमैं प्रसिद्ध है, तथापि कछू लिखिये है:—तहां यहु अनादिनिधन अकृत्रिम सर्वज्ञकी परंपराकरि सिद्ध आगममैं कह्या है ऐसा षट्द्रव्यस्वरूप लोक है, तामैं जीवद्रव्य अनंतानंत है अर पुद्गलद्रव्य तिनितैं अनंतानंत गुणे हैं, बहुरि एक एक धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य आकाशद्रव्य हैं, बहुरि काल द्रव्य असंख्यात द्रव्य हैं। तहां जीव तौ दर्शनज्ञानमयी चेतना

स्वरूप है। अर पांच अजीव हैं ते चेतनारहित जड हैं—तहां धर्म अधर्म आकाश काल ये च्यारि द्रव्य तौ जैसें हैं तैसें तिष्ठें हैं तिनिकै विकारपरिणति नाही; वहुरि जीव पुद्गलद्रव्यकै परस्पर निमित्त नैमित्तिकभावतैं विभावपरिणति है तामैं भी पुद्गल तौ जड़ है ताकै विभावपरिणतिका दुःख सुखका संवेदन नांही, अर जीव चेतन है याकै सुख दुःखका सवेदन है। तहां जीव अनंतानन्त हैं तिनिमैं केई तौ संसारी हैं, केई संसारतैं निवृत्त होय सिद्ध भये हैं। तहां संसारी जीव है तिनिमैं केई तौ अभव्य हैं तथा अभव्यसारिखे हैं ते दोऊ जातिके संसारतैं निवृत्त कवहू न होय हैं तिनिकै संसार अनादिनिधन है, वहुरि केई भव्य हैं ते संसारतैं निवृत्त होय सिद्ध होय हैं, ऐसैं जीवनिकी व्यवस्था है। अब इनिकै संसारकी उत्पत्ति कैसैं है सो कहै हैं—तहा जीवनिकै ज्ञानावरणादि आठ कर्मनिका अनादिवंधरूप पर्याय है तिसवंधके उदयके निमित्ततैं जीव रागद्वेषमोहादि विभावपरिणतिरूप परिणमै है, तिस विभाव परिणतिके निमित्ततैं नवीन कर्मबंध होय है, ऐसैं इनिके संतानतैं जीवकै चतुर्गतिरूप संसारकी प्रवृत्ति होय है तिस संसारमैं चतुर्गतिविषैं अनेक प्रकार सुखदुःखरूप भया भ्रमै है; तहा कोई काल ऐसा आवै जो मुक्त होनां निकट आवै तब सर्वज्ञके उपदेशका निमित्त पाय अपनां स्वरूपकूं अर कर्मबंधका स्वरूपकूं अर आपमैं विभावका स्वरूपकूं जानै इनिका भेद ज्ञान होय तब परद्रव्यकूं संसारके निमित्त जानि तिनितैं विरक्त होय अपने स्वरूपका अनुभवका साधन करै दर्शनज्ञानरूप स्वभावविषैं स्थिर होनेंका साधन करै तव याकै बाह्यसाधन हिंसादिक पंच पापनिका त्यागरूप निर्ग्रंथपद सर्व परिग्रहका त्यागरूप निर्ग्रंथ दिगंबर मुद्रा धारै पांच महाव्रत पांच समितिरूप तीन गुप्तिरूप प्रवर्तै तब सर्व जीवनिकी दया करनेवाले साधु कहावै, तामैं तीन पदवी होय—जो आप साधु होय अन्यकूं साधुपदकी शिक्षादीक्षा देय सो तौ आचार्य कहावै, अर साधु होय जिनसूत्रकूं पढै पढावै सो उपाध्याय कहावै, अर जो अपनें स्वरूपका साधनमैं रहै सो साधु कहावै

अर जो साधु होय अपने स्वरूपका साधनका ध्यानका बलतैं च्यारि घाति कर्मनिका नाशकरि केवलज्ञान केवलदर्शन अनंतसुख अनतवीर्यकूं प्राप्त होय सो अरहंत कहावै, तव तीर्थंकर तथा सामान्यकेवली जिन इन्द्रादिककरि पूज्य होय तिनिकी वाणी खिरै जिसतैं सर्व जीवनिका उपकार होय अहिंसा धर्मका उपदेश होय सर्व जीवनिकी रक्षा करावै यथार्थ पदार्थनिका स्वरूप जनाय मोक्षमार्ग दिखावै ऐसी अरहत पदवी होय है, वहुरि जो च्यारि अघाति कर्मका भी नाशकरि सर्व कर्मनितैं रहित होय सो सिद्ध कहावै। ऐसैं ये पाच पद हैं, ते अन्य सर्व जीवनितैं महान हैं तातैं पच परमेष्ठी कहावैं हैं तिनिके नाम तथा स्वरूपके दर्शन तथा स्मरण ध्यान पूजन नमस्कारतैं अन्य जीवनिके शुभपरिणाम होय हैं तातैं पापका नाश होय है, वर्त्तमानका विघ्न विलय होय है, आगामी पुण्यका बंध होय है तातैं स्वर्गादिक शुभगति पावै है। अर इनिकी आज्ञानुसार प्रवर्त्तनेतैं परपराकरि ससारतैं निवृत्ति भी होय है तातैं ये पाच परमेष्ठी सर्व जीवनिके उपकारी परमगुरु हैं, सर्व संसारी जीवनिकै पूज्य हैं। इनि सिवाय अन्य संसारी जीव हैं ते राग द्वेष मोहादि विकारनिकरि मलिन हैं, ते पूज्य नांही, तिनिकै महानपणा गुरुपणा पूज्यपणा नाही, आपही कर्मनिके वशि मलिन तब अन्यका पाप तिनितैं कैसैं कटै। ऐसैं जिनमतमैं इनि पच परमेष्ठीका महानपणां प्रसिद्ध है अर न्यायके बलतैंभी ऐसैंही सिद्ध होय है जातैं जे ससारके भ्रमणतैं रहित होय तेही अन्यकै संसारका भ्रमण मेटनेकूं कारण होय जैसैं जाकै धनादि वस्तु होय सो ही अन्यकूं धनादिक दे अर आप दरिद्री होय तब अन्यका दरिद्र कैसैं मेटैं, ऐसैं जाननां। ऐसैं जिनकू संसारके विघ्न दुःख मेटने होय अर संसारका भ्रमणका दुःखरूप जन्म मरणतैं रहित होना होय ते अरहंतादिक पंच परमेष्ठीका नाम मंत्र जपो, इनिके स्वरूपका दर्शन स्मरण ध्यान करो, तातैं शुभ परिणाम होय पापका नाश होय, सर्व विघ्न टलैं परंपराकरि समारका भ्रमण मिटै कर्मका नाश होय मुक्तिकी प्राप्ति होय, ऐसा जिनमतका उपदेश है सो भव्य जीवनिकै अंगीकार करनें योग्य है।

इहां कोई कहै–अन्यमतमैं ब्रह्मा विष्णु शिव आदिक इष्ट देव मानैं हैं तिनिके विघ्न टलते देखिये हैं तथा तिनिके मतमैं राजादि वडे बडे पुरुष देखिये हैं तिनिके भी ते इष्ट सो विघ्नादिकका मेटनेंवाले हैं तैसैं तुमारे भी कहौ, ऐसैं क्यौं कहो जो ये पंचपरमेष्ठीही प्रधान हैं अन्य नाही? ताकूं कहिये, रे भाई! जीवनिके दुःख तौ ससारका भ्रमणका है अर संसारके भ्रमणका कारण राग द्वेष मोहादिक परिणाम है अर रागादिक वर्त्तमानमैं आकुलतामयी दु:खस्वरूप हैं तातैं ते ब्रह्मादिक इष्ट देव कहे ते तौ रागादिक काम क्रोधादिकरि युक्त है, अज्ञान तपके फलतैं केई जीव सर्व लोकमैं चमत्कारसहित राजादिक बडी पदवी पावै ताकू लोग बडा मानि लोक ब्रह्मादिक भगवान कहने लगिजाय, कहै जो–ये परमेश्वर ब्रह्मका अवतार है सो ऐसे मानें तौ कछू मोक्षमार्गी तथा मोक्षरूप होय नांही, ससारीही रहैं हैं। ऐसैंही अन्यदेव सर्व पदवी वाले जाननें ते आपही रागादिककरि दु.खरूप हैं जन्ममरण करि सहित हैं ते परका ससारका दु:ख कैसैं मेटैंगे। अर तिनिके मतमैं विघ्नका टलना अर राजादिक बडे पुरुष होते कहे सो ये तौ जीवनिकै पूर्वैं कछू शुभ कर्म बंधेथे तिनिका फल है, पूर्वजन्ममैं किंचित् शुभ परिणाम कियाथा तातैं पुण्यकर्म बंध्याथा ताका उदयतैं कछू विघ्न टलै है अर राजादिक पदवी पावै है सो पूर्वैं कछु अज्ञानतप किया होय ताका फल है सो ये तौ पुण्यपापरूप संसारकी चेष्टा है, यामैं कछू बडाई नाही; बडाई तौ जो है जातैं ससारका भ्रमण मिटै सो तौ वीतराग विज्ञान भावनिहीतैं मिटैगा, सो तिस वीतराग विज्ञान भावनियुक्त पच परमेष्ठी हैं तेही संसारका भ्रमण के दुःख मेटनेंकू कारण हैं। वर्त्तमानमैं कछू पूर्व शुभ कर्मका उदयतैं पुण्यका चमत्कार देखि तथा पापका दु ख देखि भ्रम नहीं उपजावना, पुण्य पाप दोऊ संसार हैं तिनितैं रहित मोक्ष है, सो संसारतैं छूटि मोक्ष होय तैसाही उपाय करना। अर वर्त्तमानकाभी विघ्न जैसा पंचपरमेष्ठीका नाम मंत्र ध्यान दर्शन स्मरणतैं मिटैगा तैसा अन्यके नामादिकतैं तौ न मिटैगा जातैं ये पचपरमेष्ठी ही शांतिरूप है केवल शुभ परिणामनिहीकूं

कारण हैं। बहुरि अन्य इष्टके रूप हैं ते तौ रौद्ररूप हैं तिनिका तो दर्शन स्मरण है सो रागादिक तथा भयादिकका कारण है, तिनितैं तौ शुभ परिणाम होता दीखै नांहीं। कोईकै कदाचित् कछु धर्मानुरागके वशतैं शुभपरिणाम होय तो सो तिनितै तौ न भया कहिये, वा प्राणीकै स्वाभाविक धर्मानुरागके वशतैं होय है। तातैं अतिशयवान शुभपरिणामका कारण तौ शांतिरूप पंच परमेष्ठीहीका रूप है तातैं याहीका आराधन करना, वृथा खोटी युक्ति सुनि भ्रम नहीं उपजावना, ऐसैं जानना ॥

इतिश्रीकुन्दकुन्दस्वामि विरचित मोक्षप्राभृतकी
जयपुरनिवासि पं० जयचन्द्रजीछावड़ाकृत
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥६॥

श्री

अथ लिंगपाहुड

७

अथ लिंगपाहुडकी वचनिका लिखिए है;—

दोहा।

जिनमुद्राधारक मुनी निजस्वरूपकूं ध्याय।
कर्म नाशि शिवसुख लियो वंदूं तिनिके पांय॥ १ ॥

ऐसैं मंगलकै अर्थि जिनि मुनिनिनैं शिवसुख पाया तिनिकूं नमस्कार करि श्रीकुन्दकुन्दआचार्यकृत प्राकृत गाथाबद्ध लिंगपाहुडनाम ग्रंथ है ताकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है,—तहां प्रथमही आचार्य मंगलकै अर्थि इष्टकूं नमस्कारकरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करै हैं,—

काऊण णमोकारं अरहंताणं तहेव सिद्धाणं।
वोच्छामि समणलिंगं पाहुडसत्थं समासेण॥ १ ॥

कृत्वा नमस्कारं अर्हतां तथैव सिद्धानाम्।
वक्ष्यामि श्रमणलिंगं प्राभृतशास्त्रं समासेन॥ १ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो—मैं अरहंतनिकूं नमस्कार करि अर तैसैं ही सिद्धनिकूं नमस्कार करि अर श्रमण लिंगका है निरूपण जामैं ऐसा पाहुडशास्त्र है ताहि कहूंगा॥

भावार्थ—इस कालमैं मुनिका लिंग जैसा जिनदेवनैं कह्या है तैसामैं विपर्यय भया ताका निषेध करनेंकूं यह लिंगकै निरूपणका शास्त्र आचार्यनैं रच्या है, ताकी आदिमैं घातिकर्मका नाशकरि अनंत चतुष्टय पाय अरहंत भये तिनिनैं यथार्थ श्रमणका मार्ग प्रवर्त्तया अर तिस लिंगकूं साधि सिद्ध भये; ऐसैं अरहंत सिद्ध तिनिकूं नमस्कारकरि ग्रंथ करनेंकी प्रतिज्ञा करी है ॥ १ ॥

आगैं कहै हैं जो—लिंग बाह्यभेष है सो अंतरंगधर्मसहित कार्यकारी है,—

धम्मेण होइ लिंगं ण लिंगमत्तेण धम्मसंपत्ती।
जाणेहि भावधम्मं किं ते लिंगेण कायव्वो ॥ २ ॥

धर्मेण भवति लिंगं न लिंगमात्रेण धर्मसंप्राप्तिः।
जानीहि भावधर्मं किं ते लिंगेन कर्त्तव्यम् ॥ २ ॥

अर्थ—धर्मकरि सहित तौ लिंग होय है बहुरि लिंगमात्रहीकरि धर्मकी प्राप्ति नांहीं है, तातैं हे भव्यजीव! तू भावरूप धर्म है ताहि जानि अर केवल लिंगहीकरि तेरै कहा कार्य होय है, कछू भी नांही ॥

भावार्थ-इहां ऐसा जानो जो-लिंग ऐसा चिह्नका नाम है सो बाह्य भेष धारै सो मुनिका चिह्न है सो ऐसा चिह्न जो अंतरंग वीतराग स्वरूप धर्म होय तौ ता सहित तौ यह चिह्न सत्यार्थ होय है अर तिस वीतरागस्वरूप आत्माका धर्म विना लिंग जो बाह्य भेष तिस मात्रकरि धर्मकी संपत्ति जो सम्यक् प्राप्ति सो नाही है, तातैं उपदेश किया है जो अंतरंग भावधर्म जो रागद्वेष रहित आत्माका शुद्ध ज्ञान दर्शन रूप स्वभाव सो धर्म है ताहि हे भव्य! तू जानि, अर इस बाह्य लिंग भेष मात्रकरि कहा कार्य है कछुभी नाहीं। बहुरि इहां ऐसाभी जाननां जो-जिनमतमैं लिंग तीन कहे हैं-एकतौ मुनिका यथाजात दिगम्बर लिंग १ दूजा उत्कृष्ट श्रावकका २ तीजा आर्यिकाका ३ इनितीनूंही लिंगनिकूं धारि भ्रष्ट होय अर जो कुक्रिया करै ताका निषेध है। तथा अन्य

मतके केई भेप हैं तिनिकूं भी धारि जो कुक्रिया करै सो भी निंदाही पावै, तातैं भेपधारि कुक्रिया न करनां ऐसा जनाया है ॥ २ ॥

आगैं कहै हैं जो जिनका लिंग जो–निर्ग्रंथ दिगंबररूप ताहि ग्रहण-करि जो कुक्रिया करि हास्य करावै सो पापबुद्धि है;—

जो पावमोहिदमदी लिंगं घेत्तूण जिणवरिंदाणं।
उवहसइ लिंगिभावं लिंगिम्मिय णारदो लिंगी ॥३॥
यः पापमोहितमतिः लिंगं गृहीत्वा जिनवरेन्द्राणाम्।
उपहसति लिंगिभावं लिंगिषु नारदः लिंगी ॥ ३ ॥

अर्थ—जो जिनवरेन्द्र कहिये तीर्थंकरदेवका लिंग नग्न दिगंबररूपकूं ग्रहण करि अर लिंगीपणांका भावकूं उपहसै है हास्यमात्र गिनै है, सो कैसा है–लिंगी कहिये भेपी तिनिविषैं नारद लिंगी है तैसा है। अथवा या गाथाका चौथा पादका पाठान्तर ऐसा है—"लिंग णासेदि लिंगीण" याका अर्थ—यह जो लिंगी जो अन्य केई लिंगका धारी तिनिका लिंगकूं भी नष्ट करै है, ऐसा जनावै है जो लिंगी सर्व ऐसेही हैं, कैसा है लिंगी–पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ॥

भावार्थ–लिंगधारी होय अर पापबुद्धिकरि किछू कुक्रिया करै तब तानैं लिंगीपणां हास्यमात्र गिण्या, किछू कार्यकारी गिण्या नाहीं। लिंगीपणा तौ भावशुद्धतैं सोहै था सो भाव विगडे तब बाह्य कुक्रिया करनें लग्या तब यानैं तिस लिंगकूं लजाया अर अन्य लिंगीनिका लिंगकूं भी कलंक लगाया, लोक कहने लगे–जो लिंगी ऐसेही होय हैं। अथवा जैसैं नारदका भेष है तामैं वह स्वइच्छानुसार स्वच्छंद जैसैं प्रवर्त्तै है तैसैं यह भी भेषी ठहर्‌या। तातैं आचार्य ऐसा आशय धारि कह्या है जो–जिनेन्द्रका भेपकूं लजावनां योग्य नांही ॥ ३ ॥

आगैं लिंग धारि कुक्रिया करै ताकूं प्रगट कहै हैं;—

णच्चदि गायदि तावं वायं वाएदि लिंगरूवेण ।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥४॥

नृत्यति गायति तावत् वाद्यं वादयति लिंगरूपेण ।
सः पापमोहितमतिः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो लिंगरूप करि नृत्य करै है गावै है वादित्र बजावै है, सो कैसा है—पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ऐसा है, सो तिर्यंचयोनि है, पशु है; श्रमण नांही ॥

भावार्थ-लिंग धारि भाव विगाडि नाचनां गावना बजावनां इत्यादि क्रिया करै सो पापबुद्धि है पशु है अज्ञानी है, मनुष्य नांही, मनुष्य होय तौ श्रमणपणा राखै। जैसैं नारद भेषधारी नाचै गावै है बजावै है तैसैं यह भी भेषी भया तब उत्तमभेषकूं लजाया, तातैं लिंग धारि ऐसा होना युक्त नाहीं ॥ ४ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

सम्मूहदि रक्खेदि य अट्ट झाएदि बहुपयत्तेण ।
सो पावमोहिदमदी तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥५॥

समूहयति रक्षति च आर्त्तं ध्यायति बहुप्रयत्नेन ।
सः पापमोहितमतिः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥ ५ ॥

अर्थ—जो निर्ग्रंथ लिंग धारि अर परिग्रहकूं संग्रहरूप करै है अथवा ताकी वांछा चिंतवन ममत्व करै है, बहुरि तिस परिग्रहकी रक्षा करै है ताका बहुत यत्न करै है, ताके अर्थि आर्त्तध्यान निरन्तर ध्यावै है, सो कैसा है-पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ऐसा तिर्यंचयोनि है पशु है अज्ञानी है, श्रमण तौ नांही श्रमणपणांकूं बिगाडै है, ऐसैं जाननां ॥५॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

कलहं वादं जूवा णिच्चं वहुमाणगव्विओ लिंगी ।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण ॥ ६ ॥
कलहं वादं द्यूतं नित्यं वहुमानगर्वितः लिंगी ।
व्रजति नरकं पापः कुर्वाणः लिंगिरूपेण ॥ ६ ॥

अर्थ—जो लिंगी वहुत मानकषायकरि गर्ववान भया निरंतर कलह करै है वाद करै है द्यूतक्रीडा करै है सो पापी नरककूं प्राप्त होय है, कैसा है लिंगी–पाप करि ऐसैं करता संता वर्त्तै है ॥

भावार्थ—जो गृहस्थरूप करि ऐसी क्रिया करै है ताकूं तौ यह उराहना नाही जातैं कदाचित् गृहस्थ तौ उपदेशादिकका निमित्त पाय कुक्रिया करता रह जाय तौ नरक न जाय । बहुरि लिंग धारि तिसरूप-करि कुक्रिया करै तौ ताकूं उपदेश भी न लागै, यातैं नरककाही पात्र होय है ॥ ६ ॥

आगै फेरि कहै हैं,—

पाओपहदभावो सेवदि य अबंभु लिंगिरूवेण ।
सो पावमोहिदमदी हिंडदि संसारकांतारे ॥ ७ ॥
पापोपहतभावः सेवते च अब्रह्म लिंगिरूपेण ।
सः पापमोहितमतिः हिंडते संसारकांतारे ॥ ७ ॥

अर्थ—जो पापकरि उपहत कहिये घात्या गया है आत्मभाव जाका ऐसा भया संता लिंगीका रूपकरि अब्रह्म सेवै है, सो पापकरि मोहित है बुद्धि जाकी ऐसा लिंगी संसाररूपी कांतार जो वन ताविषैं भ्रमै है ॥

भावार्थ—पहले तौ लिंगधारण किया अर पीछैं ऐसा पाप परिणाम भया जो व्यभिचार सेवनें लग्या, ताकी पापवुद्धिका कहा कहना ? ताका संसारमैं भ्रमण क्यों न होय ? जाकै अमृतहू जहररूप-परिणमै ताकै

१ इस छदका प्रथम द्वितीयपाद यति भंग है-

रोग जानेकी कहा आशा ? तैसैं यह भया, ऐसेका संसार कटनां कठिन है ॥ ७ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

दंसणणाणचरित्ते उवहाणे जइ ण लिंगरूवेण ।
अट्टं झायदि झाणं अणंतसंसारिओ होदि ॥ ८ ॥

दर्शनज्ञानचारित्राणि उपधानानि यदि न लिंगरूपेण ।
आर्त्तं ध्यायति ध्यानं अनंतसंसारिकः भवति ॥ ८ ॥

अर्थ—यदि कहिये जो लिंगरूप करि दर्शन ज्ञान चारित्रकूं तौ उपधानरूप न किये धारण न किये अर आर्त्तध्यानकूं ध्यावै है तौ ऐसा लिंगी अनंतससारी होय है ॥

भावार्थ—लिंग धारण करि दर्शन ज्ञान चारित्रका सेवन करनां था सो तौ न किया अर परिग्रह कुटुम्ब आदि विपयनिका परिग्रह छोड्या ताकी फेरि चिंताकरि आर्त्तध्यान ध्यावनें लगा तब अनंतससारी क्यौं न होय ? याका यह तात्पर्य है जो-सम्यग्दर्शनादिरूप भाव तौ पहले भये नांही अर किछू कारण पाय लिंग धार्‍या, ताकी अवधि कहा ? पहली भाव शुद्ध करि लिंग धारना युक्त है ॥ ८ ॥

आगैं कहै हैं जो—भावशुद्धि विना गृहस्थचारा छोड़े यह प्रवृत्ति होय है,—

जो जोडेदि विवाहं किसिकम्मवणिज्जजीवघादं च ।
वच्चदि णरयं पाओ करमाणो लिंगिरूवेण ॥ ९ ॥

यः योजयति विवाहं कृषिकर्मवाणिज्यजीवघातं च ।
व्रजति नरकं पापः कुर्वाणः लिंगिरूपेण ॥ ९ ॥

अर्थ—जो गृहस्थनिके परस्पर विवाह जोडै है सगपण करावै है, बहुरि कृषिकर्म कहिये खेती वाहना किसानका कार्य अर वाणिज्य कहिये

व्यापार विणज वैश्यका कार्य अर जीवघात कहिये वैद्यकर्मके अर्थि जीव घात करनां अथवा धीवरादिकका कार्य इनि कार्यनिकूं करै है सो लिंग-रूपकरि ऐसैं करता पापी नरककूं प्राप्त होय है ।।

भावार्थ—गृहस्थचारा छोडि शुभभाव विना लिंगी भया था, याकी भावकी वासना मिटी नांही तब लिगीका रूप धारि करि भी करनेलगा आप विवाह न करै तोऊ गृहस्थनिकै सगपण कराय विवाह करावै तथा खेती विणज जीवहिंसा आप करै तथा गृहस्थनिकूं करावै, तब पापी भया सता नरक जाय । ऐसे भेप धारनेंतैं तौ गृहस्थ ही भला था, पदवीका पाप तौ न लागता, तातैं ऐसा भेप धारणा उचित नांही यह उपदेश है ।। ९ ।।

आगैं फेरि कहै हैं,—

चोराण लाउराण य जुद्ध विवादं च तिव्वकम्मेहिं ।
जंतेण दिव्वमाणो गच्छदि लिंगी णरयवासं ।।१०।।

चौराणां लापराणां च युद्धं विवादं च तीव्रकर्मभिः ।
यंत्रेण दीव्यमानः गच्छति लिंगी नरकवासं ।।१०।।

अर्थ—जो लिगी ऐसैं प्रवर्त्तै है सो नरकवासकूं प्राप्त होय है जो चौरनिके अर लापर कहिये झूंठ बोलनेंवालानिकै युद्ध अर विवाद करावै है वहुरि तीव्रकर्म जो जिनिमैं बहुत पाप उपजै ऐसे तीव्र कषायनिके कार्य तिनिकरि तथा यंत्र कहिये चौपडि सतरंज पासा हिंदोला आदि ताकरि क्रीडा करता संता वर्त्तै है, ऐसैं वरतता नरक जाय है । इहां 'लाउराण का पाठांतर ऐसाभी है राउलाणं,' याका अर्थ—रावल कहिये राजकार्य करनेंवाले तिनिकै युद्ध विवाद करावै, ऐसैं जाननां ।।

१—मुद्रित सटीक संस्कृत प्रतिमें 'समाएण' ऐसा पाठ है जिसकी छाया '[illegible]' इस प्रकार है।।

भावार्थ—लिंग धारण करि ऐसे कार्य करै तौ सो नरक पावैही यामैं संशय नाही ॥ १० ॥

आगैं कहै हैं जो लिंग धारि लिंगयोग्य कार्य करता दु खी रहै है तिनि कार्यनिका आदर नाही करै है, सो भी नरकमे जाय है,—

दंसणणाणचरित्ते तवसंजमणियमणिच्चकम्मम्मि ।
पीडयदि वट्टमाणो पावदि लिंगी णरयवासं ॥ ११ ॥

दर्शनज्ञानचारित्रेषु तपः संयमनियमनित्यकर्मसु ।
पीड्यते वर्त्तमानः प्राप्नोति लिंगी नरकवासम् ॥११॥

अर्थ—जो लिंगधारणकरि इनि क्रियानिविषैं करता वाध्यमान होय पीडा पावै है दु खी होय है सो लिगी नरकवासकूं पावै है। ते क्रिया कहा ? प्रथम तौ दर्शन ज्ञान चारित्र तिनिविषैं इनिका निश्चय व्यवहार-रूप धारण करना, वहुरि तप अनशनादिक बारह प्रकार तिनिका शक्तिसारू करना, वहुरि सयम-इंद्रिय मनका वशि करना जीवनिकी रक्षा करनी, नियम कहिये नित्य किछू त्याग करना. वहुरि नित्यकर्म कहिये आवश्यक आदि क्रियाका कालकी काल नित्य करना, ये लिंगकै योग्य क्रिया हैं, इनि क्रियानिविषैं करता दुःखी होय है, सो नरक पावै है ॥

भावार्थ-लिगधारणकरि ये कार्य करनें थे तिनिका तौ निरादर करै अर प्रमाद सेवै, लिंगकै योग्य कार्य करता दु खी होय, तब जानिये—याकै भावशुद्धिपूर्वक लिगग्रहण नाही भया। अर भाव बिगडै ताका फल तौ नरकही होय, ऐसें जानना ॥ ११ ॥

आगैं कहै हैं जो भोजन विषैं भी रसनिका लोलुपी होय सो भी लिंगकूं लजावै है;—

कंदप्पाइय वट्टइ करमाणो भोयणेसु रसगिद्धिं ।
मायी लिंगविवाई तिरिक्खजोणी ण समणो ॥ १२ ॥

कंदर्पादिषु वर्त्तते कुर्वाणः भोजनेषु रसगृद्धिम् ।
मायावी लिंगव्यवायी तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥१२॥

अर्थ—जो लिंग धारि करि भोजनविषैं भी रसकी गृद्धि कहिये अति आसक्तता ताहि करता वर्तै है सो कंदर्प आदिकविषै वर्त्तै है, कामसेवनकी वांछा तथा प्रमाद निद्रादिक जाकै प्रचुर बढै है तब 'लिंगव्यवायी' कहिये व्यभिचारी होय है, मायावी कहिये कामसेवनकै अर्थि अनेक छल करना विचारै है, जो ऐसा होय है सो तिर्यंचयोनि है पशुतुल्य है मनुष्य नाही याहीतैं श्रमण नांही ॥

भावार्थ—गृहस्थचारा छोडि आहारविषैं लोलुपता करने लगया तौ गृहस्थचारामैं अनेक रसीले भोजन मिलै थे, काहेकूं छोड़े, तातैं जानिये है जो आत्मभावनाका रसकूं पहचान्या नाही तातैं विषयसुखकी ही चाहि रही तब भोजनके रसकी लारके अन्य भी विषयनिकी चाहि होय तब व्यभिचार आदिमैं प्रवर्त्ति करि लिंगकूं लजावै, ऐसे लिंगतैं तौ गृहस्थचाराही श्रेष्ठ है, ऐसैं जाननां ॥ १२ ॥

आगैं फेरि याहीका विशेष कहै हैं,—

धावदि पिंडणिमित्तं कलहं काऊण भुंजदे पिंडं ।
अवरुपरूई संतो जिणमग्गि ण होइ सो समणो ॥१३॥

धावति पिंडनिमित्तं कलहं कृत्वा भुंक्ते पिंडम् ।
अपरप्ररूपी सन् जिनमार्गी न भवति सः श्रमणः ॥१३॥

अर्थ—जो लिंगधारी पिंड जो आहार ताकै निमित्त दोडै है, आहारकै निमित्त कलह करि आहारकूं भुंजै है खाय है, बहुरि ताकै निमित्त अन्यतैं परस्पर ईर्षा करै है सो श्रमण जिनमार्गी नांही है ॥

भावार्थ—इस कालमैं जिनलिंगतैं भ्रष्ट होय पहले अर्द्धफालक भये पीछैं तिनिमैं श्वेतांबरादिक संघ भये तिनिनैं शिथिलाचार पोषि लिंगकी प्रवृत्ति बिगाडी, तिनिका यह निषेध है। तिनिमैं अब भी केई ऐसे देखिये हैं जो—आहारकै अर्थि शीघ्र दौडै है ईर्यापथकी सुध नांहीं, बहुरि आहार गृहस्थका घरसूं ल्याय दोय च्यारि सामिल बैठि खाय तामैं बटवारामैं सरस नीरस आवै तब परस्पर कलह करै बहुरि तिसके निमित्त परस्पर ईर्षा करै, ऐसैं प्रवर्त्तैं ते काहेके श्रमण? ते जिनमार्गी तौ नाही कलिकालके भेषी हैं। तिनिकूं साधु मानैं हैं ते भी अज्ञानी हैं ॥ १३ ॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

गिण्हदि अदत्तदाणं परणिंदा वि य परोक्खदूसेहिं ।
जिणलिंगं धारंतो चोरेण व होइ सो समणो ॥ १४ ॥

गृह्णाति अदत्तदानं परनिंदामपि च परोक्षदूषणैः ।
जिनलिंगं धारयन् चौरेणेव भवति सः श्रमणः ॥१४।

अर्थ—जो विना दिया तौ दान ले है अर परोक्ष परके दूषणनिकरि परकी निंदा करै है सो जिनलिंगकूं धारता संता भी चौरकी ज्यों श्रमण है ॥

भावार्थ—जो जिनलिंग धारि विना दिया आहार आदिकूं ग्रहण करै परकै देनेकी इच्छा नाही किछू भयादिक उपजाय लेना तथा निरादरतैं लेना, छिपिकरि कार्य करना ये तौ चौरके कार्य हैं। यह भेष धारि ऐसैं करनेंलग्या तब चौरही ठहऱ्या तातैं ऐसा भेषी होना योग्य नांही ॥

आगैं कहै हैं जो लिंग धारि ऐसैं प्रवर्त्तैं सो श्रमण नांहीं;—

उप्पडदि पडदि धावदि पुढवीओ खणदि लिंगरूवेण ।
इरियावह धारंतो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥१५॥

उत्पतति पतति धावति पृथिवीं खनति लिंगरूपेण।
ईर्यापथं धारयन् तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥१५॥

अर्थ—जो लिंग धारकरि ईर्यापथ सोधि करि चालना था तामैं सोधिकरि न चालै दौड़ता चालता सता उछलै गिरपडै फेरि उठिकरि दौडै बहुरि पृथ्वीकूं खोदै चालतैं ऐसा पग पटकै जो तामै पृथ्वी खुदि जाय ऐसैं चालै सो तिर्यंचयोनि है पशु अज्ञानी है, मनुष्य नाही ॥ १५ ॥

आगै कहै हैं जो वनस्पति आदि स्थावरजीवनिकी हिंसातैं कर्मबंध होय है ताकूं न गिनता स्वच्छंद होय प्रवर्तै है, सो श्रमण नांही;-

वंधो णिरओ संतो सस्सं खंडेदि तह य वसुहं पि।
छिंददि तरुगण बहुसो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥

वंधं नीरजाः सन् सस्यं खंडयति तथा च वसुधामपि।
छिनत्ति तरुगणं बहुशः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥

अर्थ-जो लिंग धारणकरि अर वनस्पति आदिकी हिंसातैं बध होय है ताकूं नाही दूषता संता बंधकूं न गिनता संता सस्य कहिये धान्य ताकूं खंडै है; बहुरि तैसैही वसुधा कहिये पृथिवी ताहि खडै है खोदै है, बहुरि बहुत बार तरुगण कहिये वृक्षनिका समूह तिनिकूं छेदै है, ऐसा लिंगी तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है श्रमण नांही ॥

भावार्थ-वनस्पति आदि स्थावरजीव जिनसूत्रमैं कहे हैं अर तिनिकी हिंसातैं कर्मबंध कह्या है ताकूं निर्दोष गिणता कहै है जो यामैं काहेका दोष है काहेका वध है ऐसैं मानता तथा वैद्यकर्मादिकके निमित्त औपधादिककूं धान्यकूं तथा पृथ्वीकूं तथा वृक्षनिकूं खंडै है खोदै है छेदै है सो अज्ञानी पशु है, लिंग धारि श्रमण कहावै है सो श्रमण नांही है ॥१६॥

आगैं कहै हैं जो लिंग धारणकरि स्त्रीनितैं राग करै है अर परकूं दूषण दे है सो श्रमण नाही;—

रागो करेदि णिच्चं महिलावग्गं परं च दूसेइ ।
दंसणणाणविहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥१७॥
रागं करोति नित्यं महिलावर्गं परं च दूषयति ।
दर्शनज्ञानविहीनः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥१७।

अर्थ—जो लिंग धारण करि स्त्रीनिके समूहनि प्रति तौ निरंतर राग-प्रीति करै है अर पर जो अन्य कोई निर्दोष है तिनिकूं दूषै है दूषण दे है कैसा है सो दर्शन ज्ञानकरि हीन है, ऐसा लिंगी तिर्यंचयोनि है पशुसमान है अज्ञानी है, श्रमण नांही ॥

भावार्थ—लिंग धारण करै ताकै सम्यग्दर्शन ज्ञान होय है, अर परद्रव्यनितैं राग द्वेष न करना ऐसा चारित्र होय है। तहां जो स्त्रीसमूहनितैं तौ रागप्रीति करै है अर अन्यकूं दूषण लगाय द्वेष करै है व्यभिचारीकासा स्वभाव है तौ ताकै काहेका दर्शन ज्ञान ? अर काहेका चारित्र ? लिंगधारि लिंगकै करनेंयोग्य था सो न किया तब अज्ञानी पशु समानही है श्रमण कहावै है सो आपभी मिथ्यादृष्टी है अर अन्यकूं मिथ्यादृष्टी करनेंवाला है, ऐसेका प्रसंग युक्त नांही ॥१७॥

आगैं फेरि कहै हैं;—

पव्वज्जहीणगहिणं णेहि सासम्मि वट्टदे बहुसो ।
आयारविणयहीणो तिरिक्खजोणी ण सो समणो ॥१८॥
प्रव्रज्याहीनगृहिणि स्नेहं शिष्ये वर्त्तते बहुशः ।
आचारविनयहीनः तिर्यग्योनिः न सः श्रमणः ॥१८॥

अर्थ—जा लिंगीकै प्रव्रज्या जो दीक्षा ताकरि रहित जे गृहस्थ तिनिपरि अर शिष्यनिविषैं स्नेह बहुत वर्त्तै अर आचार कहिये मुनिनिकी क्रिया अर गुरुनिका विनयकरि रहित होय सो तिर्यंचयोनि है, पशु है, अज्ञानी है, श्रमण नांही है ॥

भावार्थ—गृहस्थनितैं तौ बार बार लालपाल राखै अर शिष्यनिसूं स्नेह बहुत राखै अर मुनिकी प्रवृत्ति आवश्यक आदि किछू करै नाही गुरुनिसू प्रतिकूल रहै विनयादिक करै नांही ऐसा लिंगी पशुसमान है ताकूं साधु न कहिये ॥ १८ ॥

आगैं कहै हैं जो लिंगधारि ऐसें पूर्वोक्त प्रकार प्रवर्त्तै है सो श्रमण नाही, ऐसा संक्षेपकरि कहै हैं;—

एवं सहिओ मुणिवर संजदमज्झम्मि वट्टदे णिच्चं।
बहुलं पि जाणमाणो भावविणट्ठो ण सो समणो ॥१९॥

एवं सहितः मुनिवर ! संयतमध्ये वर्त्तते नित्यम् ।
बहुलमपि जानन् भावविनष्टः न सः श्रमणः ॥ १९ ॥

अर्थ—एवं कहिये पूर्वोक्तप्रकार प्रवृत्तिसहित जो वर्त्तै है सो हे मुनिवर ! जो ऐसा लिंगधारी संयमी मुनिनिकै मध्यभी निरन्तर रहै है अर बहुत शास्त्रनिकूं भी जानता है तौऊ भावकरि नष्ट है, श्रमण नांही है ॥ १९ ॥

भावार्थ—ऐसा पूर्वोक्त प्रकारका लिंगी जो सदा मुनिनिमैं रहै है अर बहुत शास्त्र जानै है तौऊ भाव जो शुद्ध दर्शन ज्ञान चारित्ररूप परिणाम ताकरि रहित है, तातैं मुनि नांही, भ्रष्ट है, अन्य मुनिनिके भाव बिगाडनेंवाला है ॥ १९ ॥

आगैं फेरि कहै हैं जो स्त्रीनिका संसर्ग बहुत राखै सो भी श्रमण नांही है,—

दंसणणाणचरित्ते महिलावग्गम्मि देहि वीसट्ठो ।
पासत्थ वि हु णियट्ठो भावविणट्ठो ण सो समणो ॥२०॥

दर्शनज्ञानचारित्राणि महिलावर्गे ददाति विश्वस्तः ।
पार्श्वस्थादपि स्फुटं विनष्टः भावविनष्टः न सः श्रमणः ॥

अर्थ—जो लिंग धारि करि स्त्रीनिके समूहविषैं तिनिका विश्वास-करि तथा तिनिकूं विश्वास उपजाय दर्शन ज्ञान चारित्रकूं दे है तिनिकूं सम्यक्त्व बतावै है पढनां पढावनां ज्ञान देहै, दीक्षा दे है, प्रवृत्ति सिखावै है, ऐसैं विश्वास उपजाय तिनिमैं प्रवर्त्तै है सो ऐसा लिंगी पार्श्वस्थ तैं भी निकृष्ट है, प्रगट भाव करि विनष्ट है श्रमण नांही ॥

भावार्थ—लिंग धारि स्त्रीनिकूं विश्वास उपजाय तिनिसूं निरंतर पढनां पढावनां लाल पाल राखै ताकूं जानिये—याका भाव खोटा है। पार्श्वस्थ भ्रष्ट मुनिकूं कहिये है तिसतैं भी ये निकृष्ट है, ऐसेकूं साधु न कहिये ॥ २० ॥

आगै फेरि कहै हैं,—

पुंच्छलिघरि जो भुंजइ णिच्चं संथुणदि पोसए पिंडं ।
पावदि बालसहावं भावविणट्ठो ण सो सवणो ॥ २१ ॥

पुंश्चलीगृहे यः भुंक्ते नित्यं संस्तौति पुष्णाति पिंडं ।
प्राप्नोति बालस्वभावं भावविनष्टः न सः श्रमणः ॥२१॥

अर्थ—जो लिंगधारी अर पुंश्चली जो व्यभिचारिणी स्त्री ताकै घर भोजन लेहै आहार करै है अर नित्य ताकी स्तुति करै है—जो यह बडी धर्मात्मा है याकै साधुनिकी बडी भक्ती है ऐसैं नित्य ताकूं सराहै ऐसैं पिंडकूं पालै है सो ऐसा लिंगी बालस्वभावकूं प्राप्त होय है, अज्ञानी है, भावकरि विनष्ट है, सो श्रमण नांही है ॥

भावार्थ—जो लिंग धारि व्यभिचारिणीका आहार खाय पिंड पालै ताकी नित्य सराहना करै, तब जानिये—यह भी व्यभिचारी है अज्ञानी है, ताकूं लज्जाभी न आवै, ऐसैं भावकरि विनष्ट है मुनिपणांके भाव नाही, तब मुनि काहेका ? ॥ २१ ॥

आगैं इस लिंगपाहुडकूं संपूर्ण करै हैं अर कहैं हैं जो—धर्मकूं यथार्थ पालै है सो उत्तम सुख पावै है,—

इय लिंगपाहुडमिणं सव्वं बुद्धेहिं देसियं धम्मं ।
पालेइ कट्ठसहियं सो गाहदि उत्तमं ठाणं ॥ २२ ॥

इति लिंगप्राभृतमिदं सर्वं बुद्धैः देशितं धर्मम् ।
पालयति कष्टसहितं सः गाहते उत्तमं स्थानम् ॥ २२ ॥

अर्थ—ऐसैं यह लिंगपाहुडकं शास्त्र सर्वबुद्ध जे ज्ञानी गणधरादिक तिनिनैं उपदेश्या है ताकूं जानिकरि अर जो मुनि धर्मकूं कष्टसहित वडा जतन करि पालै है राखै है सो उत्तमस्थान/जो मोक्ष ताहि पावै है ॥

भावार्थ—यह मुनिका लिंग है सो वडा पुण्यका उदयतैं पाइये है ताकूं पायकरि फेरि खोटे कारण मिलाय ताकूं विगाडै है तौ जानिये यह वडा निर्भागी है–चिंतामणि रत्न पाय कौडी साटै गमावै है तातैं आचार्य उपदेश किया है–जो ऐसा पद पाय याकूं वडा यत्नसूं राखणा—कुसंगतिकरि विगाडैगा तौ जैसैं पहलैं संसार भ्रमण था तैसैं फेरि ससारमैं अनंतकाल भ्रमण होयगा अर यत्नतैं पालैगा तौ शीघ्रही मोक्ष पावैगा; तातैं जाकूं मोक्ष चाहिये सो मुनिधर्मकूं पाय यत्नसहित पालो, परीषहका उपसर्गका उपद्रव आवै तौऊ चिगो मति यह श्री सर्वज्ञदेवका उपदेश है ॥ २२ ॥

ऐसैं यह लिंगपाहुड ग्रंथ पूर्ण किया ताका संक्षेप ऐसैं जो—इस पंचमकालमैं जिनलिंग धारि फेरि काल दुर्भिक्षके निमित्ततैं भ्रष्ट भये भेष बिगाड्या अर्द्धफालक कहाये, तिनिमैं फेरि श्वेताम्बर भये तिनिमैं भी यापनीय भये, इत्यादि होय शिथिलाचारके पोषनेंके शास्त्र रचि स्वच्छंद भये, तिनिमैं केतेक निपट निंद्य प्रवृत्ति करने लगे, तिनिका निषेधका मिषकरि सर्वके उपदेशकूं यह ग्रंथ है ताकूं समझिकरि श्रद्धान करनां। ऐसे निंद्य आचरणवालेनिकूं साधु मोक्षमार्गी न माननें, तिनिकूं बंदन पूजन न करनां यह उपदेश है ॥

छप्पय ।

लिंग मुनीको धारि पाप जो भाव बिगाडै
सो निंदाकूं पाय आपको अहित विथारै ।
ताकूं पूजै थुवै वंदना करै जु कोई
ते भी तैसे होइ साथि दुरगतिकूं लेई ॥
यातैं जे सांचे मुनि भये भाव शुद्धिमैं थिर रहे ।
तिनि उपदेश्या मारग लगे ते सांचे ज्ञानी कहे॥१॥

दोहा ।

अंतर वाह्य जु शुद्ध जे जिनमुद्राकूं धारि ।
भये सिद्ध आनंदमय वंदूं जोग संवारि ॥ २ ॥

इति श्रीकुन्दकुन्दाचार्यस्वामि विरचित
श्रीलिंगप्राभृतशास्त्रकी
जयपुरनिवासि प. जयचन्द्रजीछावड़ाकृत
देशभाषामयवचनिका समाप्त ॥ ७ ॥

❀ श्री ❀

अथ शीलपाहुड

—(:-:) ८ (:-:)—

अथ शीलपाहुडग्रंथकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है;—

❀ दोहा ❀

भवकी प्रकृति निवारिकै, प्रगट किये निजभाव।
है अरहंत जु सिद्ध फुनि वंदूं तिनि धरि चाव ॥ १ ॥

ऐसैं इष्टके नमस्काररूप मंगलकरि शीलपाहुडनाम ग्रंथ श्रीकुन्दकुन्दाचार्यकृत प्राकृत गाथाबंधकी देशभाषामय वचनिका लिखिये है। तहां प्रथम श्रीकुन्दकुन्दाचार्य ग्रंथकी आदिकै विषैं इष्टकूं नमस्काररूप मंगलकरि ग्रंथ करनेकी प्रतिज्ञा करैं हैं,—

वीरं विसालणयणं रत्तुप्पलकोमलस्समप्पावं।
तिविहेण पणमिऊणं सीलगुणाणं णिसामेह ॥ १ ॥

वीरं विशालनयनं रक्तोत्पलकोमलसमपादम्।
त्रिविधेन प्रणम्य शीलगुणान् निशाम्यामि ॥ १ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो मैं वीर कहिये अंतिम तीर्थंकर श्रीवर्द्धमानस्वामी परम भट्टारक ताहि मन वचन कायकरि नमस्कारकरि अर शील जो निज भावरूप प्रकृति ताके गुणनिकूं अथवा शील अर सम्य-

दर्शनादिक गुण तिनिकूं कहूंगा; कैसे हैं श्रीवर्द्धमानस्वामी—विशालनयन हैं, तिनिकै बाह्य तौ पदार्थनिके देखनेकूं नेत्र विशाल हैं विस्तीर्ण हैं सुन्दर हैं, बहुरि अंतरंग केवलदर्शन केवलज्ञानरूप नेत्र समस्त पदार्थनिकूं देखनें-वाले हैं; बहुरि कैसे हैं—'रक्तोत्पलकोमलसमपाद' कहिये रक्त कमल सारिखे कोमल जिनिके चरण हैं, ऐसे अन्यकै नांहीं; तातैं सर्वकरि सराहनें योग्य हैं पूजनें योग्य हैं। बहुरि याका दूजा अर्थ ऐसा भी होय है—जो रक्त कहिये रागरूप आत्माका भाव उत्पल कहिये दूर करनां ताविषैं कोमल कहिये कठोरतादिदोषरहित अर सम कहिये राग द्वेष करि रहित पाद कहिये वाणीके पद जिनिके, कोमल हितमित मधुर राग द्वेष-रहित जिनिके वचन प्रवर्त्तें हैं तिनितैं सर्वका कल्याण होवे है ॥

भावार्थ—ऐसे वर्द्धमानस्वामीकूं नमस्काररूप मंगलकरि आचार्य शीलपाहुड ग्रंथ करनेंकी प्रतिज्ञा करी है ॥ १ ॥

आगैं शीलका रूप तथा यातैं गुण होय है सो कहै हैं;—

सीलस्स य णाणस्स य णत्थि विरोहो बुधेहिं णिद्दिट्ठो ।
णवरि य सीलेण विणा विसया णाणं विणासंति ॥ २ ॥

शीलस्य च ज्ञानस्य च नास्ति विरोधो बुधैः निर्दिष्टः ।
केवलं च शीलेन विना विषयाः ज्ञानं विनाशयंति ॥२॥

अर्थ—शीलकै अर ज्ञानकै ज्ञानीनिनैं विरोध न कह्या है ऐसा नांही जहां शील होय तहां ज्ञान न होय अर ज्ञान होय तहां शील न होय। बहुरि इहां णवरि कहिये विशेष है सो कहै हैं—शील विना विषय कहिये इंद्रियनिके विषय हैं ते ज्ञानकूं विनाशैं हैं नष्ट करैं हैं ज्ञानकूं मिथ्यात्व रागद्वेषमय अज्ञानरूप करैं हैं। इहां ऐसा जाननां जो—शीलनाम स्वभावका प्रकृतिका प्रसिद्ध है, तहां आत्माका सामान्यकरि ज्ञान है। तहां इस ज्ञानस्वभावमैं अनादिकर्मसंयोगतैं मिथ्यात्व राग णाम होय हैं सो यह ज्ञानकी प्रकृति कुशीलनाम पावै है यातैं

जे है, तातैं याकूं ससार प्रकृति कहिये इस प्रकृतिकूं अज्ञानरूप कहिये इस प्रकृतितैं ससार पर्यायविषै आपा मानै है तथा परद्रव्यनिविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि करै है। बहुरि यह प्रकृति पलटै तब मिथ्यात्व का अभाव कहिये तब संसारपर्यायविषै आपा न मानै है. परद्रव्यनिविषैं इष्ट अनिष्ट बुद्धि न होय अर इस भावकी पूर्णता न होय तैतैं चारित्रमोहका उदयतैं कछू रागद्वेष कषाय परिणाम उपजै ताकूं कर्मका उदय जानै, तिनि भावनिकूं त्यागनेयोग्य जानैं, त्यागा चाहै ऐसी प्रकृति होय तब सम्यग्दर्शनरूपभाव कहिये, इस सम्यग्दर्शनभावतैं ज्ञानभी सम्यक् नाम पावै और यथापदवी चारित्रकी प्रवृत्ति होय जेता अंश रागद्वेष घटै तेता अंश चारित्र कहिये ऐसी प्रकृतिकूं सुशील कहिये, ऐसैं कुशील सुशील शब्दका सामान्य अर्थ है। तहा सामान्यकरि विचारिये तो ज्ञानही कुशील है अर ज्ञानही सुशील है यातैं ऐसैं कह्या है जो ज्ञानकै अर शीलकै विरोध नाहीं बहुरि जब ससार प्रकृति पलटि मोक्ष सन्मुख प्रकृति होय तब सुशील कहिये, तातैं ज्ञानमैं अर शीलमैं विशेष कह्या जो ज्ञानमैं सुशील न आवै तौ ज्ञानकूं इंद्रियनिके विषय नष्ट करैं ज्ञानकूं अज्ञान करैं तब कुशील नाम पावै। बहुरि इहां कोई पूछै—गाथामैं ज्ञान अज्ञानका तथा सुशील कुशीलका नाम तो न कह्या, ज्ञान अर शील ऐसा ही कह्या है ताका समाधान जो पूर्वैं गाथामैं ऐसीप्रतिज्ञा करी जो मैं शीलके गुणनिकूं कहूंगा तातैं ऐसा जान्या जाय है जो आचार्यके आशयमैं सुशीलहीके कहनेका प्रयोजन है, सुशीलहीकूं शीलनाम करि कहिये, शीलविना कुशील कहिये। बहुरि इहा गुणशब्द उपकारवाचक लेनां तथा विशेषवाचक लेना, शीलतैं उपकार होय है, तथा शीलका विशेष गुण है सो कहसी। ऐसैं ज्ञानमैं जो शील न आवै तो कुशील होय इंद्रियनिके विषयनितैं आसक्ति होय तब ज्ञाननाम न पावै. ऐसैं जानना। बहुरि व्यवहारमैं शीलनाम स्त्रीका संसर्ग वर्जनेंकाभी है सो विषयसेवनकाही निषेध है, तथा परद्रव्यमात्रका संसर्ग छोड़ना आत्मामैं लीन होना सो परमब्रह्मचर्य है। ऐसैं ये शीलहीके आशय जानना ॥ २ ॥

आगैं कहै है जो—ज्ञान भयेभी ज्ञानका भावनां अर विषयनितैं विरक्त होनां कठिन है;—

दुक्खेणेयदि णाणं णाणं णाऊण भावणा दुक्खं ।
भावियमई य जीवो विसयेसु विरज्जए दुक्खं ॥ ३ ॥

दुःखेनेयते ज्ञानं ज्ञानं ज्ञात्वा भावना दुःखम् ।
भावितमतिश्च जीवः विषयेषु विरज्यति दुःखम् ॥ ३ ॥

अर्थ—प्रथम तौ ज्ञान है सोही दुःखकरि प्राप्त होय है, बहुरि कदाचित् ज्ञानभी पावै तौ ताकूं जानि करि ताका भावना करना बारबार अनुभव करनां दुःखकरि होय है, बहुरि कदाचित् ज्ञानकी भावनासहित भी जीव होय तौ विषयनिकूं दुःखकरि त्यागै है ॥

भावार्थ—ज्ञानका पावना फेरि ताकी भावना करना फेरि विषयनिका त्यागना ये उत्तरोत्तर दुर्लभ हैं, अर विषयनिकूं त्यागे विना प्रकृति पलटी न जाय तातैं पूर्वें ऐसा कहा है जो विषय ज्ञानकूं बिगाडै है तातैं विषयनिका त्यागनां सोही सुशील है ॥ ३ ॥

आगैं कहै हैं जो यह जीव जेतैं विषयनिमैं प्रवर्त्तै है तेतै ज्ञानकू नांही जानै है अर ज्ञानकूं जानें विना विषयनितैं विरक्त होय तोऊ कर्मनिका क्षय नांही करै है,—

ताव ण जाणदि णाणं विसयबलो जाव वट्टए जीवो ।
विसए विरत्तमेत्तो ण खवेइ पुराइयं कम्म ॥ ४ ॥

तावत् न जानाति ज्ञानं विषयबलः यावत् वर्त्तते जीवः ।
विषये विरक्तमात्रः न क्षिपते पुरातनं कर्म ॥ ४ ॥

अर्थ—जेतैं यह जीव विषयबल कहिये विषयनिके वशीभूत हूवा वर्त्तै

है तेतैं ज्ञानकूं नांही जानै है वहुरि ज्ञानकूं जानें बिना केवलविषयनि-विषैं विरक्तमात्रहीकरि पूर्वैं बांधे जे कर्म तिनिका क्षय नांही करै है ॥

भावार्थ—जीवका उपयोग क्रमवर्त्ती है अर स्वस्थस्वभाव है यातैं जैसा ज्ञेयकूं जानै तिसकाल तिसतैं तन्मय होय वर्त्तै है तातैं जेतैं विषयनिमैं आसक्त भया वर्त्तै है तेतैं ज्ञानका अनुभव न होय इष्ट अनिष्ट-भावही रहै, वहुरि ज्ञानका अनुभवन भये विना कदाचित् विषयनिकूं त्यागै तौ वर्त्तमानविषयनिकूं तौ छोडै परन्तु पूर्व कर्म वाधे थे तिनिका तौ ज्ञानका अनुभवन भये विना क्षय होय नांही, पूर्व कर्मका बधका क्षय करनेमैं ज्ञानहीकी सामर्थ्य है, तातैं ज्ञानसहित होय विषय त्यागना श्रेष्ठ है, विषयनिकूं त्यागि ज्ञानकी भावना करनां यही सुशील है ॥ ४ ॥

आगै ज्ञानका अर लिंगग्रहणका अर तपका अनुक्रम कहै हैं,—

णाणं चरित्तहीणं लिंगग्गहणं च दंसणविहूणं ।
संजमहीणो य तवो जइ चरइ णिरत्थयं सव्वं ॥ ५ ॥

ज्ञानं चारित्रहीनं लिंगग्रहणं च दर्शनविहीनं ।
संयमहीनं च तपः यदि चरति निरर्थकं सर्वम् ॥ ५ ॥

अर्थ—ज्ञान तौ चारित्ररहित होय सो निरर्थक है, बहुरि लिंगका ग्रहण दर्शनकरि रहित होय सो निरर्थक है, बहुरि संयमकरि रहित तप होय तौ निरर्थक है ऐसैं ए आचरण करै तौ सर्वनिरर्थक है ॥

भावार्थ—हेय उपादेयका ज्ञान तौ होय अर त्यागग्रहण न करै तौ ज्ञान निष्फल होय. यथार्थ श्रद्धान बिना भेष ले तौ निष्फल होय है, इन्द्रिय वश करनां जीवनिकी दया करना यह सयम है या विनां कछू तप करै तौ अहिंसादिकका विपर्यय होय तब निष्फल होय; ऐसैं इनिका आचरण निष्फल होय है ॥ ५ ॥

आगैं याहीतैं कहै हैं जो—ऐसैं किये थोड़ा भी करै तौ बडा फल होय है;—

णाणं चरित्तसुद्धं लिंगग्गहणं च दंसणविसुद्धं ।
संजमसहिदो य तवो थोओ वि महाफलो होइ ॥ ६ ॥

ज्ञानं चारित्रशुद्धं लिंगग्रहणं च दर्शनविशुद्धम् ।
संयमसहितं च तपः स्तोकमपि महाफलं भवति ॥ ६ ॥

अर्थ—ज्ञान तौ चारित्रकरि शुद्ध, अर लिंगका ग्रहण दर्शन करि शुद्ध, संयमसहित तप ऐसैं थोड़ा भी आचरै तौ महाफलरूप होय है ॥

भावार्थ—ज्ञान थोड़ाभी होय अर आचरण शुद्ध करै तौ बडा फल होय; बहुरि यथार्थश्रद्धापूर्वक भेष ले तौ बडाफल करै जैसैं सम्यग्दर्शन-सहित श्रावकही होय तौ श्रेष्ठ, अर तिस विना मुनिका भेष भी श्रेष्ठ नांही; बहुरि इन्द्रिसंयम प्राणसंयम सहित उपवासादिक तप थोडाभी करै तौ बडा फल होय, अर विषयाभिलाष अर दयारहित बडा कष्ट सहित तप करै तौऊ फल नाही, ऐसैं जानना ॥ ६ ॥

आगैं कहै हैं जो कोई ज्ञानकूं जानिकरि भी विषयासक्त रहैं हैं ते संसारहीमैं भ्रमैं हैं,—

णाणं णाऊण णरा केई विसयाइभावसंसत्ता ।
हिंडंति चादुरगदिं विसएसु विमोहिया मूढा ॥ ७ ॥

ज्ञानं ज्ञात्वा नराः केचित् विषयादिभावसंसक्ताः ।
हिंडंते चतुर्गतिं विषयेषु विमोहिता मूढाः ॥ ७ ॥

अर्थ—केई मूढ मोही पुरुष ज्ञानकूं जानिकरि भी विषयनिरूप भावनिकरि आसक्त भये संते चतुर्गतिरूप संसारमैं भ्रमै हैं जातैं विषयनिकरि विमोहित भये फेरि भी जगतमैं प्राप्त होसी तामैं भी विषय कषायनिका ही संस्कार है ॥

भावार्थ—ज्ञान पाय विषय कषाय छोडनां भला है, नातरि ज्ञान अज्ञानतुल्यही है ॥ ७ ॥

आगैं कहै हैं जो ज्ञान पाय ऐसें करै तब संसार कटै,—

जे पुण विसयविरत्ता णाणं णाऊण भावणासहिदा।
छिंदंति चादुरगदिं तवगुणजुत्ता ण संदेहो ॥ ८ ॥

ये पुनः विषयविरक्ताः ज्ञानं ज्ञात्वा भावनासहिताः।
छिन्दन्ति चतुर्गतिं तपोगुणयुक्ताः न सन्देहः ॥ ८ ॥

अर्थ—जे ज्ञानकूं जानिकरि अर विषयनितैं विरक्त भये संते तिस ज्ञानकी बारबार अनुभवरूप भावनासहित होय हैं ते तप अर गुण कहिये मूलगुण उत्तरगुणयुक्त भये संते चतुर्गति रूप जो संसार है ताहि छेदै हैं काटैं हैं, यामैं संदेह नाही ॥

भावार्थ—ज्ञान पाय विषय कषाय छोडि ज्ञानकी भावना करै, मूलगुण उत्तरगुण ग्रहणकरि तप करै सो संसारका भावकरि मुक्तिप्राप्त होय—यह शीलसहितज्ञानरूप मार्ग है ॥ ८ ॥

आगै ऐसैं शीलसहित ज्ञानकरि जीव शुद्ध होय है ताका दृष्टान्त कहै है,—

जह कंचणं विसुद्धं धम्मइयं खडियलवणलेवेण।
तह जीवो वि विसुद्धं णाणविसलिलेण विमलेण ॥ ९ ॥

यथा कांचनं विशुद्धं धमत् खटिकालवणलेपेन।
तथा जीवोऽपि विशुद्धः ज्ञानविसलिलेन विमलेन ॥ ९ ॥

अर्थ—जैसैं काचन कहिये सुवर्ण है सो खडिय कहिये सुहागा अर लूण इनिका लेपकरि विशुद्ध निर्मल कांतियुक्त होय है तैसैं जीव है सो भी विषयकषायनिके मलकरि रहित निर्मल ज्ञानरूप जलकरि पखाल्या कर्मनिकरि रहित विशुद्ध होय है ॥

भावार्थ—ज्ञान है सो आत्माका प्रधान गुण है परन्तु मिथ्यात्व विषयनितैं मलिन है यातैं मिथ्यात्वविषयनिरूप मलकूं दूरिकरि याकी

भावना करै याका एकाग्रकरि ध्यान करै तौ कर्मनिका नाश करै, अनंतचतुष्टय पाय मुक्त होय शुद्ध आत्मा होय है; तहां सुवर्णका दृष्टान्त है सो जानना ॥ ९ ॥

आगैं कहै हैं जो ज्ञान पाय विषयासक्त होय है सो ज्ञानका दोष नांही है, कुपुरुषका दोष है,—

णाणस्स णत्थि दोसो कप्पुरिसाणो वि मंदबुद्धीणो ।
जे णाणगव्विदा होऊणं विसएसु रज्जंति ॥ १० ॥

ज्ञानस्य नास्ति दोषः कापुरुषस्यापि मंदबुद्धेः ।
ये ज्ञानगर्विताः भूत्वा विषयेषु रज्जन्ति ॥ १० ॥

अर्थ—जे पुरुष ज्ञानगर्वित होयकरि ज्ञानमदकरि विषयनिविषैं रंजित होय है सो यह ज्ञानका दोष नाहीं है ते मन्दबुद्धि कुपुरुष हैं तिनिका दोष है ॥

भावार्थ—कोई जानैगा कि ज्ञानकरि बहुत पदार्थनिकूं जानै तब विषयनिमैं रंजायमान होय है सो यह ज्ञानका दोष है; तहां आचार्य कहै हैं-ऐसैं मति जानो-ज्ञान पाय विषयनिमैं रंजायमान होय है सो यह ज्ञानका दोष नाही है-यह पुरुष मन्दबुद्धि है अर कुपुरुष है ताका दोष है, पुरुषका होणहार खोटा होय तब बुद्धि बिगडजाय तब ज्ञानकूं पाय अर ताका मदमैं छकि जाय विषय कषायनिमैं आसक्त होय सो यह दोष पुरुषका है, ज्ञानका नांही। ज्ञानका तौ कार्य वस्तुकूं जैसा होय तैसा जनायदेनाही है पीछै प्रवर्त्तना पुरुषका कार्य है, ऐसैं जाननां ॥ १० ॥

आगैं कहै हैं पुरुषकै ऐसैं निर्वाण होय है,—

णाणेण दंसणेण य तवेण चरिएण सम्मसहिएण ।
होहदि परिणिव्वाणं जीवाण चरित्तसुद्धाणं ॥ ११ ॥

ज्ञानेन दर्शनेन च तपसा चारित्रेण सम्यक्त्वसहितेन ।
भविष्यति परिनिर्वाणं जीवानां चारित्रशुद्धानाम् ॥ ११ ॥

अर्थ—ज्ञान दर्शन तप ये सम्यक्त्व भावसहित आचरे होय तब चारित्रकरि शुद्ध जीवनिकै निर्वाणकी प्राप्ति होय है ॥

भावार्थ—सम्यक्त्वकरि सहित ज्ञान दर्शन तप आचरै तब चारित्र शुद्ध होय राग द्वेष भाव मिटि जाय तब निर्वाण पावै, यह मार्ग है ॥११॥

आगै याहीकूं शीलप्रधानकरि नियमकरि कहै हैं,—

सीलं रक्खंताणं दंसणसुद्धाणदिढचरित्ताणं ।
णत्थि धुवं णिव्वाणं विसएसु विरत्तचित्ताणं ॥१२॥

शीलं रक्षतां दर्शनशुद्धानां दृढचारित्राणाम् ।
अस्ति ध्रुवं निर्वाणं विषयेषु विरक्तचित्तानाम् ॥१२॥

अर्थ—जे पुरुष विषयनिविषैं विरक्त है चित्त जिनिका ऐसे हैं अर शीलकूं राखते संते हैं अर दर्शनकरि शुद्ध हैं अर दृढ है चारित्र जिनिका ऐसे पुरुषनिकै ध्रुव कहिये निश्चयतैं नियमतैं निर्वाण होय है ॥

भावार्थ—जो विषयनितैं विरक्त होनां है सो ही शीलकी रक्षा है, ऐसैं जे शीलकी रक्षा करैं हैं तिनिहीकै सम्यग्दर्शन शुद्ध होय है अर चारित्र अतीचार रहित शुद्ध दृढ होय है ऐसे पुरुषनिकै नियमकरि निर्वाण होय है। अर जे विषयनि विषैं आसक्त हैं तिनिकै शीलबिगडै तब दर्शन शुद्ध न होय चारित्र शिथिल होय तब निर्वाणभी न होय, ऐसैं निर्वाण मार्गमैं शीलही प्रधान है ॥ १२ ॥

आगैं कहै हैं जो कदाचित् कोई विषयनिसूं विरक्त न भया अर मार्ग विषयनितैं विरक्त होनेंरूपही कहै है ताकूं मार्गकी प्राप्ति होयभी है, अर जो विषयसेवनेकूं ही मार्ग कहै है तौ ताकै ज्ञानभी निरर्थक है;—

विसएसु मोहिदाणं कहियं मग्गं पि इट्ठदरिसीणं।
उम्मग्गं दरिसीणं णाणं पि णिरत्थयं तेसिं ॥१३॥

विषयेषु मोहितानां कथितो मार्गोऽपि इष्टदर्शिनां।
उन्मार्गं दर्शिनां ज्ञानमपि निरर्थकं तेषाम् ॥१३॥

अर्थ—जे पुरुष इष्ट मार्गके दिखावनेंवाले ज्ञानी हैं अर विषयनितैं विमोहित हैं तौऊ तिनिकै मार्गकी प्राप्ति कही है, बहुरि जे उन्मार्गके दिखावनेंवाले है तिनिका तौ ज्ञान पावना भी निरर्थक है ॥

भावार्थ-पूर्वें कह्याथा जो ज्ञानकै अर शीलकै विरोध नांही है अर यह विशेष है जो ज्ञान होय अर विषयासक्त होय ज्ञान विगडै तब शील नाही। अब इहा ऐसैं कह्या है जो—ज्ञान पाय कदाचित् चारित्रमोहके उदयतैं विषय न छूटै तौ जातैं तिनिमैं विमोहित रहै अर मार्गकी प्ररूपणा विषयनिका त्यागरूपही करै ताकै तौ मार्गकी प्राप्ति होय भी है बहुरि जो मार्गहीकूं कुमार्गरूप प्ररूपणा करै विषय सेवनेंकू सुमार्ग बतावै तौ ताका तौ ज्ञान पावना निरर्थकही है, ज्ञान पाय भी मिथ्यामार्ग प्ररूपै ताकै ज्ञान काहेका? ज्ञान मिथ्याज्ञान है। इहा आशय यह सूचै है जो—सम्यक्त्व सहित अविरत सम्यग्दृष्टी है सो तौ भला है जातैं सम्यग्दृष्टी कुमार्ग प्ररूपै नाही, आपकै चारित्रमोहका उदय प्रबल होय तेतैं विषय छूटै नांही तातैं अविरत है; अर सम्यग्दृष्टी न होय अर ज्ञानभी बडा होय कछू आचरणभी करै विषयभी छोडै अर कुमार्ग प्ररूपै तौ भला नांही ताका ज्ञान अर विषय छोडना निरर्थक है, ऐसैं जाननां ॥ १३ ॥

आगैं कहै हैं जो उन्मार्गके प्ररूपणा करनेंवाले कुमतकुशास्त्रकी जे प्रशसा करैं हैं ते बहुत शास्त्र जानैं हैं तौऊ शीलव्रतज्ञानकरि रहित तिनिकै आराधना नाही,—

कुमयकुसुदपसंसा जाणंता बहुविहाइं सत्थाइं ।
सीलवदणाणरहिदा ण हु ते आराधया होंति ॥ १४ ॥

कुमतकुश्रुतप्रशंसकाः जानंतो बहुविधानि शास्त्राणि ।
शीलव्रतज्ञानरहिता न स्फुटं ते आराधका भवंति ॥१४॥

अर्थ—जे बहुत प्रकार शास्त्रनिकू जानते सते हैं अर कुमत कुशास्त्रके प्रशंसा करनेवाले हैं ते शील अर व्रत अर ज्ञान इनिकरि रहित हैं ते इनिके आराधक नाही है ॥

भावार्थ—जे बहुत शास्त्रनिकूं जानि ज्ञान तौ बहुत जानैं हैं अर कुमत कुशास्त्रनिकी प्रशसा करै हैं तौ जानिये याकै कुमतसू अर कुशास्त्रसू राग है प्रीति है तब तिनिकी प्रशंसा करै है—तौ ये तौ मिथ्यात्वके चिह्न हैं, अर जहां मिथ्यात्व है तहा ज्ञान भी मिथ्या है अर विषयकषायनितैं रहित होय ताकूं शील कहिये सो भी ताकै नाही है, अर व्रत भी ताकै नाही है, कदाचित् कौऊ व्रताचरण करै है तौऊ मिथ्याचारित्ररूप है, तातैं सो दर्शन ज्ञान चारित्रका आराधनेंवाला नांही है, मिथ्यादृष्टी है ॥ १४ ॥

आगैं कहै है जो रूपसुंदरादिक सामग्री पावै अर शील रहित होय तौ ताका मनुष्यजन्म निरर्थक है,—

रूवसिरिगव्विदाणं जुव्वणलावण्णकंतिकलिदाणं ।
सीलगुणवज्जिदाणं णिरत्थयं माणुसं जम्म ॥ १५ ॥

रूपश्रीगर्वितानां यौवनलावण्यकांतिकलितानाम् ।
शीलगुणवर्जिताना निरर्थकं मानुपं जन्म ॥ १५ ॥

अर्थ—जे पुरुप यौवन अवस्था सहित हैं अर वहुतनिकूं प्रिय लागैं ऐसा लावण्य ताकरि सहित हैं अर शरीरकी कांति प्रभाकरि मंडित हैं

ऐसे, अर सुंदररूप लक्ष्मी संपदाकरि गर्वित हैं मदोन्मत्त है अर शील अर गुणनिकरि वर्जित हैं तिनिका मनुष्यजन्म निरर्थक है ॥

भावार्थ—मनुष्य जन्म पाय शीलकरि रहित हैं विषयनिमैं आसक्त रहैं, सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र जे गुण तिनिकरि रहित है, अर यौवन अवस्थामैं शरीरकी लावण्यता कांतिरूप सुंदर धन संपदा पाय इनिका गर्वकरि मदोन्मत रहैं तो तिनिनें मनुष्य जन्म निष्फल खोया; मनुष्य-जन्ममैं सम्यग्दर्शनादिकका अङ्गीकार करना अर शील संयम पालनेयोग्य था सो अङ्गीकार किया नाही तब निष्फलही गया कहिये। बहुरि ऐसा भी जनाया है जो पहली गाथामैं कुमत कुशास्त्रकी प्रशंसा करनेवालेका ज्ञान निरर्थक कह्या था तैसैं इहां रूपादिकका मद करै तो यह भी मिथ्यात्वका चिह्न है सो मद करै सो मिथ्यादृष्टी ही जानना। तथा लक्ष्मी रूप यौवन कांतिकरि मंडित होय अर शीलरहित व्यभिचारी होय तो ताकी लोकमैं निंदाही होय है ॥

आगैं कहै हैं जो बहुत शास्त्रनिका ज्ञान होतैं भी शीलही उत्तम है;—

वायरणछंदवइसेसियववहारणायसत्थेसु।
वेदेऊण सुदेसु य तेव सुयं उत्तमं सीलं ॥ १६ ॥

व्याकरणछन्दोवैशेषिकव्यवहारन्यायशास्त्रेषु।
विदित्वा श्रुतेषु च तेषु श्रुतं उत्तमं शीलम् ॥ १६ ॥

अर्थ—व्याकरण छंद वैशेषिक व्यवहार न्यायशास्त्र ये शास्त्र बहुरि श्रुत कहिये जिनागम इनिविषैं तिनि व्याकरणादिककूं अर श्रुत कहिये जिनागमकूं जानिकरिभी इनिविषैं शील होय सो ही उत्तम है ॥

भावार्थ—व्याकरणादिशास्त्र जानै अर जिनागमकूंभी जानै तौऊ तिनिमैं शीलही उत्तम है शास्त्रनिकूं जानि अर विषयनिमैं ही आसक्त है तौ तिनि शास्त्रनिका जानना वृथा है उत्तम नाही ॥

आगैं कहै हैं जो-शील गुणकरि मंडित हैं ते देवनिकै भी वल्लभ हैं,—

सीलगुणमंडिदाणं देवा भवियाण वल्लहा होंति।
सुदपारयपउरा णं दुस्सीला अप्पिला लोए ॥ १७ ॥

शीलगुणमंडितानां देवा भव्यानां वल्लभा भवंति।
श्रुतपारगप्रचुराः णं दुःशीला अल्पकाः लोके ॥ १७ ॥

अर्थ—जे भव्य प्राणी शील अर सम्यग्दर्शनादिक गुण अथवा शील सो ही गुण ताकरि मंडित है तिनिका देव भी वल्लभ होय है तिनिकी सेवा करनेवाले सहायी होय हैं। बहुरि जे श्रुतपारग कहिये शास्त्रके पार पहुँचे हैं ग्यारह अंग ताई पढे हैं ऐसे बहुत हैं अर तिनिमैं केई शीलगुणकरि रहित हैं दुःशील हैं विषय कषायनिमैं आसक्त हैं णं ते लोकविषैं 'अल्पका' कहिये न्यून हैं ते मनुष्य लोकनिकै भी प्रिय न होय हैं तब देव कहांतैं सहायी होय।'

भावार्थ-शास्त्र बहुत जानै अर विषयासक्त होय तो ताका कोई सहायी न होय, चोर अर अन्यायीकी लोकमैं कोई सहाय न करै; अर शील गुणकरि मंडित होय अर ज्ञान थोडाभी होय तौ ताकै उपकारी सहायी देव भी होय है तब मनुष्य तौ सहायी होयही होय शील गुणवान सर्वकै प्यारा होय है ॥ १७ ॥

आगैं कहै हैं जिनिकै शील है सुशील है तिनिका मनुष्यभवमैं जीवना सफल है भला है;—

सव्वे विय परिहीणा रूपविरूवा वि वदिदसुवया वि।
सीलं जेसु सुसीलं सुजीविदं माणुसं तेसिं ॥ १८ ॥

सर्वेऽपि च परिहीनाः रूपविरूपा अपि पतितसुवयसोऽपि।
शीलं येषु सुशीलं सुजीविदं मानुष्यं तेषाम् ॥ १८ ॥

यही सुशील है जाकै संसारको ओड़ आवै है तव यह प्रकृति होय है अर यह प्रकृति न होय तेतैं संसारभ्रमण है ही, ऐसैं जाननां ॥ १९ ॥

आगैं शील है सो ही तप आदिक है ऐसैं शीलकी महिमा कहै हैं;—

सीलं तवो विसुद्धं दंसणसुद्धीय णाणसुद्धी य ।
शीलं विसयाण अरी सीलं मोक्खस्स सोवाणं ॥२०॥

शीलं तपः विशुद्धं दर्शनशुद्धिश्च ज्ञानशुद्धिश्च ।
शीलं विषयाणामरिः शीलं मोक्षस्य सोपानम् ॥ २० ॥

अर्थ—शील है सो ही विशुद्ध निर्मल तप है, बहुरि शील है सो ही दर्शनकी शुद्धिता है, बहुरि शील है सो ही ज्ञानकी शुद्धता है, बहुरि शील है सो ही विषयनिका शत्रु है, बहुरि शील है सो ही मोक्षकी पैडी है ॥

भावार्थ—जीव अजीव पदार्थनिका ज्ञानकरि तामैंसू मिथ्यात्व अर कषायनिका अभाव करनां सो सुशील है सो यह आत्माका ज्ञानस्वभाव है सो संसारप्रकृति मिटि मोक्षसन्मुख प्रकृति होय तब या शीलहीके तप आदिक सर्व नाम हैं—निर्मल तप शुद्ध दर्शन ज्ञान विषय कषायनिका मेटनां मोक्षकी पैडी ये सर्व शीलके नामके अर्थ हैं, ऐसा शीलका माहात्म्य वर्णन किया है बहुरि केवल महिमा ही नाहीं है इनि सर्व भावनिकै अविनाभावीपणां जनाया है ॥ २० ॥

आगैं कहै हैं जो विषयरूप विष महा प्रबल है,—

जह विसयलुद्ध विसदो तह थावर जंगमाण घोराणं ।
सव्वेसिंपि विणासदि विसयविसं दारुणं होई ॥ २१ ॥

यथा विषयलुब्धः विषदः तथा स्थावरजंगमान् घोरान् ।
सर्वान् अपि विनाशयति विषयविषं दारुणं भवति ॥२१॥

अर्थ-जैसैं विषयनिका सेवनां विष है सो जे विषयनिकै विषै लुब्धजीव हैं तिनिकूं विषका देनेवाला है तैसैं ही जे घोर तीव्र स्थावर जगम सर्वनिका विप है सो प्राणीनिका विनाश करै है तथापि तिनि सर्वनिका विषनिमैं विषयनिका विष उत्कृष्ट है तीव्र है ॥

भावार्थ—जैसैं हस्ती मीन भ्रमर पतंग आदि जीव विषयनिकरि लुब्ध भये विषयनिके वश भये हते जाय हैं तैसैंही स्थावरका विप मोहरा सोमल आदिक अर जंगमका विष सर्प आदिकका विप इनिका भी विपकरि प्राणी हते जाय हैं परन्तु सर्व विषनिमै विपयनिका विप अतितीव्र ही है ॥ २१ ॥

आगैं इसहीका समर्थनकूं विषयनिका विषका तीव्रपणां कहै हैं जो—विषकी वेदनातैं तौ एकवार मरै है अर विषयनितैं संसारमैं भ्रमै है,—

वारि एक्कम्मि यजम्मे सरिज्ज विसवेयणाहदो जीवो ।
विसयविसपरिहया णं भमंति संसारकांतारे ॥२२॥

वारे एकस्मिन् च जन्मनि गच्छेत् विषवेदनाहतः जीवः ।
विषयविषपरिहता भ्रमंति संसारकांतारे ॥ २२ ॥

अर्थ—विपकी वेदनाकरि हत्या जो जीव सो तौ एकजन्मविषैही मरै है बहुरि विषयरूप विषकरि हते गये जीव हैं ते अतिशयकरि संसाररूप वनविषैं भ्रमैं हैं ॥

भावार्थ—अन्य सर्पादिकके विपतैं विषयनिका विष प्रवल है इनिकी आसक्ततातैं ऐसा कर्मबंध होय है जातैं बहुत जन्म मरण होय है ॥२२॥

आगैं कहै है जो विपयनिकी आसक्ततातैं चतुर्गतिमैं दुःख ही पावैं हैं;—

णरएसु वेयणाओ तिरिक्खए माणुएसु दुक्खाइं ।
देवेसु वि दोहग्गं लहंति विसयासत्ता जीवा ॥ २३ ॥

नरकेषु वेदनाः तिर्यक्षु मानुषेषु दुःखानि ।
देवेषु अपि दौर्भाग्यं लभंते विषयासक्ता जीवाः ॥ २३ ॥

अर्थ—विषयनिविषै आसक्त जे जीव है ते नरकनिविषैं अत्यंतवेदनाकूं पावै है; अर तिर्यंचनिविषै तथा मनुष्यनिविषैं दुखनिकूं पावैं, बहुरि देवनिविषै उपजै तौ तहां भी दुर्भाग्यपणां पावै नीच देव होय ऐसैं चतुर्गतिनिविषैं दुःखही पावैं हैं ॥

भावार्थ—विषयासक्त जीवनिकूं कहू ही सुख नांही है परलोकमैं तौ नरक आदिके दुख पावैंही हैं अर या लोकमैं भी इनिके सेवनेंविषैं आपदा कष्ट आवै है तथा सेवातैं आकुलता दुःखही है, यह जीव भ्रमतैं सुख मानै है, सत्यार्थ ज्ञानी तौ विरक्तही होय है ॥ २३ ॥

आगैं कहै है जो–विषयनिके छोडनेमैं भी कछू हानि नांही है;—

तुसधम्मंतबलेण य जह दव्वं ण हि णराण गच्छेदि ।
तवसीलमंत कुसली खपंति विसयं विस व खलं ॥२४

तुषध्मद्वलेन च यथा द्रव्यं न हि नराणां गच्छति ।
तपः शीलमंतः कुशलाः क्षिपंते विषयं विषमिव खलं ॥

अर्थ—जैसैं तुषनिके चलानेकरि उडावनेकरि मनुष्यनिको कछू द्रव्य नांही जाय है तैसैं तप अर शीलवान् जे पुरुष हैं ते विषयनिकूं खलकी ज्यौं क्षेपैं हैं दूर गेरैं हैं ॥

भावार्थ—जो ज्ञानी तप शीलसहित हैं तिनिकै इंद्रियनिके विषय खलकी ज्यौं हैं जैसैं साठेनिका रस काढिले तब खल चूसे नीरस होय तब डारि देनें योग्यही होय तैसैं विषयनिकूं जानना, रस था सो तौ ज्ञानीनिनैं जानि लिया तब विषय तौ खलवत् रहे तिनिके त्यागनेंमैं कहा हानि? कछू भी नांही। धन्य हैं वे ज्ञानी—जे विषयनिकूं ज्ञेयमात्र जानि आसक्त न होय हैं। अर जे आसक्त होय हैं ते तौ अज्ञानी ही हैं

जातैं विषय हैं ते तौ जडपदार्थ है सुख तौ तिनिके जाननें से ज्ञानमें ही था, अज्ञानी आसक्त होय विषयनिमें सुख मान्या जैसें श्वान सूखा हाड चावै तब हाडकी अणी मुख तालवामें चुभै तब तालवा फाटि तामेंसूं रुधिर स्रवै तब अज्ञानी श्वान जाणैं जो यह रस हाडमेंसूं नीसरथा है तब तिस हाडिकूं फेरि फेरि चावै अर सुख मानै तैसैं अज्ञानी विषयनिमें सुख मानि फेरि फेरि भोगवै है, अर ज्ञानीनिनैं अपनें ज्ञानहीमें सुख जान्या है तिनिकै विषयनिके छोडनेमें खेद नाही है, ऐसें जानना ॥ २४ ॥

आगैं कहै हैं जो प्राणी शरीरके अवयव सर्व सुन्दर पावै तौऊ सर्व अंगनिमें शील है सो ही उत्तम है,—

वट्टेसु य खंडेसु य भद्देसु य विसालेसु अंगेसु ।
अंगेसु य पप्पेसु य सव्वेसु य उत्तमं सीलं ॥ २५ ॥

वृत्तेषु च खंडेषु च भद्रेषु च विशालेषु अंगेषु ।
अंगेषु च प्राप्तेषु च सर्वेषु च उत्तमं शीलं ॥ २५ ॥

अर्थ—प्राणीके देहविषैं केई अंग तौ वृत्त कहिये गोल सुघट सराहने योग्य होय हैं, केई अंग खंड कहिये अर्द्ध गोल सारिखे सराहनेयोग्य होय हैं, केई अंग भद्र कहिये सरल सूधे सराहनेंयोग्य होय हैं, अर केई अंग विशाल कहिये विस्तीर्ण चौडे सराहनेंयोग्य होय हैं—ऐसें सर्वही अंग यथास्थान सुन्दर पावते संतैंभी सर्व अंगनिमें यहु शीलनामा अंग है सो उत्तम है, यह न होय तौ सर्वही अंग शोभा न पावै, यह प्रसिद्ध है ॥

भावार्थ—लोकविषैं प्राणी सर्वांगसुन्दर होय अर दुःशील होय तौ सर्व लोकके निंदाकरनें योग्य होय ऐसें लोकमें भी शीलहीकी शोभा है तौ मोक्षमें भी शीलही प्रधान कह्या है, जेते सम्यग्दर्शनादिक मोक्षके अंग हैं ते शीलहीके परिवार हैं ऐसें पहिले कह आये हैं ॥

आगैं कहै है—जो कुमतिकरि मूढ भये हैं ते विषयनिमैं आसक्त हैं कुशील है संसारमैं भ्रमै हैं;—

पुरिसेण वि सहियाए कुसमयमूढेहि विसयलोलेहिं ।
संसारे भमिदव्वं अरयघरट्टं व भूदेहिं ॥ २६ ॥

पुरुषेणापि सहितेन कुसमयमूढैः विषयलोलैः ।
संसारे भ्रमितव्यं अरहटघरट्टं इव भूतैः ॥ २६ ॥

अर्थ—जे कुसमय कहिये कुमत तिनिकरि मूढ हैं सो ही अज्ञानी हैं बहुरि ते विषयनिविषैं लोलुपी हैं आसक्त है ते संसारविषैं भ्रमैं हैं, कैसे भये भ्रमै हैं—जैसैं अरहटविषैं घडी भ्रमैं तैसै भये भ्रमै है तिनिकरि सहित अन्य पुरुषकै भी ससारविषैं दुःखसहित भ्रमण होय है।

भावार्थ—कुमती विषयासक्त मिथ्यादृष्टी आप तौ विषयनिकूं भले मानि सेवैं हैं। केई कुमती ऐसे भी हैं जो ऐसे कहै हैं जो सुन्दर विषय सेवनेमैं ब्रह्म प्रसन्न होय है यह परमेश्वरकी बडी भक्ति है ऐसैं कहिकरि अत्यन्त आसक्त होय सेवैं हैं, ऐसा ही उपदेश अन्यकूं देकरि विषयनिमैं लगावै हैं, ते आप तौ अरहटकी घड़ीकी ज्यौं संसारमैं भ्रमैं ही हैं तहां अनेकप्रकार दुःख भोगवैं हैं परन्तु अन्य पुरुषकूं भी तहां लगाय भ्रमावैं हैं तातैं यह विषय सेवना दुःखहीकै अर्थि है दुःखहीका कारण है, ऐसैं जानि कुमतीनिका प्रसग न करना, विषयासक्तपणा छोड़ना यातैं सुशीलपणा होय है॥ २६ ॥

आगैं कहै है जो कर्मकी गाठि विषय सेयकरि आपही बांधी है ताकूं सत्पुरुष तपश्चरणादिककरि आपही काटै हैं,—

आदेहि कम्मगंठी जा बद्धा विसयरागरागेहिं ।
तं छिन्दंति कयत्था तवसंजमसीलयगुणेण ॥ २७ ॥

---

१ सस्कृत प्रतिमें—'विषयरायमोहेहि' ऐसा पाठ है छाया 'विषय राग मोहै' है।

आत्मनि कर्मग्रंथिः या बद्धा विषयरागरागैः ॥
तां छिन्दंति कृतार्थाः तपः संयमशीलगुणेन ॥ २७ ॥

अर्थ--जे विषयनि के रागरंगकरि आपही कर्मकी गांठि बांधी है वाकूं कृतार्थ पुरुष उत्तम पुरुष तप संयम शील इनितैं भया जो पुण्य ताकरि छेदैं हैं खोलैं हैं ॥

भावार्थ--जो कोई आप गांठि घुलाय बांधे ताके खोलनेका विधान भी आपही जानै, जैसैं सुनार आदि कारीगर आभूषणादिककी संधिकै टांका ऐसा झालै जो वह संधि अदृष्ट हो जाय तब तिस संधिकूं टांकेका झालनेवालाही पहिचानकरि खोलै तैसैं आत्मा अपनेही रागादिक भावकरि कर्मनिकी गांठि बांधी है ताहि आपही भेदज्ञानकरि रागादिकके अर आपकै जो भेद है तिस संधिकूं पहचानि तप संयम शीलरूप भावरूप शस्त्रनिकरि तिस कर्मबंधकूं काटै, ऐसा जानि जे कृतार्थ पुरुष है अपने प्रयोजनके करनेवाले हैं ते इस शील गुणकूं अंगीकार करि आत्माकूं कर्मतैं भिन्न करै हैं, यह पुरुषार्थ पुरुषनिका कार्य है ॥ २७ ॥

आगैं कहै हैं जो शीलकरि आत्मा सोभै है याकूं दृष्टान्तकरि दिखावै हैं;—

उदधीव रदणभरिदो तवविणयंसीलदाणरयणाणं ।
सोहेनो य ससीलो णिव्वाणमणुत्तरं पत्तो ॥ २८ ॥

उदधिरिव रत्नभृतः तपोविनयशीलदानरत्नानाम् ।
शोभते च सशीलः निर्वाणमनुत्तरं प्राप्तः ॥ २८ ॥

अर्थ—जैसैं समुद्र रत्ननिकरि भर्‌या है तौऊ जलसहित सोभै है तैसैं यह आत्मा तप विनय शील दान इनि रत्ननिमैं शीलसहित सोभै है जातैं जो शीलसहित भया तानैं अनुत्तर कहिये जातैं परै और नांही ऐसा निर्वाणपदकूं पाया ॥

भावार्थ—जैसैं समुद्रमैं रत्न बहुत हैं तौऊ जलहीतैं समुद्र नाम पावै है तैसैं आत्मा अन्य गुणनिकरि सहित होय तौऊ शीलकरि निर्वाणपद पावै, ऐसैं जानना ॥ २८ ॥

आगैं जे शीलवान पुरुष है ते ही मोक्ष पावैं हैं यह प्रसिद्धिकरि दिखावै है,—

सुणहाण गद्दहाण य गोपसुमहिलाण दीसदे मोक्खो ।
जे सोधंति चउत्थ पिच्छिज्जंता जणेहि सव्वेहिं ॥२९॥

शुनां गर्दभानां च गोपशुमहिलानां दृश्यते मोक्षः ।
ये शोधयंति चतुर्थं दृश्यतां जनैः सर्वैः ॥ २९ ॥

अर्थ—आचार्य कहै हैं जो—ये सर्व जन देखो—स्वान गर्दभ इनिमैं बहुरि गऊ आदि पशु अर स्त्री इनिमैं काहूकै मोक्ष होनां दीखै है ? सो तौ दीखता नांही, मोक्ष तौ चौथा पुरुषार्थ है यातैं जो चतुर्थ जो पुरुषार्थ ताहि सोधै है हेरै है ताहीकै मोक्ष होना देखिये है ॥

भावार्थ–धर्म अर्थ काम मोक्ष ये च्यार पुरुषकेही प्रयोजन कहे हैं यह प्रसिद्ध है, याहीतैं इनिका नाम पुरुपार्थ है ऐसा प्रसिद्ध है । तहां इनिमैं चौथा पुरुषार्थ मोक्ष है ताकूं पुरुषही सोधै अर पुरुषही ताकू हेरि ताकी सिद्धि करै, अन्य स्वान गर्दभ बैल पशु स्त्री इनिकै मोक्षका सोधना प्रसिद्ध नांही जो होय तौ मोक्षका पुरुपार्थ ऐसा नाम काहेकूं होय । इहां आशय ऐसा जो मोक्ष शीलतैं होय है, जे स्वान गर्दभ आदिक हैं ते तौ अज्ञानी हैं कुशीली हैं, तिनिका स्वभाव प्रकृतिही ऐसी है जो पलटिकरि मोक्ष होनें योग्य तथा ताके सोधने योग्य नाही है, तातैं पुरुषकूं मोक्षका साधन शीलकूं जानि अंगीकार करनां,-सम्यग्दर्शनादिक हैं ते शीलहीके परिवार पूर्वैं कहे ही हैं ऐसैं जानना ॥ २ ॥

आगैं कहै हैं जो शील विना ज्ञानही करि मोक्ष नांही, याका उदाहरण कहैं हैं;—

जइ विसयलोलएहिं णाणीहि हविज्ज साहिदो मोक्खो ।
तो सो सच्चइपुत्तो दसपुव्वीओ वि किं गदो णरयं॥३०॥

यदि विषयलोलैः ज्ञानिभिः भवेत् साधितः मोक्षः ।
तर्हि सः सात्यकिपुत्रः दशपूर्विकः किं गतः नरकं ॥ ३० ॥

अर्थ—जो विषयनिविषैं लोल कहिये लोलुप आसक्त अर ज्ञानसहित ऐसा ज्ञानीनिनै मोक्ष साध्या होय तौ दशपूर्वका जाननेवाला रुद्र नरककूं क्यों गया ॥

भावार्थ—कोरा ज्ञानहीसूं मोक्ष कहनें साध्या कहिये तौ दश पूर्वका पाठी रुद्र नरक क्यों गया तातैं शीलविना कोरा ज्ञानही तैं मोक्ष नाहीं, रुद्र कुशील सेवनेवाला भया, मुनिपद तैं भ्रष्ट होय कुशील सेया तातैं नरकमैं गया, यह कथा पुराणनिमैं प्रसिद्ध है ॥ ३० ॥

आगैं कहै हैं शीलविना ज्ञानहीतैं भावकी शुद्धिता न होय है:—

जइ णाणेण विसोहो सीलेण विणा बुहेहिं णिद्दिट्ठो ।
दसपुव्वियस्स भावो यण किं पुण णिम्मलो जादो ॥३१॥

यदि ज्ञानेन विशुद्धः शीलेन विना बुधैर्निर्दिष्टः ।
दशपूर्विकस्य भावः च न किं पुनः निर्मलः जातः ॥३१॥

अर्थ—जो शीलविना ज्ञानहीकरि विसोह कहिये विशुद्ध भाव पंडिता कह्यो होय तौ दश पूर्वका जाननेवाला जो रुद्र ताका भाव निर्मल क्यों न भया, तातैं जानिये है भाव निर्मल शीलहीतैं होय है ॥

भावार्थ—कोरा ज्ञान तौ ज्ञेयकूं जनावैही है तातैं मिथ्यात्व कषाय होय तब विपर्यय होय जाय तातैं मिथ्यात्वकषायका मिटनां सोही शील है, ऐसैं शीलविना ज्ञानहीतैं मोक्ष सधै नाहीं, शीलविना मुनि होय तौऊ भ्रष्ट होय जाय है तातैं शीलकूं प्रधान जानना ॥ ३१ ॥

आगैं कहै हैं जो नरकमैंभी शील होय जाय अर विषयनिकरि विरक्त होय तौ तहातैं निकसिकरि तीर्थंकरपद पावै है;—

जाए विसयविरत्तो सो गमयदि णरयवेयणा पउरा।
ता लेहदि अरुहपयं भणियं जिणवड्ढमाणेण ॥ ३२ ॥

यः विषयविरक्तः सः गमयति नरकवेदनाः प्रचुराः।
तत् लभते अर्हत्पदं भणितं जिनवर्द्धमानेन ॥ ३२ ॥

अर्थ—जो विषयनितैं विरक्त है सो जीव नरकमैं वहुत वेदना है ताकूं भी गमावै है तहा भी अतिदुःखी न होय है तौ तहांतैं निकसि करि तीर्थंकर होय है यह जिन वर्द्धमान भगवानने कह्या है ॥

भावार्थ—जिनसिद्धान्तमैं ऐसैं कह्या है जो--तीसरी पृथ्वीतैं निकसि, तीर्थंकर होय है सो यह भी शीलहीका माहात्म्य है तहां सम्यक्त्व सहित होय विषयनितैं विरक्त भया भली भावना भावै तब नरक वेदनाभी अल्प होय अर तहांतैं निकसि अरहतपद पाय मोक्ष पावै, ऐसा विषयनितैं विरक्त भाव सो ही शीलका माहात्म्य जानो, सिद्धातमैं ऐसैं कह्या है जो सम्यग्दृष्टीकै ज्ञान अर वैराग्यकी शक्ति नियमकरि होय है सो वैराग्यशक्ति है सो ही शीलका एकदेश है ऐसैं जानना ॥ ३२ ॥

आगैं या कथनकूं सकोचै हैं;--

एवं बहुप्पयारं जिणेहि पच्चक्खणाणदरसीहिं।
सीलेण य मोक्खपयं अक्खातीदं य लोयणाणेहिं ॥३३॥

एवं बहुप्रकारं जिनैः प्रत्यक्षज्ञानदर्शिभिः।
शीलेन च मोक्षपदं अक्षातीतं च लोकज्ञानैः ॥ ३३ ॥

अर्थ—एव कहिये पूर्वोक्त प्रकार तथा अन्य प्रकार बहुत प्रकार जिनदेवनैं कह्या है जो—शीलकरि मोक्षपद है, कैसा है मोक्षपद—अक्षा-

तीत है, इन्द्रियनिकरि रहित अतीन्द्रिय ज्ञान सुख जामैं पाइये है। बहुरि कहनेवाले जिनदेव कैसे हैं–प्रत्यक्ष ज्ञान दर्शन जिनकै पाइये है बहुरि लोकका जिनकै ज्ञान है॥

भावार्थ—सर्वज्ञ देवनैं ऐसैं कह्या है जो शीलकरि अतीन्द्रिय ज्ञान सुख रूप मोक्षपद पाइये है सो भव्यजीव या शीलकूं अंगीकार करो, ऐसा उपदेशका आशय सूचै है बहुत कहा ताईं कहिये एता ही बहुत प्रकार कह्या जानो॥ ३३॥

आगैं कहै हैं जो इस शीलकरि निर्वाण होय ताकूं बहुत प्रकार वर्णन कीजिये सो कैसैं ताका कहना ऐसैं है;—

सम्मत्तणाणदंसणतववीरियपंचयार मप्पाणं।
जलणो वि पवणसहिदो डहंति पोरायणं कम्मं॥३४॥

सम्यक्त्वज्ञानदर्शनतपोवीर्यपंचाचाराः आत्मनाम्।
ज्वलनोऽपि पवनसहितः दहंति पुरातनं कर्म॥ ३४॥

अर्थ—सम्यक्त्व ज्ञान दर्शन तप वीर्य ये पंच आचार है सो आत्मा का आश्रय पायकरि पुरातन कर्मनिकूं दग्ध करैं हैं, जैसैं अग्नि है सो पवन सहित होय तब पुराणे सूखे इंधनकूं दग्ध करै तैसैं॥

भावार्थ–इहां सम्यक्त्व आदि पंच आचार तो अग्निस्थानीय हैं अर आत्माका शुद्ध स्वभाव है ताकूं शील कहिये सो यह आत्माका स्वभाव पवनस्थानीय है सो पंच आचार रूप पवनका सहाय पाय पुरातन कर्म-बंधकूं दग्धकरि आत्माकूं शुद्ध करैं ऐसैं शीलही प्रधान है। पांच आचा-रमैं चारित्र कह्या है अर इहां सम्यक्त्व कहनेंमैं चारित्रही जाननां विरोध न जाननां॥ ३४॥

आगैं कहै हैं जो ऐसैं अष्ट कर्मनिकूं जिनिनैं दग्ध किये ते सिद्ध भये हैं;—

णिद्दड्ढअट्ठकम्मा विसयविरत्ता जिदिंदिया धीरा ।
तवविणयसीलसहिदा सिद्धा सिद्धिं गदिं पत्ता ॥३५॥

निर्दग्धाष्टकर्माणः विषयविरक्ता जितेंद्रिया धीराः ।
तपोविनयशीलसहिताः सिद्धाः सिद्धिं गतिं प्राप्ताः ॥ ३५ ॥

अर्थ—जो पुरुष जीते हैं इंद्रिय जिनूनैं याहीतैं विषयनितैं विरक्त भये हैं, बहुरि धीर हैं परीषहादि उपसर्ग आये चिगै नाही हैं, बहुरि तप विनय शील इनिकरि सहित हैं ते दूरि किये है अष्ट कर्म जिनूनैं ऐसे होय सिद्धिगति जो मोक्ष ताकूं प्राप्त भये है, ते सिद्ध ऐसा नाम कहावैं हैं ॥

भावार्थ—इहां भी जितेंद्रिय विषयविरक्तता ये विशेषण शीलहीकी प्रधानता दिखावैं हैं ॥ ३५ ॥

आगैं कहै हैं जो लावण्य अर शील युक्त है सो मुनि सराहने योग्य होय है;—

लावण्णसीलकुसलो जम्ममहीरुहो जस्स सवणस्स ।
सो सीलो स महप्पा भमित्थ गुणवित्थरं भविए ॥३६॥

लावण्यशीलकुशलः जन्ममहीरुहः यस्य श्रमणस्य ।
सः शीलः स महात्मा भ्रमेत् गुणविस्तारः भव्ये ॥ ३६ ॥

अर्थ—जिस मुनिका जन्मरूप वृक्ष है सो लावण्य कहिये अन्यकूं प्रियलागै ऐसा सर्व अंग सुन्दर तथा मन वचन कायकी चेष्टा सुन्दर अर शील कहिये अंतरंग मिथ्यात्व विषयकरि रहित परोपकारी स्वभाव इनि दोऊनिविषैं प्रवीण निपुण होय सो मुनि शीलवान् है महात्मा है ताके गुणनिका विस्तार लोकविषैं भ्रमै है फैलै है ॥

भावार्थ—ऐसे मुनिका गुण लोकमैं विस्तरै है सर्व लोकके प्रशंसा योग्य होय है इहा भी शीलहीकी महिमा जाननी, अर वृक्षका स्वरूप कह्या जैसैं वृक्षके शाखा पत्र पुष्प फल सुन्दर होय अर छायादिककरि रागद्वेष रहित सर्व लोकनिकूं समान उपकार करै तिस वृक्षकी महिमा सर्व लोक करै तैसैं मुनिभी ऐसा होय सो सर्वके महिमा करने योग्य होय है ॥ ३६ ॥

आगैं कहै है जो ऐसा होय सो जिनमार्गविषैं रत्नत्रयकी प्राप्तिरूप बोधि पावै है;—

णाणं झाण जोगो दंसणसुद्धीय वीरियायत्तं[1] ।
सम्मत्तदंसणेण य लहंति जिणसासणे बोहिं ॥ ३७ ॥

ज्ञानं ध्यानं योगः दर्शनशुद्धिश्च वीर्यायत्ताः ।
सम्यक्त्वदर्शनेन च लभंते जिनशासने बोधिं ॥ ३७ ॥

अर्थ—ज्ञान ध्यान योग दर्शनकी शुद्धता ये तो वीर्यके आधीन हैं अर सम्यग्दर्शनकरि जिनशासनकै विषैं बोधिकूं पावैं हैं, रत्नत्रयकी प्राप्ति होय है ॥

भावार्थ—ज्ञान कहिये पदार्थनिकूं विशेषकरि जानना, ध्यान कहिये स्वरूप विषैं एकाग्र चित्त होना, योग कहिये समाधि लगावनां, सम्यग्दर्शनकूं निरतिचार शुद्ध करना, येतो अपना वीर्य जो शक्ति ताकै आधीन हैं जेता बनै तेता होय अर सम्यग्दर्शनकरि बोधि जो रत्नत्रय ताकी प्राप्ति होय याके होतैं विशेष ध्यानादिक भी यथा शक्ति होयही है अर शक्ति भी यातैं बधै है। ऐसैं कहनेमैं भी शीलहीका माहात्म्य जानना, रत्नत्रय है सो ही आत्माका स्वभाव है ताकूं शीलभी कहिये ॥ ३७ ॥

---

१ मुद्रित संस्कृत प्रतिमें 'वीरियावत्तं' ऐसा पाठ है जिसकी छाया 'वीर्यत्व' है ॥

आगैं कहै हैं जो—यह प्राप्ति जिनवचनतैं होय है,—

जिणवयणगहिदसारा विसयविरत्ता तपोधणा धीरा।
सीलसलिलेण ण्हादा ते सिद्धालयसुहं जंति ॥ ३८ ॥

जिनवचनगृहीतसारा विषयविरक्ताः तपोधना धीराः।
शीलसलिलेन स्नाताः ते सिद्धालयसुखं यांति ॥ ३८ ॥

अर्थ—जिनवचनकरि ग्रहण किया है सार जिनिनैं बहुरि विषयनितैं विरक्त भये हैं, बहुरि तपही है धन जिनिकै, बहुरि धीर है ऐसे भये संते मुनि शीलरूप जलकरि न्हायें शुद्ध भये ते सिद्धालय जो सिद्धनिके वसनेंका मन्दिर ताके सुखनिकूं पावै हैं ॥

भावार्थ—जे जिनवचनकरि वस्तुका यथार्थ स्वरूप जानि ताका सार जो अपना शुद्ध स्वरूपकी प्राप्ति ताका ग्रहण करैं ते हैं ते इंद्रियनिके विषयनितैं विरक्त होय तप अंगीकार करैं हैं मुनि होय हैं, तहा धीरवीर होय परीषह उपसर्ग आये चिगैं नाही तब शील जो स्वरूपकी प्राप्तिकी पूर्णतारूप चौरासी लाख उत्तरगुणकी पूर्णता सो ही भया निर्मल जल ताकरि स्नान करि सर्व कर्ममलकूं धोय सिद्ध भये, सो मोक्षमदिरविषैं तिष्ठि करि तहा परमानंद अविनाशी अतीन्द्रिय अव्याबाध सुखकूं भोगवैं हैं, यह शीलका माहात्म्य है। ऐसा शील जिनवचनतैं पाइये है जिनागमका निरन्तर अभ्यास करना यह उत्तम है ॥ ३८ ॥

आगैं अंतसमयमैं सल्लेखना कही है तहा दर्शन ज्ञान चारित्र तप इनि च्यारि आराधनाका उपदेश है सो ये शील हीतैं प्रगट होय हैं, ताकूं प्रगटकरि कहैं हैं;—

सव्वगुणखीणकम्मा सुहदुक्खविवज्जिदा मणविसुद्धा।
पप्फोडियकम्मरया हवंति आराहणा पयडा ॥ ३९ ॥

सर्वगुणक्षीणकर्माणः सुखदुःखविवर्जिताः मनोविशुद्धाः ।
प्रस्फोटितकर्मरजसः भवंति आराधनाः प्रकटाः ।। ३९ ।।

अर्थ—सर्व गुण जे मूलगुण उत्तरगुण तिनिकरि क्षीण भये हैं कर्म जामैं, बहुरि सुख दुःखकरि विवर्जित हैं, बहुरि मन है विशुद्ध जामैं, बहुरि उडाये हैं कर्मरूप रज जानैं ऐसी आराधना प्रगट होय है ।।

भावार्थ-पहलैं तौ सम्यग्दर्शनसहित मूलगुण उत्तरगुणनिकरि कर्मनिकी निर्जरा होनेतैं कर्मकी स्थिति अनुभाग क्षीण होय है, पीछैं विषयनिके द्वारैं किछू सुख दुःख होय था ताकरि रहित होय है, पीछैं ध्यानविषैं तिष्ठि श्रेणी चढै तब उपयोग विशुद्ध होय कषायनिका उदय अव्यक्त होय तब दुःख सुखकी वेदना मिटै, बहुरि पीछैं मन विशुद्ध होय क्षयोपशम ज्ञानके द्वारैं किछू ज्ञेयतैं ज्ञेयान्तर होनेका विकल्प होय है सो मिटिकरि एकत्ववितर्क अविचारनामा शुक्लध्यान बारमां गुणस्थानके अंत होय है यह मनका विकल्प मिटि विशुद्ध होनां है, बहुरि पीछैं घातिकर्मका नाश होय अनंत चतुष्टय प्रकट होय है यह कर्मरजका उडना है, ऐसैं आराधनाकी संपूर्णता प्रकट होनां है। जे चरम शरीरी हैं तिनिकै तौ ऐसैं आराधना प्रकट होय मुक्तिकी प्राप्ति होय है। बहुरि अन्यकै आराधनाका एकदेश होय अंतमैं तिसकूं आराधनकरि स्वर्गविषैं प्राप्त होय, तहां सागरांपर्यंत सुख भोगि तहांतैं चय मनुष्य होय आराधनांकूं संपूर्ण करि मोक्ष प्राप्त होय है, ऐसैं जानना, यह जिनवचनका अर शीलका माहात्म्य है ।। ३९ ।।

आगैं ग्रंथकूं पूर्ण करैं हैं तहां ऐसैं कहैं हैं जो ज्ञानतैं सर्व सिद्धि है यह सर्वजनप्रसिद्ध है सो ज्ञान तौ ऐसा होय ताकूं कहिये है;—

अरहंते सुहभत्ती सम्मत्तं दंसणेण सुविसुद्धं ।
सीलं विसयविरागो णाणं पुण केरिसं भणियं ।। ४० ।।

अर्हति शुभभक्तिः सम्यक्त्वं दर्शनेन सुविशुद्धं ।
शीलं विषयविरागः ज्ञानं पुनः कीदृशं भणितं ॥४०॥

अर्थ—अरहंतनिविषैं भली भक्ति है सो तौ सम्यक्त्व है, सो कैसा है—सम्यग्दर्शनकरि विशुद्ध है, तत्वार्थनिका निश्चय व्यवहारस्वरूप श्रद्धान अर बाह्य जिनमुद्रा नग्न दिगम्बररूपका धारण तथा ताका श्रद्धान ऐसा दर्शनकरि विशुद्ध अतीचार रहित निर्मल है ऐसा तौ अरहंतभक्तिरूप सम्यक्त्व है, बहुरि शील है सो विषयनितैं विरक्त होना है बहुरि ज्ञान भी यह ही है और यातैं न्यारा ज्ञान कैसा कह्या है? सम्यक्त्व शील विना तौ ज्ञान मिथ्याज्ञानरूप अज्ञान है ॥

भावार्थ—यह सर्व मतनिमैं प्रसिद्ध है जो ज्ञानतैं सर्व सिद्धि है अर ज्ञान होय है सो शास्त्रनितैं होय है। तहां आचार्य कहै हैं जो—हम तौ ताकूं ज्ञान कहैं हैं जो सम्यक्त्व अर शील सहित होय, यह जिनागममैं कही है, यातैं न्यारा ज्ञान कैसा है यातैं न्यारा ज्ञानकूं तौ हम ज्ञान कहैं नाही, इनि विना तौ अज्ञानही है, अर सम्यक्त्व शील होय सो जिनागमतैं होय। तहां जाकरि सम्यक्त्व शील भये तिसकी भक्ति न होय तौ सम्यक्त्व कैसैं कहिये, जाके वचनतैं यह पाइये ताकी भक्ति होय तब जानिये याकै श्रद्धा भई, बहुरि सम्यक्त्व होय तब विषयनितैं विरक्त होय ही होय जो विरक्त न होय तौ संसार मोक्षका स्वरूप कहा जान्या? ऐसैं सम्यक्त्व शील भये ज्ञान सम्यक्ज्ञान नाम पावै है। ऐसैं इस सम्यक्त्व शीलके संबधतैं ज्ञानकी तथा शास्त्रकी वडाई है। ऐसैं यह जिनागम है सो ससारतैं निवृत्तिकरि मोक्ष प्राप्त करनेंवाला है, सो जयवत होहु। बहुरि यहु सम्यक्त्वसहित ज्ञानकी महिमा है सो ही अतमगल जानना ॥ ४० ॥

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत शीलपाहुड ग्रंथ समाप्त भया ॥

याका संक्षेप तौ कहते आये जो—शील नाम स्वभावका है सो आत्माका स्वभाव शुद्ध ज्ञान दर्शनमयी चेतनास्वरूप है सो अनादिकर्मके

सयोगतैं विभावरूप परिणमैं है ताके विशेष मिथ्यात्व कषाय आदि अनेक हैं तिनिकू राग द्वेष मोह भी कहिये तिनिके भेद संक्षेपकरि चौरासीलाख किये हैं, विस्तारकरि असख्यात अनत होय हैं तिनिकूं कुशील कहिये, तिनिका अभावरूप संक्षेपकरि चौरासी लाख उत्तरगण हैं तिनिकूं शील कहैं हैं; यह तौ सामान्य परद्रव्यके संबधकी अपेक्षा शील कुशीलका अर्थ है। बहुरि प्रसिद्ध व्यवहारकी अपेक्षा स्त्रीके संगकी अपेक्षा कुशीलके अठारह हजार भेद कहे हैं तिनिका अभाव ते शीलके अठारा हजार भेद हैं, तिनिकूं जिन आगमतैं जानि पालने। लोकमैं भी शीलकी महिमा प्रसिद्ध है जे पालै हैं स्वर्ग मोक्षके सुख पावैं है तिनिकू हमारा नमस्कार है ते हमारै भी शीलकी प्राप्ति करो, यह प्रार्थना है॥

छप्पय।

आन वस्तुके संग-राचि जिनभाव भंग करि,
वरतै ताहि कुशीलभाव भाखे कुरंग धरि।
ताहि तजैं मुनिराय पाय निज शुद्धरूप जल
धोय कर्मरज होय सिद्धि पावै सुख अविचल॥
यह निश्चय शील सुब्रह्ममय व्यवहारै तियतज नमै।
जो पालै सबविधि तिनि नमूं पाऊं जिन भव न जनम मैं॥

दोहा।

नमूं पंचपद ब्रह्ममय मंगलरूप अनूप।
उत्तम शरण सदा लहूँ फिरि न परूं भवकूप॥ २॥

इति श्रीकुन्दकुन्दाचार्यस्वामि प्रणीत शीलप्राभृतकी
जयपुरनिवासी प. जयचन्द्रजी छाबड़ाकृत-
देशभाषामयवचनिका समाप्त॥ ८॥

वचनिकाकारकी प्रशस्ति।

ऐसैं श्रीकुन्दकुन्द आचार्यकृत गाथाबंध पाहुडग्रंथ है तिनिमैं ये पाहुड हैं तिनिकी यह देशभाषामय वचनिका लिखी है। तहां छह पाहुडकी तौ टीका टिप्पण हैं तिनिमैं टीका तौ श्रुतसागरकृत है अर टिप्पण पहलैं काहू औरनैं किया है तिनिमैं केई गाथा तथा अर्थ अन्य-प्रकार हैं तहां मेरै विचारमैं आया तिनिका आश्रय भी लिया है अर जैसैं अर्थ मोकूं प्रतिभास्या तैसैं लिख्या है। अर लिंगपाहुड अर शीलपाहुड इनि दोऊ पाहुडनिकी टीका टिप्पण मिल्या नांही तातैं गाथाका अर्थ जैसैं प्रतिभासमैं आया तैसैं लिख्या है। अर श्रुतसागरकृत टीका पट-पाहुडकी है तामैं ग्रंथांतरकी साखि आदि कथन बहुत है सो तिस टीकाकी यह वचनिका नाही है, गाथाका अर्थ मात्र वचनिका करि भावार्थमैं मेरी प्रतिभासमैं आया तिस अनुसार लेय अर्थ लिख्या है। अर प्राकृत व्याकरण आदिका ज्ञान मोमैं विशेष है नाही तातैं कहूं व्याकरणतैं तथा आगमतैं शब्द अर अर्थ अपभ्रंश भया होय तहां बुद्धिमान पंडित मूलग्रंथ विचारि शुद्ध करि वांचियो, मोकूं अल्पबुद्धि जानि हास्य मति करियो, क्षमा करियो, सत्पुरुषनिका स्वभाव उत्तम होय है, दोष देखि क्षमा ही करैं हैं।

बहुरि इहां कोई कहै–तुम्हारी बुद्धि अल्प है तौ ऐसे महानग्रंथकी वचनिका क्यों करी? ताकूं ऐसैं कहना जो इस कालमैं मोतैं भी मंद-बुद्धि बहुत हैं तिनिके समझनेंके अर्थि करी है यामैं सम्यग्दर्शनका दृढ करनां प्रधानकरि वर्णन है तातैं अल्पबुद्धी भी वाचैं पढैं अर्थका धारण करैं तौ तिनिकै जिनमतका श्रद्धान दृढ होय, यह प्रयोजन जानि जैसैं अर्थ प्रतिभासमैं आया तैसैं लिखा है, अर जे बडे बुद्धिमान हैं ते मूलग्रंथकं वाचि पढिही श्रद्धान दृढ करैंगे, मेरै कछु ख्याति लाभ पूजाका

तौ प्रयोजन है नांही धर्मानुरागतैं यह वचनिका लिखी है, तातैं बुद्धिमाननिकै क्षमाही करनेंयोग्य है।

अर इस ग्रंथकी गाथाकी संख्या ऐसैं है:—प्रथम दर्शनपाहुडकी गाथा ३६। सूत्रपाहुडकी गाथा २७। चारित्रपाहुडकी गाथा ४४। बोधपाहुडकी गाथा ६१। भावपाहुडकी गाथा १६५। मोक्षपाहुडकी गाथा १०६। लिंगपाहुडकी गाथा २२। शीलपाहुडकी गाथा ४०। एवं पाहुड आठकी गाथाकी संख्या ५०७ हैं।

छप्पय।

जिनदर्शन निर्ग्रंथरूप तत्वारथ धारन,
सूतर जिनके वचन सार चारित व्रत पारन ;
बोध जैनका जांनि आनका सरन निवारन,
भाव आतमा बुद्ध मांनि भावन शिव कारन ॥
फुनि मोक्ष कर्मका नाश है लिंग सुधारन तजि कुनय।
धरि शील स्वभाव संवारनां आठ पाहुडका फल सुजय ॥

दोहा।

भई वचनिका यह जहां सुनो तास संक्षेप।
भव्यजीव संगति भली मेटै कुकरमलेप ॥ २ ॥
जयपुर पुर सूवस वसै तहां राज जगतेश।
ताके न्याय प्रतापतैं सुखी ढुंढाहर देश ॥ ३ ॥
जैनधर्म जयवंत जग किछु जयपुरमें लेश।
तामधि जिनमंदिर घणे तिनिको भलो निवेश ॥ ४ ॥

तिनिमैं तेरापंथको मंदिर सुंदर एव ।
धर्मध्यान तामैं सदा जैनी करै सुसेव ॥ ५ ॥
पंडित तिनिमैं बहुत हैं मैं भी इक जयचंद ।
प्रेर्‍यां सबकै मन कियो करन वचनिका मंद ॥ ६ ॥
कुन्दकुन्द मुनिराजकृत प्राकृत गाथा सार ।
पाहुड अष्ट उदार लखि करी वचनिका तार ॥ ७ ॥
इहां जिते पंडित हुते तिनिनैं सोधी येह ।
अक्षर अर्थ सुवांचि पढ़ि नहि राख्यो संदेह ॥ ८ ॥
तौऊ कछू प्रमादतैं बुद्धिमंद परभाव ।
हीनाधिक कछु अर्थ ह्वै सोधो बुध सतभाव ॥ ९ ॥
मंगलरूप जिनेंद्रकूं नमस्कार मम होहु ।
विघ्न टलैं शुभबंध ह्वै यह कारन है मोहु ॥ १० ॥
संवत्सर दश आठ सत सतसठि विक्रमराय ।
मास भाद्रपद शुक्ल तिथि तेरसि पूरन थाय ॥ ११ ॥

इति वचनिकाकारप्रशस्ति ।

जयतु जिनशासनम् ।

शुभमिति ।

श्री मगनमल हीरालाल पाटनी दि० जैन पारमार्थिक ट्रस्ट द्वारा

प्रकाशित ग्रन्थ

१ **समयसार** मूल गाथाओंका हिन्दी पद्यानुवाद ।)

२ **अनुभवप्रकाश** आत्माका अनुभव कराने वाला ग्रंथ (अध्यात्मरसी स्व० पं० दीपचन्दजी कृत) पत्र ११६ अजिल्द ।=)

३ **आत्मावलोकन** आत्माका अवलोकन कैसे हो ? उसका उपाय (अध्यात्मरसी स्व० पं० दीपचन्दजी कृत) पत्र १९८ सजिल्द १=)

४ **स्तोत्रत्रयी** कल्याणमंदिर, विषापहार, जिनचतुर्विंशतिका स्तोत्र अर्थ सहित, पत्र ६६ अजिल्द ॥)

५ **निमित्त नैमित्तिक संबन्ध क्या है ?** =)॥

६ **चिद्विलास** चैतन्यके अन्तर्विलासको दिग्दर्शन करानेवाला ग्रंथ (अध्यात्मरसी स्व० प० दीपचन्दजी कृत) पत्र १२४ सजिल्द १॥)

७ **सोलहकारण विधान** (पूजन) पत्र १३२ १)

८ **बृहत्स्वयंभू स्तोत्र** समन्तभद्राचार्य विरचित भावार्थ सहित पत्र ८६ अजिल्द ॥)

९ **श्री समयसार प्रवचन** कपड़ेकी पक्की जिल्द सहित पूज्य श्री कानजी स्वामीके समयसारकी १२ गाथाओं पर अपूर्व शैलीसे आध्यात्मिक प्रवचन (प्रथमभाग) बड़ी साइजके पत्र ४८८ का ६)

१० **श्री प्रवचनसार** धवलाकार कपड़ेकी पक्की सुन्दर जिल्द सहित भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य कृत गाथासे श्रीमद् अमृतचन्द्राचार्य्य कृत तत्वदीपिका वृत्ति और उसका अक्षरश नवीन अपूर्व हिन्दी अनुवाद आचार्य्य श्री के हृदयके भावोंको द्योतन करने वाली अद्भुत टीका पत्र ३८८ का ६॥)

११ **श्री अष्टपाहुड़** कपड़ेकी सुन्दर पक्की जिल्द सहित भगवत्कुन्दकुन्दाचार्य्य कृत गाथाएँ और स्व० पं० जयचन्दजी छाबड़ा कृत भाषा टीका, अध्यात्म सरल व गूढ ग्रंथ पत्र ४५० का ३॥)

— छप रहे हैं —

१२ **आध्यात्मिकपाठ संग्रह** पक्की कपड़ेकी जिल्द सहित भक्ति वैराग्य एवं आध्यात्मिक अनेक स्तोत्र, पाठ, भजन व ग्रंथका अपूर्व सग्रह पत्र ८००

१३ **श्री समयसार प्रवचन** (द्वितीय भाग) पू० श्री कानजी स्वामी द्वारा समयसार पर अपूर्व आध्यात्मिक प्रवचन ६॥)

१४ **श्री समयसारजी** मूल गाथाऐं सस्कृत टीका, एवं नवीन हिन्दी टीका सहित

........●........

श्री जैन स्वाध्याय मंदिर सोनगढ़ के हिन्दी भाषा के

— प्रकाशन —

१ मुक्तिका मार्ग ॥=)
२ वस्तुविज्ञानसार अमूल्य
३ मूलमें भूल ।॥)
४ दशलक्षण धर्म ।॥)
५ मोक्षमार्ग प्रकाशक किरण १।=)
६ समयसार प्रवचन प्रथम भाग ६)
७ जैन बालपोथी सचित्र ।)
८ पंचमेरु नंदीश्वर पूजन विधान ।॥)
९ आत्मधर्म मासिक पत्र वार्षिक ३)

— छप रहे हैं —

१ भेद विज्ञानसार
२ सम्यग्दर्शन

—:: प्राप्ति स्थान ::—

श्री, पाटनी दि० जैन ग्रन्थमाला
मारोठ (मारवाड़)

श्री जैन स्वाध्याय मन्दिर
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)